सर्वोदय

अेष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके

सम्पादक–काका कालेलकर, दादा धर्माधिकारी

वर्धा, जनवरी १९३९ अंक ६

राजनैतिक आदर्श–सुसंस्कृत अराजकता

मेरी दृष्टि से राजनैतिक सत्ता हमारा ध्येय नहीं हो सकता। जिन साधनों की बदौलत जीवन के प्रत्येक विभाग में अपनी अुन्नति करने की शक्ति लोगों में आती है अुनमें से राजनैतिक सत्ता अेक है। राष्ट्र के प्रतिनिधियों द्वारा राष्ट्रीय जीवन का नियमन करने की शक्ति का ही नाम राजनैतिक सत्ता है। यदि राष्ट्रीय जीवन अितना पूर्ण हो जाय कि वह स्वयंनियंत्रित रहे तो प्रतिनिधित्व की आवश्यकता ही नहीं रहती। वह अेक सुसंस्कृत अराजकता की अवस्था होगी, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपना ही शासक होगा। वह अपना नियमन आप ही अिस तरह करेगा कि जिससे अुसके पडोसी के हित में बाधा न हो। आदर्श स्थिति में राज्यसंस्था ही नहीं रहेगी तो फिर राजनैतिक सत्ता कहां से आयेगी? अिसीलिअे थोरो ने अपने अभिजात सूत्र में कहा है कि सबसे बढ़िया सरकार वह है जो कम से कम शासन करती है।

—गांधीजी

अेक अंक...	...	रु० ०–६–०
वार्षिक ...	...	रु० ३–०–०
बर्मा में ...	...	रु० ३–८–०
विदेश में...	...	६ शिलिंग
		१.५० डॉलर.

(सब डाक सहित)

अनुक्रमणिका

(१) सत्याग्रह का दर्शन और कला (श्री. निर्मलकुमार बसु) ... १
(२) समाजवाद—प्रतिबंधक और निवारक (डॉ. पट्टाभि सीताराम अैया) ... ७
(३) कौअे की नजर से ('आश्रमवासी अुल्लू') ... १३
(४) आरण्यक भाअियों से (श्री. किशोरलाल घ. मशरूवाला) ... १७
(५) वीरवृत्ति और शस्त्रवाद (श्री. दादा धर्माधिकारी) ... २२
(६) राष्ट्रभाषा की सनातन चर्चा (श्री. काका कालेलकर) ... २७
(७) देवों का काव्य (श्री. काका कालेलकर) ... २९
(८) गांधीजी के पत्र (पुराने पत्रों से) . ३२
(९) सर्वोदय की दृष्टि ३३
सर्वोदय की भाषा; बेचारा सवाअी भूशुंडी; जीवनवेतन=चारित्र्य-वेतन; जाति या वर्ग-निष्ठ शिष्टाचार; हिन्दूधर्म बनाम हिन्दूसमाजशास्त्र; देशी भाषा और विद्युल्लिपि; भाषा की समृद्धि या प्रतिष्ठा ? राजकोट का सफल सत्याग्रह.
(१०) प्रश्नोत्तरी ... ४३
(११) संघ वृत्त ४७
(१२) वाङ्मय परिचय ४८

सर्वोदय मिलने की व्यवस्था निम्न लिखित स्थानों में की गयी है :

(१) वोरा अेण्ड कंपनी, ८, राउण्ड बिल्डिंग, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बअी, २।
(२) नवजीवन कार्यालय, १३०, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बअी, २।
(३) नवजीवन कार्यालय, अहमदाबाद।
(४) खादी भण्डार, हैरिसन रोड, कलकत्ता।
(५) सस्ता साहित्य मण्डल, नया बाजार, देहली।
(६) सस्ता साहित्य मण्डल, लखनऊ।
(७) गांधी आश्रम, गोरखपुर।

सर्वोदय

अेष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके

संपादकः—काका कालेलकर
दादा धर्माधिकारी

जनवरी १९३९
वर्धा

सत्याग्रह का दर्शन और कला

[श्री निर्मलकुमार बसु]

—१—

विलियम जेम्स केवल अेक बहुत बडा मनोवैज्ञानिक ही न था, वह अेक बडा आदमी भी था। वह मनुष्यजाति से प्रेम करता था और लड़ाअी के प्रति घृणा। परन्तु वह यह भी जानता था कि लड़ाअी में कुछ गुण भी हैं। जिम्मेवारी और अनुशासन की भावना का और धैर्य तथा बन्धुत्व के गुणों का विकास जितना युद्ध से होता है, अुतना शायद ही और किसी व्यापार से होता हो। फिर भी अुसे यह भी विदित था कि लड़ाअी की गैल में जो यंत्रणायें और अधःपतन अनिवार्यरूप से आता है, वह अुसके सारे गुणों पर पानी फेर देता है। अिसलिअे वह युद्ध के किसी अैसे नैतिक पर्याय की तलाश में था जिसका मनुष्यस्वभाव पर युद्ध की अपेक्षा किसी कदर कम शुभ परिणाम न हो, और फिर भी जिसके लिअे हमें अुतनी महंगी कीमत न देनी पडे, जितनी कि युद्ध के लिअे देनी पडती है। 'युद्ध का नैतिक प्रतियोगी' यह शब्द-प्रयोग शायद विलियम जेम्स का ही गढ़ा हुआ है। कअी वर्ष पहले लिखे हुअे अेक निबंध में अुसने यह सुझाया था कि लड़ाअी को ही निषिद्ध ठहराने के बदले हमें अुसकी दिशा बदल देनी चाहिअे। आदमियों को अपनी तमाम जिन्दगी अेक दूसरे से लडने में बरबाद करनें देने के बदले हमें अुन्हें प्राकृतिक शक्तियों से जूझनें की तालीम देनी चाहिअे, ताकि मानवीय जीवन सुखी और सम्पन्न हो।

विलियम जेम्स युरोपीय महासमर से चार वर्ष पहले परलोक को सिधारा। आगे चलकर अमरिका ने भी अिस महासमर में अुचित हिस्सा लिया। यह अिस बात का सबूत था कि अिस महान मनोवैज्ञानिक के अुपदेश का बीज मरुस्थल में जा पडा था। अिसलिअे स्वयं अुसके देश में भी वह अंकुरित न हुआ। क्या ही अच्छा होता अगर सारी मनुष्यजाति अुसकी सिखावन पर ध्यान देती। परन्तु दुर्भाग्यवश यह न हुआ। अिस असफलता का अेक प्रधान कारण यह भी था कि युद्ध का जो प्रतियोगी साधन अुसने सुझाया था वह मनुष्य-समाज में जहां विरोध

और संघर्ष प्रत्यक्षरूप से विद्यमान था अुसको दूर करने में किसी तरह सहायक न हुआ। अगर मनुष्यों में बन्धुत्व की भावना पहले से ही मौजूद होती, अगर वे शुरू से ही महसूस करते कि सबके कल्याण में हर अेक का कल्याण है, तो अुन्होंने अपनी शक्ति युद्ध में अुडा देने के बजाय किसी बेहतर व्यापार में लगायी होती! लेकिन जब कि अुस भावना की ही कमी थी, जब कि मनुष्यों के जुदे-जुदे गिरोह संसार की सारी अच्छी-अच्छी चीजों पर तलवार के जोर पर एकाधिकार करना चाहते थे, जब कि खुदगर्जी अन्दर ही अन्दर सुलग रही थी, विलियम जेम्स की अुच्च नैतिक सिखावन जीवन में प्रत्यक्ष परिणत होने योग्य आदर्श के रूप में प्रतीत होने के बदले अेक कल्पित स्वप्न जैसी मालूम हुअी।

युद्ध के कारगर प्रतियोगी साधन के रूप में अहिंसक असहयोग का आविर्भाव ठीक यहीं पर होता है। वह लड़ाअी बिलकुल बन्द नहीं करना चाहता। लोगों के सांसारिक झगडों से अुन्हें मंत्रमुग्ध करके दूसरी तरफ बहलाना नहीं चाहता। लेकिन प्रेम और बन्धुत्व के भावों को प्रवृत्त कर वह अुन लडाअी-झगडों की भूमिका अुन्नत करना चाहता है। सत्याग्रह लडाअी का पर्याय नहीं है। वह प्रत्यक्ष लड़ाअी ही है। लेकिन अन्तर यह है कि लड़ाअी के बुरे लक्षण अुसमें नहीं हैं, और अुसका अुद्देश विनाश से कहीं अुच्चतर होता है। वह लड़ाअी का अेक अैसा रूप है, जिसमें अुत्कट वीरवृत्ति और पराक्रम के लिअे स्थान है।

सारी मनुष्यजाति को अेकरूप देखना और अुसके प्रति समान प्रेम करना सत्याग्रही के धर्म का सबसे पहला सूत्र है। सत्याग्रही यह भी मानता है कि जहां प्रेम है, वहां किसी भी किस्म या सूरत का शोषण कदापि नहीं रह सकता। प्रेम और अेकान्तिक अधिकार परस्पर विरोधी हैं। अगर हमारे हृदय में प्रेम है, तो हम किसी चीज पर तभी अधिकार करेंगे जब कि जिसे अुसकी जरूरत हो, अैसा हर अेक आदमी अुसे पा सके। अिस मुलभूत विश्वास के अनुसार सत्याग्रही यह मानता है कि मनुष्यसमाज में जब कभी और जहां कहीं हितविरोध होता है वहां, कहीं न कहीं, कुछ न कुछ गलती जरूर है। और अगर हम धीरज के साथ परिस्थिति का निरीक्षण करें, तो अैसी राह जरूर मिल जायगी कि जिससे मानवीय अेकता का भाव पुनः प्रतिष्ठित हो जायगा और समूची मनुष्य-जाति का सर्वश्रेष्ठ हित भी सिद्ध होगा। वह रास्ता प्रेम से आलोकित होगा और अुसमें किसी भी मनुष्य के शोषण की तनिक भी गुंजाअिश न रहेगी।

सत्याग्रही का यह भी विश्वास होता है कि यदि वह और अुसका प्रतिपक्षी किसी तरह सह-विचार कर सकें तो अिस तरह का अुपाय बहुत अच्छी तरह प्राप्त हो सकता है। लेकिन केवल दलील और बहस से तो प्रतिपक्षी अपना अन्याय महसूस नहीं करेगा। अगर हम अुसे मार डालें या जबरदस्ती डरा दें तो भी हमारा अभिप्राय सिद्ध नहीं होता। भय से नैतिक पतन होता है और विद्यमान अधिकारियों के हृदय में अिस तरह के अन्तराय पैदा हो जाते हैं, जिनसे परस्पर सद्भाव और भी कठिन हो जाता है। गर्व और आत्मरक्षा की भावना अुन्हें और भी कठोर बना देती है और अुन्हें बुद्धिवाद, न्याय,

या सद्व्यवहार की कोअी पर्वाह नहीं रहती। अिसलिअे सत्याग्रही को अुनका सामना करने का कोअी कार्यक्षम अुपाय खोजना पडता है और वह स्वयं कष्ट सहकर प्रतिपक्षी पर असर करना चाहता है।

खुद कष्ट सहने से सत्याग्रही का क्या अर्थ है यह समझाना आवश्यक है। कहा जा चुका है कि सत्याग्रही के धर्म का पहला नियम प्रेम है। अिससे जो दूसरा नियम अपने आप निष्पन्न होता है वह यह है कि प्रतिपक्षी की बुद्धि तक हम अुसके दिमाग के रास्ते हरगिज नहीं पहुंच सकते। बल्कि हमें अुसके हृदय द्वारा ही जाना होगा। अुसका यह विश्वास होता है कि अुसके और प्रतिपक्षी के बीच सद्भाव अुत्पन्न करने का तथा प्रतिपक्षी को अपने अन्याय की प्रतीति कराने का अेकमात्र मार्ग स्वेच्छा से और सानंद यंत्रणायें सहना ही है। सत्याग्रही जानता है कि दुनिया में शोषण की सारी तजवीजें अिसलिअे पनपती हैं कि अुनको कायम रखने में शोषक और शोषित अेक दूसरे का हाथ बँटाते हैं। शोषित लोग भय से भले ही अैसा करते हों, लेकिन फिर भी वे शोषकों को सहयोग तो देते ही हैं। सत्याग्रही को स्वयंस्फूर्त कष्टसहन का सुयोग अिसी में नजर आता है। वह शोषण-पद्धति का असहयोग द्वारा नाश करना चाहता है और अिस प्रकार अुसका प्रतिपक्षी जितना दमन कर सके अुतना करने के लिअे अुसे आमंत्रित करता है। अगर दमन की बौछार में भी वह टस से मस न हुआ, तो अुसके अिस वीरता-पूर्ण कष्टसहन से अत्याचारी का दिल पिघल जाता है। कमसे कम दिल पिघलना सम्भवनीय है। अिस तरह प्रतिपक्षी का हृदय द्रवित हो जाय तो दोनों के साथ बैठकर सोचने का और जिसमें मौजूदा अन्यायों के लिअे गुंजाअिश न हो अैसी समाज-रचना के लिअे सम्मिलित अुद्योग करने का रास्ता खुल जाता है। लेकिन यह भी सम्भव है कि अपनी सारी तपस्या के बाद भी सत्याग्रही प्रतिपक्षी के हृदय पर कोअी परिणाम न कर सके। लेकिन अुस हालत में भी अुसके प्रयत्न अकारथ नहीं जाते। क्यों कि चाहे अन्त में सत्याग्रही अपने प्रतिपक्षी का प्रेम और सहयोग प्राप्त करने में सफल हो या न हो, अुसके लगातार असहयोग से किसी भी पद्धति का नाश अवश्यंभावी है। जिस पद्धति की जडें असहयोग निरन्तर काट रहा हो वह कदापि टिक नहीं सकती।

सत्याग्रही अपनी अिच्छा से कष्ट सहता है। लेकिन अुसको केवल यंत्र की तरह अुन्हें न सहना चाहिअे। अुसकी सारी लड़ाअी में अुसका कष्टसहन मानवीय प्रेम की वृत्ति से प्रकाशित होना चाहिअे। अगर वह प्रेम अटल न रहे, और मन्द हो जाय तो समझ लेना चाहिअे कि सत्याग्रही की बुद्धि में कुछ न कुछ दोष अवश्य है। जब प्रेम बढ़ता जावे और अुसके साथ यह श्रद्धा भी कि आखिर मनुष्यमात्र अेक है, तभी हमें यह विश्वास करना चाहिअे कि हम सही रास्ते से जा रहे हैं। मनुष्यमात्र की मूलभूत अेकता सत्याग्रह का केवल आधार ही नहीं है। बल्कि अुस अेकता का बौद्धिक और हार्दिक प्रत्यय सत्याग्रह की सारी प्रक्रिया का अुद्देश है। जब अुसे यह अनुभव पूर्ण रूप से हो जाता है, तभी सत्याग्रही यह दावा कर सकता है कि अुसने मनुष्यजाति का सुख बढ़ाने की अधिक से अधिक कोशिश की। जिस प्रतिकार

में प्रेम न हो वह आदमी को गिराता है और जिस प्रेम में समझदारी न हो वह मनुष्य को अूपर अुठाने में सफल नहीं होता।

अिसपर यह आक्षेप किया जा सकता है कि "प्रतिकार के अिस मार्ग का कभी अन्त ही नहीं आयेगा, और अुसके आचरण के लिअे तो लगभग अतिमानुष धीरज की आवश्यकता है। हम अपना प्रयत्न मनुष्यों का शोषण करनेवालों के अुद्धार पर व्यर्थ क्यों खर्च करें? मानवता का अंश अुनमें अब कितनासा रह गया है? क्या अिससे बेहतर यह नहीं है कि हम कम से कम हिंसा का प्रयोग करें। याने सिर्फ राज्यसंस्था पर कब्जा करने के लिअे हिंसा से काम लें और अुसके बाद आज की अपेक्षा अधिक अच्छी शिक्षा द्वारा अुच्चतर मानव-समाज का निर्माण करें? अगर अेक बार राज्यसंस्था हमारे अधिकार में आ जाय, तो हम जनता को निःस्वार्थ की शिक्षा दे सकते हैं और अुसकी स्वार्थ-परता पर कानूनी और वैधानिक निर्बंध लगा सकते हैं।" अिस तरह तर्क करनेवाले अपने समाजवादी आलोचकों से गांधीजी अेक हदतक सहमत हैं। वे यह कहेंगे कि हां, हमें राज्यसंस्था पर कब्जा करना है और अिसीलिअे हम भारत में स्वराज्य के लिअे लड़ रहे हैं। लेकिन आज के अधिकारारूढ़ व्यक्तियों से अधिकार छीनने का मार्ग हिंसक ही हो यह कोअी जरूरी बात नहीं है। अुसके लिअे अहिंसा बस ही नहीं; बल्कि बहुत है। अहिंसात्मक असहयोग पर अमल करने में शुरू से ही हम अपनेआपको और अपने विरोधियों को निःस्वार्थ की शिक्षा देने लगते हैं। हमको लड़ाअी के अन्त तक प्रतीक्षा करने की जरूरत नहीं होती। सत्याग्रह सत्याग्रही की और अुसके प्रतिपक्षी की, दोनों की भलाअी करता है। सत्याग्रही के लिअे वह आत्मशुद्धि की क्रिया है और विरोधी के लिअे वह अुसके हृदय में छिपी हुअी मानवीय भावनाओं को अुद्दीपित करनेवाली क्रिया है। अिस तरह असहयोगी योद्धा अपने हिंसावादी भाअी पर मात कर देता है। क्योंकि वह सत्ता के लिअे जो लड़ाअी छेडता है, अुसमें शुरू से ही शिक्षा देना भी प्रारम्भ कर देता है।

लेकिन प्रेम या अहिंसा के पक्ष में केवल यही अेक दलील नहीं है। गांधीजी का यह भी विश्वास है कि जो तलवार का अुपयोग करेगा अुसका तलवार से ही नाश होगा। अगर हमें अपने अुद्देश्य की सिद्धि के लिअे तपस्या की जगह बाहरी हिंसा पर निर्भर करना पडे, तो फिर जो अधिक हिंसा कर सकेगा वही यह दावा कर सकेगा कि न्याय मेरे पक्ष में है। हिंसक अुपायों से मिली हुअी सफलता हमें अपने दोषों का विस्मरण कराती है। गांधीजी का हिंसावाद पर सबसे बड़ा आक्षेप तो यही है कि अुससे मनुष्य की अहंकारवृत्ति जाग्रत होती है और आत्म-परीक्षण की वृत्ति नष्ट हो जाती है। हिंसा द्वारा मिली हुअी सफलता सत्पक्ष का सबूत नहीं है, और अन्त में वह हमें असत्य की ओर ही ले जाती है। अिसलिअे गांधीजी का यह मूलभूत सिद्धान्त है कि हमें हिंसा का सामना अहिंसा से ही करना चाहिअे और घृणा को प्रेम ही परास्त कर सकता है। मानवीय अेकता की भावना ही अन्त में सारी संकीर्ण स्वार्थी और साम्प्रदायिक भावनाओं का सामना कर अुन पर विजय प्राप्त कर सकती है।

अिस अभिप्राय से अुन्होंने अेक अनोखी युद्धकला या सुव्यवस्थित रण-नीति का आविष्कार

किया है, जिसका अब हम कुछ विस्तृत वर्णन करते हैं ।

कहा जा चुका है कि सत्याग्रही का मार्ग स्वेच्छा से सहे हुअे कष्टों से बिखरा हुआ है। लेकिन अुसके विषय में सबसे महत्त्व की बात यह है कि यह कष्टसहन भी क्रमशः होना चाहिअे; जैसे कि हमारे असहयोग में भी क्रमविकास की आवश्यकता है। "अहिंसा और असहयोग का रहस्य अिसमें है कि हम यह भली भांति समझ लें कि हमारा आदर्श स्वेच्छा से कष्ट अुठाने से ही सिद्ध हो सकता है। खिताबों का, धारासभाओं का, अदालतों का और शालाओं का बहिष्कार अिसी तरह के कष्टसहन की अेक अत्यल्प मात्रा के सिवा और क्या है ? यह प्रारम्भिक त्याग अुस बडे त्याग की भूमिका है, जिसमें कारावास की यंत्रणायें शामिल हैं और अगर आवश्यक हो तो जिसका पर्यवसान फांसी के तख्ते पर होगा। हम जितना कष्ट सहेंगे और जितनी अधिक संख्या में सहेंगे, अुतने ही हम अपने अभीष्ट अुद्दिष्ट के निकट पहुंचेंगे।" किसी कांग्रेस कार्यकर्ता ने अेक वार गांधीजी से पूछा कि जिसके कारण पेटभर भोजन भी नसीब नहीं होता अितने कम वेतन पर वह कितने दिन रहे। गांधीजी ने फौरन जवाब दिया, "आमरण। जिस तरह सिपाही तव तक लड़ता है जब तक या तो अुसकी जीत हो और या—जो अेक ही बात है—वह कट न जाय।" सत्याग्रही के लिअे न कालमर्यादा है और न अुसकी कष्ट सहने की शक्ति की ही कोअी सीमा है।

लेकिन पेशादार सत्याग्रही के लिअे गांधीजी सत्याग्रह की जितनी मात्रा मुकर्रर करते हैं अुतनी आम जनता के लिअे कभी नहीं करते। वे मनुष्यों के अेक व्यवहार-चतुर नेता हैं; और अिसलिअे वे खूब जानते हैं कि "कष्टसहन की भी स्पष्ट मर्यादायें हैं। कष्ट सहना भी अुचित और अनुचित हो सकता है। और जब वह अपनी हद तक पहुंच जाता है तब अुसको जारी रखना अनुचित ही नहीं बल्कि मूर्खता है।" जिस कार्यक्रम का परिणाम पराजय और अधःपतन में होना निश्चित हो, अुसमें वे आम जनता को कभी नहीं लगाते। अुसके लिअे वे अैसा कार्यक्रम निश्चित करते हैं जो अुसकी पहुंच से कुछ ही परे हो। अपना निकटवर्ती अुद्देश सिद्ध करने के लिअे लोगों को अपने हाथपैर हिलाने और तानने तो पडते हैं लेकिन अितने नहीं कि अुनके कब्जे अुखड जायँ। बल्कि अिस तरह अुचित मर्यादा में हाथपैर हिलाने से अुनमें आत्मविश्वास पैदा हो जाता है और अपना संग्राम आगे चलाने की अुनकी ताकत बढ़ जाती है। जब कभी लोगों के हिम्मत हार जाने का डर हो तो गांधीजी फौरन पीछे हटने की सैन दे देते हैं। जितने वक्त जरूरत हो अुतने वक्त अिस तरह का हट जाने का संकेत करने में अुन्हें कोई लज्जा नहीं आती। १९२० में भी अुन्होंने कहा था कि जब तक मुझे यह विश्वास न हो जाय कि सारा देश तैयार है, मैं असहयोग में अेक कदम भी आगे नहीं रक्खूंगा।

लेकिन बडे नेता के अैसे संयम के पीछे सारे राष्ट्र को आवश्यकता पडने पर अेक व्यक्ति के समान मनुष्यता के कल्याण के लिअे अपनी आहुति दे देने के लिअे तैयार करने का अुद्देश हमेशा होता है। "जिस तरह देशभक्ति का तत्त्व हमें यह सिखाता है कि व्यक्ति को गांव के लिअे, गांव को

जिले के लिअे, जिले को प्रान्त के लिअे और प्रान्त को देश के लिअे मर मिटना चाहिअे, अुसी तरह देश को भी स्वतंत्रता अिसीलिअे चाहिअे कि वह भी जरूरत पडने पर संसार के कल्याण के लिअे अपनी कुरबानी कर दे। अिसलिअे राष्ट्रीयता में मेरे विश्वास का अर्थ और मेरी राष्ट्रीयता की व्याख्या यह है कि मेरा देश मनुष्यता को जीवित रखने के लिअे अपने आपको न्यौछावर कर दे।" हां अितना जरूर है कि वहां तक पहुंचने के लिअे अेक के बाद अेक कअी मंजिलें तय करनी पडेंगी।

कअीअेकों को शिकायत है कि गांधीजी महज अेक सुधारक हैं वे कोअी क्रान्तिकारी नहीं हैं। शायद वे लोग गलती करते हैं। सुधारक तो अेक लाभ प्राप्त करने के बाद दूसरे के लिअे कोशिश करता है, शत्रु से रोटी का अेक कौर छीन लेने के बाद दूसरे के लिअे यत्न करता है। लेकिन गांधीजी लोगों को अेक छोटे फायदे से दूसरे छोटे फायदे की तरफ नहीं ले जाते; बल्कि वे तो अेक संकट की ओर से दूसरे अैसे संकट की तरफ़ ले जाते हैं, अेक त्याग से दूसरे अैसे त्याग की ओर ले जाते हैं जिसमें अधिक धैर्य, अधिक साहस और मनुष्यमात्र की बन्धुता में अधिक अुत्कट श्रद्धा की आवश्यकता होती है। अिसमें भी लाभ तो होता है, लेकिन वह लाभ प्रत्यक्ष जड़ वस्तु का न होकर आत्मिक होता है। गांधीजी अपनी डाँड पर सुस्ताने के लिअे तैयार रहते हैं। लेकिन वे तब तक अुसे छोड देने के लिअे तैयार नहीं हैं जब तक कि अुनको यह यकीन न हो जाय कि अब हमारा देश मृत्यु को ही अपना तकिया बनाकर आराम कर रहा है। जीवन की नियामतों का अुपभोग करने के लिअे राष्ट्र योग्य हुआ है या नहीं अिसकी यही आखिरी कसौटी है। क्रान्तिकारी भी अिससे अधिक और क्या चाह सकता है? क्यों कि वह भी तो लोगों को मौत के दरवाजे में से ही फतह की ओर ले जाता है। अिस सिलसिले में अेक बार गांधीजी ने कहा था, "कुछ लोग मुझे अपने जमाने का सबसे बड़ा क्रान्तिकारी कहते हैं। शायद यह सच न हो। फिर भी मैं अपने आपको अेक क्रान्तिकारी, अेक अहिंसक क्रान्तिकारी, मानता हूं। मेरा साधन असहयोग है।" "मैंने खास कर साधनों की शुद्धि पर और अेक से अेक बढ़कर साधनों के प्रयोग पर अधिक ध्यान दिया है।"

अिस तरह सत्याग्रह के आचरण का पहला नियम यह है कि असहयोग का अुपक्रम अैसी छोटी छोटी चीजों से होना चाहिअे, जिनमें जनता को सौम्य संकटों का सामना करना पडे, जिससे कि अुस में कुछ धैर्य और त्याग की शक्ति पैदा हो। लेकिन सत्याग्रही को अिस तरह आगे बढ़ना चाहिये कि अन्त में जाकर लोग मौत का सामना भी बिना धैर्य खोये और बिना कटुता से कर सकें। जब अैसा होगा तभी जिस अुद्देश के लिअे वे लड़ रहे हैं वह अुनकी पहुंच में आयगा।

('विश्वभारती' से अनूदित)

समाजवाद-प्रतिबंधक और निवारक

(डॉ. पट्टाभि सीताराम अैया)

समाज अेक संगठनरूपी प्राणी है। तमाम प्राणधारियों की भांति अुसके भी अपने धारण-पोषण और विकास के निश्चित नियम हैं। अिसलिअे मानवशरीर की रचना और व्यापारों की भांति समाज की व्यवस्था भी बदलती ही रहेगी। यह परिवर्तन भीतर से और बाहर से भी होता रहता है। पहला परिवर्तन अुस वृद्धि को कहते हैं जो शरीर के स्वाभाविक धर्मानुसार बाहर से पोषण ग्रहण करने से होती है। और दूसरा वह जो बाहरी वस्तुओं और परिस्थितियों के संयोग से होता है। दूसरे शब्दों में अेक तो शरीर के अणुपरमाणुओं तथा तंतुओं का अदृश्य रूपान्तर है, और दूसरा बाहर के जोरदार असर और संयोगों के कारण होता है। अिस परिवर्तन को व्यवस्थित रीति से सिद्ध करने के विधान और कला का नाम ही समाजवाद है। असल में अुसे साधनरूप कला के बजाय अेक आदर्श कहना अधिक सार्थक होगा।

लेकिन कार्यक्षम होने के लिअे अुसका केवल अेक मनोवृत्ति या रुख होना ही काफी नहीं है। हां, अेक सिद्धि के रूप तक तो अुसका पहुंचना बहुत दूर की बात होगी। समाजवाद की न्यायसिद्ध परिणति और अिस मामले में अेक वाजिब आवश्यकता तो होगी शुद्ध साम्यवाद ही, परन्तु वह बगैर हिंसा के प्राप्त नहीं होगी। और हिंसा को तो कांग्रेस ने वर्ज्य कर रक्खा है। साधारणतया समाजवाद तो दुर्गुणी लोगों द्वारा सज्जनों के लिअे बताये गये आदर का नाम है, अिसीलिअे तो जब गुणवान गरीब अपना प्रचार करते हैं तो कभी कभी गुणहीन धनवान भी अुनकी मदद कर दिया करते हैं। समाजवाद न तो अेक व्यावहारिक वेगवान कार्यक्रम है, और न समाज के भिन्न भिन्न वर्गों के ताने में बुना हुआ समानता का अेक सुन्दर वस्त्रपट है। अिसीलिअे मानव-समाज के प्राथमिक सिद्धान्तों का केवल अेक निष्फल पुनः प्रतिपादन का रूप ग्रहण करके अुसे संतोष मानना पडेगा। वह या तो निर्घृण हिंसा के बल पर रूस जैसे राष्ट्र के मत्थे जबरदस्ती मढ़ दिया जाता है, अथवा हिन्दुस्तान की भांति सुप्रतिष्ठित परंपरा के अमोघ प्रभाव के कारण सच्ची समाज-रचना की नींव और आधार का काम देता है।

अिसलिअे अब यह निर्णय करना हमारा काम है कि हम मौजूदा समाज-व्यवस्था को हिंसाबल से बदल देना चाहते हैं, या निष्फल, बुद्धियुक्त खिलवाड़ द्वारा, या नीतियुक्त कुदरती ढंग से। अिनमें से पहली विधि का तो कांग्रेस और आजकल के समाजवादियों ने भी त्याग कर रक्खा है। दूसरा रास्ता अच्छा है पर हमें काफी दूर नहीं ले जा सकता। अिसलिअे अब हमें तीसरे पर ही ध्यान देना चाहिअे। फलतः हमें तीसरा ही रास्ता ग्रहण करना होगा। अर्थात् हमें अपनी सामाजिक व्यवस्था का नये सिरे से अध्ययन कर अपनी प्रगति की कूच को अिस तरह व्यवस्थित करना चाहिअे जिससे भोजन, वस्त्र और आराम सबको नसीब हो सके।

समाजवादियों को क्या चाहिअे ?

फिर यह याद रखने की बात है कि राष्ट्र के अुद्धार की तमाम हलचलों का, अुनके

प्रारम्भ और विकास का, सीधा सम्बन्ध अुनकी अपनी परिस्थिति से होता है। वही अुनकी पार्श्वभूमि होती है। चाहे कोअी सुधारक हो या क्रान्तिकारी, दोनों को राष्ट्र के पुनर्निर्माण की सामग्री अुसमें से मिलती है। जब पुरानी समस्त अच्छी, अुदात्त, और कल्याणकर वस्तुओं को बनाये रखने पर जोर दिया जाता है तो अुसे पुनरुत्थान का आन्दोलन कहते हैं। परन्तु जब राष्ट्र की परम्परा में पैठी हुअी तमाम बुराअियों, नीचताओं और दुर्गुणों को निर्मूल करने पर लोग तुल जाते हैं तब अुसे क्रान्ति कहा जाता है। अिसलिअे जब आधुनिक युग के समाजवादी समाज की रचना नये सिरे से करने पर जोर देते हैं तब अिस विषय में कम अुत्साह रखने वाले तथा गम्भीर प्रकृति के लोगों को अुन्हें यह पूछने का तो हक है कि अिन नये परिवर्तनों की योजना करते समय आपने मौजूदा समाज-व्यवस्था के गुणदोषों पर भी अच्छी तरह विचार कर लिया है या नहीं। और यह कि भूत और वर्तमान, पूर्व और पश्चिम, राष्ट्रीय और जागतिक मामलों के बीच अनिवार्य रूप से खडे होने वाले संघर्षों को दूर करने का भी कोअी सुसंगठित यत्न किया गया है या नहीं। अिसलिअे अच्छा हो, अगर समाजवादी, अिससे पहले कि वे अपनी मांगें पेश करें और अुनके लिअे आन्दोलन या प्रचार करें, अुन तमाम बातों का काफी और सहानुभूतिपूर्वक अध्ययन कर लें जो अुन मांगों के मूल में हों। यही नहीं, बल्कि अुन्हें परिस्थिति का समूचा चित्र अीमानदारी के साथ प्रस्तुत करना चाहिअे।

स्वयं–पूर्णता के अिस आदर्श को अच्छी तरह से समझने के लिअे यह जरूरी है कि हम क्षणभर हिन्दू समाज की रचना और अुसके अुद्देशों का अध्ययन कर लें। हमें यह भी देखना होगा कि अुसके अुन आधारभूत और संरक्षक तत्त्वों का, जो हमारे समाज के प्रत्येक व्यक्ति को कम से कम, अन्नाच्छादन की ओर से तो निश्चिन्त कर देते थे, किस निपट निर्दयता के साथ नाश किया गया। आज हम देखते हैं कि प्रादेशिक, साम्प्रदायिक और व्यावसायिक दृष्टि से हमारा देश अनेक टुकडों में बंट गया है। अेक तरफ देशी राज्य और प्रान्तीय सरकारों का झगडा है तो दूसरी ओर हिन्दू और मुसलमान, सिक्ख, अीसाअी, तथा अुन तमाम लोगों के बीच द्वन्द्व छिड़ा हुआ है जो अब यहां आकर बस गये हैं। शहर और गांवों के बीच लड़ाअी है और शहराती मजदूर तथा किसानों के हितों में भी तो विरोध ही दिखाअी देता है। परन्तु अिस पुरातन भूमि में फूट के जो बीज बोये गये हैं अुनसे हुअी हानिका यह अेक सबसे छोटा अंश है। यहां तो हमारे समाज के मूल आधार को ही अैसी चालाकी से नष्ट कर दिया गया है कि हमें पता भी नहीं चला। जर्मनी का अुदाहरण लेकर लोग अब स्वयं–पूर्णता की बडी बडी बातें कहते हैं। कुछ प्रान्ताधिपति बडे जोरों से अिसका समर्थन भी करते हैं। पर अिसका किसे पता है कि यही स्वयं–पूर्णता सदियों से हमारे भारतीय समाज का मूल आधार रही है। हमारे गांव राष्ट्रीय जीवन के सजीव घटक थे। और वे गांव कैसे थे? प्रत्येक गांव में अुन तमाम पेशों के करने वाले लोग रहते थे जो मनुष्यजीवन को पूर्ण और सुखी बनाने के लिअे आवश्यक हैं। वे तमाम दस्तकारियां और पेशे हर गांव में

पाये जाते थे जो जीवनमें अुपयोगिता तथा सुखसौंदर्य के पोषक हैं। पर हमारे ये गांव जरूरतों को पूरी करनेवाली अपनी भव्य कारीगरियों सहित, जो कि वहांकी जनता के लिअे रोजी का अचूक साधन थीं, पश्चिमी सभ्यता के द्वारा पलभर में नष्ट कर दिये गये। पश्चिम की सस्ती चमकीली और रंगीबेरंगी चीजों की दूकानें देश में सर्वत्र फैल गअी हैं, और जहां वे नहीं हैं वहां अुनकी पूर्ति फेरीवाले गांव गांव में घूमकर कर रहे हैं। गांवका नाअी जर्मनी का अुस्तरा अिस्तेमाल करता है और बढ़अी विदेशी तार की बनी खीलें। अिस तरह दोनोंने मिलकर गांव के लुहार के अुद्योग को नष्ट कर दिया है। लुहार ने विदेशी कपडे पहन कर गांव के जुलाहों के धंधे को नष्ट किया है। जुलाहे सस्ते जपानी जूते खरीदकर गांवोंके चमारों का धन्धा डुबा रहे हैं, चमार तामलोट के बर्तन खरीदकर गांव के कुम्हार का पेशा डुबा रहे हैं और कुम्हार पश्चिमी ढंग की धुलाअी की दूकानों में अपने कपडे धुलाकर धोबियों को तबाह कर रहे हैं। अिस तरह हर आदमी अपने पडौसी की रोजी डुबा रहा है। और जब गांव ही बरबाद हो गये तो ग्रामीण या नागरिक स्वयं–पूर्णता और स्वावलंबन कहांसे हो? अुसका तो नतीजा यही होगा कि सारा राष्ट्र अक्षम बन जायगा और देश में सर्वत्र बेकारी फैल जायगी। ये वे ही तो समस्यायें हैं जो आज समाजवादियों के सामने भी हैं और पश्चिम के बढ़ते हुअे यन्त्रवाद और शस्त्र-वाद के कारण जिनकी परिणति गत यूरोपीय महायुद्ध में हुअी थी, तथा अुससे भी अधिक भीषण आगामी युद्ध में हो सकती हैं। ये समस्यायें अितनी जटिल और अुग्र हो गई हैं कि अुन्हें हल करना पश्चिम के लिअे लगभग असम्भव हो गया है।

अिस तरह यह स्पष्ट है कि हिन्दू समाजरचना का मुख्य आधार सार्वजनीन कल्याण और भलाअी था। यह अेक तरह का साम्यवाद ही था। अिसका स्थान आगे चलकर व्यक्तिवाद ने ले लिया जो कि असल में लूटखोर पूंजीवाद की जड़ है। असल में वह आर्थिक अराजकता है फिर अुसने साझे का व्यापार (जॉइण्ट स्टॉक बिजिनेस) का नाम भले ही धारण कर रक्खा हो।

बडे पैमाने पर व्यापार करने का ढंग असल में अुन व्यक्तिवादियों की ही सृष्टि है। देखिये, १६ मार्च १९३८ के 'सोशल ऑर्डर' की अेक टिप्पणी में क्या लिखा है—

"व्यक्तिवाद के अिस सिद्धान्त के कारण ही संसार पर यह आर्थिक तबाही छायी हुअी है। और अठारहवीं सदी की औद्योगिक क्रान्ति जैसे आगे बढी, व्यक्तिवाद खास तौर पर और भी गहराअी से अपनी जडें जमाने लगा। यही सिद्धान्त वर्तमान पूंजीवाद की भी जड है। अिसके हिमायती चाहते हैं कि आर्थिक क्षेत्र में प्रकृति और मनुष्य की अबाधित सत्ता होनी चाहिअे। व्यापार के संगठन माल के अुत्पादन और वितरण में सरकार का किसी प्रकार भी हस्तक्षेप नहीं होना चाहिअे।

अिन व्यक्तिवादियों का यह भी कथन है कि "कानून तो केवल अिसलिअे बनाये जाते हैं कि जिससे सामाजिक जीवन के विकास के लिअे अनुकूल परिस्थिति निर्माण हो। यह परिस्थिति तो संपत्ति की सुरक्षितता पर निर्भर है चाहे वह किसी व्यापार में लगी हो या अुद्योग में। अिसीलिअे तो मानवी अधिकारों के

अलावा और अुनसे अधिक, सांपत्तिक अधिकारों की रक्षा पर जोर दिया जाता है। व्यापार और अुद्योग से ही तो मनुष्यों के पारस्परिक सम्बन्ध अुत्पन्न होते हैं। और अिसीलिअे शासनसंस्था की सर्वोपरि कोशिश यही होनी चाहिअे कि वह लोगों के अुन अधिकारों की रक्षा करे जिनकी बदौलत वे अपनी संपत्ति का आजादी से आदान-प्रदान कर सकें। अगर वह यह कर दे तो वह अपना कर्तव्य कर चुकी। अिसके वाद मनुष्यों को अपने हितों की रक्षा तथा धन का संचय करने की पूरी पूरी आजादी होनी चाहिअे। फिर भले ही मजदूरों को कम वेतन दिया जा रहा हो, अुनसे अत्यधिक काम लिया जाता हो और चाहे अुन पर कितने ही अत्याचार क्यों न होते हों।

रूसो का अेक गलत सिद्धान्त है कि आदमी स्वभावतः सत्प्रवृत्त होता है अिसलिअे अुसे अपनी स्वाभाविक वृत्तियों का ही अनुसरण करना चाहिअे। अिसी सिद्धान्त के औद्योगिक जीवन पर अमल का नाम व्यक्तिवाद है। अिसके अनुसार लूटखसोट, मजदूरों की पाशविक अवस्था, बालकों से कारखानों वगैरा में काम लेना ये सब पुण्यकृत्य बताये जा सकते हैं।

अिस सिद्धान्त के अनुसार होड़ अुद्योग को जंगल के कानून में या डार्विन के जीवन-संघर्ष अथवा योग्यतम की जीत में परिणत कर देती है। अिस सिद्धान्त के बहाने मनुष्य अपनी पवित्रतम जिम्मेवारियों को ताक में रख सकता है। अगर अिकरारनामे, जिनमें मजदूरों के अिकरारनामे भी शामिल हैं, स्वतंत्रता-पूर्वक करने दिये जावें, और कानून के अनुसार अुनका पालन होता रहे तो व्यक्तिवाद मनुष्य की धन, पद और सत्ता की महत्त्वाकांक्षा के लिअे सारा मैदान खुला छोड देता है। फिर आदमी भले ही जी भर के धन कमा ले, मजदूरों को मनमाना लूटता रहे, और कमजोर राष्ट्रों पर अधिकार भी करता चला जाय।

प्रसिद्ध समाजशास्त्रज्ञ हुसेलिन ने अपने 'कोशल मॅनिफेस्टो' में अिसका खूब खाका खींचा है। "कारखाने खूब चलाओ, खूब माल पैदा करो, नये-नये बाजार ढूंढो, अपने राष्ट्र की संपत्ति बढ़ाओ, और मनमाना धन जोडो। खूब धन जोडो। जितना जोड़ सको भला ही है।" अुस समय का अर्थशास्त्र यही कहता था। मजदूरों की तनख्वाहें कम करते जाअिअे। अुनके काम का समय बढ़ाते जाअिअे और बेकारों की बेबसी से जितना भी लाभ अुठा सको बेधड़क अुठाते जाओ, मजदूरों की मां और औरतों को भी काम पर बुलाओ, छोटे-छोटे बच्चों को भी पकड़ कर कलों से जकड़ दो जिससे अुनकी सुकुमार अुंगलियां भी आपके लिअे धन पैदा करने में मग्न होना सीख जायं। कौन कहता है कि आसमान में कोअी अीश्वर है। और अगर हो भी तो तुम्हारी अन्तरात्मा तुम को क्यों कोसे? अपने खजाने खूब भरो। राष्ट्र को मातबर बनाने का सबसे बढ़िया रास्ता यही है। जितना धन जोड़ सको जोडे चले जाओ। लोकोपकार का यही तो मार्ग है। अिसमें मजदूरों का भी अुतना ही भला है जितना आपका अपना। संपूर्ण सामाजिक शान्ति का यही अेकमात्र मार्ग है। मजदूरों की समस्या जैसी कोअी वस्तु ही नहीं है।

"तरकीब काम कर गअी। और जब देश के मजदूर तड़फड़ाने और शोर मचाने लगे तो फेंक दिये अुन पर कुछ टुकडे और कर दिया अुनका मुंह बन्द। तब ये सस्ते कच्चे माल और खुले बाजारों की तलाश में देश

विदेश खोजने लगे; और अिस तरह साम्राज्यवाद का जन्म हुआ। अब लूट ज्यादह आसान हो गअी। विजित देशों के निवासियों के कष्ट और मुसीबतें बडी खूबी से छिपाअी जा सकती थीं, और अपने देश के निवासियों का जीवन अधिक सुखमय किया जा सकता था। यह सब अिस अनैतिक व्यक्तिवाद के सिद्धान्त की ओट में किया गया।"

हमें अिस व्यक्तिवाद के मतलबी, या कम से कम स्वार्थप्रवृत्त, संकीर्ण तत्त्व से अूपर अुठकर सारे समाज का हितसाधन करने-वाले अुच्चतर मार्ग को ग्रहण करना होगा। अिसमें हमें सरकार तथा समाज से भी झगड़ना होगा। यद्यपि हमने यहां सरकार और समाज को अलग–अलग गिनाया है, तथापि सच्ची बात तो यही है कि, चूंकि अिस विदेशी सरकार ने समाज को नैतिक और भौतिक, तथा आर्थिक और सांस्कृतिक सभी दृष्टियों से जीत लिया है, अिसलिअे दर असल हमें सामना तो सबको अेक ही समझकर करना है। समाज पर विदेशी विचार धाराओं और आदर्शों ने अैसा जबरदस्त असर डाल दिया है कि अुसे हमारी बातों पर विश्वास ही नहीं हो रहा है। अिसलिअे अुसका विश्वास संपादन करके अुसके दिल में अपनी बातें जंचा देना हमारे लिअे बहुत भारी समस्या हो गअी है। क्योंकि स्वार्थी सरकार की ओर से यह जोरों से प्रचार हो रहा है कि वह खुद तो जनता की संरक्षक है और कांग्रेस में तमाम गैर जिम्मेवार और स्वार्थपरायण बुद्धिजीवी लोगों की भरमार है तथा समाजवादी लोग, जो अत्यंत निःस्वार्थ भाव से और कठिन परिस्थिति में काम कर रहे हैं वे बोलशेविकों के किराये के टट्टू हैं। विदेशी सरकार के राज में तो सामाजिक सुधारों को भी शकभरी नजर से देखा जाता है। क्योंकि अुससे भी अेक प्रकार की बगावत की भावना तो पैदा होती ही है। अतः सरकार को यह डर रहता है कि पता नहीं किस दिन वह सामाजिक क्षेत्र की सीमा को लांघकर राजनैतिक क्षेत्र पर धावा बोल देगी। अेक ओर संदेहशील और भयत्रस्त सरकार है तथा दूसरी ओर अधपढे मध्यम वर्ग के बुद्धिजीवी लोग हैं जिनके अन्दर से राष्ट्रीय भावों को खोज-खोज कर भगा दिया गया है। अिन दोनों के बीच हमारी प्राचीन परम्पराओं का अच्छी तरह अध्ययन करके अुनके सच्चे मूल्य को समझना और अुनपर अमल करना लगभग असम्भव हो गया है। मनुष्यस्वभाव की यह अेक आम खासियत है कि वह कभी तो अिस तरह आंखें मूंदकर पुरानी चीजों को सारी जान लड़ाकर पकडे रहने की कोशिश करता है कि अुसे देखकर दुख और दया आती है, और कभी जब अुस पर प्रतिक्रिया का भूत सवार होता है तो अुसकी प्रवृत्ति का लोलक ठेठ दूसरे सिरे जा पहुँचता है। फिर वह हर पुरानी बात की निन्दा करके अुसे फेंकने और नई बातों को गले लगाने लगता है। आज रूस में हमें यही दृश्य दिखाअी दे रहा है। जार की सपरिवार हत्या करके रूसका सन १९१७ की क्रान्ति के बाद मुक्त हो जाना, और अुसके बाद नयी योजनाओं तथा नये कार्यक्रमों के बीस साल के प्रयोग, अिन घटनाओंने आदरभरे और आश्चर्य-चकित संसार के युवकों में हर बात में और कदम कदम पर रूस की ही नकल करने की धुन पैदा कर दी

है। पर समय ने अब पलटा खाया है। हम अपनी आंखों देख रहे हैं कि घडी का लोलक जो निरंकुश एकतंत्री शासन के छोर पर था वह कम्यूनिजम् (साम्यवाद) के दूसरे सिरे पर जाकर, जहां खानगी संपत्ति, कुटुम्ब-परिवार और धर्म सबको मिटा देने की आवाज सुनाअी देती थी, अब मध्य में आकर ठहर गया है।

निम्नतम श्रेणी के लोगों की हुकुमशाही जिसका तमाम सीधेसादे सरल और अरूचिकर विशेषणों से वर्णन किया जाता है, दो दिन चलकर रह गअी और अुसका स्थान फिर अुसी दो धारासभाओं, खानगी संपत्ति और नियमित मताधिकार वाली लोकसत्तात्मक पद्धति ने ले लिया है।

जब कोअी नये ढंग की शासनपद्धति अंगीकार करने के लिए हमें सुझाई जाती है; या कोअी आजमुदा पद्धति हमारे सामने पेश करता है तो अपनी वर्तमान परिस्थिति का पूरा अध्ययन करके यह सोचने के लिअे भी हम नहीं ठहरते कि प्रस्तावित सुधार हमारे समाज के ढांचे में कहां तक ठीक तरह से बैठ सकेंगे। कोअी रूढि या संस्था चाहे कितनी ही पुरानी या परंपरागत पालन से पवित्र क्यों न बन गअी हो फिर भी बदलता जमाना अुसकी अुपयुक्तता के बारे में संदेह पैदा कर ही देता है। अिसी प्रकार कोअी भी नया सुधार चाहे वह कितना ही आकर्षक हो कभी निर्विरोध -रुप से चुपचाप स्वीकृत नहीं किया जाता है। कोअी कहेगा यह तो बासा पाण्डित्य हुआ। हाँ है तो सही। पर उसमें भी वे तत्त्व तो हैं न, जो हमारे जीवन में मार्गदर्शन का काम देते हैं। आज हिन्दुस्तान के सामने दो रास्ते हैं। अेक तरफ पश्चिम की वे पद्धतियां और अुपाय हैं जो पिछले डेढ़सौ वर्षों की औद्योगिक क्रान्ति के कारण पैदा हुअी बुराअियों को दूर करने के लिअे वहां काम में लाये गये हैं। या तो हिन्दुस्तान को अुनका पूर्णरूप से स्वीकार करना चाहिअे या अिन आधुनिक समस्याओं पर हम अपने अुन्हीं पुराने हलों को नये सिरे से और सहानुभूतिपूर्वक परीक्षण करके देखें और आजमावें। और यह सब करते हुअे हमें यह मार्के की बात बराबर ध्यान में रखनी चाहिअे कि हमें किसी भी पुराने हल को महज अिसलिअे नहीं अस्वीकार करना चाहिअे कि वह पुराना है और न यही मान लेना चाहिअे कि किसी नअी समस्या का हल मिलना केवल अिसलिअे असम्भव है कि वह नअी है। जब हम अिस कठिन और हितकर कर्तव्य पर आरूढ हैं तो हम अपनी तरफ से केवल निवारक अुपाय ढूंढने के बजाय प्रतिबंधक उपाय ढूंढने की भी कोशिश करेंगे। निवारण करना भी है तो अच्छा ही। परन्तु बीमारी चाहे मानव-शरीर की हो या समाज-शरीर की, अुसको पहले ही से रोक देना ज्यादह अच्छा है। अिसी भावना से हमारा यह अनुरोध है कि अुन तत्त्वों का अध्ययन करना जरूरी है जो हिन्दू समाज-रचना और व्यवहार के नियामक रहे हैं। साथ ही अुन प्राचीन अुपायों का भी अध्ययन करना जरूरी है जिनकी सहायता से अगर हमारे पूर्वज कंगाली को निर्मूल न भी कर सकें हों तो कम से कम संपत्ति के केन्द्रीकरण को दूर कर सके थे। वे अैसे अुपाय भी थे जिनकी सहायतासे हमारे बुजुर्ग अनुचित तरीके से काम लेने की बुराअी को भले ही दूर न कर सके हों परन्तु बेकारी से तो जरूर समाज को बचा सके थे।

कौअे की नजर से

२. काका कालेलकर

दूसरे दिन शाम होते ही मैं भूशुंडी की बाट जोहता बैठा। जब वह आया तो मैं बोला कि "आज तुम्हें यह बताना होगा कि काका को क्यों मंत्री नहीं बना सकते। मैंने तो कअी लोगों से यह सुना है कि हिंदुस्तान के बाहर किसी भी स्वतंत्र देश में वे पैदा हुअे होते तो अुन्हें कितने ही विश्वविद्यालयों ने अपनी आदरसूचक पद-वियाँ बख्शी होतीं। लेकिन अकेले हिंदुस्तान में ही अैसे बेकदर लोग रहते हैं जो अपने भाअियों की कीमत ही नहीं आंक सकते। किशोरलाल के बारे में तो तुम्हारा कहना मैं फिर भी कुछ ठीक मान सकता हूं। न वह साहित्य–संगीत-कला समझ सकते हैं, न धर्म की भव्य कल्पनाओं और रूपकों की कदर कर सकते हैं, और न साधारण लोगों की भावनाओं के प्रति अनुराग रखते हैं। लेकिन, काका को अितनी आसानी से तुम नालायक नहीं ठहरा सकोगे। वे केवल अेक बहुत ही बडे विद्वान और चारित्रवान पुरुष ही नहीं हैं, बल्कि स्वदेशभक्ति के नाम से अुनका रोम रोम पुलक उठता है। अिस के अलावा अुनमें मन को बहलानेवाली भव्य कल्पनाशक्ति है। वे लोगों की भावनाओं को नये नये रूपकों से अुभार सकते हैं, और सबसे बडी बात तो है अुनकी बापू के प्रति वफादार सिपाहीगिरी।"

भूशुंडी–यह तो, घुघ्घूकाका,§ सब ठीक है। और मुझे थोडे ही काका से द्वेष है! हाँ अुन्होंने मेरी जाति पर अन्याय तो बहुत किया है। फिर भी, इसलिअे मैं अुनका द्रोह नहीं करूंगा। लेकिन, अुनके अन्याय से अुनकी योग्यता का नाप मैंने जरूर ले लिया है।

काका ने अपने जेल के अनुभवों की अेक किताब लिखी है*। अुस में कौअे कोयल के अंडे को पोसते हैं अितनीसी बात पर से कौओं को मूर्ख कह दिया है। लेकिन, काका यह नहीं जानते कि अिस अविचारी वाक्य से अुन्होंने दिखा दिया कि वे खुद ही नहीं, बल्कि सारी मानवजाति बुद्धि में अभी कौओं से किस हद तक नीची है। मुझे कअी बार अचरज हुआ करता था कि मनुष्यों में कोयल की आवाज के लिअे अितना आदर क्यों है? आधी रात में नींद को तोड दे और कान के पर्दो को चीर दे अितने जोरों से अेक ही सुर में 'कू कू' करने वाले अिस बेहूदे पखेरू की आवाज ये लोग कैसे मीठी

---

§ हमारे गुजरात में वृद्धों को 'काका' कहने का रिवाज है। अिसलिअे भूशुंडी मुझे घुघ्घूकाका कहा करता है।

* ओतरती दिवालो-नवजीवन कार्यालय, अहमदाबाद

समझ सकते हैं? लेकिन, काका की अुस राय से मैं समझ गया। मैंने सोचा कि जिन की समझ और सभ्यता अेकसी होती है, वे अेक दूसरे को सयाने मानते हैं, और जिन की समझ और सभ्यता अपने से अूंचे दर्जे की होती है, अुन को वे समझ ही नहीं पाते, और अपने बुद्धूपन के सबब अुन्हीं को बेवकूफ कहने की हिंमत करते हैं। साधारण आदमी अभी कोयल की बुद्धि और सभ्यता से आगे नहीं बढ़ा है। अिसलिअे वह कोयल की कद्र कर सकता है, पर कौअे की सभ्यता कों नहीं समझ सकता। आज लाखों साल के बाद भी अभी तक आदमी की समझ में यह नहीं आता कि स्त्री और पुरुष में भेद न देखना चाहिअे; बल्कि, स्त्रियों को तालीम देकर तथा अपने सब कामों में शरीक कर अपनी बराबरी पर लाना चाहिअे। यही बात कोयल की है। अिस पक्षी को पैदा हुअे लाखों साल हुअे हैं, और अुसका मर्द अपनी तीखी आवाज का इतना गरूर रखता है, लेकिन अुसे पूछिये न, कि अुसने अपनी बीबी को क्यों अभी तक जरासा कूं-कूं करना तक नहीं सिखाया? अरे, घोंसला बनाना तो न वह खुद जानता है, न अुसने अपनी बीबी को सिखाया है, और न अुन्हें अपने बच्चों को पालने पोसने का सहूर है। बेचारे की अुस मनुष्यकवि के जैसी दशा है जो खिचडी पर सरस काव्य तो बना सकता है, लेकिन यह नहीं कह सकता कि खिचडी में चावल ज्यादा चाहिये या दाल! अुसके लिअे अुसे अपनी बीबी का मुंह ताकना पड़ता है। जैसे पत्नी की चतुराई की बदौलत कवि का पेट भरता है, अुसी तरह हम कौओं की अुच्च सभ्यता और रहमदिली के कारण कोयल का वंश चलता है! हम समझते हैं कि वह हमारी ही अेक पिछडी हुअी जाति है, अिसलिअे अुनकी हालत पर तरस खाते हैं और हमारी दयावृत्ति अुन को बचा लेती है।

साधारण मनुष्य और कोयल में अेक और भी समानता है। जैसे अुनमें काली चमडी से शरमानेवाले लोग पाये जाते हैं, वैसे ही कोयल को भी अपने काले रंग की अितनी शर्म आती है कि वह कभी मैदान में आकर अपना मुंह बताना नहीं चाहती। फिर, जिस तरह जंगली आदमी रात को भी चीरनेवाली बुलंद आवाज से चिल्ला अुठते हैं, वैसे वह भी चिल्लाती है, और यह आदमियों को बडा मीठा लगता है!

हम कौओं में अैसा नहीं है। जितनी चतुराअी हमारे मर्दों में होती है, अुतनी ही बीबियों में भी। जैसे हम तरह तरह के 'का—का' आवाज कर सकते हैं, वैसे वे भी कर सकती हैं। देखो न, हमारी आवाज़ कितनी मध्यम और जैसा मौका हो वैसी निकलती है! और भगवान ने दिये हुअे रंग की हमें कोअी शर्म नहीं है। समाज-संगठन और भाअीचारा जितना हमारी जाति में है अुसका सौंवा हिस्सा भी मनुष्यों में पैदा करने के लिअे न मालूम कितने अीसा, बुद्ध और गांधियों को जन्म लेना होगा।

मैं—लेकिन, तुम तो काका की बात कहते कहते अपनी ही महिमा सुनाने लगे?

भूशुंडी—नहीं; नहीं! अेक छोटीसी चीज़ से कितनी गहरी परीक्षा हो जाती है, अिसका यह नमूना है। अभी तो काका की परीक्षा

पूरी नहीं हुअी। मैं तो काका की अिस छोटी आलोचना से बताना चाहता हूं कि काका हिंदू ही नहीं हैं, सनातनी हिंदू तो कतअी नहीं हैं, और हम अुनको गांधीवादी तो हरगिज़ नहीं मान सकते।

मैं–मैं तो अुल्लू ही हूं, लेकिन मालूम होता है कि तुम तो जाति के अभिमान से अन्ध और पागल हो गये हो और तुमने अपना तौल खो दिया है।

भूशुंडी–नहीं, घुघ्घू काका, मैं अितना चुगद नहीं हूं। मैं ठीक ही कह रहा हूं। अगर काका सच्चे सनातनी हिंदू होते तो वे काक-भूशुंडी के वंशजों के लिअे अनादर का भाव मन में कैसे रख सकते? लेकिन, अुन को सिर्फ कौओं से ही घृणा नहीं है। ब्राह्मणों को जिसने वेद गाने का तरीका सिखाया और जो कौओं की तरह गंदगी साफ करनेवाला है, अुस मेंडक के लिअे भी अुनके मन में घिन ही है। जिस भैंसे ने अुनको संगीत में 'री' का स्वर दिया, अुसके प्रति भी अुन को समभाव नहीं है। वे आकाश के वृश्चिक को तो घण्टों देखते रहते हैं, लेकिन पृथ्वी के बिच्छू के लिअे अुनके मन में खास अहिंसा नहीं है। दीमक के लिअे भी नहीं है। और दीमक की महिमा तो कहते हैं कि वेदों और सिद्धग्रंथों में भी पायी जाती है।

अच्छा, अब अुनका गांधीवाद देखिये। बापूजी को भंगी के लिअे कितना आदर है। लेकिन, मानवों में जिस ऊंचे दर्जे का काम भंगी करता है, वह जीवसृष्टि में कौआ, मेंड़क, दीमक आदि श्रेष्ठ जीव करते हैं। लेकिन, मानवीय भंगी अुसे मजबरी, आसक्ति तथा अकुशलता से करता है, और ये सब खुशी, अनासक्ति और कुशलता के साथ अपना स्वधर्म समझकर करते हैं। अुनके प्रति घृणा रखनेवाले काका भला कैसे गांधीवादी कहे जा सकते हैं?

मैं–अच्छा, तुम्हारी अिन बातों को जाने दो। लेकिन, क्या तुम यह सचमुच कहना चाहते हो कि काका सफल मंत्री नहीं हो सकते?

भूशुंडी–बिलकुल नहीं। धारासभा अुनसे वैसा ही बर्ताव करेगी जो अकसर साधारण लोग अुनके प्रिय कोयल के साथ करते हैं।

मैं–सो कैसा?

भूशुंडी–पहले तो लोग स्वयं 'कूकू' पुकार कर कोयल की खुशामद करते हैं। वह बेवकूफ अुससे खुश हो जाता है, और अपने गुप्तस्थान से 'कू कू' चिल्लाने लगता है। तब अुसे देखने या वहांसे अुडाने के लिअे लोग अुस पेड पर पत्थर फेंकते हैं और बेचारे को भगाते हैं। अगर कोयल पर सचमुच आदमियों का प्रेम होता तो वे अैसा क्यों करते? फिर, ज़रा पूछिअे तो किसी किसान से कि क्या वह अपने आम्रवृक्ष में कोयल का रहना पसंद करता है? किसान मानते हैं कि जिस आम के फल को कोयल का स्पर्श होता है, अुसकी गुठली में दोष आ जाता है*। अिसी तरह पहले-पहले ये लोग काका का आदर करेंगे, और अुन्हें बोलने को कहेंगे, और फिर, जब वे बहुत बोलने लगेंगे, तब अुनको हकाल देने का भरसक प्रयत्न करेंगे।

मैं–अिसका क्या कारण है?

भूशुंडी–अिसका कारण तो काका ने ही अपनी अुसी पुस्तक में बता दिया है। वहां पर भी, वे कौअे को तो समझ ही नहीं पाये हैं, लेकिन अुन्होंने मान लिया कि जिस तरह लोग अुनसे बर्ताव करते हैं, वैसा ही कौअे भी

*अैसी अेक धारणा गुजरात में कहीं कहीं है। दूसरे प्रान्तों के बारे में मैं नहीं जानता।

करते होंगे। अुन्होंने लिखा है कि "जब कौअे और कोयल के बच्चे साथ बढ़ते हैं, तब कौआरानी....!"

मैं–ज़रा ठहरो, यह तुम्हारा 'कौआरानी' शब्द मुझे खलता है। रानी का ज़माना तो अब बच्चों की कहानियों में से भी चला गया है। तुम अपनी बीबियों को रानी मत कहा करो।

भूशुंडी–क्या ख़ूब ! काका, भई वाह ! तो "कौआदेवी" लो ! हां, तो कौआदेवी "अुन्हें सिखाने के लिअे 'का-का' बोलती है। कौअे का बच्चा तो बोलना सीख लेता है, लेकिन कोयल का बच्चा 'कू कू' कर उठता है। अिस पर नाराज होकर कौआदेवी अुसे चोंच मारकर हकाल देती है।" यह हमारी देवियों पर सरासर झूठा आक्षेप है। लेकिन अिसमें शक नहीं कि काका को यही न्याय मिलता है। देखो, बडे बडे लोग उनकी चारों ओर बैठते हैं, और सब प्रेम से 'काका, काका' कहते हैं। बेशक, वे यही आशा करते होंगे कि वे भी 'काका', काका' ही करें। लेकिन, काका तो अुनकी तुक में तुक मिलाने के बदले 'कू-कू', कू-कू' करके अुनकी बातों को काट दिया करते हैं। तब अुन को गुस्सा आ जाता है, और वे अुन्हें हकाल देना चाहते हैं। मैंने कहा न तोता और कोयल में मनुष्य लोग बहुत भेद करते हैं। अगर, अेकाध तोता बापू से भी कहे कि यह आपकी गलती है, तो लोग कहेंगे कि देखो 'इसकी जबान कितनी साफ है। कितना स्पष्ट उच्चारण करता है।' लेकिन, जब लोग काका से 'का–का' कराना चाहें, और वे 'कू–कू' करें, तो जरूर वैसा ही करना चाहिअे, जैसा उनकी समझमें हमारी कौआदेवी करती है।"

मैं–ये तुम्हारी गोल-माल बातें मेरी समझ में नहीं आती। सीधी भाषा में समझाओ।

भूशुंडी–सीधी बात यह है कि किशोरलाल तो सिर्फ तोता ही हैं। वे जोर से भी कहें कि यह गलती है तो लोग समझेंगे वे जो सीखे हैं वह जोर से बोलते हैं। बोलने दो। अच्छा मालूम होता है। किशोरलाल जाकर गलती करनेवाले का हाथ तो पकडते नहीं हैं। लेकिन, काका यह भी कहें कि 'आप का कहना तो अच्छा है, लेकिन मैं अुस में थोडा हेरफेर कराना चाहता हूं, और अपने विचार से काम करना चाहता हूं', तो भी वे समझ बैठते हैं कि काका दखल देने आये हैं। इसलिअे अुन पर बिगडते हैं। अब बताओ भला वे कैसे मंत्री बन सकते हैं?

इतना कहते कहते कौअे की आंखें झपक गयीं, और मैं भी शरीरश्रम से अपना आहार पैदा करने उडा।

आपके

आश्रम का अुल्लू

अिसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि सशस्त्र विप्लव से जो स्वराज्य आयेगा अुसमें और अहिंसक साधनों से प्राप्त स्वराज्य में ज़मीन आसमान का अन्तर रहेगा। हिंसक साधनों से हिंसक स्वराज्य प्राप्त होगा। वह तो सारी दुनिया के लिअे और खुद हिन्दुस्तान के लिअे अेक भयंकर संकट होगा।

—गांधीजी

आरण्यक भाइयों से

[किशोरलाल घ. मशरूवाला]

(ता० १७ दिसम्बर को पूर्व गोदावरी ज़िले की आरण्यक परिषद् में दिया हुआ प्रारम्भिक भाषण)

प्यारी बहिनो और भाइयो,

इस परिषद् में आपलोगों से मिलने का मौका मिला इससे मुझे खुशी होती है। जिन लोगों ने यह परिषद् करायी उनसे आपके विषय में थोड़ा कुछ सुन चुका हूं, फ़िर भी आपसे मिलने का यह पहला ही मौका है। आप भी मुझे पहली ही बार देख रहे हैं, और आजसे पहले आपने कभी मेरे बारे में सुना भी नहीं होगा। इसमें कोई ताज्जुब भी नहीं है। क्योंकि हमारा देश बहुत ही बड़ा है। हम अेक दूसरे से सैकडों मील दूर रहते हैं। आप लोग पूरब के पहाडों के पास रहते हैं और मैं ज्यादातर पश्चिम घाट के नज़दीक रहा हूं। आपकी और मेरी भाषा भी अेक नहीं है। मुझे अफ़सोस है कि मैं आपकी भाषा में नहीं बोल सकता। लेकिन इन सब भेदों का मतलब यह नहीं है कि हम कोई अलग अलग लोग हैं। हम सब अेक ही देश की—अपनी प्यारी भारतमाता की—सन्तान हैं। हम सब अेक ही ईश्वर के पैदा किये हुअे हैं जिसे हम सत्यस्वरूप परमात्मा कहते हैं। यह निर्विवाद सत्य—असली हकीकत—है। लेकिन दुर्भाग्य से हम अक्सर इस सत्य को भूल जाते हैं, और अपने आपको और दूसरों को दुखी करते हैं। जब हम यह भूल जाते हैं कि हम सब अेक हैं, अेक ही घराने के हैं, तो हममें से जो बलवान् हैं वे निर्बलों को कई तरह से नुकसान पहुँचाते हैं। आप लोगों के साथ मुद्दतों से यही होता आया है, क्योंकि किसी न किसी सबब से आप लोग अपने पडोसियों से कमजोर थे, या कमजोर हो गये। फ़िर क्या था? जो बलवान थे वे अपने बल से मतवाले हो गये, और यह भूल गये कि आप लोग कमजोर होते हुअे भी उन्हीं के भाईबन्द हैं। इसलिअे वे आपको कई तरह से लूटने लगे। किसीने आप के राज और ज़मीन छीन ली, किसीने जायदाद हड़प ली और कोई आपकी मिहनत का फल निगल गये। दूसरे कुछ अैसे निकले जिन्होंने आपको पूरी रोजी दिये बिना आपसे ढोरों के समान काम कराया। उनके दिल में आपके लिअे कोई आदर नहीं था। और न वे आपके साथ बराबरी के नाते और आज़ादी से मिलना जुलना पसन्द करते थे। उन्होंने आपको इज्जतदार समाज और अच्छे अच्छे गांवों से दूर रक्खा। नतीजा यह हुआ है कि आप बहुत—बहुत ही—गरीब हो गयें हैं। न आपको पेटभर खाना मिलता है और न तन ढांकने लायक कपडा़ नसीब होता है। आपके मकान बहुत ही गयेगुजरे होते हैं; और अभी अभी तक तो अैसा ही मालूम पड़ता था कि आप जिन्दा हैं या मर गये हैं इसकी परवाह ही किसी को नहीं थी। हां, यूरोप और अमेरिका से कुछ पादरी आपके पास ज़रूर पहुँचे। उनकी धर्मशिक्षा उनके दिल में मनुष्य की सेवा की ख्वा़हिश पैदा करनेवाली

है। उन्होंने आपके हित के लिअे काफी काम किया। उन्होंने जो काम किया वह तो अच्छा था। लेकिन दुर्भाग्य से उनका यह ख्याल हो गया कि इस सारी सृष्टि के परमात्मा का ान और दर्शन आपकी पूजा और उपासना की पद्धति से नहीं हो सकता। इसलिअे वे आपके पास उपासना और पूजा की अपनी पद्धति लेकर आये और उन्होंने यह चाहा कि आप लोग अपनी पद्धति को छोड़कर उनकी अपना लें। इसे वे अन्तःपरिवर्तन कहने लगे। हम इसे धर्मान्तर कहते हैं। इसके साथ साथ उन्होंने अपने शिष्यों को एक दूसरी तरह का रहनसहन, रस्मरिवाज़, विवाह, विरासत वगैरा के नियम, आदि कई बातें दीं। नतीजा यह हुआ कि जो थोडे लोग उनके पीछे गये उनको सामाजिक दृष्टि से आप लोगों ने खो दिया। शुरू शुरू में तो उनकी संसारी हालत कुछ सुधरी, और शहरवासियों में उनकी थोडीबहुत इज्ज़त होने लगी। लेकिन इससे आपको कोई बहुत ज्यादा फायदा नहीं पहुँचा। फिर भी इसमें शक नहीं कि ईसाई पादरियों ने ही आपकी मदद की, और हम लोगों ने—जिनका आपकी सेवा करना कर्तव्य था—आपकी कोई सुध न ली।

हमलोगों में से जो इधर कुछ दिनों से आपकी सेवा करने का यत्न कर रहे हैं, उनमें यह कर्तव्यजागृति म० गांधी ने करायी है। आप लोगों ने उनके बारे में अवश्य सुना ही है। उनके शरीर में हम हिंदुस्तानियों का महान आत्मा निवास करता है। हमारे भीतर अपने छोटे छोटे जीव जिस प्रकार हमारे अलग अलग शरीर और उनके सुखदुःखों की ही चिन्ता और विचार करते हैं, उसी तरह मानवजाति का विराट आत्मा हम सबके लिअे इस तरह चिन्ता और विचार करेगा कि मानो हम उसके शरीर के अवयव हों। भगवान की परम गूढ़ शक्ति ने महात्मा गांधी को इस तरह प्रभावित किया है कि जब जब वे विचार या चिन्ता करते हैं तो हम सब के लिअे इस प्रकार से विचार और चिन्ता करते हैं कि मानो हम उनके शरीर के हाथ, पैर या रोम हों। जब हमें दुःख होता है, या कोई हमारे साथ अन्याय करता है तो उन्हें दर्द होता है। जब हम सुख और न्याय की ओर कदम रखते हैं तो उन्हें खुशी होती है। हममें जो छोटे से छोटा हो, उससे भी वे समरूप हो गये हैं और छोटे से छोटे की सेवा करना चाहते हैं। हम लोग जो कार्यकर्ता हैं, उनके लिअे भी उनकी यही दीक्षा है। वे चाहते हैं कि हमारा आपके साथ पूरा पूरा तादात्म्य हो जाय। क्योंकि आप लोग दुनिया के अत्यन्त उपेक्षित लोगों में से हैं।

परन्तु वे यह जानते हैं, और हम सबको भी जानना चाहिअे, कि हम आपकी चाहे कितनी ही सेवा क्यों न करें, जबतक आप खुद नहीं चेतेंगे और अपनी उन्नति के लिअे यत्न नहीं करेंगे, तबतक बहुत लाभ न होगा। इसलिअे वे चाहते हैं कि हम कुछ नियमों का पालन करें और कोई कार्यक्रम बनाकर उसे पूरा करें।

पहली बात जो हमें जाननी और हमेशा याद रखनी चाहिअे वह यह है कि हम सब अेक हैं। हमारे प्रान्त अलग अलग भले ही हों, हमारी भाषायें भिन्न भिन्न भले ही हों, हमारी पोषाक, रीतिरिवाज और

आदतें जुदी जुदी भले ही हों और चाहे हम अलग अलग धार्मिक जमातों के भले ही हों; फ़िर भी हम अेक हैं। हम सब अेक ही परम सत्य परमात्मा से पैदा हुअे हैं और उसीमें जीते हैं।

परन्तु हम इस महान् सत्य को भूल जाते हैं, और दुनिया के बहुतसे दुःख का यही मूल है। अेक मनुष्य दूसरे मनुष्य के साथ अपने व्यवहार में निर्दय, कठोर, दगाबाज़, बेदर्द, स्वार्थी और अनुदार–याने, अेक शब्द में, हिंसक–बनता है, इसका कारण यही है कि वह दूसरों के साथ अपनी अेकता को भूल जाता है। इसलिअे, अगर हम यह मानें–और हमें मानना ही चाहिअे, क्योंकि यह हकीकत ही है–कि हम सब अेक हैं, तो फ़िर हमें अपने व्यवहार में अहिंसक ही होना चाहिअे। अर्थात् निर्दय, कठोर, दगाबाज़, बेदर्द और अनुदार होने के बदले हम दूसरों के साथ उसी वृत्ति से बर्ताव करेंगे जैसा कि हम अपने पूज्य मातापिता, प्यारे बच्चे, वफ़ादार स्त्री, जिगर के मित्र और रिश्तेदार तथा प्यारे पशु और पालतू जनावरों के साथ करते हैं। मतलब, हम सभी के प्रति सभ्यता, दयालुता, निष्कपट, सहानुभूति, परोपकार और उदारता का व्यवहार करेंगे। महात्मा गांधी इसीको अहिंसा का कानून कहते हैं। वे सच्चे हृदय से परमेश्वर से याचना किया करते हैं कि मनुष्य के छोटे बडे सभी व्यवहारों में उस नियम का पालन हो।

लेकिन इस नियम का पालन कैसे हो? आपको यह जान लेना चाहिअे कि महात्मा गांधी हमें अहिंसा का उपदेश इसलिअे नहीं देते कि हम अधिक दुःखी, अधिक पतित हो जायँ और बलवान् लोग हमें और भी अधिक आसानी से कुचल डालें। वे तो चाहते हैं कि हम बहादुर, निडर और स्वाभिमानी बनें। वे चाहते हैं कि हमारे शरीर और मन को चंगा रखने के लिअे खाना, कपड़ा, मकान आदि जो जो चीजें आवश्यक हों वे हमें काफी मात्रा में मिलें। सब को ये तभी मिल सकती हैं जब कि हम मनुष्य के लिअे बना हुआ एक दूसरा कानून भी मानें–याने हम सब अपने आत्मा को शुद्ध रक्खें, और उद्योग की आदत डालें। यह दूसरा महान् सत्य है जिसको मनुष्य अक्सर भूल कर अपने आपको और दूसरों को दुखी बनाता है।

याद रखिये कि ये ही दो चीजें हैं जो हमें पहले अेक दूसरे की अपेक्षा बलवान् और निर्बल बनाती हैं, और बादमें सुखी या दुःखी। हमारी आदतें उद्योगी भले ही हों, लेकिन जब हमारा आत्मा गाफ़िल होता है, तब हम अपने व्यवहार में अहिंसाधर्म का अनादर करते हैं और दुर्बलों को चूसने लगते हैं। हमारी परिश्रमशीलता चाहे शारीरिक हो या चाहे बौद्धिक उसका उपयोग स्वार्थ के लिअे होता है। अन्तमें उसका दंड हमको भी भुगतना पडता है। हम विलास, व्यसन और आलस के गुलाम हो जाते हैं। हलके हलके उद्योगिता भी घटने लगती है और जिस पर हमें इतना गुमान था उस हमारी ताकत का भी तेजी से नाश होने लगता है। शायद इसी कारण प्राचीन काल में आपकी जाति का अधःपात हुआ और अपेक्षाकृत आधुनिक काल में हमारे पूर्वजों को भी इसीने गिराया।

दूसरी तरफ से यदि हमारा आत्मा शुद्धि के विषय में जाग्रत हो लेकिन हममें उद्योगिता न हो, या वह नष्ट ही गयी हो, तो हमारी आध्यात्मिकता शुष्क बौद्धिकता या भावुकता बनकर रह जायगी। दोनों का पर्यवसान निष्क्रियता और अन्त में कायरता है। इसी का परिणाम है पतन। इसलिअे हमें अपने आत्मा को शुद्ध रखना चाहिअे और मिहनत की आदत भी डालनी चाहिअे।

आत्मा की शुद्धि और जागृति के लिअे हमें आत्मा को कमजोर करनेवाले सब दुर्गुण छोड़ने चाहिअे। ये दुर्गुण हैं:–(१) शराब, चरस, अफीम, गांजा, भंग और दूसरी नशैली चीजें, (२) व्यभिचार और अतिशय कामुकता, (३) उत्तेजक खुराक, गान, तमाशे, और क्रूर खेलों का शौक, (४) चोरी, (५) जुआखोरी, (६) झूठ, (७) शरीर, कपडे, मकान, चारों ओर की चीजें और गांव की अस्वच्छता, (८) आलस, (९) अज्ञान, (१०) लालच, (११) द्वेप, और (१२) नास्तिकभाव। इसलिअे यह ज़रूरी है कि हम–

१. शराब, अफीम, चरस, गांजा, भंग, आदि नशैली चीजों को छोड़ दें।
२. व्यभिचार न करें और अपने गृहस्थाश्रम को भी संयम से बर्तें।
३. तेज़ मसालेदार खुराक, उत्तेजक तमाशे (नाटक, सिनेमा आदि), गान, नाच आदि और शिकार, भैंसों की टक्कर आदि क्रूर खेलों का शौक न करें।
४. चोरी न करें।
५. जुआ न खेलें।
६. झूठ न बोलें।
७. अपना शरीर, कपडेलत्ते, मकान, अहाते और गांव साफ़ रक्खें।
८. हमेशा काम में लगे रहें और कभी निटल्ले न बैठें।
९. अज्ञान को बुरा मानें और सदा ज्ञान की खोज में रहें।
१०. लालच में न पड़ें, दूसरों को हानि पहुँचा कर अपना फायदा न करें।
११. किसी की बुराई न चाहें, बल्कि अपने पडोसियों से प्रेम, उदारता और परोपकारिता का व्यवहार करें।
१२. नम्र और ईश्वरपरायण रहें।

प्यारी बहिनो और भाइयो, हमारी उन्नति में ये सारे दोप बाधक होते हैं। जबतक कोई भी लोग इनके अधीन रहे तबतक उनकी उन्नति नहीं हुई और कोई भी उन्नत प्रजा इनकी गुलाम होने के बाद अपनी स्थिति कायम नहीं रख सकी। जब हम इन दुर्गुणों को छोड़ देते हैं तब हमारी बुद्धि मुक्त हो जाती है, हमारा हृदय बलवान् हो जाता है, हमारी भावनायें पवित्र हो जाती हैं, और हम अपने अन्तर्यामी परमात्मा के प्रकाश को अधिक स्पष्ट देखने के योग्य बन जाते हैं। वह प्रकाश हमारा मार्गदर्शक होकर हमें प्रगति की ओर ले जाता है। तब हमें यह ज्ञान होता है कि दर असल अनेक देवी देवता नहीं हैं, किन्तु ईश्वर अेक ही है। वह ईश्वर बदला लेनेवाला नहीं है। शीतला और मलेरिया आदि बीमारियां वह नहीं भेजता। वह बदला लेने की नीयत से या गुस्से में आ कर बरसात नहीं रोकता या बाढ़ नहीं भेजता। उसे प्राणियों के बलिदान से सन्तुष्ट करने की ज़रूरत नहीं है। तब हम यह भी समझने लगते हैं कि हम अपने प्रयत्न से प्लेग, हैज़ा, शीतला,

कोढ़, मलेरिया आदि का नाश कर सकते हैं; और अपने ही प्रयत्न से सबके लिअे यथेष्ट खाना-पीना, कपड़ा, मकान और अच्छी राज्यव्यवस्था का प्रबन्ध कर सकते हैं। तब हम यह भी सीखेंगे कि किसी मनुष्य से डरने की कोई ज़रूरत नहीं है। जब हम जाग जायेंगे तब हमें यह भी ज्ञान होगा कि सुख और आराम अेक चीज़ है और विलास तथा चैन बिलकुल दूसरी। तब हमें यह भी पता चलेगा कि हमारे दुःख और पतन का कारण यह नहीं है कि हमारे शरीर कमजोर हैं और हम निहत्थे हैं, बल्कि यह कि अपनी गिरी हुई हालत में भी हम बुरी आदतों से बाज नहीं आते और सुख के दिनों में विलासी, दुर्गुणी तथा आलसी बनकर ज्ञान और सद्गुणों की कोई परवाह नहीं करते। इन बुराइयों की वजह से हमें अपनी इज्जत की अपेक्षा जान अधिक प्यारी लगती है, और नतीजा यह होता है कि हमारी अपेक्षा जो अधिक बलवान्, धनवान्, या बुद्धिवान् हैं उनसे हम डरने लगते हैं और उनके दास बन जाते हैं।

इसलिअे मैं कहता हूं कि यदि आप अपनी हालत सुधारना चाहते हैं, तो जिन दुर्गुणों का मैंने जिक्र किया है उन्हें छोड़ दें और उद्योगी बन कर सच्चा ज्ञान प्राप्त करने की कोशिश करें। हमारे दुर्गुणों का नाश कर हमें उद्योगी और सुखी बनाने के लिअे म० गांधी ने हमारे सामने शराब-बन्दी, चरखा, ग्रामोद्योग और ग्राम-सफाई का कार्यक्रम रक्खा है। और हमारे सभी व्यवहारों के लिअे सत्य और अहिंसा का सिद्धान्त बताया है। वे चाहते हैं कि हम इस भ्रम को छोड़ दें कि जीवन की जो अच्छी अच्छी चीजें प्राप्त करने का हमें अधिकार है उन्हें हम हिंसा द्वारा ही प्राप्त कर सकते हैं। दरअसल ज़रूरत इस बात की है कि हम संगठित और अेक हो जायँ, अेक दूसरे के साथ सत्य और अहिंसा के बन्धन से बंध जायँ, और जाग्रत तथा उद्योगी बनें। उनकी शर्तों को हम पूरा करें तो और सब बातें अपने आप हमें प्राप्त हो जायेंगी।

आप लोग जितनी बातें याद रख सकते हैं उनसे शायद मैं ज्यादह कह गया हूं। शायद इन सब बातों को समझने में भी आपको मुश्किल होती हो। मेरी बिनति यह है कि यदि आपको इसकी प्रतियां मिलें, तो आप उन्हें बार बार किसी से पढ़ा लें और समझवा लें। आपको उससे लाभ होगा।

अैसा अेक भी सद्गुण नहीं है जिसका अुद्देश केवल व्यक्ति का हित हो, या जिसे अुतने ही से सन्तोष होता हो। अुसीतरह, अैसा अेक भी दुर्गुण नहीं है जिसका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष असर दुर्गुणी व्यक्ति के अलावा दूसरों पर न होता हो। असलिअे कोअी व्यक्ति सद्गुणी है या दुर्गुणी है यह केवल अुसी व्यक्ति का प्रश्न नहीं है, बल्कि वास्तविक वह प्रश्न सारे समाज का, या सारे संसार का है।

—गांधीजी

वीरवृत्ति और शस्त्रवाद

[दादा धर्माधिकारी]

अेक मित्र पूछते हैं कि फौजी तालीम कहांतक अुपयोगी और आवश्यक है। जवाब में अितना कह देना काफी है कि फौजी तालीम अुपयोगी तो है परन्तु आवश्यक नहीं है। अुससे शरीर चपल, लचीला, फुर्तीला और चुस्त हो जाता है। कवायद से अेक तरह का अनुशासन, संघशक्ति और सामुदायिकरूप से काम करने की वृत्ति पैदा होती है। ये सब फौजी तालीम की खूबियां हैं, जिनके लिअे हम अुसे अुपयोगी और फ़ायदेमन्द मानते हैं। लेकिन ये अुसी के असाधारण या विशेष गुण नहीं हैं। अैसी अनेक अहिंसात्मक प्रवृत्तियां भी हैं जिनके द्वारा अिन गुणों का विकास अुतनी ही अच्छी तरह हो सकता है। फिरभी जो लोग फौजी तालीम के ख़ास कायल हैं अुनके लिअे अुसका प्रबन्ध होना अुचित है। लेकिन जिसे फौजी मनोवृत्ति या लष्करशाही कहते हैं अुसके संसर्ग से हमें अपने देश के युवकों को अवश्य बचाना चाहिअे। फौजी मनोवृत्तिका यह मूलभूत सिद्धान्त है कि मनुष्य के विकास के लिअे युद्ध अेक प्राकृतिक आवश्यकता है। यह सिद्धान्त मानव्य की प्रतिष्ठा नष्ट करनेवाला और अिसलिअे अनर्थकारी है। मनुष्य की अपने भाअी पर स्वामित्व प्राप्त करने की, या अुसे परास्त कर नीचा दिखाने की अिच्छा प्रतिगामी और समाजद्रोही है। लष्करशाही अक्सर साम्राज्यवाद की सहचारिणी बनकर आती है। अिसलिअे फौजी तालीम के हिमायतियों को बडी सतर्कता से काम लेना चाहिअे।

जो पेशेवर सिपाही होते हैं वे मारकाट से नहीं डरते। वे कुछ निडर, पर अधिकतर निर्घृण होते हैं। जान देते हुअे और विशेषकर जान लेते हुअे, अुन्हें खास दर्द नहीं होता। अुनकी कोशिश अपनी जान बचाकर दूसरों की जान लेने की होती है। बल्कि अिसी में अुनकी निपुणता समझी जाती है। अपनी जान बचाकर दूसरों की जान लेने की कला का ही नाम तो युद्धकौशल है। लेकिन जिसे हम युद्धकौशल कहते हैं अुसी का नाम बहादुरी या वीरवृत्ति नहीं है। यह भेद कुछ सूक्ष्म अवश्य है, लेकिन अुसे समझना निहायत ज़रूरी है। जहां अपनी जान जाने का ज़रा भी डर न हो, या हारने का तनिक भी संभव न हो, वहां कौशल बताने की कोई गुंजाअिश ही नहीं रह जाती। प्रतिकूल या विकट परिस्थिति में जब हम कोअी काम आसानी से, सफ़ाअी से और सुचारुरूप से कर दिखाते हैं तब वह कृति कला में शुमार की जाती है। युद्ध में अधिक से अधिक जानें लेनेवाला अिसलिअे बहादुर समझा जाता है कि वह अपने समान ही युद्धविशारद और सशस्त्र योद्धाओं को हराता है। याने प्रतिकूल परिस्थिति में भी करामत दिखाता है।

यदि हम अिस रहस्य को भली भांति समझलें तो हमें यह स्वीकार करने में कोअी आपत्ति नहीं होगी कि वीरता का शस्त्रास्त्रों से कोअी अनिवार्य या घनिष्ठ संबंध नहीं है। अिसीलिअे फौजी तालिम ही वीरवृत्ति के विकास का, या भय का सामना करने का हौसला पैदा करने का, अेकमात्र

जरिया नहीं है। सर्कस में भी हम देखते हैं कि कअी लोग जंगली जानवरों से भी खिलवाड़ करते हैं, अैसे अैसे मुश्किल काम कर दिखाते हैं कि प्रेक्षक अवाक् रह जाता है। जरासी गलती हो जाय तो जान से हाथ धो बैठने का डर होता है। हम चकित होकर अुनके कौशल की तारीफ़ करते हैं, लेकिन अुन्हें कोअी शूरवीर नहीं कहता। तांबे के अेक अेक सिक्के के लिअे नुकीली कीलों पर या कांटों पर लेटनेवाले बाबाजी की तपस्या हमारे दिल में आदर अुत्पन्न नहीं करती। अुनकी बनावटी तपस्या "अुदरनिमित्तम्" होती है, अिसीलिअे समाजोपयोगी नहीं होती। केवल लोहा बजाने वाले अुजड्ड और असंस्कृत तलवरियों को हम शूरवीर नहीं समझ सकते।

जो पेशेवर सिपाही होते हैं वे अपनी और दूसरों की जान की कीमत अपनी रोटी से कम समझते हैं। वे पेट के लिअे सिपाही का पेशा करते हैं। सिपाही और जल्लाद में अगर कोई महत्त्व का फ़र्क़ है तो वह यह है कि सिपाही अपनी जान जोखिम में डालता है, और जल्लाद सिर्फ़ दूसरों को मारता है। लेकिन पेट के लिअे जान खतरे में डालनेवाले भी कम नहीं हैं। बटपार और चोरों में अिस तरह का साहस काफी होता है। अतः जो सिपाहीगिरी केवल जीविका के लिअे की जाती है अुसमें और बटपारी में कोअी तात्त्विक भेद नहीं है। अिसतरह के सिपाही की तलवार तिजोरी और थैली की चेरी बनकर रहेगी। यदि फौजी तालीम के साथ साथ हमें 'अर्थस्य पुरुषोदासः' का अनर्थावह सिद्धान्त भी सिखाया जायगा तो हम अपनी तलवारें भी बेच देंगे। सिपाही जिस दिन अपने सिद्धान्त के लिअे अपना पेट फेंक देने पर अुतारू हो जायगा अुसी दिन अुसमें वीरवृत्ति का अुदय होगा। अिस दृष्टि से फौजी तालीम से भी कहीं अधिक आवश्यक बात है नवयुवकों में 'पेट फेंक देने' की वृत्ति और कला का विकास करना। भारत की पराधीनता का बीज जिस भूख में और भिखारी की वृत्ति में है, अुसे सैनिक शिक्षा नष्ट नहीं कर सकती।

अब अिसके अेक और पहलू का विचार करें। आखिर दुनिया तलवार की या शस्त्रधारी की कदर किसलिअे करती है? क्या अिसलिअे कि अुसकी बदौलत कुछ तगडे लोग दूसरों पर अपनी सत्ता कायम कर सकते हैं; या कुछ गुंडे दूसरों पर आक्रमण कर आपना आतंक जमा सकते हैं? तलवार की अिज्जत अिसलिअे नहीं है कि वह ज़ालिमों के आक्रमण का साधन है, बल्कि अिसलिअे कि वह आततायियों के आक्रमण से दुर्बलों और निरपराधियों की रक्षा का साधन है। देश के सारे नागरिक, सिपाही को अपना रक्षक मानते हैं अिसीलिअे अुसका आदर करते हैं। स्त्रियों के दिल में रणधीरों के लिअे और सिपाही की वर्दी के लिअे जो अिज्ज़त आम तौर पर पायी जाती है अुसका मूल भी यही भावना है। शस्त्रविद्या और युद्धकला की प्रतिष्ठा का आधार है अुनकी रक्षण-शीलता। धर्म, मनुष्यता, और शान्ति——दूसरे शब्दों में सत्य और अहिंसा——की रक्षा का साधन तलवार है। तलवार की प्रतिष्ठा का अधिष्ठान, संरक्षण और निग्रह का तत्त्व है। संरक्षण, मनुष्य-समाज की शान्ति का और निग्रह, अुस

शान्ति में खलल करनेवाले समाजद्रोहियों का। अर्थात् मनुष्य के दिल में आदर आक्रमण के तत्त्व का नहीं, किन्तु रक्षण, और अधिक से अधिक प्रतिकार या प्रतिघात के तत्त्व का, है। जो तलवार सज्जनों के दिल में डर पैदा करती है, या दुर्बलों को सताती है, अुसके लिअे समाज में आदर-भाव नहीं होता। अिसीलिअे जिन सिपाहियों के प्रवेश करते ही गांववाले पुरुष अपनी जान और स्त्रियां अपनी अिज्ज़त लेकर भागती हैं वे बहादुर नहीं, ज़ालिम हैं।

सारांश, जिस अंश में युद्ध मनुष्यता की रक्षा करेगा, शस्त्रास्त्र शान्ति की सेवा करेंगे, तलवार अहिंसा की दासी बनकर रहेगी, अुसी अंश में समाज अुसकी कदर करेगा। मानवीय सभ्यता और सामाजिक सुसंस्कृति का प्रतीक दरअसल तलवार नहीं है, किन्तु ढाल है। ढाल रक्षा का प्रतीक है। समाज में जब ढाल के सिद्धान्त का अुत्कर्ष होता है तब मनुष्यता की अुन्नति होती है, और जब तलवार ही का अुत्कर्ष होता है तब मानवता का ऱ्हास होता है।

महाराष्ट्र में अेक मशहूर कहावत है कि अंग्रेजी राज्य में अितनी शान्ति है कि आप अपनी छडी में सोना बाँधकर बदरीनाथ से रामेश्वर तक चले जाअिये, कोअी डर नहीं है। अिसपर अेक मार्मिक जवाब यह दिया जाता है कि बात तो सही है। मगर मुश्किल तो यह है कि अिस राज्य की बदौलत छडी में बांधने लायक सोना ही न रहा। ठीक यही हाल हमारी युद्धविद्या का है। धर्म, न्याय और शान्ति की हिफ़ाज़त के लिअे वह हमारे जीवन में दाखिल हुअी। लेकिन अुसने शान्तिवाद को दरकिनार रखकर, धर्म और न्याय को पैरों तले रौंधकर, विजिगीषा, प्रभुत्व की अिच्छा और अधिकार-तृष्णा की मात्रा बेहिसाब बढ़ा दी है। यहां तक, कि ये बन्धुद्रोही प्रवृत्तियां वीरता का लक्षण और क्षात्रवृत्ति का अेक अविभाज्य अंग मानी जाने लगी हैं। अिसीलिअे तो जहां स्वपक्षीय स्त्रियां और दुर्बल लोग सिपाही को अपना त्राता मानते हैं, तहां विपक्षीय स्त्रियां और शान्त नागरिक अुसे प्रत्यक्ष यमदूत समझते हैं। अिस तरह, सिपाहीगिरी की अिज्ज़त निरपेक्ष और निर-पवाद नहीं है। आज का युद्धवाद और शस्त्रवाद साम्राज्यवाद का औरस अपत्य है। तलवार अधिकार-तृष्णा की महज टहलनी हो गयी है।

मतलब, तलवार जबतक आर्तत्राण और आततायी का निग्रह करने में अपने आपको कृतार्थ मानती है तभीतक अुसका अुपयोग है। दूसरे शब्दों में, तलवार जबतक अुस सिद्धान्त की सेवा करती है जिसका प्रतीक ढाल है, तभीतक अुसका अुपयोग क्षम्य या सह्य है।

जो लोग फौजी तालीम या शस्त्रास्त्र विद्या की शिक्षा के हिमायती हैं वे भी यही कहते हैं कि राष्ट्र के स्वत्व और स्वातंत्र्य की हिफ़ाजत के लिअे वह ज़रूरी है। अूपर जो विवेचन किया गया है अुसपरसे निदान अितना तो स्वीकार करना ही पडेगा कि वीरता, आत्मरक्षा या तत्त्वरक्षा का तलवार या शस्त्र से कोअी अनिवार्य सम्बन्ध नहीं है। बल्कि जिस अंश में तलवार अपनी आवश्यकता दूर करेगी अुसी अंश में समाज अुसका अस्तित्व बरदाश्त करेगा। युद्ध की प्रतिष्ठा का आधार ही अहिंसा की पूजा है। यदि वैज्ञानिक ढंग से विचार किया जाय तो यह स्पष्ट है कि तलवार

ही तलवार का नाश नहीं कर सकती। अंधेरा ही अंधेरे को नष्ट नहीं कर सकता। मनुष्यता और सामाजिकता की रक्षा के लिअे हमें कोअी दूसरा ही रामबाण साधन खोजना पडेगा। गांधीजी ने हमारे लिअे अैसे साधन का आविष्कार और संशोधन किया है।

मनुष्य को सुखी और संपन्न बनाने के जितने साधनों का आधुनिक जगत् ने आविष्कार किया अुन सबका परिणाम ठीक अुलटा ही हुआ। आधुनिक सभ्य संसार की कुल प्रवृत्तियों की आलोचना "लिखत सुधाकर लिखिगा राहू," अिस अेक वाक्य से हो जाती है। मनुष्य को साधन-सम्पन्न और प्रकृति का स्वामी बनाने के लिअे कलों का आविष्कार हुआ। परिणाम यह हुआ कि अधिकांश मनुष्य मुट्ठीभर पूंजीपतियों के क्रीतदास हो गये। मनुष्यों को अुद्योग और रोटी देने के बदले यन्त्रवाद ने अुन्हें निकम्मे और मुहताज बना दिया। सारे वैज्ञानिक आविष्कारों का अुद्देश मनुष्यों के शरीरों को निकट लाकर अुन्हें अेक दूसरे के पडोसी बनाना था। लेकिन अुसका परिणाम यह हुआ कि ज़ालिमों को अत्याचार करने की अनेक सुविधायें हो गयीं। ठीक यही हाल शस्त्रवाद का है। यंत्रवाद ने श्रम की प्रतिष्ठा बढ़ाने के बजाय अुसे धनाढ्यों के क्रय-विक्रय का पदार्थ बना दिया, विज्ञान ने मनुष्य को प्रकृति का प्रभु बनाने के बदले अुसे अपने धूर्त भाअी का दास बनाया, और शस्त्रवाद ने बंधुत्व की रक्षा करने के बदले अधिकांश मनुष्यों को तोपों का खाद्य बनाया। आधुनिक लड़ाअी में तो वीरता के लिअे गुंजाअिश भी नहीं है। रक्षण का तत्त्व तो न मालूम कहां तिरोहित हो गया है। मानवोचित सौजन्य गायब होने में बहुत थोडी कसर रह गयी है। खिलाडी की दिलेरी और दिलदारी लापता है। जलाशयों को रोगजन्तुओं से और वायुमंडल को विषैली हवा से दूषित कर बेगुनाहों की जान लेना अद्यतन आसुरी युद्धनीति का लीलाविचेष्टित है। अिस ज़माने में फौजी तालीम द्वारा आत्मरक्षा की शक्ति प्राप्त करने का व्यर्थ प्रयास करना निपट मूर्खता है। आज की युद्धनीति आक्रमण पर स्थित है। रक्षण के साधनों का आविष्कार करने की फुरसत अुसे है कहां?

अिन सब बातों का विचार करके ही शायद अनेक कॉंग्रेसवादी भी फौजी तालीम का तत्त्वतः समर्थन करते हैं। अुस शिक्षा का अुपयोग राष्ट्रीय आत्मरक्षा के लिअे भले ही न हो, लेकिन वह शरीर को चुस्त और मन को अनुशासन-प्रिय बनाने में अुपयोगी है। हमें अिन गुणों के विकास के लिअे अुस शिक्षा का अवलम्बन करने में आपत्ति नहीं है। परन्तु जब हम अुसका प्रत्यक्ष प्रयोग शुरू करेंगे तो यह कभी न भूलेंगे कि जिस तरह यन्त्रवाद असली अुद्योगिता और वास्तविक सम्पत्ति का नाशक है अुसी तरह शस्त्रवाद या फौजी मनोवृत्ति यथार्थ वीरता और पराक्रम के लिअे विघातक है।

आज के गिरे हुअे भारत में फौजी तालीम और शस्त्रास्त्रों के प्रति विशेष आदरयुक्त श्रद्धा और अुत्सुकता है। हमारे हथियार जबरदस्ती या छलबल से छीन लिये गये। या हमने अपनी कायरता और अनाडीपन के कारण अुन्हें खो दिया। अिसका हमें पराजय से भी अधिक दुःख है। हमने शस्त्रसंन्यास

नहीं किया है। हमारा निःशस्त्रीकरण हमारी विवशता, पराभव और नादानी का स्मारक है। सशक्तों का खड्गसंन्यास वीरों का आभूषण है, बन्धुत्व का अुद्‌गम स्थान है। अशक्तों का शस्त्र-वियोग लाचारों का आपद्धर्म है। अिसलिअे हमें यह भ्रम हो गया है कि शक्ति शस्त्रों में है। गांधीजी हमें बार बार याद दिलाते हैं कि शस्त्र तो केवल वाह्य अुपकरण हैं। शक्ति का अधिष्ठान तो हमारी कलाओ और कलाओ से भी बढ़कर हमारा हृदय है। अुनके कथन की सत्यता का लोगों को अनुभव भी हो चुका है। लेकिन फिर भी अुनका पूरा पूरा भ्रमनिरास होने में अभी बहुत कसर है। अुनके कमजोर दिल हथियारों के लिअे तरस रहे हैं। सिपाही की वर्दी पहनकर हथियार बांधकर घूमने के लिअे वे तड़प रहे हैं। गांधीजी की दलीलें और राष्ट्र का अनुभव, शक्ति के वास्तविक अधिष्ठान का अुन्हें ध्यान तो दिलाता है, परन्तु अितने दिनों का पुराना संस्कार बार बार अुद्‌भूत हो जाता है।

यह तो मानी हुआी बात है कि छल या मुठमर्दी से भारतवासियों के शस्त्रास्त्रों का अपहरण कर ब्रिटिश सत्ता ने अुनके साथ अक्षम्य अन्याय किया है। शस्त्रधारण का मौलिक अधिकार तो जिनकी खास अिच्छा हो अुन भारतवासियों को फिरसे प्राप्त होना ही चाहिअे। जब वे अपनी अिच्छा से हथियार और फौजी मनोवृत्ति का त्याग करेंगे, लश्करशाही को नष्ट करने का निश्चय कर लेंगे, तभी वीरोचित अहिंसा का अुदय होगा। जब तक सारी जनता गांधीजी के मार्ग का अेक धर्म के रूप में अनुसरण नहीं करती तब तक जिन्हें ख्वाहिश हो अुनके लिअे फौजी तालीम पाने की सुविधा कर देना सरकार का कर्तव्य है। लेकिन अुसे अनिवार्य या सार्वत्रिक शिक्षा का रूप देना अनुचित और अनिष्ट है। जो लोग युद्धविरोधी हैं और अहिंसा को धर्मरूप मानते हैं अुनके लिअे तो अपवाद अवश्य करना ही चाहिअे। लेकिन दूसरे नागरिकों के लिअे भी फौजी तालीम आवश्यक नहीं होनी चाहिअे। क्योंकि आखिर अहिंसापरायण लोग ही तो अव्यक्त, अविनाशी और निरुपाधिक शक्ति-देवता के अुपासक हैं। मानवता की रक्षा करनेवाली शक्ति का परममंगल अवतार अुन्हीं के प्रयत्नों से होगा, शस्त्रवादी शाक्तों की वामाचारी आयुध आराधना से नहीं।

विकास हमेशा प्रयोगमय होता है। सारी प्रगति गलतियां करने से और अुन्हें सुधारने से होती है। भगवान के हाथों से बिलकुल बनीबनायी कोआी अच्छी चीज नहीं आती। वह तो हमें बार बार प्रयोग कर के और बार बार असफल होकर स्वयं निर्माण करनी पड़ती है। यही वैयक्तिक विकास का नियम है। सामाजिक और राजनैतिक अुत्क्रान्ति का भी वही नियम है। भूल करने का अधिकार--जिसका अर्थ है प्रयोग करने का स्वातंत्र्य--प्रगति की सार्वत्रिक शर्त है।

—गांधीजी

राष्ट्रभाषा की सनातन चर्चा

[काका कालेलकर]

–२–

अब अेक भी राष्ट्रीय महत्त्व का सवाल हल करने की हमारी हिम्मत नहीं रही है। हम अपने सवालों का हल अपनेतअीं ढूंढने के लिअे न तकलीफ अुठाना चाहते हैं और न अपने दिमाग को कष्ट देना चाहते हैं। जहां जो चलता आया हो अुसी को चलने देने में हम कोअी आपत्ति नहीं देखते। तपेदिक का मरीज यह नहीं जानता कि वह मृत्यु के किनारे पहुंच गया है। वह तो यही कहता है कि मैं जैसा हूं वैसा ही मुझे रहने दो, अच्छा खानापीना दो और खूब आराम दो, मुझे न सताओ। कभी कभी अुसकी भलाअी के लिअे अुसकी बात माननी पडती है। किन्तु हम यह कैसे भूल सकते हैं कि असली जीवन विलास और विश्राम में नहीं है? हमें अपनी सामाजिक, राष्ट्रीय और व्यक्तिगत समस्याओं को हल करने में ही जीवन का वास्तविक आनन्द अनुभव करना चाहिअे।

लिपि का ही सवाल लीजिये। जहां नागरी से काम चलता है वहां प्रायः कोअी अुर्दू सीखने की तकलीफ नहीं अुठाना चाहता। कोअी कोअी तो अुसका सम्बन्ध अपने हिन्दुत्व से बरबस जोड देते हैं। जहां अुर्दू चलती है वहां नागरी सीखने की प्रवृत्ति बहुत कम पायी जाती है। यहां तक कि नागरी के अभिमानी भी अुसे सीखने का कष्ट नहीं अुठाना चाहते। परंम्परा से जो चलता आया है अुसमें परिवर्तन करने की वृत्ति बहुत मन्द है। पंजाब में आर्यसमाज के कार्यकर्ता नागरी के बडे पक्षपाती हैं। किन्तु अुन्हें अपने अखबार ज्यादातर अुर्दू में चलाने पडते हैं। आखिर वे भी क्या करें? अधिकांश लोग जो लिपि आसानी से पढ़ सकते हैं अुसीमें अुन्हें अखबार चलाने पडते हैं। वे अगर हिन्दी में अखबार चलायें तो अुन्हें घाटा अुठाना पडेगा। सुनते हैं अुनका अैसा अनुभव भी है। जिन लोगों की प्रान्तीय लिपि नागरी या अुर्दू नहीं है वे कहते हैं कि आज तक जिस तरह हमारा काम चल गया अुसी तरह आगे भी चलेगा। दूसरे प्रान्तों में जाते हैं तो अंग्रेजी से निभा लेते हैं। दूसरे प्रान्तों के देहात में हमें थोडे ही जाना है। अगर राष्ट्रभाषा की आवश्यकता किसी तरह अुनके गले अुतर ही गयी तो वे कहते हैं कि जब अुर्दू-हिन्दी का अिस तरह झगड़ा चलता है तो हम अुसे निपटाने के लिअे रोमन का ही व्यवहार क्यों न करें? कम से कम झगडे की बला तो टलेगी? आखिर यह लिपियों का झगडा क्या है, अुसका निबटारा कैसे हो सकता है, रोमन लिपि का स्वीकार कहांतक शक्य या अिष्ट है, अुसके व्यवहार में भी कौन कौन सी कठिनाअियां हैं—आदि प्रश्नों का विचार करने की अुन्हें न अिच्छा है और न फुरसत।

अिसके अलावा अुन लोगों का भी अेक खास वर्ग है जो हर अेक काम को टालना चाहते हैं। अपनी जड़ता को ढांकने की अुनकी बडी अनोखी हिकमत है। वे हर अेक नयी चीज़ को बडी चतुराअी

से विवादग्रस्त बना देते हैं। अुनकी कुशल अिसीमें है कि किसी चीज़ का निर्णय न होने पावे। क्योंकि जबतक वह विवाद का विषय रहेगी तबतक दोनों पक्षों के तर्क-प्रतितर्क चलते रहेंगे और किसी को प्रत्यक्ष कुछ करने की ज़रूरत ही नहीं रहेगी। निर्णय हो जाने पर अुसको कार्यान्वित करने के लिअे कुछ न कुछ करना पडता है। अपने आप कोअी काम होता हो तो अुसमें रोडे न अटकाने की शायद ये लोग मिहरबानी करेंगे। जिनकी अैसी मनोवृत्ति है अुनका विचार ही छोड देना चाहिअे। अुनके भरोसे कोअी काम करना मानो दलदल पर से चलना है।

लिपि के सवाल के मुख्य तीन या चार पहलू हैं। सबसे महत्त्व का सवाल है निरक्षर जनता को साक्षर करना। दूसरा सवाल है सारे भारत के लिअे साधारण लिपि कौनसी हो सकती है, और अुसका प्रचार किस तरह करना चाहिअे, अिसका निर्णय। तीसरा प्रश्न यह है कि अगर अेक लिपी न हो सकती हो तो आज की बारह या पन्द्रह लिपियों में से कितनी लिपियां कम की जा सकती हैं। अिनके बाद यह सवाल आता है कि निरक्षर जनता के लिअे हम अपनी लिपियों को आसान किस तरह बना सकते हैं। लिपि-सुधार में यह दृष्टि सबसे अधिक महत्त्व की है। लेकिन अुसपर अबतक बिरले ही विद्वानों का ध्यान गया है। फिर यह प्रश्न है कि हम लिपि को लेखन-सुलभ, मुद्रण-सुलभ और मुद्रालेखन-सुलभ किस तरह बनावें।

सारे भारत के लिअे अेक लिपि निर्धारित करना, राष्ट्रीय व्यवहार-सौकर्य का सवाल है। सारी दुनिया के लिअे अेक आन्तरराष्ट्रीय लिपि जारी करने का सवाल साम्राज्यवादी पाश्चात्य लोगों के लिअे महत्त्व का भले ही हो परन्तु हमारे लिअे तो अुसका मतलब आन्तरराष्ट्रीयता के नाम पर अपने देश की आत्मा का हनन करना ही होगा। मैं यह नहीं भूलता कि अिसी युक्ति का आधार लेकर कअी प्रान्तवादी आन्तरप्रान्तीय लिपि का विरोध करने लगते हैं। लेकिन आन्तरराष्ट्रीय और आन्तरप्रान्तीय लिपि के सवाल में जो मौलिक भेद है वह अुनके ध्यान में नहीं आता। हम नम्रता से अुनसे पूछना चाहते हैं, कि क्या अुनकी समझ में हमारे सामने दो ही विकल्प हैं?--या तो आजकी तरह अिस राष्ट्र को छिन्नभिन्न अवस्था में रहने दें; या आन्तरराष्ट्रीय संगठन के ख्वाब देखने में अपने आप को कृतकृत्य समझें? क्या और कोअी चारा ही नहीं है?

लेकिन जो लोग राष्ट्रीय अेकता और आन्तरप्रान्तीय सम्पर्क बढ़ाने के लिअे दरअसल कुछ करना चाहते हैं अुनमें भी दो रायें हो सकती हैं। परन्तु अुनका अुद्देश समान होने के कारण वे आपस में बहुत जल्दी निर्णय कर सकते हैं। अुनके साथ विचारविनिमय और परामर्ष भी करना चाहिअे। समय समय पर अुनसे समझौता भी करना चाहिअे।

नागरी और अुर्दू के झगडे का फैसला किस तरह हो सकता है अिसका विचार बहुत कम लोगों ने किया है। हर अेक प्रान्त की विशेष परिस्थिति का ख्याल रखते हुअे अखिल भारतीय दृष्टि से विचार करनेवाले और भी विरले हैं। बहुतसे लोग

तो केवल अभ्यास के कारण ही कह देते हैं कि नागरी लिपि सर्वश्रेष्ठ है, वैज्ञानिक है, अिसलिअे अुसीका स्वीकार हर अेक को करना चाहिअे। अुनकी बात तो सही है। लेकिन केवल बुद्धिवाद से दुनिया मान जाती तो क्या था? दूसरे कुछ लोग अैसे हैं जो केवल कार्य की कठिनता को बता कर सन्तोष मान लेते हैं। नागरीप्रचार का नाम लेते ही वे पूछते हैं, "मुसलमान और बंगाली आपकी दाल गलने देंगे?" लेकिन अगर हम सब अिस तरह पराजय के स्थान ढूंढनेवाले कोलंबस बन जायँ तब तो बेडा पार है! आज जो अशक्य है अुसे शक्य करने का तरीका अेक ही है। वह यह है कि आज जो शक्य है अुसे अच्छी तरह करें। अगर मुसलमान और बंगाली जिद करते हैं, तो आप जब्त कीजिये। सब्र का फल मीठा ही होगा। आप अपना ध्यान अुनकी तरफ दीजिये जो नागरी का विरोध नहीं करते बल्कि अुसका स्वीकार करने के लिअे अुत्सुक भी हैं। कम से कम अुन लोगों में नागरी का प्रचार किस तरह हो सकता है अिसका हम विचार करें। अेक राष्ट्रलिपि की ओर अग्रसर होने का यही सीधा और अचूक रास्ता है। हम कठिनाअियों का विचार अवश्य करें। अुनकी तरफ आंख मींचने से काम नहीं चलेगा। लेकिन कठिनाअियों की कोरी बहस और युक्तिवाद से भी तो कदम नहीं बढेगा।

पाठकों में से जिन्हें अिस विषय में दिलचस्पी है, राष्ट्र के संगठन में अेक लिपि का महत्त्व जो महसूस करते हैं, अुनसे अनुरोध है कि वे अूपर जिन सवालों का जिक्र किया है अुनपर विचार करें। नागरी और फारसी के जटिल प्रश्न का अूहापोह अपनी दृष्टि से हम अगले लेख में करेंगे।

देवों का काव्य

[काका कालेलकर]

–३–

ध्रुव का तारा चाहे जहां से देखिये। अुत्तर की तरफ वह अेक ही स्थान पर स्थिर और अचलसा दिखाअी देता है। हम जिस स्थान से देखते हों वहां का जो अक्षांश हो, क्षितिज से अुतनी ही अूंचाअी पर ध्रुव का तारा नज़र आता है। हिन्दुस्तान के अक्षांश ६ और ३६ के बीच में हैं। कन्याकुमारी से देखा जाय तो ध्रुवतारा लगभग क्षितिज पर ही दिखाअी देगा। ज्यों ज्यों हम अुत्तर की ओर बढेंगे त्यों त्यों वह अूपर अूपर अुठता हुआसा प्रतीत होगा।

अब हम यदि अेक छतरी लें और अुसे खोलकर अिस तरह पकडें कि अुसकी डंडी का सिरा ध्रुव को ठीक अपना लक्ष्य करे, और अुसे धीरे धीरे पूर्व से पश्चिम की ओर घुमावें तो आकाश की गति अच्छी तरह हमारे ध्यान में आ सकती है। छतरी अगर

बारा सींकों वाली हो तो दो सीकों के बीच का अन्तर दो घण्टों के बराबर होगा। चौबीस घंटों में सारा आकाश अेक परिक्रमा पूरी करता है। यदि हम अपनी छतरी को अुत्तर गोलार्ध मानें और चौबीस घण्टों में अुसकी अेक परिक्रमा पूरी करें तो आकाश का ठीक ठीक अनुकरण होगा। और अगर छतरी के अन्दर काले कपडे पर मुख्य मुख्य तारों को बतानेवाले सफेद निशान लगा दिये जायें तो आकाश के तारों का भी आसानी से ख्याल आ जायगा। (स्वदेशी छतरियां बनानेवाले अगर अुनके भीतरी हिस्से पर सफेद रंग में तारों के चित्र बना दें तो तारा-प्रेमी लोगों में अुनकी खपत बढेगी।)

हम अपने देश में यह आसानी से देख सकते हैं कि जो तारे ठीक पूर्व में अुगते हैं वे हमारे सिर पर नहीं आते। किन्तु अुनका झुकाव दक्षिण की ओर होता है। मार्च २१ और सितम्बर २२ को, जब दिन और रात बराबर होते हैं और सूरज ठीक पूरब में अुगता है, हमारी छाया मध्यान्ह में ठीक हमारे पैरों तले नहीं आती। किन्तु अुत्तर की ओर झुकती है। क्योंकि सूरज का झुकाव दक्षिण की तरफ़ होता है।

आकाश का जो बिन्दु ठीक हमारे सिर पर होता है अुसे "खस्वस्तिक" कहते हैं। मार्च २१ और सितम्बर २२—अिन दिनों को "वसन्तसम्पात" और "शरदसम्पात" कहते हैं—को मध्यान्ह का सूर्य "खस्वस्तिक" से अुतना ही दक्षिण की ओर झुकता है जितना अुस स्थान का अक्षांश हो।

पाठक घबरायें नहीं, हम अुसे ज्योतिष-शास्त्र के चक्रव्यूह में नहीं फंसाना चाहते। रात को सोते समय और भोर की प्रार्थना के वक्त वह आकाश का जो दिव्य और भव्य पारिजात फूला हुआ देखता है अुसका आनन्द लूटने के लिअे जितनी सामग्री आवश्यक है अुतनी ही यहांपर यथाअवसर दी जायगी। हम ज्योतिष के विद्वान नहीं बनना चाहते। हमें तो सितारों के दीवाने बनने की साध है।

आजकल शाम को पूर्व में मृगनक्षत्र अुगता है। अुसके चार पैर और अुस के पेट में घुसा हुआ तीन तारों का अेक तीर साफ दिखाअी देता है। आजकल यही मृग निशा-देवी के रथ में जोता जाता है। शाम से लेकर तड़के तक मृगनक्षत्र रात्रि का रथ खींचता है, और करीब चार बजे भोर में पश्चिम में लुप्त हो जाता है। अिसीलिअे अिन रात्रियों को "मृगनीतारात्रयः" कहते हैं।

अिस मृग का पीछा करनेवाला अेक बहुत ही चमकदार तारा अुगता है अिसका नाम व्याध या लुब्धक है। मृग के पेट में घुसनेवाला जो तीन नक्षत्रों का बाण है अुसीकी सीध में यह लुब्धक नज़र आता है। अंग्रेजी में अिसका नाम 'सिरियस' है। यह तारा हमारी पृथ्वी से अितनी दूर है कि अुसकी किरणों को यहां तक पहुँचते साढे आठ साल से भी ज्यादा लग जाते हैं। हमारे सूरज की अपेक्षा अुसका प्रकाश छब्बीस गुना है।

अिस लुब्धक के आसपास पांच अैसे तारे हैं जिनको अुसके साथ मिला देनेसे अेक कुत्ते के समान आकृति बन जाती है। अिसलिअे अुसे 'दिव्यश्वान' भी कहते हैं। 'दिव्यश्वान' की आकृति आजकल चार बजे तड़के पश्चिम में देखनी चाहिअे। मृग जब पश्चिम क्षितिज पर अदृश्य होने आता है तब यह कुत्ता अुस पर झपटता है। अीर्ष्या

से वह अपनी दुम सीधी खडी कर देता है और मृग के पीछे दौड़ता है। लुब्धक का तारा ही अिस कुत्ते का सिर है। अुसके नीचेवाला तारा अुसकी अगली टांग मानी जा सकती है। अुसकी पिछली टांगें दक्षिण की ओर हैं, जो बहुत ओछी हैं। अुसके सम-कोण में करीब अुतनी ही लम्बी अुसकी दुम है। जब यह कुत्ता पूरब में अूगता है तो बेचारा अैसा दीन दिखाओ देता है मानो फांसीपर लटकने जा रहा हो। लेकिन जैसे जैसे वह अूपर की ओर बढ़ता जाता है अुसकी शोभा भी बढ़ती है।

कहते हैं कि मृगव्याध या लुब्धक का रंग प्राचीन काल में मंगल के समान लाल था। आजकल वह बिलकुल अुजला सफेद ही है। अिसके बारे में अथर्ववेद में कहा है:—

'अप्सुते जन्म दिविते सधस्थं समुद्रे अन्तः
महिमाते पृथिव्याम्।
शुनो दिव्यस्य यत् मः तेन ते हविषा विधेम'॥

अगर हम अिन तारों के चित्र दे सकते तो अुन्हें पहचानना बहुत ही आसान हो जाता। किन्तु केवल शाब्दिक सहायता के आधार पर अपने ही प्रयत्न से अुनसे परि-चय करने में और अुनकी आकृतियां मन ही मन सिद्ध करने में आविष्कारक का अनूठा आनन्द है। ताराप्रेमी वाचकों से निवेदन है कि वे आअिन्दा हमारी सूचनाओं का पूरा पूरा अुपयोग कर आकाश-निरीक्षण करें और जहां शंका हो वहां हमसे पूछें। व्यक्तिगत जवाब देना तो असंभव है। अुनकी शंकाओं का समाधान 'सर्वोदय' द्वारा करने की चेष्टा की जायगी।

अंग्रेजी में अेक बड़ा ज़बरदस्त शब्द है, आपकी फ़रासीसी भाषामें भी वह है, दुनिया की सभी भाषाओं में है——वह शब्द है "नहीं।" जो रहस्य हमारे हाथ आगया है वह यह है कि जब पूंजीशाही मज़दूरों से "हां" कराना चाहे और मज़दूरों के दिलों में "ना" हो, तो अुन्हें बुलन्द आवाज से 'नहीं" की गर्जना करनी चाहिअे। जिस क्षण मज़दूरों की समझ में यह आ जायगा कि वे जब "हां" कहना चाहें तब "हां" कहने के लिअे और जब "ना" कहना चाहें तब "ना" कहने के लिअे स्वतंत्र हैं, अुसी दिन वे पूंजीशाही की गुलामी से आजाद हो जायेंगे, और पूंजीशाही को अुनकी मिन्नतें करनी होंगी। पूंजीशाही के पास तोपें और जहरीली हवायें भले ही हों वे किसी काम की नहीं साबित होंगी। अगर मज़दूर केवल "नहीं" कहकर ही सन्तोष न मानें किन्तु अपने "नहीं" को आचार में परिणत कर अपनी मान-रक्षा पर तुल जायें तो पूंजीशाही मजबूर होजायगी।

—गांधीजी

गांधीजी के पत्र

(ता० ५:४:३५ को लिखे हुअे अेक पत्र का कुछ अंश)

चि०............

× × ×

× × × से तुम्हारी जो चर्चा हुअी वह अच्छी है। बहुतसे लोग अहिंसा का केवल पॉलिसी (तात्कालिक नीति) के रूप में ही पालन करते हैं यह सच है। लेकिन तुम्हारे जैसे कुछ अैसे भी तो हैं कि जो अुसे अपना धर्म समझ कर अपने जीवन में अुसपर अमल करने का महत् प्रयास करते हैं। आखिर यही अहिंसा काम देनेवाली है। हमारे स्वाधीन हो जाने पर भी फौज तो रहेगी ही। अब तक मुझे अपनी अहिंसा में अितनी ताकत नहीं दीखती कि जिससे लोग यह मान लें कि फौज की कोअी जरूरत नहीं है। अगर फौज रही तो फौजी तालीम भी रहेगी। परन्तु आखिर यह भी अनुमान ही है। अगर हम दरअसल अहिंसा के बल स्वतंत्रता हासिल कर लें तो यह नामुमकिन नहीं है कि हमें आगे के लिअे भी फौज की जरूरत न रहे। अहिंसा की शक्ति अपरिमेय है। अुसी तरह अहिंसक की शक्ति भी अतुलित है। अहिंसक स्वयं कुछ नहीं करता अुसका प्रेरक अीश्वर होता है। अिसलिअे वह कैसे कह सकता है कि अीश्वर आगे चलकर अुससे क्या करायेगा। अतः यहां कॉम्प्रोमाइज (समझौता) का सवाल ही नहीं हैं। यह तो हमारी शक्ति के माप का सवाल है। सांप से डर कर अुसे मारने में मैं कोअी समझौता नहीं करता। अपनी दुर्बलता का प्रदर्शन करता हूं। मुझे यही कहना होगा कि अीश्वर ने मुझे अिससे अधिक शक्ति नहीं दी या अितनी शक्ति प्राप्त करने लायक मैंने अपनी आत्मशुद्धि नहीं की। समझौता मनुष्य जानबूझकर करता है।

पूर्ण सत्याग्रही याने अीश्वर का पूर्ण अवतार। तुम्हें सन्देह है न; कि क्या अैसा पूर्ण अवतार सारी पृथ्वी को गदगद हिला सकता है? अिसमें तनिक भी अत्युक्ति नहीं है कि यह संसार अिस तरह का अवतार निर्माण करने की प्रयोगशाला है। हमें यह श्रद्धा रखनी चाहिअे कि हम सब मिलकर अगर अंशरूप से तैयारी करें तो कभी न कभी पूर्ण अवतार प्रकट अवश्य ही होगा। फिर तुम्हें फौज के विषय में प्रश्न पूछो की जरूरत नहीं रहेगी।

× × ×

५:४:३५ बापू के आशीर्वाद

महज लीक पीटने में असली नीतिमत्ता नहीं है। नीतिमत्ता तो अपने लिअे सच्चा रास्ता खोजने में और अुसपर निडरता से चलने में है।

—गांधीजी

सर्वोदय की दृष्टि

'सर्वोदय' की भाषा

अेक मित्र तंग आकर लिखते हैं, "सबसे पहले आपसे प्रार्थना है कि आपलोग 'सर्वोदय' की भाषा को थोड़ा सरल करने की कृपा करें। आपलोग कहीं कहीं अितनी क्लिष्ट भाषा का अुपयोग करते हैं कि हम लोग बिलकुल ही कुछ समझ नहीं पाते कि आखिर आपका मतलब क्या है।"

गुनाह अेकदम कबूल। हम 'सर्वोदय' की भाषा को सरल बनाने की भरसक कोशिश ज़रूर करेंगे। अिन मित्र की तरह जो पाठक अुसके दोषों की ओर हमारा ध्यान दिलायेंगे अुनके हम कृतज्ञ होंगे, और पाठक जो विधायक सूचनायें करेंगे अुनपर अमल करने की चेष्टा करेंगे। निवेदन अितना ही है कि सहृदय पाठक हमारी कुछ कठिनाअियों का भी ख्याल रक्खें। अुनमें सबसे पहली बात तो यह है कि 'सर्वोदय' के दोनों सम्पादक हिन्दीभाषी नहीं हैं। अिसलिअे अुनकी भाषा में प्रसादगुण, अस्खलित प्रवाह और सहजसुन्दरता तो कम होती ही है, परन्तु कहीं कहीं वह कुछ क्लिष्ट और कृत्रिम भी हो जाती है। अुसकी दुर्बोधता का यह अेक कारण है। लेकिन वे अिस विषय में विद्यार्थी की नम्र वृत्ति से सुधार करने की कोशिश करते रहेंगे। दूसरी कठिनाअी यह है कि 'सर्वोदय' जिन विचारों का प्रतिपादन और विवेचन करना चाहता है वे अभी कुछ नये हैं और अुनको भली भांति व्यक्त करन के लिअे समर्पक, अन्वर्थक और सुबोध शब्द आसानी से नहीं मिलते। समाजशास्त्र, राज्यशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि के अुपयुक्त पारिभाषिक शब्दों के विषय में तो करीब करीब चौपटराज ही है। तीसरी मुश्किल यह है कि 'सर्वोदय' में अैसी भाषा लिखने की कोशिश करनी पड़ती है जो सभी प्रान्तों के शिक्षित या संस्कारी लोग समझ सकें। अगर कल 'सर्वोदय' के सम्पादक बिलकुल ठेठ या मुहाविरेदार हिन्दी लिखना सीख भी लें तो भी अुन्हें जानबूझ कर कुछ अैसे शब्दों और वाक्प्रचारों का अुपयोग करना होगा जो सभी प्रान्तों के लिअे सुपरिचित नहीं तो सुबोध अवश्य हों। चौथी अड़चन यह है कि 'सर्वोदय' के लेखक सभी भाषा-भाषियों में से हैं और वे अेक ही या अेकसी भाषा में नहीं लिखते। अुनके मूल लेखों के संपादन में सम्पादक केवल व्याकरण की या वाक्यरचना की गलतियों को सुधार कर सन्तोष मान लेते हैं। जहां अनुवाद किया जाता है वहां भी मूल के अर्थ या भाव की हानि न होने देने की सावधानी रखनी पड़ती है।

तिसपर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि अिन दिक्कतों के होते हुअे भी भाषा सीधी, सरल और मीठी बनाने की कोशिश करना परम आवश्यक है। 'सर्वोदय' हिन्दी के गण्यमान्य विद्वान, प्रथितयश साहित्यिक और लब्धप्रतिष्ठ पत्रकारों के पास जाता है। अुन सबसे खास अनुरोध है कि वे अुसकी भाषा की त्रुटियों की ओर सम्पादकों का ध्यान दिलाने की कृपा करें। 'सर्वोदय' अुनसे कमसे कम अितनी कृपा की आशा तो ज़रूर कर सकता है। जो संस्कारी

लोकसेवक ' सर्वोदय ' पढ़ते हैं अनसे निवेदन है कि वे अुसके भाव और विचार अपनी अपनी बोलचाल की आमफ़हम भाषा में समझाने की कोशिश अपने अपने कार्यक्षेत्र में करें।

हम 'सर्वोदय' की भाषा को सरल बनाना चाहते ही हैं। लेकिन राष्ट्रभाषा में वैज्ञानिक तथा दार्शनिक विचारों को भी यथार्थ रूप से प्रकट करने की शक्ति आना आवश्यक है। अिस दृष्टि से जितनी सूचनायें आयेंगी अुनका हम सहर्ष स्वागत करेंगे।

का० का०

दा० ध०

बेचारा सवाअी भूशुंडी

कुछ मित्र सवाअी भूशुंडी से सख्त नाराज हैं। वे कहते हैं वह बडा बदतमीज़ है। किशोरलाल भाअी का भी लिहाज़ नहीं करता। कुछ तो यह जानना चाहते हैं कि वह कौन है जिससे वे अुसकी खबर ले सकें। अिस बार तो अुसने और भी ढिठाअी की है। काका साहब को ही अपनी नज़र का निशाना बना लिया। सवाअी भूशुंडी का व्यवहारिक नाम जानने की अपनी अिच्छा पाठक रोके रक्खें। अुसके विषय में हम फिर अेक बार यह कह देना चाहते हैं कि वह अेक सुलझे दिमाग और साबित दिल का जीव है। अुसके विनोद में परिहास है लेकिन अुपहास नहीं है। सज्जन-निन्दा अुसका पेशा नहीं है। अुसकी हँसी में भी सहृदयता और विवेक है। कुछ लोग तो सम्पादकों पर ही बिगडे। अुनकी यह शिकायत है कि ' सर्वोदय ' के सम्पादकों को दूसरों का मज़ाक कराने में मज़ा आता है। अब प्रधान सम्पादक को ही व्यङ्ग्य का विषय होते देखकर अुन्हें कुछ न कुछ तसल्ली होगी।

दा० ध०

जीवन-वेतन = चारित्र्य-वेतन

दहिटणा (जि०–सोलापुर) के कार्यकर्ता श्री परशुराम राठी जीवन–वेतन के वितरण के बारे में अेक बडी सुन्दर सूचना करते हैं। अुनका अभिप्राय यह है कि मजदूरों को जीवन–वेतन देने में हमें अुनके चरित्र की अुन्नति की भी कोशिश करनी चाहिअे। कअी लोग महंगी खादी अिस विचार से लेते हैं कि अुनका पैसा गरीबों को रोटी देने में, याने सत्कार्य में, खर्च होता है। अुन्हें अगर यह भी विश्वास हो जाय कि जिन मजदूरों को वह मिलता है वे अुसे बुरे कामों में खर्च नहीं करते तो अुन्हें और भी सन्तोष होगा और खादी के प्रति अुनका अनुराग और श्रद्धा बढेगी। अिस तरह हम खादी को चरित्र–सुधार का साधन बनाकर अुसकी नैतिक प्रतिष्ठा बढ़ा सकते हैं।

सूचना सुन्दर ही नहीं अुपयुक्त भी है। जीवन–वेतन का सिद्धान्त कोअी मामूली चीज़ नहीं है। आज तो समाज में बेकारी की ही समृद्धि है। यदि आप तीन आदमियों को काम देने का अिरादा करें तो खबर पाते ही दस आदमी आपका दरवाजा खटकायेंगे और कहेंगे कि वेतन चाहे कम कर दीजिये लेकिन किसीको कोरा जवाब न दीजिये। अैसी हालत में जीवन–वेतन अेक सामाजिक ज़िम्मेवारी का रूप धारण कर लेता है। जीवन–वेतन से कम देना तो बहुत ही खतरनाक है। लाचार होकर हमें दस आदमियों में से तीन आदमी छांट लेने पड़ते हैं। सवाल यह है कि हम अिन्हें किस तत्त्व के आधारपर छांटें? वेतन देनेवाली संस्था अपने स्वार्थ का ज़रा भी विचार नहीं करती, क्योंकि वह परमार्थ

की नींव पर ही खडी है। लेकिन संस्था की वृत्ति से जो कार्यकर्ता समरस नहीं हो पाये हैं अुन्हें अपने निजी स्वार्थ या संकुचित वृत्ति को तृप्त करने का मौका मिल जाता है। यदि ये कर्मचारी अतने ही धर्मपरायण बन जायें जितनी कि अुनकी संस्था है तो वे समाज का चरित्र तुरन्त अुन्नत करेंगे।

प्रामाणिक समाजोपयोगी काम के द्वारा जीवन-वेतन पाने का मौका प्रथम अुसी को दिया जाय जो दुराचारी नहीं है, व्यसनी नहीं है और नितान्त दरिद्री है। अिसमें जाति, धर्म, पन्थ या पक्ष का ज़रा भी ख्याल न किया जाय। अिसी तरीके से सच्चरित्र बेकारों को जीवनदायी अुद्योग देनेवाला कार्यकर्ता राष्ट्रीय चारित्र्य की सम्पत्ति बढ़ाता है और अुसका कल्याणकर्ता बन जाता है। स्वराज्य की सर्वोत्तम तैयारी अिसी तरह होगी।

लोकतंत्र (डेमॉक्रसी) अुत्कृष्ट वस्तु है। किन्तु अुसमें यदि अज्ञान और हीनता की प्रतिष्ठा बढ़ जाय तो वह नरक का साधन बन जायगा। लोकतंत्र केवल अहिंसक स्वराज्य में ही जड़ पकड़ सकता है। अहिंसक स्वराज्य की बुनियाद है सामाजिक सदाचार की व्यापकता। सामाजिक सदाचार बढ़ानेवाला प्रत्येक सेवक प्रजातंत्र का सबसे मज़बूत आधारस्तंभ है।

अिसके ये मानी नहीं हैं कि जो सदाचारी नहीं हैं अुनपर खादी के विषय में कोअी जिम्मेवारी ही नहीं है। खादी का व्रत लेना और कातना तो अुनका भी कर्तव्य ही है। लेकिन लोगों की यह धारणा है कि खादी का सदाचार से निकट संबंध है। खादीधारी के दुराचार से अुन्हें ताज्जुब होता है। यदि हमारे कार्यकर्ता अिस हितकारक भावना की रक्षा कर सकें और अुसे बढ़ा सकें तो हमारा राष्ट्रीय चारित्र्य बहुत अुन्नति करेगा।

कम से कम जहां तक मज़दूरों से संबंध है हम जीवन-वेतन का अुपयोग सदाचार बढ़ाने के लिअे कर सकते हैं। जो निर्व्यसनी और सदाचारी हों, या जो निर्व्यसनी और सदाचारी बनने का वादा करें अुनका जीवन-वेतन पर पहला अधिकार हो। अिस तरह जीवन-वेतन के द्वारा हम स्वराज्य, सर्वराज्य या रामराज्यकी दिशा में अग्रसर होंगे। लेकिन अिसके लिअे जीवन-वेतन को चारित्र्य-वेतन बनाने की शक्ति का हमें विकास करना होगा।

का० का०

जाति या वर्ग-निष्ठ शिष्टाचार

हमारी दृष्टि अितनी जातिनिष्ठ और वर्ग-निष्ठ बन गयी है कि हमारा शिष्टाचार और शुभ व्यवहार भी अुसकी सीमा को नहीं लांघ सकता। हम अपना वर्ग और अपनी जाति के लिअे जो नीति या शिष्टाचार अुपयुक्त समझते हैं वह, जिन्हें हम नीचा या कनिष्ठ मानते हैं, अुनके लिअे अुपयुक्त नहीं समझते। अिसीलिअे मज़दूरों का और खासकर नौकरों का अेक अैसा वर्ग माना जाता है जिसके साथ लगभग मनुष्येतर प्राणियों जैसा व्यवहार किया जाता है। हमारा छोटासा बच्चा, जिसे धोती पहनने का भी सहूर नहीं है, सयाने नौकर या मज़दूर को तूकारता है। मगर नौकर या मज़दूर चाहे जितना बूढ़ा और सदाचारी क्यों न हो, अुस बच्चे से हमेशा 'आप' कहेगा। वह हमारे साथ अेक या समान आसन पर बैठ नहीं सकता, हमारे पडोस में बैठकर असी तरह का ताजा

भोजन अुसी तरह के बासनों में नहीं कर सकता। हमें सर्दी या गर्मी से जो कष्ट होता है, वह हमारी समझ में अुसे नहीं होता। बीमारी में भी अुसे आराम की अिच्छा या जरूरत नहीं होती। सुखदुःख, नीति अनीति और भलेबुरे का जो मापक हमारे लिअे है वह अुसके लिअे नहीं है। किसी साहूकार या जमींदार ने अगर हमारा अपमान कर दिया तो हमें गुस्सा तो आता है, लेकिन यदि अुसका कोअी नौकर हमारा जरासा अनादर कर दे तो हम अपने आप को सम्हाल ही नहीं सकते। हमारा अपमान या बेआबरूअी भी वर्गनिष्ठ होनी चाहिअे, यह हमारा आग्रह है। बात बहुत छोटी है; लेकिन वह हमारी जातिनिष्ठ और वर्गनिष्ठ सभ्यता की द्योतक है। हमारी शिक्षा-प्रणाली भी अिस संकीर्ण वृत्ति का नाश नहीं कर पायी है। अिससे पता चलता है कि समाज में मनुष्यता का भाव कितना गिर गया है और फुटकर चीजों का मूल्य कितना बढ़ गया है।

किसी विद्वान् ने ठीक ही कहा है कि भारत में लोकशाही तो है परन्तु वह जातिनिष्ठ है। गरीब ब्राह्मण और अमीर ब्राह्मण में भेद नहीं है, लेकिन गरीब ब्राह्मण और धनवान् क्षत्रिय में है। अिस जाति-वाद की आग में अब वर्गवाद और व्यवसाय-वाद का तेल डाल दिया गया है। अगर हम दरअसल समाज में मनुष्य की (जाति-वर्ग-व्यवसाय) निरपेक्ष प्रतिष्ठा बढ़ाना चाहते हों तो हमें अपने बच्चों को अिन आगंतुक भेदों को दूर करने की शिक्षा देनी चाहिअे। निदान अितना तो अुनसे साफ कह देना चाहिअे कि वे अिस मामले में हमारा अनुकरण हरगिज न करें।

दा० ध०

हिन्दूधर्म बनाम हिन्दूसमाजशास्त्र

अूपर 'शिष्टाचार' के बारे में जो कुछ कहा गया है अुससे मैं बिलकुल हमराय हूं। केवल अितना और कह देना चाहता हूं कि हमारे समाज में अुच्चनीच-भाव की शिक्षा धर्म के नाम पर बाकायदा दी गयी है। अब लोग अुसे सनातनधर्म का अेक अभिन्न अंग मानने लगे हैं। हिन्दूधर्म अपने विशुद्ध रूप में आर्य, अुदात्त और मुक्तिपरायण है। अुसे अगर किसी चीज़ ने निष्प्राण, अनार्य और विषैला बना दिया है, तो अिसी श्रेष्ठ-कनिष्ठग्रह ने।

हिन्दूधर्म और हिन्दूसमाजशास्त्र भिन्न हैं। हिन्दूधर्म 'निर्दोषं' और 'समं' ब्रह्म की अुपासना सिखाता है। वह 'साधुष्वपि च पापेषु' 'समबुद्धि' का प्रतिपादन करता है, 'विद्याविनय सम्पन्न ब्राह्मण' और 'श्वपाक' के प्रति 'समदर्शितत्व' और अतअेव 'समवर्तित्व' का अुपदेश देता है। परन्तु हिन्दू समाज-शास्त्र अुच्चनीचभाव के अभद्र और अमंगल तत्त्व पर जोर देता है। यदि हम स्मृतियों से अुच्चनीचभाव को मान्य करनेवाले वचन काट दें तो बाकी कितनासा रह जाता है?

अिसीलिअे भगवान् मनु ने अपनी स्मृति में ही अेक 'भेषजरूप' वचन लिख दिया है। वे कहते हैं कि अगर स्मृतियों में धर्म-विरोधी (वेदविरोधी) वचन हों तो अुन्हें अप्रमाण मानना चाहिअे। स्मृतियां केवल धर्मशास्त्र का ही विवेचन नहीं करतीं। वे धर्म विरोधी किन्तु तत्कालीन शिष्टमान्य समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र और रूढ़ियों का भी समर्थन करती हैं। लेकिन अप्रगमनशील समाज अेक बहुत बड़े हितकारी न्याय को भूल जाता है। वह न्याय यह है कि

समाजशास्त्र या अर्थशास्त्र से धर्मशास्त्र प्रबल है। धर्मशास्त्र से भी धर्मतत्त्व परं-प्रमाण है। अिसलिअे जब समाज में धार्मिकता बढ़ती है, धर्म का आकलन विशुद्ध होता है, तब आचार और समाजरचना में तत्त्वानुकूल परिवर्तन आवश्यक हो जाता है। आज वह समय आगया है जब कि हमें पुराने समाजशास्त्र——जिसमें पुराना अर्थ-शास्त्र और परंपरागत लेकिन भेददर्शक शिष्टाचार भी शामिल है——से हिन्दूधर्म को बचाना चाहिअे।

का० का०

देशी भाषा और विद्युल्लिपि

हम अपने किसी मित्र को या अखबार को जो तार भेजते हैं वह अक्सर अंग्रेजी में लिखा हुआ होता है। कुछ खास तार देशी भाषा या सांकेतिक अथवा गूढ भाषा में लिखे जा सकते हैं। किन्तु अखबारों के लिअे संवाद अंग्रेजी में ही देने पडते हैं। भाषा चाहे अंग्रेजी हो, देशी हो अथवा सांकेतिक या गूढ हो, लिपि तो अंग्रेजी याने रोमन ही लिखनी पडती है। कारण तार के महकमे में दूसरी कोअी लिपि है ही नहीं।

अब जब कि स्वराज्य के दिन नज़दीक आ रहे हैं, यह नहीं चलना चाहिअे। हम अपनी देशी नागरी लिपि में या अुर्दू लिपि में जो कुछ लिख दें वह ज्यों का त्यों भेजने की तज़वीज होनी चाहिअे। भारतीय वर्णमाला तो अितनी वैज्ञानिक है कि अुसके लिअे विद्युल्लिपि बनाना विशेष सुकर होना चाहिअे।

अंग्रेजी के लिअे जो लिपि प्रचलित है अुसे 'मोर्स' लिपि कहते हैं। अुसका आविष्कारक सॅम्युअल फिनले मोर्स नामक अेक अमेरिकन गुणीजन था। अुसने अपनी लिपि का आविष्कार सन १८४० के लगभग किया। तबसे जहां जहां रोमन लिपि का व्यवहार जारी है वहां अिसी विद्युल्लिपि का अुपयोग होता है। हमारे देश में भी अुसीका प्रचलन है।

हम अपनी भाषाओं के लिअे भी थोडे परिवर्तन के बाद अिसी लिपि को काम में ला सकते हैं। लेकिन अगर हम अुसे अधिक वैज्ञानिक बना सकें तो अुसे सीखने में, याद रखने में और बरतने में बहुत बडी सहूलियत होगी।

करीब अेक साल से हम अैसी अेक लिपि की खोज में हैं। अबके जब मैं पूना गया तो वहां श्री. नरहरि जोशी——जो-कि अेक अेञ्जिनियर हैं——से मुलाकात हुअी। अिन्होंने मोर्स लिपि में कुछ परि-वर्तन कर के नागरी के लिअे अेक विद्यु-ल्लिपि बनायी है। और अब वही अुर्दू और अंग्रेजी के लिअे भी किस तरह काम में लायी जा सके अिस कोशिश में हैं। मैंने अुनके सामने नागरी की वैज्ञानिक दृष्टि रखकर अुन्हें सुझाया कि अिस वैज्ञानिक ढंग से जाना अधिक अुपयुक्त होगा। अिस बीच में मैंने भारतीय भाषाओं के ध्वनिशास्त्र के अनुसार अपनी अेक लिपि बनायी है। वह अभी बन ही रही है। अिसलिअे अुसका परिणत स्वरूप में पाठकों के सामने प्रस्तुत नहीं कर सकता। तो भी अुसके मूल सिद्धान्त यहां पर देता हूं।

हिन्दुस्तान में तारबाबू तो हजारों हैं। मैं अिस क्षेत्र में अुनके सहयोग की आशा करता हूं। मुझे अपनी विद्युल्लिपि को समझाने के लिअे प्रथम ध्वनिशास्त्र समझाना

होगा। तब जाकर मैं अपनी विद्युल्लिपि की अुपयोगिता सिद्ध कर सकूंगा। अिस छोटी सी टिप्पणी में तो किंचित दिग्दर्शन ही हो सकता है।

रोमन, अुर्दू या नागरी में हर अेक शब्द के अक्षर अलग अलग करके अुसके हिज्जे (वर्णविन्यास) याने वर्णन, करना पडता है। विद्युल्लिपि में अेक अेक अक्षर के हिज्जे (विन्यास) करने पडते हैं। क्योंकि अुसमें मूल अक्षर तो दो ही होते हैं –ह्रस्व और दीर्घ–लघु और गुरु–कड और कट्ट। अिन्हीं के भिन्न भिन्न आवर्त (परमिटेशन्स) से भिन्न भिन्न अक्षर बनाये जाते हैं। हर अेक खटके के अक्षर दो ही हो सकते हैं। दो खटकों के चार तीन के आठ, चार के सोलह और पांच के बत्तीस। अिनसे हम अपनी सारी गुजर कर सकते हैं। हर अेक अक्षर के लिअे हम जितने कम खटके लेंगे अुतना हमारा विद्युत् सन्देश जल्दी भेजा जा सकेगा।

हमने अ, आ, अि, अु, अे, ओ, अै, औ अिन आठ स्वरों के लिअे तीन खटकों के आठ आवर्तों का नियम बनाया है। क, च, ट, त, प, ग, ज, ड, द, ब, य, ल, व, श, ष, ह, अिनके लिअे चार खटकों के सोलह आवर्त हमने रक्खे हैं। अिसमें भी योजना अैसी है कि क, च, ट, त, प, जैसे कठोर व्यंजनों के लिअे जितने आवर्त हैं अुन सबका आखरी खटका 'कट्ट' ही होगा। और ग, ज, ड, द, ब, आदि घोष व्यंजनों का अन्तिम खटका 'कड' का होगा। 'म' और 'न' वार वार आते हैं और अनुस्वार का भी काम करते हैं। अिसलिअे अुनको हमने अपनी लिपि में दो खटकों के दो आवर्त दिये हैं। महाप्राण के लिअे कट्ट का गुरु खटका नियत किया। चार चार के वाकी के आवर्त य, व, ल, श, ष, स, और ह को दिये गये हैं।

अिस व्यवस्था से हमारी लिपि में वैज्ञानिकता आ गयी है, अिसलिअे वह आसानी से लिखी जा सकती है। प्रायः तीन खटकों के स्वर और चार खटकों के व्यंजन करने से दिमाग पर बहुत कम बोझ पडता है। तारबाबुओं के लिअे यह बडी सहूलियत है। मोर्सपद्धति के आदी तारबाबू शायद अिस सहूलियत का महत्त्व आज ही न महसूस करें। लेकिन नये सीखने वालों के लिअे तो यह अेक बरदान ही होगा।

शुरू शुरू में अिस पद्धति से तार भेजने में थोडा अधिक समय लगेगा। किन्तु आगे चलकर गति की दृष्टि से भी वह अुपयोगी साबित होगी। नागरी की विद्युल्लिपि हम यहां दे रहे हैं।* अुर्दू के लिअे अिसके बाद तैयार करने का अिरादा है।

अब जब कि तार के साथ मुद्रालेखन (टाइपरायटर) का प्रबन्ध हो चुका है, नागरी विद्युल्लिपि का काम अधिक सुकर हो जायगा और मोर्स लिपि की अपेक्षा अुसमें समय भी कम लगेगा।

आज तो यह हाल है कि जब कोअी महत्त्व का भाषण देशी भाषा में दिया जाता है तो अुसे अंग्रेजी में अनूदित करके अखबारों के पास भेजना पडता है और देशी भाषा के अखबार अुसे फिर अपनी अपनी भाषा में अनूदित करके छापते हैं। सामान्य शक्तिवाले अनुवादकों के दुगने संस्कारों के कारण मूल भाषण कुछ और ही रूप धारण कर लेता है। अुसकी सारी खूबियां तो नष्ट ही हो जाती हैं।

सरकार को चाहिअे कि कम से कम कांग्रेस में होनेवाले महत्त्व के भाषणों के संवाद देशी भाषा में और स्वदेशी विद्युल्लिपि में भेजने का प्रबन्ध करे।

२३:१२:३८ का० का०

* लिपि अगले पृष्ठ पर।

नागरी की विद्युल्लिपि

- o दीर्घ
  - अ oo
    - अ ooo
      - क oooo
        - ooooo पूर्णविराम
        - oooov ख
      - ग ooov
        - ooovo अै
        - ooovv घ
    - आ oov
      - ह oovo
        - oovoo ओ
        - oovov
      - ल oovv
        - oovvo क्ष
        - oovvv
  - स्वल्पविराम o v
    - अि ovo
      - च ovoo
        - ovooo
        - ovoov छ
      - ज ovov
        - ovovo ज्ञ
        - ovovv झ
    - अे ovv
      - य ovvo
        - ovvoo
        - ovvov
      - र ovvv
        - ovvvo
        - ovvvv
- v महाप्राण
  - अनुस्वार o v
    - अु voo
      - प vooo
        - voooo
        - vooov फ
      - ब voov
        - voovo
        - voovv भ
    - ओ vov
      - त vovo
        - vovoo
        - vovov थ
      - द vovv
        - vovvo
        - vovvv ध
  - म vv
    - अृ vvo
      - ट vvoo
        - vvooo
        - vvoov ठ
      - ड vvov
        - vvovo
        - vvovv ढ
    - न vvv
      - स vvvo
        - vvvoo
        - vvvov
      - श vvvv
        - vvvvo
        - vvvvv ष

भाषा की समृद्धि या प्रतिष्ठा ?

कोअी साहित्य केवल समृद्ध हो जाने से ही अुसकी प्रतिष्ठा नहीं बढ़ती। दासी को घीदूध पिलाने से वह चौकोर और मुष्टंडी हो जायगी। लेकिन सिर्फ मुटियाने से वह रानी थोडे ही बन सकती है। हमारी भाषायें चाहे खूब समृद्ध हो जायँ, चाहे अुनका साहित्य भी सुन्दर और विपुल हो जाय, तोभी, जबतक हमारे जीवन में अुन्हें प्रतिष्ठा नहीं है तब तक अुस साहित्य का कोअी मूल्य नहीं है। साहित्य म शुद्धि, समृद्धि, सामर्थ्य और संस्कारिता तो आवश्यक है ही। किन्तु सबसे पहली बात तो यह है कि असकी समाज में कितनी प्रतिष्ठा है। यह सच है कि साहित्य परिपुष्ट होने से अुसकी प्रतिष्ठा भी अपने आप बढेगी। किन्तु यह केवल अेक अर्धसत्य है। अगर हमारे जीवन में अुसकी प्रतिष्ठा न हो तो हमारे साहित्य में प्राण नहीं रहेगा। अिसलिअे आज अुसमें जो कुछ शक्ति नज़र आती है वह भी काम नहीं आयेगी।

हिन्दी के लेखकों ने अच्छे अच्छे अुपन्यास लिखे, बढिया कवितायें बनायीं और 'अन्ताराष्ट्रीयविधान' 'महत् समन्वय' अथवा 'सौर परिवार' जैसी रचनाओं से अपने साहित्यमन्दिर को अलंकृत किया तो भी अगर वे अपना व्यवहार अंग्रेजी में करें, दावतों के बाद अंग्रेजी में भाषण दें, अपने अखबार अंग्रेजी में लिखें, राष्ट्रहित की चर्चा के लिअे अंग्रेजी पुस्तिकायें छापें, अपने बच्चों को शुरू से आखिर तक अंग्रेजी में शिक्षा दें, न्यायालयों में अपने कौटुम्बिक और सामाजिक झगडों का निपटारा अंग्रेजी में ही करें, अपन कानून, संस्थाओं के प्रकृति-विधान (कॉन्स्टिटचूशन) अंग्रेजी में ही बनायें, राजद्रोह और क्रान्ति का सन्देशा भी अंग्रेजी में ही सुनायें, स्त्रियां भी अपनी आजादी का अैलान अंग्रेजी में ही करें, चिट्ठीरसा रोज़ जो चिठ्ठीपत्री लाता है अुनके नाम, गांव और पते हमें अंग्रेजी में ही पढ़ने पडें, गोपियों का दिव्य प्रेम, श्रीकृष्ण की जगद्विख्यात गीता, अकबर की अनूठी राज्य-व्यवस्था, राजपूतों का स्फूर्तिदायक क्षात्रतेज, रवि ठाकुर की विश्वप्रसिद्ध गीतांजलि, हिन्दुओं का बेमिसाल तत्त्वज्ञान--आदि सबका आनन्द हमें अंग्रेजी के द्वारा ही लेना पडे; तो हमारी भाषा की प्रतिष्ठा कहां रही? गुजराती साहित्य का अितिहास हम अंग्रेजी में पढें, बंगाली भाषा की बनावट की चर्चा अंग्रेजी में करें, आर्यों के मूलस्थान की खोज अंग्रेजी में करें और अपने वैज्ञानिक आविष्कार भी अंग्रेजी में ही प्रकाशित करें तो हमारी भाषा को कौन पूछेगा?

* * *

पुण्य क्षेत्रे कृतं पापं

यह सब पाप धोने के लिअे हमने यह निश्चय किया कि हम किसी स्वदेशी भाषा को ही राष्ट्रभाषा के सिंहासन पर बैठायेंगे और अुसका पैगाम हर अेक प्रान्त में वहां की प्रान्तीय भाषा में सुनायेंगे। अिस गर्ज से प्रान्त प्रान्त के लोगों को हिन्दी सिखाने का प्रयत्न भी किया। किन्तु हृदयपरिवर्तन नहीं हुआ। अिसलिअे हमारी बहुतसी शक्ति और बहुतसी तपस्या क्षीण हो गयी। हमारी प्रतिज्ञा तो यह थी कि प्रान्तीय भाषाओं की मदद से हम राष्ट्रभाषा के द्वारा

अंग्रेजी भाषा का साम्राज्य नष्ट कर देंगे। लेकिन हम अंग्रेजी के द्वारा ही हिन्दी का प्रचार करने लगे। मद्रास विभाग में अंग्रेजी का प्रभाव असाधारण है। आन्ध्र, तामिलनाड, केरल, कर्नाटक के लोगों के लिअे अंग्रेजी ने ही आन्तर-प्रान्तीय भाषा का स्थान ग्रहण किया है। अब अगर अुसका स्थान हिन्दी को देना है तो हिन्दी प्रचार को तेलगू, तमिल, केरली और कन्नड भाषाओं से मुहब्बत करनी चाहिअे और अुनका संगठन बढाना चाहिअे। परन्तु अिस तरफ ध्यान न देते हुअे अंग्रेजी की मार्फत हिन्दी प्रचार की कोशिश की गयी। अिसी सबब से अंग्रेजी के पुरस्कर्ता भी मातृभाषा के हिमायती बनकर हिन्दी का विरोध कर सके। वे कहते हैं "जैसे अंग्रेजी भाषा के साम्राज्य के बेलन ने सारी प्रान्तीय भाषाओं को चौपट कर दिया वैसे ही अब हिन्दी का साम्राज्य भी करेगा। फर्क अितना ही रहेगा कि अगर अंग्रेजी ने प्रान्तीय भाषाओं का क्षेत्र संकुचित कर दिया, अुनके लिअे लोगों के मनों में भी स्थान नहीं रहने दिया तो भी अुसके अखूट भण्डार में अपने गुलामों को खिलाने के लिअे काफी पक्वान तो थे। लेकिन हिन्दी के पास वह वैभव भी नहीं है कि जिससे हमारी प्रान्तीय भाषायें कुछ पोषण प्राप्त कर सकें।"

अगर हिन्दी शुरू से प्रान्तीय भाषाओं से अपना सम्पर्क बढाती रहती और अुसके प्रचारक दाक्षिणात्यों को राष्ट्रभाषा का सन्देशा अुनकी प्रान्तीय भाषा में ही सुनाते तो हिन्दी के कार्य का विस्तार आज की अपेक्षा दसगुना अधिक हुआ होता। अंग्रेजी के भक्त आज प्रान्तीय भाषा के सूरमा बने फिरते हैं। अुनका वह स्थान हिन्दी-सेवकों को कब का मिलना चाहिअे था। क्या मद्रास और क्या कर्नाटक में, कल तक हमने देखा कि हिन्दी का प्रचार अंग्रेजी के द्वारा करने की प्रवृत्ति अभी नष्ट नहीं हुअी है। हम अिन हिन्दीभक्तों को किन शब्दों में समझावें कि अुद्धार का रास्ता यह नहीं है। अंग्रेजी में ही अुनका वर्णन करना हो तो कहना पड़ेगा 'even in penance they are planning sins anew.'

मेरे पास लेख मांगने के लिअे हिन्दी, मराठी, गुजराती और अुर्दू समाचारपत्रों के और नियतकालिकों (मेगझिन्स) के पत्र कभी कभी आते हैं। अुनपर 'a leading weekly, monthly या quarterly journal' आदि शब्द जब अंग्रेजी में छपे हुअे देखता हूं तब मुझे दरअसल दुःख होता है। स्वभाषा के ये सेवक अपने आराध्य की क्यों अिस तरह अवहेलना करते हैं? Even in penance planning sins anew!

यह संतोष का विषय है कि दक्षिण भारत के हिन्दी प्रचारक अंग्रेजी के बदले प्रान्तीय भाषाओं के द्वारा हिन्दी प्रचार करने का महत्त्व समझने लगे हैं। अब भी अपनी लाचारी बता कर कहीं कहीं वे अंग्रेजी की पनाह लेते हैं। किन्तु अब अुनकी समझ में आ गया है कि अंग्रेजी का आश्रय करना पाप है और राष्ट्रभाषा प्रचार में अुसकी शरण लेना तो 'पुण्यक्षेत्रे कृतं पापं' जैसा है। अुन्होंने अभिवचन दिया है कि भविष्य में दक्षिण में हिन्दीप्रचार का काम प्रायः पूर्णरूप से प्रान्तीय भाषाओं के द्वारा ही किया जायगा।

२३:१२:३८ का० का०

राजकोट का सफल सत्याग्रह

यह अंक छप ही रहा था कि इतने में राजकोट की जनता को उनके सत्याग्रह में मिली हुई महान जीत की खबर समाचार-पत्रों में प्रकट हुई। श्री वल्लभभाई पटेल के सेनापतित्व में किया गया यह सत्याग्रह और उसका फल दोनों सत्याग्रह के इतिहास में पहले दर्जे के हैं। करीब चार महीने पहले राजकोट प्रजामण्डल ने जबाबदार राज्यतंत्र की मांग पेश की। राज्य की ओर से उसका जबाब दमन-नीति के रूप में दिया गया, और सत्याग्रह शुरू हुआ। अेक बाजू से राजकोट रियासत की सारी रियाया उसमें शामिल हुई, और दूसरी बाजू से रियासत की ओर से उसको दबा देने के लिअे तरह तरह के कठोर उपाय आजमाये गये। लेकिन जनता का उत्साह दिनदिन बढ़ता ही गया, और बडे ध्यान देने योग्य बात यह है कि जनता की ओर से अेक भी काम अैसा नहीं हुआ जिससे शांतिभंग या हिंसावृत्ति का इलजाम उस पर लगाया जा सके। आखिर खुद राजकोट दरबार को अपने दमन पर शर्म उत्पन्न हुई। परन्तु, जैसा कि सरदार वल्लभभाई ने अपने अेक भाषण में कहा है, देशी राज्यों में रियाया के स्वातंत्र्य की अपेक्षा राजा के स्वातंत्र्य का सवाल ज्यादा कठिन है, और उचित ढंग से किया गया सत्याग्रह–आन्दोलन न सिर्फ रियाया को ही स्वतंत्र करेगा, किन्तु राजाओं को भी। इस रियासत में जब राजकोट–ठाकुर समझौता करने के लिअे तैयार हो गये, तब उनके अंग्रेज दीवान ही उसमें रुकावट करने लगे, और बीच में तो मामले ने अैसा रुख लिया कि दरबार की ही ठकुराई रहेगी या न… इसी का अंदेशा होने लगा। मानो, राज… प्रजा की राय तो अेक है, पर दीवा… कहता है कि अगर राजा जनता का सा… देगा, तो मैं उसे भी उखाड दूंगा… आखिर दीवान की परवाह न करते हु… ही दरबार ने सरदार के साथ समझौ… कर लिया, और नीचे लिखी हुई प्रज… स्वातंत्र्य की घोषणा की:—

"पिछले कुछ महीनों से हमारी रिया… में जो जागृति पैदा हुई है, और अप… शिकायतों को दूर करने के लिअे उसने … खेदजनक कष्ट सहे हैं, उन्हें देखकर त… हमारी काउन्सिल और श्री वल्लभभाई पटेल… साथ कुल परिस्थिति की चर्चा करने … हमें यकीन हुआ है कि इस लड़ाई का औ… कष्ट-सहन का तुरन्त ही अन्त हो जाना चाहिअे…

"हमने दस सज्जनों की अेक समि… नियुक्त करने का निश्चय किया है। ये सज्ज… या तो हमारे राज्य की रियाया में से हों… अथवा हमारे अफ़सरों में से। इनमें से ती… राज्य के अफ़सर होंगे, और बाकी के सात नाम… की श्री वल्लभभाई पटेल सिफ़ारिश करेंगे।

"इस समिति के अध्यक्षस्थान पर ह… अैसा व्यक्ति नियुक्त करेंगे जो हमारे रा… के प्रश्नों से पूरी तरह वाकिफ़ हो और जिस प… हमारा पूरा विश्वास हो।

"सन १९३९ के जनवरी के अन्त से पह… यह समिति योग्य जँाच करके हमें अप… रिपोर्ट पेश करेगी कि जिससे, जो सार्वभौ… सत्ता के प्रति हमारे कर्तव्य और राज्यकर्ता… की हैसियत से हमारे खास अधिकारों से सुसंग… हों अैसे अधिक से अधिक अधिकार हमार… रियाया को मिलें।

"हमारी यह भी ख्वाहिश है कि नरेंद्रमंडल की काउन्सिल की सिफारश के मुताबिक हमारा निजी खर्च राज्य की आमदानी के दसवें हिस्से तक मर्यादित रहेगा। और हमारी रियाया को हम यह भी विश्वास दिलाना चाहते हैं कि उपर्युक्त समिति जिस योजना की सिफारिश करेगी उस योजना पर संपूर्ण अमल करने का हमारा इरादा है।

"शांति और शुभेच्छा की पुनःस्थापना करने के लिअे आवश्यक पार्श्वभमि की निशानी के तौरपर हम अिस घोषणा द्वारा संपूर्ण सजा-माफी ज़ाहिर करते हैं, और सविनय कानूनभंग के लिअे सजा पाये हुअे सब कैदियों को तुरंत छोड देने, वसूल किये गये दंड लौटाने तथा दमन के सब हुक्म वापिस लेने की आज्ञा करते हैं।"

गांधीजी ने कअी बार कहा है कि सत्याग्रह अेक अैसा युद्ध है जिसमें आखिर में दोनों पक्षों का कल्याण होता है। राजकोट-सत्याग्रह सब देशी रियासतें और उनकी रियायाओं के लिअे आदर्शरूप रहेगा। इस शुभ परिणाम के लिअे हम राजकोट की शूर जनता, सरदार वल्लभभाई और राजकोट नरेश को बधाई देते हैं।

३०:१२:१९३८ कि. घ. म.

प्रश्नोत्तरी

'सर्वोदय' की दृष्टि से चर्चा के लिअे अब हमारे पास सवाल आना शुरू हो गया है। राष्ट्रहित की दृष्टि से जिन प्रश्नों की चर्चा ज़ाहिरा तौर पर हो सकती है अैसे ही सवालों का विचार यहां होगा।

अेक सवाल अिस आशय का है:-

प्रश्न-जब कॉंग्रेस सम्पूर्ण आज़ादी के लिअे सरकार से लड़ रही थी अुस वक्त जिन लोगों ने अुसकी मदद नहीं की, अुलटे अुसका विरोध किया, अुनमें से कुछ आज अुसकी शक्ति को देखकर अुसमें दाखिल हो रहे हैं। यह स्वाभाविक और समझ में आने लायक बात है। कॉंग्रेसवालों को भी चाहिअे कि वे अैसे लोगों को अुदारता से अपनी संस्था में लें। परन्तु जबतक अुनकी कुछ भी परीक्षा नहीं हुअी है, तबतक अैसे नवागतों को कॉंग्रेस कमेटियों में या कॉंग्रेसी सरकार में किसी ज़िम्मेवारी या अधिकार के पद पर नियुक्त करना कहां तक मुनासिब होगा? जिन्होंने आज़ादी के जंग में बलिदान और कुरबानी की अुन्हें छोड़कर अैसे गैरों को बडे बडे पद देकर खुश करना कहांतक अुचित है?

अुत्तर-अिसका जवाब तो कअी दफ़ा दिया जा चुका है। फिर भी वह बार बार अुठाया जाता है। अिस लिअे अुसका फिर अेक बार ज़वाब देना अप्रस्तुत नहीं होगा।

कॉंग्रस अेक खास ध्येय और सिध्दान्त में मानने वाली राष्ट्रीय संस्था है। अुसका

आना अेक खास कार्यक्रम है। और जिनका अुसके सिध्दान्त, कार्यप्रणाली और कार्यक्रम में विश्वास है और जिनमें अुसे कार्यान्वित करने की कुशलता भी है अैसे अनुभवी सेवक भी अुस संस्था में हैं। समय समय पर कौनसी नीति किस ढंगसे अमल में लायी जाय अिसका वे ही निर्णय करते हैं और बडी बुद्धिमानी से कांग्रेस का जहाज स्वराज्य के बन्दरगाह की तरफ खे रहे हैं। अिन कर्णधारों की अगुआअी में कांग्रेस की नीति और अुसका कार्य सुरक्षित है।

कांग्रेस के कार्य के दो पहलू हैं। अेक तो अुसे अधिक सुसंगठित और चुस्त बनाना है, और दूसरे अुसका विस्तार भी बढ़ाना है। अिसलिअे जो अुसके ध्येय और नीति पर अपना विश्वास प्रकट करें अुन सबके लिअे अुसका दरवाजा खुला होना चाहिअे। अन्यथा अुसका विकास ही रुक जायगा। कल जो हमारे खिलाफ थे वे भी तो आज अपनी राय अीमानदारी से बदल कर हमारे साथ हो सकते हैं? कल जिन्होंने गलती की अुन्हें अुसे सुधारने का मौका क्या आज हम न दें? क्या यही प्रगति की रीति नहीं है?

यह हुअी मामूली सदस्यता की बात। अधिकारपदों पर किसे नियुक्त करना चाहिअे अिसका फैसला भी काँग्रेस के पुराने, कसे हुअे और त्यागी सूत्रचालकों पर छोड़ देना चाहिअे। अुन्हें अपनी संस्था की शुद्धता और सुरक्षितता की चिन्ता तो है ही। जो लोग सच्चे, आज्ञाकारी और कार्यदक्ष हैं अुनको अपने दायरे में दाखिल करने में कांग्रेस का विकास ही है। जिन लोगों ने त्याग और बलिदान किया अुन्हें सम्मान और सत्ता के रूप में पुरस्कार देने का विचार करना तो बिलकुल अप्रशस्त है। अैसा करने में काँग्रेस को कार्यकुशलता को बिसार देना होगा, या अुसे गौण मानना होगा। बलिदान करनेवाले अगर पुरस्कार की अुम्मेद रक्खेंगे तो अुनके बलिदान की कीमत घट जायगी। अुन्होंने तो काँग्रेस को बलवान और प्रभावशाली बनाने के लिअे ही बलिदान किया था। कांग्रेस के प्रताप को बढ़ा हुआ देखने की अुनकी मुराद पूरी हो गयी यही अुनके लिअे सबसे बड़ा पारितोषिक है।

लेकिन शायद प्रश्नपृच्छक का मतलब यह है कि काँग्रेस में जो नये व्यक्ति लिये जाते हैं वे दरअसल अुसके ध्येय या नीति के कायल नहीं होते। अुनके आनेसे न कार्यदक्षता बढ़ती है और न संस्था का विकास होता है। यदि यह अभियोग सच हो तब तो काँग्रेस पर बहुत ही बड़ा संकट है। विरोधियों का विरोध नष्ट करने के लिअे या अन्य किसी कारण से हम अुन्हें सम्मान और अधिकार की घूस देकर खरीदना चाहें तो काँग्रेस की शक्ति नष्ट होते देर न लगेगी। हमें तो केवल प्रजाहित के ही ख्याल से लोगों को काम सौंपना है। अंग्रेज़ सरकार जब अपने 'सिव्हिल सर्व्हेन्टों' से काम लेती है तो अुनके निजी विचारों का ज़रा भी विचार नहीं करती। आअी. सी. अेस. वाले भी अपने निजी विचार अपने मन में रखकर सरकारी नीति पर सचाअी और बुद्धिमानी से अमल करते हैं। वे सरकार को अपनी आज्ञाकारिता और दक्षता का पूरा पूरा लाभ देते हैं। काँग्रेस के सूत्रधारों में अगर कमजोर आदमी घुस जायें, वे स्वार्थी, तंगदिल और बुज़दिल

होजायें तो स्वराज्य का कार्य पलभर में चौपट हो जायगा। अगर अुनमें न्याय का अुच्च आदर्श और हृदय की अैक्य-साधक अुदारता न रही तो राष्ट्र की स्वराज्य शक्ति कभी भी संगठित नहीं हो सकती। जिन नम्र सेवकों ने स्वराज्य-निष्ठा के कारण स्वार्थत्याग और आत्मबलिदान किया, अुन्होंने यह सब अपनी व्यक्तिगत प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिअे नहीं किया, बरन कँाग्रेस की शक्ति बढ़ाने के लिअे। कँाग्रेस के सूत्रधारों की शक्ति बढ़ गयी यही अुनके त्याग और निष्ठा का फल है। जब वे अपने लिअे कोअी पद या सम्मान चाहते हैं तो कँाग्रेस की शक्ति और प्रतिष्ठा को हानि पहुँचाते हैं।

जिन लोगों ने कँाग्रेस की अुपेक्षा या विरोध किया अनके अुस विरोध के, और अब रुख बदलने के कुछ कारण अवश्य रहे होंगे। अुनकी सेवायें लेते हुअे अुनका विचार अवश्य करना चाहिअे। हमारे लिअे अितना विश्वास और आश्वासन बस है कि जबतक वे कँाग्रेस में रहेंगे तबतक वे कँाग्रेस के भी बनकर रहेंगे।

हां, यह तो निश्चय है कि चारित्र्यशुद्धि, व्यवस्था और अुद्यम का अभाव किसी हालत में बरदाश्त नहीं किया जा सकता। जो लोग लिये जायें अुनमें पक्षपात, आदि राष्ट्रद्रोही दुर्गुण तो कतअी नहीं होने चाहिअे। अिन शर्तोंपर जो लोग कँाग्रेस में आते हैं वे अुसके सूत्रधारक नहीं आज्ञाधारक हैं। भिन्न मतवालों को आज्ञाधारक सेवक बनाने से कँाग्रेस की शक्ति बढ़ती ही है।

अेक बात और है। जो लोग बरसों से कँाग्रेस की सेवा करते आये हैं वे अक्सर कहा करते हैं कि "जब कि लोग कँाग्रेस को चिमटे से भी छूने के लिअे भी तैयार नहीं थे तब से हम लोगों ने अुसकी सेवा में अपने जीवन की सफलता मानी है। आज जब कि कँाग्रेस की प्रतिष्ठा बढ़ रही है तब दिखावटी कँाग्रेस-निष्ठा बतलानेवाले हर जगह मिलेंगे। जिन लोगों की कँाग्रेस-निष्ठा सौ फी सदी है अुनमें भी आप पुराने और नये का भेद तो करेंगे या सभी को अेक लाठी हांकेंगे?"

कँाग्रेस के पुराने सेवकों की निष्ठा यदि अुनकी सेवा की अवधि से नापी जाती हो तो नये लोगों की निष्ठा शायद अुनकी अुत्कटता से नापनी होगी। जब हम किसी अंधेरे कमरे में रोशनी ले जाते हैं तो यह ख्याल नहीं करते कि वह दिया हाल ही में जलाया गया है या कुछ समय पहले, या कमरे का अन्धेरा चार दिन का पुराना है अथवा चार सदियों का। प्रकाश और अन्धकार में ताजे और बासे का भेद नहीं होता। जब जिसके दिल में देशभक्ति की ज्योत प्रकट हो जाय अुसी समय पुराना और नया प्रकाश अेकरूप हो गया।

ज्ञानवृद्धों और अनुभववृद्धों की बात कुछ और है। लेकिन अुनकी चिन्ता हमें करने की जरूरत नही है। हरअेक की विशिष्ट योग्यता अपने आप प्रकट हो ही जाती है।

का० का०

(प्रश्नकार-श्री देवी नारायण कपूर, सोमेश्वर, अलमोडा)

प्रश्न० १–राष्ट्रपति श्री सुभासचंद्र बोस द्वारा चलाई राष्ट्रीय योजना तथा उद्योग-विस्तार (नैशनल प्लानिंग अैन्ड इन्डस्ट्रियलाअिझेशन) की योजनाओं पर गांधी मत का क्या रुख है? इस प्रवृत्ति को वे देश

के लिअे हितकर मानते हैं या हानिकर ?

उत्तर०–जब तक हमारे सामने कोई निश्चित योजना नहीं आई है, तब तक कुछ भी रुख तय नहीं हो सकता। हमारे देश की जनता को सुखी करने के लिअे कौनसे उद्योगों का किस तरह इन्तजाम करना चाहिअे, यह सवाल इतना पेचीदा है कि उसपर देश के नेताओं में भिन्न भिन्न विचार-धारायें होना स्वाभाविक है। हर अेक के खयाल उसकी अपनी बुध्दि और रुचि को प्रकट करते हैं। लेकिन यह कहना मुश्किल है कि इनमें से कौन से ख़यालात आख़िर में फायदेमंद और कामयाब होने वाले हैं। गांधी-मत की इस विषय में जो विचारप्रणाली है वह प्रसिद्ध ही है। बडे बडे कारखानों द्वारा बडे पैमाने पर माल की पैदायश में उसको अधिक रुचि नहीं है। फिर भी यह कोई अेकान्तिक नीति नहीं है। इसलिअे वर्तमान हालत में जुदे जुदे खयाल और रुचि रखने वाले राजकीय और आर्थिक नेता तथा तज्ज्ञों का साथ बैठकर इन सवालों का अध्ययन और परामर्श करना और अेक योजना बनाने की चेष्टा करना गांधीविचार की दृष्टि से भी ठीक ही है। मुमकिन है कि भिन्न भिन्न विचार-धाराओं के समन्वय का रास्ता भी उसमें से मिल जाय। हमें श्रद्धा रखनी चाहिअे कि वैसा ही होगा।

प्र० २–कॉंग्रेसी प्रान्तीय सरकारों को इस मामले में क्या करना चाहिअे ?

उ०–उन्हें वर्किंग कमिटी जो नीति कायम करे, उसी पर चलना होगा।

प्र० ३–स्वतंत्र भारत में जीवन-धंधे (की इन्डस्ट्रीज्), जैसे लोहा, कोयला, पेट्रोल आदि पर गांधीमती कैसा नियंत्रण चाहेंगे ? और इस समय मोटर, रेडिओ, फिल्म के उद्योगों (इन्डस्ट्रीज्) को देश में फौरन शुरू करने के वे कहां तक पक्षपाती हैं ?

उ०–कभी न कभी देश के जीवनधंधों और खनिजों को राष्ट्रीय (नैशनलाइज्ड) बनाना और उनपर प्रजाकीय सरकार का अच्छी तरह नियंत्रण रखना आवश्यक तो होगा ही। मेरी राय में लोहा, कोयला, पेट्रोल आदि का इनमें समावेश होता है।

हम यह भले ही न मानें कि रेल, मोटर, रेडिओ, सिनेमा आदि की बदौलत देश विशेष सुखी हुआ है, अथवा किसी कारण से ये सब साधन देश में से लुप्त हो जायँ तो देश दुखी हो जायेगा, फिर भी इन सब साधनों का कुछ न कुछ उपयोग हम कर ही रहे हैं, और उस उपयोग में से कुछ अच्छा भी ह। अैसी अवस्था में उनको पैदा करने के देशी कारखानों का निषेध नहीं किया जा सकता। जो आवश्यकता है वह इसकी खोज की है कि इन साधनों का इस्तेमाल किन नियमों में रह कर और किस हद तक योग्य है। उपयोग की हद निश्चित करने से उनकी पैदायश की हद भी मुकर्रर की जा सकेगी। जिस हद तक ये सार्वजनिक उपयोग के पदार्थ (पब्लिक युटिलिटिज्) हैं, उस हद तक उसमें सरकार के नियंत्रण और पूंजी के लिअे अवकाश है।

कि. घ. म.

संघ-वृत्त

कार्यवाहक समिति

कार्यवाहक समिति की बैठक ता० ९ दिसंबर को वर्धा में हुअी थी। बैठक में सन १९३९ के लिअे अनुमान-पत्र मंजूर किया गया; और आगे बताअे हुअे नये सदस्य संघ में प्रविष्ट किये गये।

नये सदस्य

सेवक

श्री. मोहनलाल छगनलाल मांडविआ,
विसावंदर, जुनागढ़ स्टेट, (काटियावाड़)

श्री. सुधाकरजी, गुरुकुल आश्रम
केंगेरी (बंगलोर)

श्री. जगन्नाथजी वेदालंकार,
गुरुकुल मुलतान, मुलतान छावनी (पंजाब)

श्री. नन्दकिशोर दास,
सोरो, जि० बालेश्वर (अुत्कल)

श्री. अीश्वरलाल व्यास,
अली, जि० कटक (अुत्कल)

श्री. बलवन्त सावळाराम देशपांडे,
गोविन्दगढ़-मलिकपूर (जयपुर स्टेट)

अुत्तमचंद चंदीराम सूरजाणी,
टाण्डो आदम (सिंध)

सहयोगी

श्री. दीनानाथ विष्णु दडपे,
श्री खानदेश गोसेवाश्रम,
धूलिया (प. खानदेश)

श्री. वसंत कृष्ण कर्णिक,
श्री खानदेश गो सेवाश्रम,
धूलिया (प. खानदेश)

सहायक

श्री. कृपासिंधु दास, तालपदा,
पो० दोलसाही, जि० बालेश्वर

श्री. गौरमोहन दास, श्री जंग,
पो० खणतापारा जि० बालेश्वर

त्यागपत्र

श्री. आशादेवी आर्यनायकम्,
वर्धा (सहयोगी)

श्री. अे. के. श्रीनिवासन्,
गांधी आश्रम, तिरूचेंगोडू (सेवक)

मृत्यु

अत्यन्त खेद है कि संघ के अेक पुराने सहायक तथा हितचिंतक डॉ० रज्जबअली विश्राम पटेल का गत ता० १६ दिसम्बर को बम्बअी में देहान्त हो गया। संघ के पास औषधि-वितरण के लिअे जो खास निधि है वह अिन्हीं के दातृत्व का फल है। आप राष्ट्रीयता के कट्टर अुपासक, साधुचरित और पू० बापूजी के परम भक्त थे। अुनके परिवार के प्रति हमदर्दी प्रकट करते हुअे हम प्रार्थना करते हैं कि अीश्वर मृत व्यक्ति को शान्ति प्रदान करे।

आगामी सम्मेलन

पू० बापूजी और दूसरे संबंधित व्यक्तियों से परामर्श करने के बाद यह निश्चय किया गया है कि संघ का आगामी वार्षिक सम्मेलन अप्रैल की ता० १६ और २६ के बीच में किया जाय।

वार्षिक विवरण

दिसंबर के अन्त में संघ का चालू वर्ष पूरा हो जाता है। सदस्यों से विनति है कि वे अपने कार्यविवरण यथाशीघ्र भेजें।

र. श्री. धोत्रे
मंत्री : गांधी सेवा संघ

वाङ्मय परिचय

दी गान्धी सूत्राज़ (अंग्रेजी)--कर्ता श्री डी. अेस्. शर्मा, मुख्य अध्यापक, पचैयप्पा कॉलेज, मद्रास (प्राप्ति स्थान–हरिजन कार्यालय पूना–४, मूल्य रु० १–८–०)

यह अेक अच्छी छोटीसी अंग्रेजी पुस्तक है। इसमें कर्ता ने गांधीजी के धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक सिद्धान्तों को गांधीजी ही के शब्दों में--लेकिन कर्ता ने पसंद किये हुअे क्रम और शीर्षकों के नीचे इकट्ठा किया है। करीब आजतक (जुलै १९३८) के गांधीजी के लेखों का उपयोग किया गया है।

कर्ता ने अपने पुस्तक का 'गांधी सूत्रावली' नाम रक्खा है। पुस्तक को उन्होंने तीन प्रकरण और १०८ संस्कृत सूत्रों में गूंथा है। संस्कृत सूत्र, अलबत्ता, कर्ता के ही हैं, और उनपर भाष्य के रूप में गांधीजी के लेखों में से अवतरण दिये हैं। इस दृष्टि से पुस्तक का विशेष योग्य नाम, शायद, होता 'गांधी भाष्ययुक्त शर्मा–सूत्रावली।' लेकिन वैसा नाम भी कुछ भ्रामक ही होता। इसलिअे नाम की चर्चा छोड कर पुस्तक के गुणों की जाँच करना ही ठीक होगा।

संस्कृत सूत्र बनाने की कला के विषय में मैं अधिकारपूर्वक तो बोल नहीं सकता। फिर भी मुझे सूत्रग्रंथों का जो कुछ अल्प परिचय है, उसपर से यह सूत्र-रचना मुझे बहुत सफल नहीं मालूम होती। इसके अलावा मेरी यह राय है कि अगरचे गांधीजी के भिन्न भिन्न विषयों पर के विचारों को समझाने और जनता में फैलाने वाली छोटी छोटी किताबों की ज़रूरत है, और वह गांधीजी के या अपने शब्दों में बनाई जा सकती है, फिर भी गांधीजी के विचारों को सूत्र-बद्ध करना योग्य नहीं है। गांधीजी का संदेश अभी पूरा नहीं हुआ है। उन्होंने अभी यह जाहिर नहीं किया कि अपने सत्याग्रह सिद्धान्त का अन्तिम स्वरूप अब वे पा चुके हैं, और अब, कम से कम उनकी दृष्टि से, अधिक विस्तार करने के लिअे गुंजाइश नहीं है। उनकी बुद्धि अभी इतनी ताजी और तेज़ है कि इस या उस विषय पर मेरा मत बदल गया अैसा कहना उनके लिये नामुमकिन नहीं है। और सत्याग्रह सिद्धान्त अभी अेक बढ़ता हुआ पेड है। वह फल चुका है सही; लेकिन उसकी फलने की शक्ति अभी पूर्णता को नहीं पहुँची है। उसकी शाखायें अभी बढ़ती जाती हैं। और नयी शाखायें फूटने के लिअे भी काफी अवकाश है। उसको सूत्रबद्ध करने की चेष्टा से उसकी वृद्धि में बाधा पैदा होने का संभव है।

अेकाध कानून की धाराओं पर लगाये हुअे शीर्षकों से जादा महत्त्व इन सूत्रों को मैं देना नहीं चाहता। इसलिअे सूत्रों की सूक्ष्म जांच करने की जरूरत नहीं है। भाष्य के रूप में दिया हुआ मसाला ज्यादा महत्त्व का है और वह मसाला अच्छी मिहनत लेकर तैयार किया और व्यवस्थित रूप में रक्खा गया है। इसलिअे अंग्रेजी जानने वाले कार्यकर्ताओं तथा गांधी-विचार के अभ्यासियों को यह पुस्तक अच्छी मददगार होगी।

२।१२।३८ कि. घ. म.

रोचक और पथ्य वाचन

अ. भा. ग्राम उद्योग संघ के प्रकाशन

		मूल्य	डाकव्यय
ग्राम-आन्दोलन क्यों ?	(अं.)	०-१२-०	०-१-३
,,	(हि.)	०- ६-०	०-१-३
,,	(गु.)	०- ७-०	०-१-३
ग्राम उद्योग और पुनर्रचना	(हि.)	०- ४-०	०-०-९
,,	(म.)	०- १-०	०-०-९
,,	(गु.)	०- ३-०	०-०-९
अनअेम्प्लॉयमेन्ट	(अं.)	०- २-०	०-०-६
वॉर अॅज अे फेक्टर ऑफ प्रॉडक्शन	(अं.)	०- २-०	०-०-६
गांवों की आर्थिक जाँच प्रश्नावली	(अं. हि.)	०- २-०	०-०-६
ग्राम उद्योग पत्रिका	(अं. हि.)		
(मासिक-पत्रिका वार्षिक मूल्य डाकखर्च सहित)		०-१२-०	
डायेट (खोराक)	(अं.)	०- ४-०	०-०-९
,,	(हि.)	०- ३-६	०-०-९
सोयाबीन	(अं. हि. म.)	०- ०-६	०-०-६
तेल घानी	(अं. गु.)	०- ८-०	०-१-३
,,	(हि.)	०- ५-०	०-०-९
तेल घानी की पूर्ति	(अं. हि. गु.)	०- ५-०	०-०-९
ताड़ गुड़	(अं. हि. गु.)	०- २-०	०-०-६
मधुमक्षिका संगोपन	(हि.)	०- ०-६	०-०-६
हाथ कागज़	(अं. हि.)	०- ८-०	०-१-९
वार्षिक विवरण १९३५	(हि.)	०- १-०	०-०-९
,, १९३६	(अं. हि.)	०- १-०	०-०-९
,, १९३७	(अं. हि.)	०- २-०	०-०-९
लखनऊ प्रदर्शनी की प्रवेशिका	(अं.)	०- २-०	०-१-३

(नोटः-अं.=अंग्रेजी; हि.=हिन्दी; गु.=गुजराती; म.=मराठी)

प्राप्तिस्थान-

अखिल भारत ग्राम उद्योग संघ

मगनवाडी, वर्धा (मध्यप्रान्त)

सूचना—

'सर्वोदय' में आम तौर पर अिश्तिहार नहीं लिये जायेंगे। अपवाद केवल वाचनीय ग्रन्थ और देशसेवा करनेवाली संस्थाओं के लिये रहेगा। अिनके अिश्तहारों के दाम नहीं लिये जायेंगे। केवल कागज़, छपाई और डाकखर्च लेकर अिश्तिहार छापे जायेंगे। जो साहित्य या संस्था निर्विवादरूप से लोकोपयोगी है, अुसीको स्थान दिया जायगा। यह व्यवस्था केवल समाज-सेवा और ग्राहकों के हित की दृष्टि से चलायी जायगी।

व्यवस्थापक, 'सर्वोदय,' वर्धा।

Reg. No. N. 741

आर्थिक संगठन

मेरी राय में हिन्दुस्तान की और सारे संसार की अर्थ-व्यवस्था अैसी होनी चाहिअे कि अुसमें बिना खाने और कपडे के कोअी भी रहने न पावे। दूसरे शब्दों में हर अेक को अपनी गुज़रबसर के लिअे काफी काम मिलना ही चाहिअे। यह आदर्श तभी सिद्ध होगा जब कि जीवन की प्राथमिक आवश्यकतायें पूरी करने के साधनों पर जनता का अधिकार रहेगा। जिस प्रकार भगवान ने पैदा की हुअी हवा और पानी सब को मुफ्त में मयस्सर होता है, या होना चाहिअे, अुसी तरह ये साधन भी सबको बे रोकटोक के मिलने चाहिअे। अुन्हें दूसरों को लूटने के लिअे लेनदेन की चीजें हरगिज़ नहीं बनने देना चाहिअे।

—गांधीजी

प्रकाशक:–दादा धर्माधिकारी, बजाजवाडी, वर्धा (मध्यप्रांत)।
मुद्रक:—वल्लभदास जाजू, श्रीकृष्ण छापखाना लिमिटेड, बच्छराज रोड, वर्धा।

सर्वोदय

अेष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके

सम्पादक—काका कालेलकर, दादा धर्माधिकारी

वर्धा, फरवरी १९३९ अंक ७.

राष्ट्र का प्राण

मैं कहता आया हूं कि यदि अस्पृश्यता रही तो हिन्दूधर्म न रह सकेगा; अुसी तरह मैं कहूंगा कि अगर देहात नष्ट हुअे तो हिन्दुस्तान भी मर जायगा। जो कुछ रहेगा वह हिन्दुस्तान नहीं होगा। दुनिया में हिन्दुस्तान का जो अीश्वर-निर्दिष्ट कार्य (मिशन) है अुसीका लोप हो जायगा। देहात का पुनरुज्जीवन तभी होगा जब कि वह चूसा नहीं जायेगा। विराट औद्योगीकरण की बदौलत प्रतियोगिता और बिक्री की समस्या खडी होगी और अुसका परिणाम देहातों की साक्षात् या परोक्ष लूटखसोट में ही होगा। अिसलिअे हमें अपनी सारी शक्ति देहात को आत्मनिर्भर बनाने पर ही केन्द्रित करनी चाहिअे। देहातों में अुत्पादन केवल अुपयोग ही के लिअे हो। ग्राम अुद्योगों का यह आवश्यक लक्षण कायम रखते हुअे देहाती अैसी आधुनिक कलों का भी अुपयोग कर सकते हैं जिन्हें वे खुद बना सकें और अुपयोग में ला सकें। शर्त अितनी ही है कि अुनका अुपयोग दूसरों को चूसने के लिअे हरगिज़ नहीं होना चाहिअे।

गांधीजी

अेक अंक...	...	रु० ०–६–०
वार्षिक ...	...	रु० ३–०–०
बर्मा में ...	...	रु० ३–८–०
विदेश में...	...	६ शिलिंग
		१.५० डॉलर.
(सब डाक सहित)		

अनुक्रमणिका

(१) सत्याग्रह का दर्शन और कला (श्री निर्मलकुमार बसु) ... १
(२) दो वृत्तियां (श्री किशोरलाल ध. मशरूवाला) ५
(३) राष्ट्रसभा और जातिवादी संस्थायें (दादा धर्माधिकारी) ... १०
(४) कौअे की नजर से ("आश्रमवासी अुल्लू") ... १७
(५) किसान और मालगुजारों को हितबोध
(श्री विनोबा का अेक प्रवचन) ... २०
(६) स्व० आचार्य श्री. महावीरप्रसादजी द्विवेदी
(श्री काका कालेलकर) ... २८
(७) मेरी रसीली पुस्तकें (स्व० आचार्य श्री महावीर-
प्रसादजी द्विवेदी के 'आत्मनिवेदन' से) ... ३०
(८) सर्वोदय की दृष्टि ३२
कार्यसमिति और प्रान्तवाद; अहिंसक युद्धनीति का पथ्य-परहेज; गांधीविचार की मौलिक विशेषता; निरर्थक भाषावाद; गोरे देशीराज्य; जातपात तोडक मण्डल; नयी तालिम; धर्मक्षेत्र के पथिक जमनालालजी; सार्वजनिक औषधालय, बारडोली।
(९) देवों का काव्य (श्री काका कालेलकर) ... ४७
(१०) भगवति स्वतंत्रते (श्री काका कालेलकर) ... ४९

सर्वोदय मिलने की व्यवस्था निम्न लिखित स्थानों में की गयी है :

(१) वोरा अेण्ड कंपनी, ८, राउण्ड बिल्डिंग, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बअी, २।
(२) नवजीवन कार्यालय, १३०, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बअी, २।
(३) नवजीवन कार्यालय, अहमदाबाद।
(४) खादी भण्डार, हैरिसन रोड, कलकत्ता।
(५) सस्ता साहित्य मण्डल, नया बाजार, देहली।
(६) सस्ता साहित्य मण्डल, लखनऊ।
(७) गांधी आश्रम, गोरखपुर।

सर्वोदय

अेष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके

संपादकः—काका कालेलकर
दादा धर्माधिकारी

फरवरी १९३९
वर्धा

सत्याग्रह का दर्शन और कला

[निर्मलकुमार बसु]

–२–

सत्याग्रही की नियमावली का अेक महत्त्व का सूत्र यह भी है कि वह अपनी अुचित से अुचित मांग भी न्यूनतम रूप में पेश करता है। अपने दावे की न्याय्यता के विषय में सत्याग्रही के दिल में तनिक भी शंका नहीं होनी चाहिअे। लेकिन फिर भी अुसे कम से कम मांग करनी चाहिअे। अगर वह ज्यादा मांगे तो शायद डर के मारे अुसका प्रतिपक्षी कुछ छोटीमोटी रियायतें देने के लिअे तैयार हो जाय। लेकिन यह सत्याग्रही का मार्ग नहीं है। वह अपने प्रतिपक्षियों को डरा कर वश करना नहीं चाहता। वह तो अुनसे भी यही आशा करता है कि वे अुसके पक्ष की न्याय्यता को मान्य करें। और अिस तरह वह संसार का मत अपने अनुकूल कर लेता है। यह अेक आनुषंगिक लाभ है। अिसके अतिरिक्त और भी अेक लाभ है। अगर सत्याग्रही की मांग अुचित होते हुअे भी बहुत अधिक हो तो अुसका प्रतिपक्षी अुसे अंशतः पूरी करेगा और अिस तरह शायद सत्याग्रही के पक्ष में फूट के बीज बोयेगा। लेकिन यदि सत्याग्रही की मांगें न्यायसंगत होते हुअे भी कम से कम हों तो अुसके पक्ष में फूट पैदा होने का सम्भव बहुत ही कम हो जाता है। दक्षिण आफ्रिका के सत्याग्रह के अितिहास में गांधीजी ने कहा है, "धर्मयुद्ध में योद्धा की शक्ति युद्ध करते करते चाहे कितनी ही क्यों न बढ़ जाय तो भी युद्ध के प्रारम्भ में अुसका जो मूल अुद्देश था अुससे आगे वह कभी नहीं बढ़ेगा। अुसी तरह युद्ध के दरमियान अुसकी शक्ति चाहे कितनी ही क्षीण क्यों न हो जाय वह अपने मूल उद्देश का त्याग भी नहीं करेगा।"

अिस विषय में गांधीजी ने अेक चेतावनी भी दे रक्खी है। अुनके शब्द ज्यों के त्यों दिये जाने योग्य हैं। १९२२ में जबकि सब लोग अुनके करबन्दी का आन्दोलन शुरू करने की बड़ी अुत्कंठा से

प्रतीक्षा कर रहे थे अुन्होंने कहा, "अिस समय लोगों की तरफ से बड़ी तत्परता से सहयोग की सम्भावना को देख कर ही हमें करबन्दी नहीं करनी चाहिअे। लोगों की तत्परता अेक बड़ा घातक प्रलोभन है। अैसी करबन्दी न तो सभ्य होगी और न अहिंसक। बल्कि वह गुनहगारी होगी और अुसमें से हिंसा अुत्पन्न होने का बहुत बड़ा डर रहेगा। जबतक किसानों की समझ में सविनय करबन्दी का हेतु और विशेषता नहीं आ जायगी, जबतक वे अपनी जायदाद को जब्त होते हुअे, और अपने ढोर और दूसरे माल को नीलाम होते हुअे शान्त विरक्ति से देखना नहीं सीखेंगे, तबतक अुन्हें करबन्दी की सलाह देना अनुचित होगा।" "हमारे दिलों में अपने ध्येय के विषय में कोअी सन्देह नहीं होना चाहिअे। जनता हमारा आधार-स्तंभ है। जबतक वह सुरक्षित पराक्रम के लिअे तैयार न हो जायगी तबतक हम अुसे राजनैतिक शिक्षा देते रहेंगे। जिस दिन हमारी बुद्धि को यह विश्वास हो जायगा कि जब्तियां होती हुअी देख कर भी किसान चिढ़ेंगे नहीं और अहिंसा से डिगेंगे नहीं अुस दिन हम सिपाही से भी ज़रूर कहेंगे कि वह अपने हथियार चलाने से अिन्कार कर दे और किसानों से कहेंगे कि वे लगान देना मुल्तवी कर दें।"

सत्याग्रही के अनुशासन का चौथा नियम यह है कि अुसे अपने प्रतिपक्षी से समझौता करने के लिअे हमेशा तैयार रहना चाहिअे। "वह आपस में तस्फिया करने का अेक भी मौका हाथ से नहीं जाने देता, और अगर अिसके सबब अुसे कोअी कायर कहे तो पर्वाह नहीं करता। जिस आदमी के हृदय में श्रद्धा होती है और श्रद्धाजनित शक्ति होती है वह, यदि लोग अुसे हेठा समझें तो अुसकी, पर्वाह नहीं करता। वह तो अपनी भीतरी ताकत का ही भरोसा करता है। अिस लिअे वह सबके प्रति भद्रता से पेश आता है। और अिस तरह सारी दुनिया का मत अपने पक्ष में कर लेता है।" "सत्याग्रही डर से रुखसत ले लेता है अिस लिअे वह अपने प्रतिपक्षी पर भी विश्वास करते हुअे नहीं झिझकता। अुसके प्रतिपक्षी ने चाहे अुसे बीस बार धोखा भले ही दे दिया हो फिर भी अिक्कीसवीं बार वह अुसपर विश्वास करने के लिअे तैयार होजाता है। क्योंकि मनुष्यस्वभाव में अबाधित विश्वास अुसके धर्म का सारसर्वस्व है।"

अुसके असहयोग के पीछे किसी न किसी बहाने अपने कट्टर से कट्टर दुश्मन से सहयोग करने की अुसकी अिच्छा छिपी हुअी होती है। मगर हाँ, वह अपने मूलभूत सिद्धान्तों को कभी नहीं छोडता। "अेक बार अपनी न्यूनतम मांग तय कर लेने के बाद और अुससे कदापि न डिगने का प्रण कर लेने के बाद मनुष्य फिर झुक कर सारी दुनिया पर विजय प्राप्त कर सकता है।" यह बात नहीं है कि अुसके साथ किसीने दगाबाजी ही न की हो। "यह सच है कि मुझे अक्सर दगा दिया गया है। कअी लोगों ने मुझे धोखा दिया है और कअी अेकों ने मेरी निराशा की है। लेकिन मैंने अुनकी सोहबत की अिसके लिअे मैं पछताता नहीं हूं। क्योंकि जैसे मैं सहयोग करना जानता हूं अुसी तरह असहयोग करना भी जानता

हूं। दुनिया में सबसे व्यवहार्य और सबसे प्रतिष्ठित मार्ग यही हैं कि जबतक किसी का अविश्वास करने के लिअे प्रत्यक्ष कारण न हो तबतक हर अेक के शब्द पर विश्वास करो।"

अिस तरह गांधीजी मनुष्यस्वभाव में अपनी श्रद्धा के प्रयोग करते हैं। और अुन्होंने अिस तरीके से अैसे बहुतसे लोगों को वश कर लिया है जो पहले अुन्हें अपना दुश्मन समझते थे। लेकिन अिस नैतिक पहलू के अलावा सविनयभंग में अिस मार्ग का युद्धनीति की दृष्टि से भी बहुत महत्त्व है। जो अपने शत्रु से समझौता करने के लिअे सदा तत्पर रहता है वह समझौते के प्रयत्नों की असफलता का और वरबस झगड़ा पैदा करने का सारा दोष अपने शत्रु के मत्थे मढ़ सकता है। गांधीजी की यह सलाह है कि हमें अपने प्रतिपक्षी को हमेशा गलती पर रखना चाहिअे। यह हम समझौते के लिअे सदा तैयार रहकर बड़ी सफलतापूर्वक कर सकते हैं। किसी भी लडाअी में अिस पैंत्रे के महत्त्व का अिन्कार कोअी नहीं कर सकता।

हम कह चुके हैं कि सत्याग्रह लडाअी का नैतिक रूप है। अिसका यह भी मतलब है कि सत्याग्रह का युद्ध अनिश्चित काल तक बहुत अुत्कट रूप में नहीं चलाया जा सकता। अुसके लिअे शान्तिकाल के अुस अुद्योग की भी ज़रूरत होती है जिस से अुत्कट असहयोग के लिअे आवश्यक गुणों का विकास हो। अिसके लिअे रचनात्मक कार्य से बेहतर और क्या हो सकता है? १९२१ और १९३१ के संग्रामों के बाद गांधीजी ने बतलायी हुअी पद्धति से समझ के साथ किया हुआ रचनात्मक कार्य ही अिसका सबसे बढ़िया अुपाय है। अिस कार्यक्रम से जनता सुसंगठित होती है। अुसमें और अुसके नेताओं में परस्पर विश्वास बढ़ता हैं और अुसे साहस और तितिक्षा की आदत हो जाती है। अिसीलिअे गांधीजी ने अेक बार अुसकी तुलना कवायद से की थी और कहा था कि मामूली युद्ध के लिअे कवायद से सिपाही को जो शिक्षा मिलती है वही रचनात्मक कार्य से सत्याग्रही सैनिक को मिलती है।

१९३० के नमकसत्याग्रह के कुछ ही पहले अुन्होंने लिखा था, "मैं जानता हूं कि बहुत से लोग रचनात्मक कार्यक्रम और सविनयभंग में किसी तरह का ताल्लुक देखने से अिन्कार करते हैं। जब किसी खास शिकायत को दूर करने के लिअे, किसी खास क्षेत्र में सविनयभंग किया जाय तो अुसके लिअे रचनात्मक कार्य की ज़रूरत नहीं होती। उदाहरण के लिअे बारडोली का सत्याग्रह। किसी मर्यादित क्षेत्र में अेक सर्वसामान्य शिकायत का होना अुसके लिअे काफी है। लेकिन स्वराज्य जैसी अव्याख्येय वस्तु के लिअे लोगों को अखिल-भारतीय हित की दृष्टि से कार्य करने की आदत होनी चाहिअे। अिस तरह के काम के लिअे लोगों को और जिनपर अुनका विश्वास हो अैसे नेताओं को अेकत्र होना चाहिअे। लगातार रचनात्मक कार्य करने से जो विश्वास पैदा होता है वह अैन मौके पर बहुत काम आता है। अिसलिअे अहिंसक सेना के लिअे रचनात्मक कार्य का अुतना ही महत्त्व है जितना कि रक्तपात के युद्ध के लिअे कवायद वगैरहका। जहां लोग तैयार न हों वहां वे जिन्हें नहीं पहचानते

अैसे नेताओं का व्यक्तिगत कानूनभंग व्यर्थ है। और सामुदायिक कानूनभंग तो अशक्य ही है। अिसलिअे रचनात्मक कार्य की जितनी प्रगति होगी अुतना ही सविनय-भंग का सम्भव बढेगा।

असहयोग आन्दोलन शान्त हो जाने पर १९२५ में गांधीजी ने कहा, "सहसा किये हुअे असहयोग से सिवा हानि के और कुछ नहीं हो सकता। व्यक्तियों को सेवा, त्याग, सत्य, अहिंसा, संयम और सहनशीलता की वृत्ति का विकास करना चाहिअे।" "स्वराज्य की यात्रा बडी विकट चढ़ाअी है। अुसमें हर अेक छोटी छोटी चीज़ पर भी ध्यान देने की ज़रूरत है। अुसके लिअे प्रचण्ड संगठनशक्ति की ज़रूरत है। केवल देहातियों की ही सेवा के अुद्देश से देहात में प्रवेश करने की आवश्यकता है। दूसरे शब्दों में अुसका अर्थ है राष्ट्रीय शिक्षा, याने जनता की शिक्षा। वह जादूगर के आम की तरह अेक पलभर में नहीं प्रकट होगी। बल्कि वरगद की तरह वह अदृश्य रूप से विकसित होगी। रक्तपात से यह चमत्कार हरगिज़ नहीं होगा। जल्दबाजी में बरबादी है।"

दक्षिण आफ्रिका के सत्याग्रह के अितिहास में गांधीजी ने समाचारपत्र और सत्याग्रह के सम्बन्ध के विषय में अेक बडे मार्के की बात कही है। "मेरा यह विश्वास है कि जो लडाअी खासकर भीतरी ताकत पर मुनस्सर होती है वह बिना अखबार के पूरी तरह नहीं चलायी जा सकती। मेरा अपना यह तजर्बा है कि अगर 'अिन्डियन ओपीनिअन' न होता तो हम अितनी आसानी से और अितनी कामयाबी से दक्षिण आफ्रिका के हिन्दुस्तानियों को सत्याग्रह की तालीम नहीं दे सकते। और न वहां जो कुछ हो रहा था अुससे सारी दुनिया के हिन्दुस्तानियों को वाकिफ़ करा सकते। अिसलिअे यह अखबार हमारा बड़ा मुफीद और तेज़ हथियार रहा। लडाअी करते करते जैसे हिंदुस्तानी जमात बदलती गयी वैसे 'अिन्डियन ओपीनिअन' भी बदलता गया। लड़ाअी के बाद दोनों की शक्ल बहुत कुछ बदल गयी।"

अपने अनुयायियों को अितनी तफसीलवार और सावधानी की हिदायतें देने के बाद भी गांधीजी की राय यही है कि जहां सत्याग्रहयुद्ध टाला जा सके वहां अुसे टालना चाहिअे। सारे असहयोगियों के लिअे अुनका अन्तिम आदेश अिस प्रकार है:-

"सत्याग्रह प्रत्यक्ष प्रतिकार का अेक बहुत ही प्रभावशाली साधन है। अिसलिअे सत्याग्रही अुसका अवलम्बन करने से पहले दूसरे सारे अुपायों को आज़मा लेता है। अिसलिअे वह बार बार और सतत विद्यमान सत्ता के पास जायगा, लोकमत से न्याय मांगेगा, लोकमत बनाने की चेष्टा करेगा, जो अुसकी बात सुनना चाहें अुनके सामने अपना पक्ष शान्ति से और गम्भीरता से पेश करेगा। और जब अिनमें से अेक भी अुपाय सफल न हो तभी सत्याग्रह का अनुसरण करेगा। परंतु जब अुसकी अन्तरात्मा की प्रेरणा अेक बार अुसे सत्याग्रह का आदेश दे देती है तब तो वह अपने सर्वस्व पर पानी फेर कर निकलता है। अब अुसके लिअे पीछे हटना असम्भव है।"

('विश्वभारती' से अनूदित)

दो वृत्तियाँ

(किशोरलाल घ. मशरूवाला)

देहातों में दवाखाने आदि का खर्च किस तरह निकाला जाय इस विषय में हाल ही दो-तीन जगह चर्चा हुई। इसमें कोई शक नहीं कि आज की परिस्थिति में औषधालयों द्वारा जनता की बहुत ही ज़रूरी सेवा होती है। रोग का कारण लोगों की अस्वच्छ आदतें और असंयम भले ही हो, और तंदुरूस्ती के नियमों का ज्ञान फैलाना यही विधायक रास्ता भले ही हो, फिर भी जब कोई शख्स मलेरिया से बिछौने पर पड़ा हो, कोई बच्चा फोडे अथवा आँखों की सूजन से परेशान हो तब पहले उसे दवा की मदद देना जरूरी हो जाता है। देश में इस प्रकार की मदद का बहुत ही कम इन्तिजाम है। इसलिअे जब कोई कार्यकर्ता अेक छोटा औषधालय शुरू करता है, तब थोडे ही समय में उसका काम इतना बढ जाता है कि अेक वैद्य, अेक उपवैद्य (कम्पाउण्डर), और अेक नौकर के लिअे पूरा काम मिल जाता है। कहीं कहीं अैसे भी दवाखाने हैं जिनकी मारफत सौ से ज्यादा देहातों में दवा पहुंचाई जाती है। इस अवस्था में औषधालयों का अंदाज-पत्र सालाना १०-१५ रुपये की हद में नहीं रहता। बल्कि ४००-५०० तक चला जाता है। साधारण अैसा रिवाज चल पड़ा है कि दवा का दाम नहीं माँगा जाता। कहीं कहीं जिन दाताओं ने औषधालय के लिअे दान दिये होते हैं, उनकी अैसी शर्त होती है कि रोगियों से दवा के दाम न माँगे जायँ। लेकिन, वह दान सारे खर्चे के लिअे पूरा नहीं पड़ता। इस तरह कार्यकर्ता के ऊपर औषधालय के लिअे चंदा जुटाने का भार दिन पर दिन बढ़ता जाता है। जब तक देश में औषधालयों की संख्या बहुत ही कम थी, तब तक चंदा उगाहना बहुत मुश्किल नहीं होता था। पर अब इनकी संख्या बढ़ने लगी है। और दिन प्रति दिन और भी बढेगी। गांधी सेवा संघ के अधीन रज्जबअली फंड की ही बात लीजिये। अेक समय उस फंड में से अेक अेक औषधालय को वार्षिक पांचसौ रुपये तक सहायता दी जा सकती थी, और फिर भी कुछ ब्याज बच जाता था। अब अेक अेक प्रान्त के सारे औषधालयों में कुल मिलाकर भी उतनी रकम मुश्किल से दी जा सकती है। और, फिर भी, हम तो सिर्फ उन्हीं औषधालयों को मदद दे सकते हैं, जिनके कार्यकर्ताओं को गांधी सेवा संघ जानता है। वे तो इनेगिने हैं। इस तरह अेक समस्या के रूप में औषधालय का सवाल खड़ा होजाता है।

यह तो क़ेवल मनुष्यों के औषधालयों की बात हुई। लेकिन, देहातों को पशु-औषधालयों की भी सख्त ज़रूरत है। उनके लिअे तो और भी कम प्रबन्ध है। और वैसा ही शिक्षा का प्रश्न है।

इस विषय में मैंने यह राय दी कि जो दे सकते हैं, उनसे औषधी की कीमत लेने का रिवाज रक्खा जाय। मेरा अनुभव यह है कि साधारणतया मुफ्त मिली हुई दवा और शिक्षा का पूरा उपयोग भी नहीं

होता। मेरी यह राय सुनकर अेक आदरणीय कार्यकर्ता को कुछ आघात हुआ औषधी-वितरण भूतदया का, और शिक्षा ज्ञानप्रचार का पवित्र काम है। वे हमेशा मुफ्त ही करने चाहिअे यह ब्राह्मणधर्म है। सब कार्यकर्ता ब्राह्मणधर्मी ही समझे जाने चाहिअे। ब्राह्मण, साधु, संन्यासी, फकीर के लिअे दान मांगना और लेना शर्म की बात नहीं है। वह उनके लिअे धर्म और शोभा की चीज़ है। दान माँगने में नम्रता का अनुभव होता है। लोकस्वभाव की भी परख होती है। इसलिअे अपनी सेवायें बिना कुछ बदला लिअे देना और अपनी या अपनी संस्था की ज़रूरतें समाज से माँग लेना, इसीको वे बढ़िया समाज–व्यवस्था मानते हैं। उनकी दृष्टि में ज्ञानप्रचार, औषधीवितरण और न्यायदान का पवित्र काम फीस, कीमत वगैरा, लेकर करना बुरा मालूम होता है।

इससे उलटी अेक दूसरी वृत्ति है। उसे अप्रतिग्रह—यानी सखावत न लेनेका धर्म—कहते हैं। इसका चित्र देता हूं।

सन १९२७ में गुजरात में अेक बडी भारी बाढ आई थी। जगह जगह संकट-निवारण का काम शुरू करना पड़ा था। उस वक्त दो तरह के स्वभाव के लोगों का अनुभव होता था। अेक वे जिन्हें समितियाँ अथवा धनिक लोगों से दान या सहायता लेने में किसी प्रकार का संकोच नहीं था और जो सहायता मांगते भी थे। कुछ दिन के बाद जब दान के रूप में सहायता देना बंद कर दिया गया तब वे कुछ नाराज़ भी हुअे। अथवा फिर भी याचना करते ही रहे। अेक दूसरे भी वर्ग के लोग थे जो अपनी सब संपत्ति का नाश हो जाने पर भी, दान लेने से इनकार करते थे। वे मांगने तो जा ही नहीं सकते थे। उनके घर पर दान, कपड़ा, नाज, आदि, पहुंचाया जाय तो उन्हें बुरा लगता था। इन सब चीजों की ज़रूरत तो उन्हें थी ही, फिर भी उनमें परंपरा से अेक अैसा संस्कार जमा हुआ था कि दान-स्वीकार करने में उन्हें ओछापन मालूम होता था। इन लोगों को मदद पहुंचाने में कभी कभी स्वयंसेवकों को युक्ति से काम लेना पड़ता था। कभी उनके रिश्तेदारों द्वारा उन्हें सहायता पहुंचानी पडती थी; और कभी कर्ज समझ कर आवश्यक चीजों का स्वीकार करने के लिअे उन्हें मनाना पडता था। इस संस्कार को अप्रतिग्रहवृत्ति—सखावत न लेनें की तबियत—कहते हैं। गुजरात में पाटीदार किसान और वैश्यों में यह संस्कार ज्यादा-तर पाया जाता है। बेशक, यह संस्कार बताता है कि आमतौर पर इन लोगों की आर्थिक स्थिति बहुत लंबे अरसे तक संतोष-कारक रही होगी। दूसरे की मदद की अपेक्षा न करनी पडे इतनी उनको आमदनी हो ही जाती होगी।

इन दोनों वृत्तियों में अच्छे अंश हैं। दोनों का समन्वय हो सकता है और होना चाहिअे।

औषधीवितरण, ज्ञानप्रचार, न्यायदान आदि बेशक बहुत पवित्र काम हैं। इसके मानी ये हैं कि गरीबी के कारण इन्हें हासिल करना किसी के लिअे मुश्किल न होना चाहिअे। जब वैद्य, शिक्षक या न्यायाधीश देखे कि किसी शख्स की न अेक पैसा, या पैसे की चीज़ देने की या उतनी कीमत का काम कर

देने की भी ताकत है तब वह उससे कीमत की बात नहीं कह सकता। इतना ही नहीं, अैसा भी मौका आ सकता है कि वह न केवल उस शख्स को औषध दे, सिखावे या न्याय ही दे, वरन उतने दिन उसे अन्न और दूध भी दे।

लेकिन, यह तो देनेवाले की वृत्ति हुई। उसकी सद्‌वृत्ति का इसमें विकास होता है। और यह विकास ज्यादा अच्छी तरह तब होता है, जब उसे उसमें अपने विवेक से काम लेना पडता है। अगर सिर्फ अेक रिवाज के तौर पर वह सबको अपनी सेवा मुफ्त ही देता है, तो वह काम अेक नौकरी-सा हो जाता है।

मगर, लेनेवाले का विचार भी किया जाना चाहिअे। वह भी अेक इन्सान है। उसके भी भाव हैं। वह क्यों बिना कुछ बदला दिये दूसरों की सेवा ले? अगर वह दूसरों की सेवा बेखटके स्वीकार कर लेता है, तो समझना चाहिअे कि गरीबी से या कुप्रथा से उसकी स्वाभिमान की वृत्ति बहुत ही क्षीण हो गई है। उसे उबारने की ज़रूरत है। "तैर्दत्ता न प्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन अेव सः॥" दूसरों से लेना और उन्हें कुछ वापिस देने की वृत्ति तक न रखना ही चोरी है।

अपनी जरूरतों के लिअे प्रतिग्रह, दान-स्वी-कार अथवा भिक्षावृत्ति उनके लिअे क्षम्य कही जा सकती है जो बिलकुल अपरिग्रही हैं। उसेभी मैं क्षम्य—बरदाश्त करने योग्य—कहूंगा। धर्म, याने कर्तव्यरूप, नहीं। क्योंकि जो अपरिग्रही है उसे अपरिवारी भी होना चाहिअे। जो शादी करता है, बालबच्चे बढ़ाता है, और दूसरा परिवार जमाता है, वह परिग्रही ही है। उसका पशु या जड संपत्ति के परिग्रह से परहेज रखना अधिकांश में मिथ्याचार और बाकी के समाज के लिअे भाररूप ही हो जाता है। इसलिअे परिवारी के लिअे अपरिग्रहवृ का अर्थ लोभ का संयम ही समझना चाहिअे। मतलब, उसके लिअे प्रतिग्रह धर्मरूप नहीं है। इसलिअे शक्ति रखनेवाले लोगों से औषधी, शिक्षा आदि का बदला कीमत या मिहनत के रूप में मांगने में मुझे दोष नहीं दीखता।

इसके विरुद्ध अेक व्यवहार्य दलील पेश की जाती है। हमें दवा की कीमत उतनी ही रखनी चाहिअे जो अेक गरीब आदमी भी दे सके। उदाहरणार्थ, अेक पैसा। इस तरह अेक अेक पैसा लेने से औषधालय का पूरा खर्च तो निकलने नहीं पाता। चंदा तो मांगना ही होगा। अब, कई रोगी अैसे भी आते हैं, जिनसे अगर हम दवा की कीमत न लें, तो उससे कई गुनी ज्यादा सहायता बाद में चंदे के रूप में मांग सकते हैं। दवा की कीमत लेने से वे चंदा देने का कर्तव्य महसूस न करेंगे। इसलिअे दवा मुफ्त देना और चंदा मांग लेना यह तरीका विशेष व्यवहार्य मालूम होता है।

मुझे यह बात अनुभवसिद्ध नहीं मालूम होती। अप्रतिग्रह-वृत्ति का संस्कार इस तरह का नहीं होता। बरन इस तरह काः—

मुसीबत में मनुष्य को दूसरे को मदद देनी चाहिअे, और नम्र बनकर लेनी भी चाहिअे। अेक बादशाह भी अैसे दुर्भाग्य के फेरे में आ सकता है। यह संभव है कि उसका बदला उसी समय वह न दे सके।

तब उसका फर्ज है कि वह उस मदद को भूले नहीं, और कभी न कभी अपना कर्ज चुका दे। कभी वह कर्ज उसी को चुकाया जाता है जिसकी सेवा ली गई है, और कभी अपनी उस मुसीबत को याद रखकर दूसरे आपद्ग्रस्त प्राणियों को मदद पहुंचाके। और वह कर्ज जितनी कीमत की सेवा ली उतनी ही कीमत वापिस देकर नहीं चुकाया जाता। बल्कि यह समझा जाता है कि इस प्रकार के कर्जों की अदाई हो ही नहीं सकती। जिस रोटी ने आज मेरा प्राण बचाया उस रोटी की कीमत, अच्छे दिन आने पर, मैं हजार रोटियों के दान से भी अदा नहीं कर सकता, अगर उन हज़ार में से अेक भी रोटी किसी को प्राणदान देनेवाली साबित न हुई हो। और चुकाने में जितना विलंब होता है, उतना वह कर्ज जीवाणुओं की तरह बढ़ता जाता है। यह अप्रतिग्रह के संस्कार का लक्षण है। इसलिअे अैसे स्वभाव का आदमी साधारणतया कर्ज में रहना पसंद नहीं करता। कम से कम बदला तो वह तुरन्त ही देने की वृत्ति रखता है। मगर चूंकि इस संस्था की उपयोगिता का उसे अनुभव हो चुका है, वह उसे समृद्ध करने में मदद पहुँचाना हमेशा अपना सौभाग्य मानता है।

बम्बई के अेक बडे अस्पताल का उदाहरण देता हूं। सर हरकिसनदास हॉस्पिटल में १ ला, २ रा, ३ रा और मुफ्त, अैसे चार विभाग हैं। पहले और दूसरे विभाग के रोगी १० और ५ रुपये हर रोज की फीस देते हैं। इसके अलावा उन्हें डॉक्टरों की फीस अलग देनी पडती है, जो १००), १५०), २००), भी हो सकती है। इन दो दर्जों के रोगियों के कारण अस्पताल को शायद ही कुछ नुकसान होता हो। तीसरे दर्जे के लिअे कुछ साधारण फीस है, और डॉक्टर को कुछ नहीं देना पडता। मुफ्त विभाग के मरीजों का इलाज अस्पताल के खर्च से ही होता है। सबको अस्पताल से ही भोजन दिया जाता है। इसमें शक नहीं कि मुफ्त विभाग में ही सबसे ज्यादा भीड़ रहती है।

अगर पहले और दूसरे विभाग के सब रोगी इसी विचार के हों कि "हम तो अस्पताल में मुफ्त नहीं रहते थे। जितना दाम हमसे माँगा गया उतना दे दिया। नौकरों में १०–१५ रुपये के इनाम भी बांट दिये। अब अस्पताल के प्रति हमारा कोई कर्तव्य नहीं रह जाता," तब तो अस्पताल का चलाना असंभव ही हो जाता। लेकिन, मनुष्य अैसे ओछे स्वभाव का नहीं होता। इसलिअे इन दर्जों के कई मरीज़ अपनी फीस चुकाने भर से संतोष नहीं मानते। उन्हें अस्पताल के उपयोग का स्वयं अनुभव हो चुका है। इसलिअे वे बडी बडी रकमें देकर अस्पताल की सहायता करते हैं। फिर, तीसरे और मुफ्त दर्जे के रोगियों में से भी कई अेक अपनी अपनी शक्ति के अनुसार कुछ न कुछ रकम देने का संतोष लेते हैं।

बारडोली में स्वराज्य आश्रम की ओरसे आज करीब १० साल से जो औषधालय चलाया जाता है, उसमें दवा की कीमत और रोगी के घर जाने की फीस लेने के कुछ नियम हैं। वे इस अंक में दूसरी जगह दिअे गअे हैं। उसका वार्षिक आय-व्यय का चिट्ठा भी दिया गया है। बार-

डोली में सरकारी औषधालय भी है। और खानगी डॉक्टर और वैद्य भी हैं। फिर भी, इस औषधालय का देहाती इतना उपयोग करते हैं कि उसकी अेक शाखा मढी में खोली गई है। इन दो औषधालयों में से डॉक्टर का वेतन छोडकर बाकी सारा खर्च कीमत और फीस से निकल आता है। दानों की जरूरत औषधालय को अधिक साधनसम्पन्न करने के लिअे ही रहती है।

व्यवहारदृष्टि से देखें तो आज जितने औषधालय हैं उतनों से हमारा काम नहीं चलनेवाला है। दिन प्रति दिन यह काम बढ़ता ही जायगा। इसलिअे हमें स्वयं रोगियों से उनका कुछ खर्च प्राप्त करना ही होगा। उसे पैसा, धान्य, वनस्पति (औषधियों) अथवा औषधालय का कुछ परिश्रम, आदि भिन्न भिन्न रूपों में लेने के मार्ग सोचने चाहिअे। लोगों में अप्रतिग्रह का संस्कार भी पैदा करना चाहिअे।

जिन्दगी के लिअे उपयोगी किसी संस्था को अगर दान से ही चलाना लाजिमी हो, तब तो धनी–गरीब का भेद कायम रखने का ही आदर्श मानना होगा। क्योंकि आम तौर पर आदमी तभी सौ रुपये का दान देता है, जब वह अपने उपभोग के लिअे हजार-दो हजार खर्च सकता है। अगर सभीकी आमदनी इतनी हो जाय, तो मुफ्त औषधालयों की जरूरत ही न रहेगी। और अगर जरूरत रही तो मानना होगा कि धनी और गरीब के बीच में इतना जबरदस्त अंतर रह गया है कि जिसे हम वाजिब नहीं समझ सकते। इसलिअे, अगरचे हमारे लिअे आज दान से संस्था चलाना अपरिहार्य है, फिर भी उसका उपयोग करनेवाली प्रत्यक्ष जनता को वह उपयोग पुरस्कार के रूप में लेने की आदत न डालनी चाहिअे।

शिक्षणसंस्थाओं के विषय में भी मैं यही बात मानता हूं। अन्न, वस्त्र, फीस, मकान आदि सब देकर छात्रों को विद्यादान देने की चेष्टा हम करते आये हैं। व्यासपीठों से कहा जाता है कि यही राष्ट्र का फर्ज है। मेरे नम्र मत में यह राय गलत है। हम इन सहूलियतों का प्रबंध जरूर करें। लेकिन साथ ही छात्रों को यह संस्कार भी होना चाहिअे कि जो वे लेते हैं वह अेक कर्ज है। उसकी कुछ कीमत उन्हें फिलहाल परिश्रम के रूप में और शेष, जो संपन्न हों उन्हें फीस के रूप में देना चाहिअे, और जो गरीब हो उन्हें भविष्य में चुका देने की प्रतिज्ञा करनी चाहिअे; तथा सबोंको यथाशक्ति सहायता देकर उसे बनाये रखने का फर्ज महसूस करना चाहिअे। अगर यह संस्कार न पैदा होता हो तो हमारे कार्य में दोष है। इसमें मैं छोटे बालक को और निराधार विधवा को भी अपवादरूप नहीं मानता।

राष्ट्रसभा और जातिवादी संस्थायें

[दादा धर्माधिकारी]

राष्ट्रसभा की कार्यसमिति ने जब से हिन्दू-सभा और मुस्लिमलीग को जातिवादी संस्थायें करार दिया तब से अिन दोनों संस्थाओं के हिमायतियों को कार्यसमिति पर बहुतही गुस्सा आया है। हिन्दूसभा के व्यासपीठ पर से अुसके अध्यक्ष श्री तात्याराव सावरकर ने अपनी राष्ट्रीयता की घोषणा करते [illegible] पर अराष्ट्रीय पक्षपात का अभियोग लगाया है; और मुस्लिमलीग के मंच परसे अपनी कौमियत का अिज़हार करते हुअे श्री मुहम्मदअली जिना ने फिर अेक बार काँग्रेस को हिन्दुओं की मजलिस कहकर अुसपर हिन्दुओं की तरफ़दारी का और पाखण्ड का अिलजाम लगाया है। मतलब, अेक ओर हिन्दूसभा अपनी राष्ट्रीयता जताती है और दूसरी तरफ़ मुसलिमलीग कौमियत का दावा करती है और दोनों काँग्रेस की अराष्ट्रीयता का डिंडोरा पीटती हैं। अुनकी दृष्टि से आज हिन्दुस्तान में अगर कोअी सबसे बडी अराष्ट्रीय संस्था है तो वह काँग्रेस है।

काँग्रेस की राष्ट्रीयता का यह भी अेक बड़ा ज़बरदस्त सबूत तो कहा जा सकता है। परन्तु यह सबूत अभावरूप (नेगेटिव्ह) है। अतः अिस प्रश्न का थोड़ा मूलग्राही और भावरूप (पॉज़िटिव्ह) प्रमाणों की दृष्टिसे विचार करना आवश्यक हो जाता है।

अेक दृष्टि से हिन्दूसभा और मुस्लिम-लीग दोनों राष्ट्रीय संस्थायें हैं; क्योंकि वे दोनों अेक दूसरे का राज्य भले ही, न चाहती हों, लेकिन विदेशी राज्य भी नहीं चाहतीं। हिन्दूसभा का दावा यह है कि हिन्दुस्तान देश असल में हिन्दुओं का है और अिसलिअे वहां प्राबल्य अुन्हीं का होना चाहिअे। मुस्लिमलीगवालों का दावा यह है कि पहले देश चाहे किसी का क्यों न रहा हो अुनके पुरखाओं ने अुसे जीता और अपनी सल्तनत कायम की। अिसलिअे यहां अुनकी हुकूमत होनी चाहिअे। बिलकुल मोटी बात में, अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि हिन्दूसभा हिन्दुओं की सत्ता चाहती है और मुस्लिमलीग भारतीय मुसलमानों की। विदेशी राज्य दोनों नहीं चाहतीं। अिस दृष्टि से दोनों राष्ट्रीय हैं।

हिन्दूसभा का दावा अिस प्रकार है:—

(१) हिन्दूलोगों की यह मातृभूमि है। यह कोअी निश्चितरूप से नहीं बता सकता कि हिन्दू यहां कब आये। अिस देश से बाहर किसी भी देश के प्रति हिन्दू लोग अितना प्रेम नहीं करते। भारत के प्रति प्रेम अुनके लिअे स्वभावसिद्ध है।

(२) हिन्दूओं की स्वदेशनिष्ठा दुहरी है। भारत अुनकी जन्मभूमि ही नहीं बरन धर्मभूमि भी है। 'पितृभू' ही नहीं, बल्कि 'पुण्यभू' भी है। दूसरे देशवासियों की स्वदेशनिष्ठा अेकविध है; लेकिन हिन्दुओं की द्विविध और द्विगुणित है। अिसलिअे राष्ट्रीयता अुनका स्वभाव है। वह कोअी प्रयत्नसिद्ध या सम्पादित गुण नहीं है।

(३) हिन्दूजाति का अिस देश के साथ अितना तादात्म्य है कि वह यहां के पर्वत,

नदियां, सरोवर और नगर भी पवित्र मानती हैं और हिन्दूलोग बडे प्रेम से अुनके नाम धारण करते हैं। उ०, काशीप्रसाद, बनारसीदास, बदरीप्रसाद, मथुराप्रसाद, द्वान्तिका, गोदावरी, गंगा, आदि। भारतवर्ष यह नाम ही हिन्दू है। जन्म, अितिहास, परंपरा, धर्म आदि सभी प्राकृतिक और मानवीय बन्धनों से वे अिसी देश से बंधे हुअे हैं। न अुनका दूसरा कोअी वतन है और न धर्मभूमि।

(४) अिसलिअे हिन्दुत्व और राष्ट्रीयत्व अविरूद्ध ही नहीं, वरन अभिन्न और अेक हैं। दूसरे लोगों को अिस देश में रहने का अधिकार हिन्दुओं की सद्भावना से ही प्राप्त हो सकता है। विशेष अधिकार मांगना तो सरासर हिमाकत है।

मुसलिमलीगवालों के तरफ़दार कह सकते हैं:—

(१) सवाल यह नहीं है कि कौन कितना पुराना रहीस है। सवाल यह है कि मुल्क की हिफ़ाजत और ख़िदमत के लिअे कौन कितनी मर्दानगी बता चुका है।

(२) चंद मुसलमान बाहर से भले ही आये हों लेकिन अुनकी बहुत बडी तादाद तो यहीं की है। अुनके बापदादा यहीं के थे। अिसलिअे यह अुनका भी अुतना ही पुराना वतन है जितना कि हिन्दुओं का।

(३) महज धरम बदल देने से मुसलमान परदेसी नहीं हो जाते। अिंग्लैंड, जर्मनी, फ्रान्स, अिटाली आदि देशों के निवासी अीसाअी बनते ही गैरवतन थोडे ही हो गये? जिस तरह वे किसी जमाने में अीसाअी बन गये अुसी तरह कल मुसलमान या हिन्दू हो जायें तो क्या अुनकी कौमियत बरबाद हो जायगी? मरमॅड्यूक पिक्थॉल और दूसरे अंग्रेज जो मुसलमान हो गये और वे जो हिन्दू हो गये, क्या अब अंग्रेज नहीं रहे?

४ अफ़गानिस्तान और अीरान वहां के मुसलमानों की धर्मभूमि नहीं है, जापान और चीन के निवासियों की धर्मभूमि हिन्दुस्तान है और अिंग्लैंड, जर्मनी वगैरह पश्चिमी देशों की धर्मभूमि भी यूरोप में नहीं है। अुनकी 'पितृभू', अुनकी 'पुण्यभू' न होने से क्या अुनकी राष्ट्रीयता में कोअी फ़र्क आजाता है? फ़िर हिन्दुस्तानी मुसलमानों के मत्थे यह शर्त जबरदस्ती मढ़ देना कहां तक वाजिब है?

५ मुसलमान बाहर से भले ही आये हों, लेकिन आने के बाद वे यहीं बस गये और यहीं के हो कर रहे। अपनी सारी दौलत और हुकूमत का अुपयोग अुन्होंने अिसी देश को संपन्न, सुन्दर और बलवान बनाने के लिअे किया। अिस देश के साहित्य, कला और व्यापार की तरक्की में अुनका हिस्सा किसी कदर कम दर्जे का नहीं है। अिसलिअे वे अूपरी आदमी नहीं हैं। हिन्दुओं के हमवतन हैं और अधिक मुस्तैद और दिलेर होने के सबब अुनकी बनिस्बत नागरिकता के ज्यादह बडे हकदार हैं।

जो भारतवासी अीसाअी हो गये, या जो अन्यधर्मीय भारत में आकर बस गये अुनके पक्ष में भी यही कहा जा सकता है। भारतीय अीसाअियों और पारसियों तथा यहूदियों की यह र्मभूमि नहीं है। लेकिन मातृभूमि तो है ही।

सारांश, अिस दृष्टि से हिन्दूसभा और मुसलीमलीग ही नहीं बल्कि वर्णाश्रम स्वराज्य-

संघ भी अेक राष्ट्रीय संस्था है। परन्तु अिनमें से हिन्दूसभा और मुसलिमलीग की राष्ट्रीयता जातीय (डिनॉमिनेशनल) हैं और वर्णाश्रम स्वराज्यसंघ की श्रृतिस्मृति-पुराणोक्त है। राष्ट्रीयता का विचार सांस्कृतिक, अैतिहासिक, आर्थिक, राजनैतिक और प्रादेशिक आदि, कअी पहलुओं से किया जा सकता है; लेकिन अुतना विस्तृत विवेचन करने का न यह स्थान है और न प्रसंग। राष्ट्रीयता के आवश्यक लक्षणों का विचार भी यहां पर प्रस्तुत नहीं है।

सांस्कृतिक राष्ट्रधर्म के नाम पर आज हिन्दूसभा जिस जातीय राष्ट्रीयता का प्रतिपादन करती है अुसी का प्रचार पहले भी कुछ संस्थायें कर चुकी हैं। अुस राष्ट्रीयता के विषय में लाला लाजपतराय ने लिखा है:-

"यह स्पष्ट है कि अुन दिनों हम जिस राष्ट्रीयता का प्रचार करते थे वह बहुत कुछ संकुचित और साम्प्रदायिक (रादर नैरो अैण्ड सेक्टीरियन) थी। अिन संस्थाओं का कार्य तो शैक्षणिक था, परन्तु अुनका स्वरूप और क्षेत्र राजनैतिक था। अुनमें शिक्षा की जो सुविधायें थीं अुनसे सभी धर्मों के, पंथों के और सम्प्रदायों के लोग लाभ अुठा सकते थे, परन्तु फ़िर भी हमारी अभिप्रेत राष्ट्रीयता तो खुल्लमखुल्ला साम्प्रदायिक (डिनॉमिनेशनल) थी। हर अेक संस्था जो वायुमंडल निर्माण करती थी वह अेक हद तक—याने जहांतक स्वदेशप्रेम के भाव का सम्बन्ध था—राष्ट्रीय होता था, परन्तु दूसरी सर्व बातों में साफ़ साफ़ साम्प्रदायिक (सेक्टीरियन) होता था।"

(द प्रॉबलम ऑव्ह नैशनल अेज्युकेशन अिन अिंडिया, पृ० १६, १७, १८.)

स्व० लालाजी के ये वाक्य किन संस्थाओं के विषय में लिखे गये हैं अिसका खुलासा करने की ज़रूरत नहीं है। जैसा कि अूपर कहा जा चुका है अिस लेख में भारतीय राष्ट्रीयत्व की मीमांसा करनेका अिरादा नहीं है। यहां तो केवल अितना ही समझाने से मतलब है कि कॉंग्रेस ने हिन्दूसभा तथा मुस्लिमलीग को जातिवादी संस्थायें किस दृष्टि से ज़ाहिर किया।

जातिवाद और जातिनिष्ठा भिन्न वस्तुयें हैं। यहां 'जाति' से मतलब 'कास्ट' नहीं 'कॉम्युनिटी' है। जातिनिष्ठा चाहे वांछनीय भले ही न हो, लेकिन निन्द्य नहीं है। जातिवाद घातक है। जातिनिष्ठा अपनी जाति के लिअे प्रेम और अभिमान का नाम है। समूचे राष्ट्र की अुन्नति के अविरुद्ध अपनी जाति का हित चाहना और अुसकी अुन्नति का प्रयत्न करना, अुसे सुसंगठित और शक्तिमान् बनाना, जातिनिष्ठा है। हर अेक जाति अपनी अपनी खूबियों की रक्षा करते हुअे अपने आपको सारे राष्ट्रकी सेवा के लिअे अधिक समर्थ और योग्य बनाये। अिस प्रकारकी जातिनिष्ठ संस्थाओं के लिअे राष्ट्र में फिलहाल काफी गुंजाअिश है। राष्ट्र की सेवा के लिअे अपनी जातीय विशेषताओं का संरक्षण और संवर्धन हर अेक जाति करे। लेकिन यह कदापि नहीं भूलना चाहिअे कि वैशिष्टय और संकुचितता में महदन्तर है। वैशिष्टय का क्षेत्र मर्यादित भले ही हो, लेकिन अुसमें संकीर्णता का भाव नहीं होता। सूर्य और

दीपक के प्रकाश में आकारभेद भले ही हो लेकिन प्रकारभेद नहीं है। सूर्य की कक्षा व्यापक है, दीपक की मर्यादित। लेकिन अपनी अपनी क . दोनों सबको समान प्रकाश देते हैं। अुनमें भेद नहीं करते। दीपक का प्रकाश विशिष्ट है, परन्तु संकुचित नहीं है। अिस वृत्ति से जो जातीय संस्थायें चलायी जायेंगी अुनका कार्य राष्ट्रीयता के विकास के लिअे पोषक ही होगा। हर अेक जाति अपने अपने सामाजिक, धार्मिक और जातीय संगठन में राष्ट्रीयता के विकास की दृष्टिसे—याने आन्तर्जातीय आन्तर्प्रान्तीय आन्तर्धर्मीय संवाद स्थापित करने की दृष्टि से—सुधार का अुपक्रम करे।

परन्तु जातीय संस्थाओं की अिस पथ्यकर मर्यादा को लांघ कर जब कोअी जाति या जातीय संस्था, अपने लिअे यह दावा करती है कि वही सारा राष्ट्र है तब जातिवाद का प्रारम्भ होता है। अुस हालत में अेक अंश समग्र का स्थान लेने की धृष्टता करता है, टुकड़ा समूचे की बराबरी का दम भरता है।

हिन्दूसभा और मुसलिमलीग के पक्ष में अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि वे अपनी अपनी जाति के हितसंबंधों की रक्षा चाहती हैं; और अुसके लिअे प्रयत्न करते हुअे राष्ट्रहित की हानि नहीं करना चाहतीं। मतलब, वे जातीय हैं, परन्तु जातिवादी या अराष्ट्रीय नहीं हैं। परन्तु अब अुनका यह दावा टिक नहीं सकता। क्योंकि:—

(१) हिन्दूसभा और मुसलिमलीग काँग्रेस के विरूद्ध अपने अुम्मीदवार खडे करके यह जताना चाहती हैं कि वे काँग्रेस की बराबरी करनेवाली संस्थायें हैं।

(२) हिन्दूसभा में भिन्नधर्मीय, और खासकर मुसलमान, शामिल नहीं हो सकते और न मुसलिमलीग में हिन्दू या गैरमुसलमान शामिल हो सकते हैं। अिस तरह दोनों की भूमिका परिमित होते हुअे भी दोनों व्यापक भमिकावाली राष्ट्रसभा के सिंहासन पर विराजमान होना चाहती हैं।

जातिवाद का अेक अचूक लक्षण यह भी है कि वह जाति या धर्म को नागरिकता के मौलिक अथवा विशेष अधिकारों का हेतु (कॉज़्) या आधार (बेसिस) मानता है। यह अुत्तान जातिवाद है। वह हिन्दूसभा की अपेक्षा मुसलिमलीग में विशेष है। हिन्दूसभा में कम है, अिसका कारण अुसे अुसकी आवश्यकता नहीं है। बहुसंख्यक जाति का जातिवाद बाह्यतः राष्ट्रीयता के समान ही प्रतीत होता है। हिन्दूसभा विशेष अधिकार नहीं मांगती अिसकी यह वजह नहीं है कि हिन्दू दूसरों की अपेक्षा अधिक राष्ट्रीय या अुदार हैं, बल्कि यह कि अुनके हितसंबंध अुनके बिना भी कुशल हैं। जैसा कि ऑक्सफर्ड में अेक प्रश्न का अुत्तर देते हुअे गांधीजी ने कहा था, "अुन्हें अिस प्रश्न का राष्ट्रीय हल चाहिअे; अिसलिअे नहीं कि वे राष्ट्रीय हैं बल्कि अिसलिअे कि अुसी में अुनका फायदा है।"

मुसलिमलीग के लिहाज़ से हिन्दूसभा का जातिवाद अधिक सौम्य और कम अराष्ट्रीय दीख पड़ता है अिसका कारण यह है कि वह बहुसंख्यक जाति की सभा है और

स्वभावतः अुसका जातिवाद राष्ट्रवाद से अधिक हमशकल दिखाअी देता है।

अिस दृष्टिसे हिदुस्तान में जातीय और राष्ट्रीय संस्थाओं की भूमिका ही भिन्न है। जो संस्था सभी जाति, धर्म, पंथ, भाषा और सम्प्रदायों के सामान्य हितसंबंधों और समस्याओं का विचार करती है और अुन्हें हल करने की कोशिश करती है वह राष्ट्रीय है, तदितर जातीय, साम्प्रदायिक या विशिष्ट। लिबरल फेडरेशन, लोकशाही स्वराज्य पक्ष, मालवीयजी का राष्ट्रीय पक्ष, अिनका कॉंग्रेस से मतभेद है, लेकिन राष्ट्रीयता की दृष्टि से अिनकी और कॉंग्रेस की भूमिका समान है। हिन्दूसभा और मुसलिमलीग भिन्न भूमिका पर स्थित हैं। ये दोनों संस्थायें जातिविशिष्ट और जातिनिष्ठ हैं। अुनकी कक्षा परिमित है।

हिन्दूसभा और मुसलिमलीग का यह दावा है कि वे कॉंग्रेस की अपेक्षा अधिक प्रातिनिधिक संस्थायें हैं। कॉंग्रेस की राष्ट्रीयता तथा प्रातिनिधिकता का अेक भावरूप (पॉज़िटिव्ह) व्यावहारिक प्रमाण यह है कि गैर-कॉंग्रेसी हिन्दू की अपेक्षा मुसलमान लोग कॉंग्रेसी हिन्दू का अधिक विश्वास करेंगे; और अेक गैर-कॉंग्रेसी मुसलमान की अपेक्षा कॉंग्रेसी मुसलमान हिन्दुओं की दृष्टि में कम जात्यन्ध है। मतलब, कॉंग्रेसी हिन्दू कम जातीय और कॉंग्रेसी मुसलमान कम अराष्ट्रीय समझा जाता है। यह कॉंग्रेस की राष्ट्रीय प्रवृत्ति और प्रभाव का अेक प्रत्यक्ष और विधायक सबूत है। किसी भी संस्था की राष्ट्रीयता की कसौटी अुसके सदस्यों की संख्या नहीं है बल्कि अुसकी भूमिका की व्यापकता है। मान लीजिये कि कल हिन्दूसभा और मुसलिमलीग के सदस्यों की तादाद राष्ट्रसभा के सदस्यों से बहुत बढ़ गयी, तोभी जबतक अुनका क्षेत्र हिन्दू या मुसलमानों तक ही सीमित है, तबतक वे राष्ट्रीय होने का दावा नहीं कर सकतीं। अधिक से अधिक अितना ही कहा जा सकेगा कि दोनों जमातों में जातीय वृत्ति के लोगों की बहुतायत है।

अिसका यह मतलब नहीं है कि अिस देश में जातीय संस्थाओं के लिअे कोअी गुंजाअिश ही नहीं है। हरअेक जाति अपने सामाजिक और धार्मिक मामलों के विचार के लिअे अपनी खास संस्था भले ही कायम करे। लेकिन अपने राजनैतिक सवालों को हल करने के लिअे अुसे कॉंग्रेस का ही आश्रय करना चाहिअे। अुसीको अपनी अेकमात्र राजनैतिक संस्था मानना चाहिअे। अपने राजनैतिक हितसंबंधों की रक्षा के लिअे कॉंग्रेस के भीतर लड़ना चाहिअे और अुसकी नीति अमान्य हो तो अुसमें परिवर्तन कराने की कोशिश करनी चाहिअे। अपने जाति के लिअे अलग राजनैतिक संस्था बनाकर कॉंग्रेस का विरोध करना परले दर्जे का जातिवाद है। हिन्दूसभा और मुसलिमलीग से सहानुभूति रखनेवालों में भी कुछ सौम्य जातिवादी हैं जो राजनैतिक क्षेत्र में कॉंग्रेस को ही मानते हैं। लेकिन दूसरे अुग्र जातिवादी हैं जो सभी क्षेत्रों पर आक्रमण कर अपना आधिपत्य जमाना चाहते हैं। विवेक और बुद्धिमानी का मार्ग तो यही है कि हिन्दूसभावादी या मुसलिमलीगवादी कॉंग्रेस में प्रविष्ट हों। क्योंकि कॉंग्रेस की भूमिका संग्राहक और व्यापक है; तहां हिन्दूसभा और मुसलिमलीग की

व्यावर्तक और संकुचित है।

अूपर जो विवेचन किया गया है अुसपर से यह स्पष्ट हो जायगा कि हिन्दुत्व और हिन्दूवाद, अिस्लामित्व और अिस्लामवाद में बहुत बड़ा अन्तर है। हिन्दूसत्तावाद या सार्वभौम हिन्दूपदपादशाही, और मुस्लिमसत्तावाद अथवा सार्वभौम मुस्लिम राज्य-पान-हिन्दूअिज़म और पान-अिस्लामिज़म—राजनैतिक क्षेत्र में साफ़ साफ़ अराष्ट्रीय और निहायत नापाक तदबीरे हैं।

हिन्दूसभा ने स्वीकृत की हुअी हिन्दुत्व की सावरकरप्रणीत परिभाषा कहां तक शास्त्रीय और तर्कशुद्ध है अिसकी चर्चा यहां अप्रासंगिक होगी। वाद के लिअे यह मान लिया जाय कि "भारतवर्ष जिसकी पितृभू और पुण्यभू है वही हिन्दू है।" निवेदन अितना ही है कि यह सिर्फ हिन्दुत्व की व्याख्या समझी जाय। अुसे राष्ट्रीयत्व की परिभाषा बनाने के लिअे अुसमें से "पुण्यभू" शब्द काट दिया जाय।

मुसलिम लीग की राष्ट्रीयता की परिभाषा चाहे कुछ भी क्यों न हो, कुछ मुसलमानों की अतिराष्ट्रीय प्रादेशिकता (अेक्स्ट्रा टेरिटोरियालिजम) राष्ट्रीयता के लिअे घातक है, और जबतक वे अुसे नहीं छोड़ते तबतक काँग्रेस की दृष्टि में वे अराष्ट्रीय हैं। राष्ट्रीयता के लिअे यह आवश्यक है कि वे भारत के भूतकालीन अितिहास, परंपरा और श्रेष्ठ पुरुषों के लिअे आत्मीयता और अभिमान की भावना रक्खें। अंग्रेजों का और जर्मनों का धर्म अीसाअी है परन्तु संस्कृति यूनान और रोम की है और अितिहास अेवं परम्परा पूर्णतया राष्ट्रीय हैं। भारतीय मुसलमान अपने मज़हब और तहजीब तथा धार्मिक साहित्य की रक्षा अवश्य करें। परन्तु अपने भारतीयत्व पर अुन्हें खास गर्व और प्रेम होना चाहिअे। अफ़गानिस्तान, अरबस्तान, अीरान, मिसर और तुर्कस्तान आदि देशों के मुसलमानों का जो धर्मप्रेम है वही अुनका भी है। लेकिन अुपर्युक्त सभी देशों के नागरिकों की जो स्वदेशनिष्ठा या राष्ट्रीयता है वह जुदी जुदी है। अुसी राष्ट्रीयता की—भारतीयता की—रक्षा और विकास भारतीय मुसलमानों को भी करना चाहिअे। अिस संबंध में, १९१७ में कलकत्ते की "मुसलमान शिक्षा परिषद" के सभापति, श्री अे. अेन. हैदरी ने जो कहा था अुसपर गौर करने की सिफ़ारिश है:—

"हिदुस्तान के मुसलमानों के दिलों पर अगर अशोक और चंद्रगुप्त की महत्ता का प्रभाव न पडे, अजन्टा की बेजोड़ तस्वीरकशी और वेरूल की अमर शिल्पकला को देखकर अुनका हृदय अभिमान और आनन्द से अुमड़ न आवे, जयदेव और तुकाराम के दिव्य गीतों से अुन्हें नवीन स्फूर्ति न मिले, श्रीकृष्ण और गौतमबुद्ध के अुपदेशों में अन्हें गहरे और सन्तोषप्रद मनन के लिअे सामग्री न मिले, तो भारतीय राष्ट्रीयता की तरक्की होने के बदले मौत होगी। यदि मुगलों की और आदिलशाहियों की शिल्पकला की अुत्कृष्टता पर, अकबर और शेरशाह जैसे महान् राजाओं के वीरतापूर्ण कामों पर, चान्दसुलताना और नूरजहां जैसी अशराफ रानियों की वीरता पर, महमूद गवान और अबुल फज़ल जैसे कर्तव्यनिष्ठ मन्त्रियों की अुदार और चतुर नीति पर, अमीर खुसरो और ग़ालिब जैसे कवियों की प्रतिभा पर हिन्दुओं को गर्व न हो तो

भारतीय राष्ट्रीयता पनपने के बदले सूख जायगी ।

देश में मैं जो नयी वृत्ति देख रहा हूं अुसने मेरा दिल अिस आशा से भर दिया है कि हिन्दू और मुसलिम विद्यापीठ परस्पर सद्भाव और सहयोग से काम करेंगे। ....जब ये संस्थायें अिस दृष्टि से काम करेंगी तभी अुनका जीवन सार्थक होगा।"

भारतीय राष्ट्रीयता का अुद्गम सांस्कृतिक संजीवन और संरक्षण से हुआ। सांस्कृतिक संवर्धन और विकास की अवस्थाओं में से होकर वह सांस्कृतिक सामंजस्य और समन्वय की ओर जा रही है। अुसका पूर्ण विकास सांस्कृतिक समभाव में होगा। काँग्रेस का विकास अिसी क्रम से हुआ है। सांस्कृतिक समन्वय का अर्थ सांस्कृतिक संकर नहीं करना चाहिये। समन्वय (सिन्थेसिस) और संकर (फ्यूजन) में बहुत बड़ा फ़र्क है। समन्वय में प्रत्येक संस्कृति की विशेषता, हर अेक तहज़ीब की ख़ासियत, की रक्षा का और अुत्कर्ष का आश्वासन है। संकर में वह नहीं है।

नागरिकता का आधार विशिष्ट जाति या धर्म नहीं होना चाहिये। आर्थिक और राजनैतिक समस्याओं को धर्म और जाति के प्रश्नों से ज़बरदस्ती मिला देना राष्ट्रीय दृष्टि से हानिकर सिद्ध होगा। आज हरअेक जाति दूसरी से डरती है। परस्पर अविश्वास और भय की वृत्ति में से राष्ट्रीय अेकता का विकास करने का प्रयत्न काँग्रेस कर रही है अिसी में अुसकी राष्ट्रीयता है। यह सवाल केवल सौदागिरी या तात्कालिक नीति का नहीं है। वह राष्ट्र की आत्मा की रक्षा का प्रश्न है।

आज कोअी कहता है, "मैं पहले हिन्दू या मुसलमान हूं और बाद में हिन्दुस्तानी"। दूसरा जवाब में तुरन्त बोल अुठता है, "मैं पहले हिन्दुस्तानी हूं और बाद में हिन्दू या मुसलमान"। काँग्रेस कहती है "तुम हिन्दू या मुसलमान हो अिसीलिये हिन्दुस्तानी भी हो। अिन दोनों भावनाओं में विरोध या भेद देखना नासमझी है। वे अेक दूसरे की पोषक होनी चाहिये। हमारा धर्म हमें अच्छे नागरिक और अच्छे पडोसी बनाना भी सिखावे तभी तो वह श्रेष्ठ कहा जा सकता है। नागरिकता की बुनियाद अगर कोअी धार्मिकता हो सकती है तो वह यह व्यापक धार्मिकता है। वरना आर्थिक और राजनैतिक मामलों को धर्म से अेकदम अलग कर देना ही अुचित होगा।"

सांस्कृतिक समन्वय की काँग्रेस की दृष्टि क्या है, भिन्न भिन्न जमातों में परस्पर विश्वास और सहयोग की वृत्ति काँग्रेस किन अुपायों से अुत्पन्न करना चाहती है, जातीय प्रश्न का अहिंसक हल क्या हो सकता है, काँग्रेस की जातीय निर्णय (काम्युनल अवार्ड) सम्बन्धी नीति अुसकी वृत्ति और परंपरा से सुसंगत किस तरह है—आदि महत्त्व के प्रश्नों का विचार अिस लेख की मर्यादा में नहीं किया जा सकता। भारतीय राष्ट्रीयता का विकास अेक स्वतंत्र विषय है।

यहां केवल अितना ही बतलाने का अुद्देश था कि काँग्रेस और हिन्दूसभा तथा मुसलिमलीग में जो भेद है वह केवल कार्यनीति या तात्कालिक अुपाय-योजना का

नहीं है। अुनकी मूल भूमिकायें ही भिन्न हैं। काँग्रेस की भूमिका राष्ट्रीय और व्यापक है। मुसलिमलीग और हिन्दूसभा के जातिवाद में तारतम्य या न्यूनाधिक्य है; लेकिन दोनों संस्थाओं की बुनियाद और बनावट जातीय है। अुनका दायरा बहुत तंग है। दोनों का कार्य राष्ट्रीयता के अविरुद्ध होने के लिअे अुन्हें जिन पथ्यकर मर्यादाओं का पालन करना चाहिअे अुनका भी थोड़ासा दिग्दर्शन कर दिया है।

कौअे की नजर से

३. राष्ट्रभाषा

संपादकभाई,

मुझे यह जानकर खेद हुआ कि सवाई भूशुंडी और मेरे संवाद से आप के कुछ पाठकों को बुरा मालूम हुआ है। आपने हमारी वकालत करने के लिअे दो दो टिप्पणियां लिखीं इससे भूशुंडी बड़ा नाराज़ हो गया, और आपके ऊपर उसने अेक खासा व्याख्यान दे दिया। लेकिन चूंकि आप के पाठक अैसी टीका बरदाश्त नहीं कर सकते इसलिअे उसका सारांश भी नहीं देना चाहता।

यह बड़े आश्चर्य की बात है कि मेरे इतने साफ़ तौरसे अपना और अपने मित्र का नाम बता देने पर भी आप के पाठक हमारे नाम आपसे पूछते हैं। भूशुंडी ने तो यह सुन कर खिलखिलाकर हँस दिया। "देखो, ये लोग खुद को सनातनी हिंदू कहते हैं, और 'रामचरितमानस' का हमेशा पाठ करते हैं, 'योगवासिष्ठ' भी सुनते हैं। क्या इन पुस्तकों में भूशुंडी और भारद्वाज का संवाद नहीं है? क्या तुलसीदासजी के बाद दुनिया इतनी बदल गई है कि जैसे संवाद उस समय हो सकते थे, वैसे अब मेरे और तुम्हारे बीच में नहीं हो सकते? उन संवादों के लिअे तो आस्तिकबुद्धि है, फिर हमारे लिअे नास्तिकबुद्धि क्यों? योगवासिष्ठ, रामचरितमानस आदि ग्रंथों पर कितनी बडी बडी ग्रंथरचनायें हुई हैं, लेकिन किसी को यह शंका नहीं हुई कि काकभूशुंडी, भारद्वाज, वैनतेय, गीध, आदि भी मनुष्यों के नाम होंगे। सभीने श्रद्धा से मान लिया कि वे सब महान ऋषि थे और इन पक्षियों के रूप में रहते थे। उनके बीच चर्चायें हो सकती थीं। अब यह खोज क्यों चली है? और फिर, इसपर तुम्हारे दादा लिखते हैं कि हमारा यह संवाद विनोद और मजाक है! क्या मैं अैसा बेवकूफ और निकम्मा हूं कि किसी का विनोद या खिल्ली करूं? जो जैसा है वैसा उसे साफ साफ बता देता हूं, और तुम्हारी भोलीभाली राय सुधार देता हूं। वह तुम्हें जंच जाती है इस लिअे उसे तुम दादा के पास लिख भेजते हो। इस में दिल्लगी कहां है? अगर, इन पाठकों को भिन्नभिन्न व्यक्तियों के विषय में उनकी जो गलत राय बन गयी है, उस में सुधार करना पसंद न

हो, तो मुझे क्या पडी है? हमारे इन संवादों का ब्यौरा उन्हें न भेजो।"

इसलिअे अब मैं आप (दादा), विनोबा आदि वर्धा के बडे बडे कार्यकर्ता, जिन्हें मैं मंत्री-पद के योग्य मानता था, तथा दूसरे अनेक व्यक्तियों के बारे में अपने मित्र के विचार प्रकट करने से रुक जाता हूं, और सिर्फ आपकी कुछ समस्याओं के विषय में उसके विचार प्रकट करता हूं। देखें, इसका आप के पाठकों के ऊपर क्या अंसर होता है।

अेक प्रसंग ताजा ही है। मालूम होता है कि किशोरलाल ने हाल ही में राष्ट्रभाषा के ऊपर कुछ व्याख्यान दिया था। कौअे ने उसका जिक्र मुझ से किया।

मैं ने पूछा–यह राष्ट्रभाषा और उसके नामों का क्या झगड़ा है? मेरी समझ में नहीं आ रहा है। मुझे जरा ठीक तरह समझा दो भाई!

तब **सवाई भूशुंडी** बोला–काका, यह बात तो है बहुत लंबी चौडी। उसके मूल वाल्मीकि के रामायण से भी प्राचीन काल तक पहुँच सकते हैं। लेकिन, वह लंबी बात आज नहीं कहूंगा। आज तो मैं थोडे में ही कहता हूं।

सच बात तो यह है कि ईश्वर ने आदमी को बोलने के लिअे पैदा ही नहीं किया है। उस की कोई स्वभावसिद्ध भाषा हई नहीं। बंदर भी हूप-हूप या चीं-चीं जैसी कुछ आवाज कर सकता है। लेकिन आदमी के रोने में जो आवाज अपने आप हो जाती है, उसके अलावा उसके कोई आवाज ही नहीं है। इसलिअे आदमियों को अपने भाव अेक दूसरे को समझाने के लिअे आंख, मुँह की रेखायें और हाथों की हलचल के मारफत ही काम लेना चाहिअे, अैसी कुदरत की राय मालूम होती है। अगर किसी आदमी को जन्म से बिलकुल अेकान्त में रक्खा जाय, जहाँ वह किसी भी प्राणी की आवाज न सुनने पावे तो उसे खयाल भी नहीं होगा कि वह अेक बोलनेवाला प्राणी है।

मैं–तुम फिर अपनी उलटी बातें कहने लगे! अगर आदमी बोलनेवाला प्राणी नहीं है, तो क्या मैं और तुम बोलनेवाले प्राणी हैं? साहित्य, व्याकरण, लाखों शब्दों के कोश, ये सब क्या बिना बोली के पैदा हुअे हैं? मनुष्यों का तो यह कहना है कि केवल मनुष्य को ही वाणी बख़्शी गयी है।

भूशुंडी–यही तो समझने की चीज़ है, काका! मनुष्यजाति मातृभाषा, पितृभाषा, राष्ट्रभाषा वगैरा बडे बडे भडकीले नाम लेती है, लेकिन मनुष्य की न कोई मातृभाषा है, न पितृभाषा है, न राष्ट्रभाषा है। इसका सबूत उनके ये झगडे ही हैं। असली चीज़ के लिअे दुनियामें कभी झगडे नहीं होते, बनावटी बातों के लिये ही तमाम झगडे होते हैं। कोयल का बच्चा कौअे के घोंसले में पलता है, फिर भी वह कू कू ही चिल्लाता है। क्यों कि वह सचमुच उसकी मातृभाषा है। लेकिन अगर कोई गुजराती बच्चा किसी अंग्रेजी घर में पाला जाय, तो वह गुजराती भाषा का अेक लफ्ज़ भी न बोल सकेगा। वह अंग्रेजी ही बोलने लगेगा। कौआ चाहे यूरोप का हो, अमेरिका का हो या अेशिया के किसी भाग का हो, वह बराबर काव-काव ही करता है। कौओं की वह कुदरती भाषा होने से बिना झगड़ा किये वह कौओं की सर्वमान्य राष्ट्रभाषा भी हो गई है। आदमी के बच्चे को मनुष्यों से

अलग करके जंगल में रख दिया जाय, तो वह जितने प्रकार के प्राणियों की आवाज सुनेगा, उसका अनुकरण करेगा, लेकिन कोई अैसी आवाज न निकाल सकेगा जिसके लिअे यह कहा जा सके कि यही मानवी आवाज है। तोते की तरह मनुष्य में आवाज का अनुकरण करने की कुछ शक्ति है। उसी के सहारे उसने भाषा बनाने की चेष्टा की है। बछडे की गाय के लिअे रंभाने की आवाज सुनकर वह भी माँ को अम्मा कहने लगा। कौअे से उसने का–का की आवाज ली। इस तरह जो लोग जिन प्राणियों के संसर्ग में रहे, उनसे वे बोलना सीखे। इस तरह उनकी भाषा मूल से ही नकली है। आगे चलकर बच्चों ने प्राणियों से सीखना छोड दिया, और अपने आस पास के लोगों की ही नकल करके सीखने लगे। यह तो नकल की नकल हो गई, और नकलों की ही परंपरा चली। अगर अेक चित्र को देखकर दूसरा खींचा जाय, और इस तरह बना हुआ सौंवा चित्र देखा जाय, तो उस की और मूल की तुलना करना असंभवसा ही हो जाता है। यही बात उनकी भाषा और लिपि की है। नकली माल की पैदायश में लगे रहने से उन्होंन भाषाओं का बडा गडबडघोटाला कर दिया है। अब, इस बात में तो शक ही नहीं कि मनुष्य जन्म से मूढ है। और जो प्राणी जितना अधिक मूढ होता है उतना ही अधिक हठी होता है। कोई न कोई जि़द पकड लेता है और उसे छोड नहीं सकता। अगर वह माँ को मादर कहना सीखा है, तो मद्हर, या मातर् (मातः) कहनेवालों को वह अशुद्ध या भिन्न जबान बोलने–वाले कहता है। वह यह नहीं सोचता कि माँ, मादर, मद्हर, माता, अम्मा, आदि में से अेक भी शब्द उसकी कुदरती चिल्लाहट नहीं है; और जब सभी अस्वाभाविक हैं तो उनमें से सबसे आसान ही पसंद कर लेना अच्छा है। लेकिन, मानव के मूर्ख मन को अैसी बातें पसंद नहीं आतीं। अगरचे वह नकल ही किया करता है, और असल में न मालूम कितना ही फर्क कर डालता है, तो भी उसे यह घमंड होता है कि यह मेरे पुरखाओं की जबान और लिपि है, यह मेरी मजहबी जबान और लिपि है, यह मेरे देश की जबान और लिपि है, उसे मैं हरगिज़ न छोड़ूंगा। अगर तुम समझ सकते हो, तो इतने ही से राष्ट्रभाषा राष्ट्रलिपि और उनके नामों के झगडों का सार समझ लो। बस, अब मुझे नींद आ रही है।"

संपादकभाई, मुझे कबूल करना चाहिअे कि सवाई भूशुंडी की इस चर्चा से मैं सब बातें समझ नहीं सका हूं। लेकिन मैंने सोचा कि जाने दो, हम उल्लुओं को इन मानवी सवालों से क्या सरोकार है? ईश्वर की इच्छा हमें उल्लू रखने की ही है, तो वही बने रहना ठीक है। नहीं तो कहीं अैसा न हो जाय कि मनुष्यों की समस्यायें उल्लुओं में दाखिल हो जायँ, और हमारे समाज में आपके सब झगडे पैदा हो जायँ। भूशुंडी कहता है कि मनुष्य जन्म से मूढ है, और ज्यादातर मनुष्यों का झुकाव मूढ से मूढ़तर और मूढ़तम बनने की तरफ़ होता है। यही उनका साधारण विकासक्रम है। अगर यह सच हो तो इस डरसे कि इन समस्याओं में पडने से कहीं मैं ज्यादा उल्लू न बन जाऊं, मैंने इस प्रश्न का विचार करना छोड़ दिया।

आपके

आश्रम का उल्लू.

किसान और मालगुजारों को हितबोध

[विनोबा]

(ता० २९-१२-३८ को वर्धा जिला किसान परिषद में दिया हुआ अध्यक्षीय भाषण ।)

प्रास्ताविक

मेरे देहाती भाअियो और बहनो,

में आज यहां लाचार होकर आया हूं। आज के जैसे भाषण देने के मौके में जितने टाल सका अुतने टालता आया हूं। लेकिन यह न टाल सका। क्योंकि अिस साल मैं यहीं रहता हूं। आसपास के कअी खेतों में घूमने जाया करता हूं। अिसलिअे आसपास की खेती का हाल जानता हूं। अिसलिअे जब मुझसे आज की सभा का अध्यक्ष बनने के लिअे कहा गया तो मुझे स्वीकारना पड़ा। यहां की खेती की हालत मैंने जैसी अपनी आंखों से देखी है अुसी तरह गणित से भी देखी है। हरअेक चीज़ में गणित से देखा करता हूं। अेक बार किसीने मुझसे पूछा कि अीश्वर के बाद तुम्हारी श्रद्धा किस चीज़ में है। मैंने जवाब दिया, 'गणित में'। मैंने गणित से देखा है कि अिस साल फसल बहुत खराब है। और अिसीलिअे मैंने आज यहां बोलना स्वीकार किया। मैं जहां तक हो सके बोलने से अक्सर अिन्कार करता हूं। मुझे बोलना आता तो है तो भी मैं नहीं बोलता। लिख सकता हूं लेकिन लिखता नहीं। सारे साल में मैंने आसों कुल चार लेख लिखे और यह मेरा तीसरा सार्वजनिक भाषण है। लोग कहते हैं कि भाषण और लेखन प्रचार के शक्तिशाली साधन हैं। लेकिन मेरा अनुभव यह है कि ये कम से कम ताकतवाले साधन हैं। अिसलिअे मैं तो प्रत्यक्ष कार्य करने के मौके से फायदा अुठाता हूं। यहां के परिश्रमालय में रोज जाता हूं। आज अिस सभा के कारण दोपहर में नहीं जा सकता था। अिसलिअे सवेरे ही दो घण्टों के लिअे हो आया। आज में अिस सभा का काम कम से कम समय में पूरा करना चाहता हूं। अिसलिअे मुझे आशा है कि बोलनेवाले सिर्फ काम की ही बात कहेंगे और प्रस्ताव कम से कम होंगे। अगर मुझे ठीक याद हो तो पारसाल सेलसुरा में पच्चीस प्रस्ताव किये गये। (श्री० गोपालराव काले, "चालीस किये गये")। संस्कृत में अेक कहावत है कि कुतिया के ढेरभर बच्चे होते हैं, लेकिन फिर भी बेचारी सुख की नींद नहीं ले पाती। सिंहनी के अेक ही बच्चा होता है, लेकिन अुसके बल पर वह निर्भय होकर सोती है। जो सभा बहुतसे प्रस्ताव ब्याती है वह निर्भय नहीं होती। थोडेसे प्रस्ताव प्रसव करनेवाली सभा सुरक्षित है।

चार बातें

अितनी भूमिका के बाद जो कुछ मुझे कहना है वह मैं थोडे में कह देता हूं। किसानों का विचार करने में—खेतीपर मज़दूरी करने वाले भी अिसमें शुमार हैं—मेरे ख़याल से चार बातों की ओर ध्यान देना चाहिअे। पहली बात, किसानों की मौजूदा शिकायतें क्या हैं और वे किस

हद तक और किस तरह दूर की जा सकती हैं। दूसरी, खेती में. कौनसे सुधार किअे जा सकते हैं और अुसमें किसानों की क्या सहायता की जा सकती है। तीसरी, किसान को अुसके देहात में सहायक धन्धे कौनसे दिये जा सकते हैं। और चौथी बात है अुसकी नैतिक और सामाजिक अुन्नति। अुसका आज का कष्ट दो तरह का है। प्रान्तीय और देहाती सरकार की ज्यादतियां। अिन में से अुसका छुटकारा किस तरह हो यह सवाल है। मैं खास करके अिसी के बारे में बोलूंगा। तुमलोगों को मुख्य चिन्ता अिसीकी है कि तुम्हारा आज का दुःख कैसे दूर हो। अिसलिअे वही विस्तार से बतला कर दूसरी बातें संक्षेप में कहूंगा।

प्रान्तीय सरकार

पहले प्रान्तीय सरकार का विचार करें। कॉंग्रेस के आदमियों ने सरकार की गाडी का जुआ अपने कन्धों पर अुठाया है। वे अुस गाडी में जोते गये हैं। अुनकी दशा दयाजनक है। अुन लोगों से अपने बल कुछ होनेवाला नहीं है। तुम कोशिश करोगे तभी वे कुछ कर सकेंगे। (मराठी में) अेक कहावत है कि अेक दाने परसे सारे चावल की परख होती है। फसल का अन्दाज लगाने के सरकारी ढंग को देखकर मैंने अेक नअी कहावत गढी है। वह है, 'फूल परसे फल की परीक्षा'। लेकिन संसार का अनुभव कुछ और है। जितनी और जैसी बहार आती है वैसे फल नहीं आते। और जितने फल आते हैं अुनमें से भी कअी गिर जाते हैं। यह है दुनिया का अनुभव। यहां त्रैराशिक का हिसाब काम नहीं आता। अिस साल मैंने खेतों को बिलकुल शुरू से देखा। कपास के झाडों की कितनी कतारें हैं, अरहर की कितनी हैं, कितने फूल हैं, कितनी बोंडियां हैं, अिसका मैंने गणित किया है। हरअेक महीने की हालत बिलकुल भिन्न थी। और पहले महीने से दूसरे महीने की ज्यादा बुरी थी। पन्द्रह दिन पहले जहां बारह आना फसल थी वहां पन्द्रह दिन के बाद चार आना भी न रही। अैसी परिस्थिति में मैं किसानों से क्या कहूं? मैं तो अुनसे यही कहूंगा कि अगर लगान देने जैसी तुम्हारी हालत न हो तो मत दो। लोग कहते हैं सरकार हमारी है, अुसका काम हमें चलाना है, बिना लगान दिये आप राज्य कैसे चलायेंगे? मैं कहता हूं, किसने कहा कि हरहालत में राज्य चलाअिये? और आखिर राज्य चलाने का मतलब ही क्या है? राज्य चलाने का मतलब यही तो है न, कि प्रजा सुखी हो, किसान सुखी हों? लगान अिसीलिये लिया जाता है न? लगान संतमेत में तो नहीं लिया जाता? चाहे फसल हो या न हो पखेरू अपना हिस्सा ले ही लेते हैं। क्या सरकार को भी अिसी तरह लगान ले लेना चाहिअे? अगर तुम किसानों का दुःख दूर नहीं कर सकते तो अपने आसनों पर से अुतर आओ। प्रजा का खयाल करके सन्मानपूर्वक अगर आप अपने आसन पर न रह सकें तो छोड दीजिये अुन आसनों को। आसनों से चिपटे रहना कोअी स्वतंत्र धर्म नहीं है। कम से कम मेरी तो यह साफ राय है कि अिस साल फसल की हालत अितनी बुरी है कि लगान पूरा पूरा माफ होना चाहिअे। आज तो कोअी किसी से लगान

न मांगे। और अगर कोअी मांगने भी लगे तो देनेवाला अिन्कार कर दे। अिसके सिवा चारा ही नहीं है। अिस सिलसिले में प्रान्तीय कॉंग्रेस किसानसमिति को मेरी अेक सूचना है। वे प्रान्त के भिन्न भिन्न हिस्सों में बीस-पच्चीस जगह जाकर वहां की फ़सल देखें और अुसके आंकडे अिकट्ठे करें। अैसा होने से सरकार ने वहां की फसल का जो अन्दाजा लगाया है अुससे अिन आंकडों की तुलना हो सकेगी और सरकार को असली हालत गणित से बतायी जा सकेगी। लेकिन अिस विषय में मैं लोगों को भी अेक चेतावनी देना चाहता हूं। हम झूठ को बुरा नहीं समझते। यह हमारा रोजमर्रा का व्यवहार ही हो गया है। न मालूम कितनी मुद्दतों से यह असत्य हमारे समाज में दाखिल हो गया है। मैं तो समझता हूं यह सदियों पुराना है। हम यह समझ बैठे हैं कि व्यवहार में झूठ बोलने से फायदा है। बेचनेवाला अपने माल की कीमत दस पैसे बताता है और खरीदार अुसे दो पैसे में मांगता है। बेचनेवाला अुसकी ठीक कीमत न बतलाना ही अुचित मानता है और खरीदार अुसे ठीक कीमत में न मांगना ही अपना कर्तव्य समझता है। यह हमारी रीति है। दूकानदार और ग्राहक के सम्बन्ध में जो बात पायी जाती है, वही सरकार और प्रजा के सम्बन्ध में भी पायी जाती है। सरकार फसल का अन्दाजा बेहद ज्यादा लगाती है और अिसलिअे किसान अपनी तरफ से बेहद कम अन्दाजा बताता है। दूकानदार और खरीदार के व्यवहार में जो असत्य है वह जब नष्ट होगा तब होगा; लेकिन प्रजा और सरकार के सम्बन्ध में तो यह झूठ कतअी न होनी चाहिअे। अिसलिअे लोगों से मैं कहता हूं कि वे जो असली हालत हो वही ठीक ठीक बताया करें। अुस में अत्युक्ति न करें।

देहाती सरकार

अब देहाती सरकार के विषय में अपने ख्याल पेश करता हूं। गणपतराव (स्वागताध्यक्ष) को जो कंस और रावण के जैसा मालूम होता है वह टेनेन्सी अॅक्ट मैंने देखा है। अुसका मराठी अनुवाद भी अिस आशा से देख लिया कि मराठी पारिभाषिक शब्दों से परिचय हो जाय। अुसे पढ़ने से और परिस्थिति के अवलोकन से मेरी यह राय हो गयी है कि वह मालगुज़ारों के भी फ़ायदे की चीज़ नहीं है। लगान–वसूली की ज़िम्मेवारी मालगुजार को सौंप कर सरकार अुसे लगान का ४० फी सदी हिस्सा देती है और खुद ६० फी सदी लेती है। अगर मालगुज़ार अिस ज़िम्मेवारी से बरी कर दिया जाय और ४० फी सदी लगान माफ़ कर दिया जाय तो मालगुज़ार का कोअी नुकसान नहीं है। क्योंकि मालगुजारी अितनी बँट गयी है कि पाअी, दीपाअी तक के मालगुज़ार ढेर पड़े हुअे हैं। अर्थात् ज्यादातर किसान ही मालगुजार हैं। अिसलिअे ४० फी सदी माफी अुन्हें भी मिलेगी ही। जिन मालगुजारों से अिस विषय में मेरी बात हुअी अुन्हें मेरी बात जँच गयी। ४० फी सदी की माफी से जो नुकसान और नफा होगा अुसका जोड़-घटाना करने के बाद बहुतेरों का तो फायदा ही होगा। मध्यम श्रेणी के मालगुजारों को नफा भी नहीं होगा और न नुकसान

होगा। जो कुछ थोडे बडे बडे मालगुजार हैं अुन्हें कुछ नुकसान होतासा दिखायी देगा। लेकिन वह भी सिर्फ कागजी होगा। क्योंकि लगान की अुगाही के लिअे अुन्हें किसानों पर नालिशें करनी पड़ती हैं; और अुनके लिअे गांठ से पैसा खर्च करना पड़ता है। वसूली न होने पर भी अुन्हें अुतनी रकम गिरह से सरकार को देनी पड़ती है। अिन सब बातों का हिसाब किया जाय तो अुनका बहुत नुकसान नहीं होगा। लेकिन जो सोलह आना मालगुजार हों, या जिनके पास खेती ज़रासी भी न हो, अुन मालगुज़ारों का कुछ नुकसान ज़रूर होगा। अुसके विषय में विशेषज्ञों को बैठकर कोअी तजवीज सोचनी चाहिअे; और अुनके किये यह हो सकता है। यह हुआ सिर्फ आर्थिक नफा-नुकसान का विचार। अिसके सांथ साथ धर्म और नीति का भी विचार करना चाहिअे। हिन्दुस्तान की आज की गिरी हुअी हालत में किसानों से लगान अुगाहने की ज़िम्मेवारी कबूल करना, अुसके लिअे गरीबों पर मुकद्दमे चलाना, और अिस सबका मुआवज़ा ४० फी सदी गांठ में बांधना महा पाप है। अैसी हालत में मालगुज़ारों को अपने आप ही सभायें करनी चाहिअे और सरकार से कह देना चाहिअे कि हम यह जिम्मेवारी नहीं चाहते। मालगुज़ारों की दलाली के कारण दुःखी और पीड़ित जनता का सरकार से सीधा सम्बन्ध नहीं आता। सरकार को प्रजा की, लोगों की, असली हालत का पता नहीं चलता। मालगुजार सरकार की ढाल बन जाते हैं। मालगुजार बीच में पड़कर यह पाप क्यों करें? मान लीजिये, कल लोगों ने स्वराज के लिअे करवन्दी का आन्दोलन शुरू कर दिया। अैसे मौके पर मालगुज़ार देशद्रोही साबित होंगे। वे जनता और सरकार की कैंची में पकडे जायेंगे। अुनकी हालत दांतों की पकड़ में जकडी हुअी जीभ जैसी हो जायगी। अिसलिअे मैं कहता हूं कि किसानों की नाअीं म.लगुज़ार भी जगह जगह सभायें करें और ४० फी सदी लगानमाफी की मांग करें। अुनकी सभाओं में यह प्रस्ताव मंजूर हो जायगा। अैसे मालगुज़ार मुझसे मिले हैं जो ४० फी सदी का अपना 'कमीशन' (दलाली) छोड़ देने के लिअे तैयार हैं। काँग्रेस ने यथासमय लगान ५० फी सदी कम करने की घोषणा की है। लेकिन हमारे मध्यप्रदश में तो अिस प्रकार आज ही ४० फीसदी लगान कम किया जा सकता है।

कोअी पद्धति त्रिकालाबाधित नहीं है

लेकिन यह मुश्किल क्यों हो जाता है? वर्गयुद्ध की फ़जूल कल्पना करने से। वर्गयुद्ध की बात चल पड़ते ही मालगुज़ारों पर भी ज़िद सवार हो जाती है। वे कहते हैं तुमसे जो बने करलो। हम अपने अधिकार नहीं छोडेंगे। अेक मालगुज़ार तो कहने लगा कि मेरे पास 'अीस्ट अिण्डिया कम्पनी' की दी हुअी सनद है। वह मुझसे कहता था कि अुस सनद में मुझे 'यावच्चन्द्रदिवाकरौ' मालगुजारी के अधिकार दिये गये हैं। मैंने अुससे कहा, भले आदमी, आज ही रात को अैसी घडी आनेवाली है जब न सूरज होगा और न चांद। अुस वक्त तुम्हारा कागज़ बेखटके फाड़ा जा सकता है। पूनम के सिवाय अैसी घडी हर रात को आया

ही करती है। राज्य भी आता है और जाता है। फिर तुम्हारे अिस कागज़ की कौन चलायी? गीता कहती है, और हम सब जानते हैं, कि अिस शरीर को भी छोड़ कर जाना होगा। जहां शरीर का यह हाल है वहां कागज़ क्या चीज़ है? अस कागजी मालगुज़ारी को लेकर द्वेष के भाजन क्यों बनते हो? जहां बदल है वहां कुछ मीठा और खट्टा होता ही है। जवान जब बूढ़ा हो जाता है, तो क्या होता है? विचार परिपक्व हो गये! शरीर दुर्बल हो गया। यह अिसी तरह चलेगा। अिस में डरने की क्या बात है? सृष्टि का यह नियम ही है। सृष्टि में प्रतिक्षण फर्क होता है; और अिसी-लिये असमें मज़ा है। प्रवाह में ही स्वच्छता है। अिसलिये जब लोग कहते हैं कि राजसत्ता, लोकसत्ता, या प्राज्ञसत्ता अथवा मंडलसता ही अच्छी है, तब अुनकी वह बात मुझे नहीं भाती। आदमी जब अेक पद्धति से अुकता जाता है तो दूसरी की बड़ाअी करने लगता है। वस्तुतः कोअी भी अेक पद्धति सदासर्वदा सर्वोत्तम नहीं हो सकती। जिसके पेट में दर्द है वह कहता है अिससे तो सिर का दर्द अच्छा! सिर के दर्दवाला कहता है, चाहे खांसी भले ही हो जाय, लेकिन अिस सिर के दर्द से तो छुटकारा मिले! अिसका भावार्थ अितना ही है कि मनुष्य हमेशा प्रस्तुत दुःख से छुटकारा चाहता है। अुसके लिअे वह हेरफेर करता ही रहता है। पेशवा गये और अुनकी जगह अंग्रेज़ आये। पेशवाअी के नाश का लोगों को कोअी दुःख नहीं हुआ। अलपिष्टन (अेलफिन्स्टन) साहब का ज़माना आया। लोग अंग्रेजी कानून की तारीफ़ करने लगे। "बराबर समय पर काम शुरू होता है, बराबर वक्तपर छुट्टी मिलती है। जहां देखो वहां सुप्रबन्ध है, और कानून की पाबन्दी है। लोग कहते थे, 'ये रामचन्द्रजी की सेना के वानर हैं। रामचन्द्र जी ने ही अिन्हें राज करने के लिअे भेजा है।" लेकिन ये ख्याल कितने दिनों तक टिके? पचहत्तर साल भी नहीं हो पाये और काँग्रेस स्थापित हो गयी। लोगों को अंग्रेजी राज्य के दुष्परिणामों का अनुभव होने लगा। अब अुन्हें अुसे बदलने की पडी। सारांश, मनुष्य हमेशा वर्तमान दुःख से छुटकारा पाने के लिअे हेरफेर किया करता है। अुसका किसी अेक ही प्रथा से नाता नहीं है। हम दुःखी हैं और दुःख से छुटकारा चाहते हैं। अिस लिअे हमें अपनी अपेक्षा पशुपक्षी भी सुखी मालूम होते हैं। थोडी देर पहले, ये लड़के गा रहे थे "देखो वे पक्षी कैसे स्वतंत्र हैं, आनंदी हैं।" यह तूने कैसे जाना? तुझे दुःख का अनुभव हो रहा है अिस लिअे तू अपने आप को दुःखी कहता है, यह ठीक है। लेकिन वे पक्षी आनंदी हैं, स्वतंत्र हैं, यह अनुमान तूने कहां से निकाला? क्या दरअसल तुमलोगों में से कोअी पक्षी बनना चाहता है? पक्षी कितने भयभीत और संत्रस्त होते हैं अिसका अनुभव करना है? परसों यहां के बंगले में अेक पक्षी आया। तमाम दरवाजे और खिड़कियां खुली थीं। लेकिन वह अितना घबराया हुआ था कि अुससे बाहर निकलते नहीं बनता था। वह समझता था कि किसी जाल में फंस गया हूं। वह अूपर ही अूपर

चक्कर काटता था, लेकिन नीचे को नहीं आता था। आखिर थक कर ज़मीन पर गिर पड़ा। दगडू (अेक साथी) ने अुसे अुठाकर खिड़की से बाहर झकोर दिया। वह 'फ़ुर्र' से अुड़ गया। वह अपनी कल्पना के जाल में फंसा हुआ था। अज्ञान में घिरा हुआ था। भला, पक्षी मनुष्य की अपेक्षा सुखी कैसे हो सकता है? हम अपने दुःख के कारण यह सब कहते हैं। मैं आपसे यह कहना चाहता था कि कोअी ख़ास प्रथा, पद्धति, स्थिति, व्यवस्था या संस्था सर्वोत्तम है यह सदा के लिअे तय नहीं हुआ है। समय समय पर आवश्यकता के अनुसार पद्धति में परिवर्तन करने की पद्धति ही सर्वोत्तम है। किसी ज़माने में मालगुज़ारी प्रथा अच्छी रही होगी। आज वह अच्छी नहीं है। अिसलिअे अुसे बदल देना चाहिअे। अिसमें किसीका भी नुकसान नहीं है। यह बात सबके गले अुतारनी चाहिअे। अिसे आप अुस दिशा में पहला प्रयत्न समझ लीजिअे। किसीके दिल में कोअी शंका हो तो वह बाद में मुझसे मिल ले।

काल्पनिक वर्ग-कलह

जहां वर्ग हैं ही नहीं वहां वर्गों की कल्पना करना और फ़िर अुनमें वर्ग-विग्रह मान लेना बडी भारी भूल है। यहां मुझे बादशाह और बीरबल का किस्सा याद आता है। अेक बार बादशाह दामादों पर नाराज़ हुआ और अुसने सारे दामादों को सूली पर चढ़ाने का निश्चय किया और बीरबल को अुनके लिअे सूल बनवाने का हुक्म दिया। अुसने अेक सोने का, अेक चांदी का और अनेक लोहे के सूल बनवाये। सोने-चांदी के सूल देखकर बादशाह ने पूछा 'ये किनके लिअे?' बीरबल ने कहा 'वह सोने का बना हुआ हुजूर के लिअे, और यह चान्दीवाला बन्दे के लिअे, क्यों कि आख़िर आप और मैं भी दामाद तो हैं ही'? यही बात मालगुज़ारी के साथ हुअी। आज मालगुजारी अितनी बंट गयी है कि करीब करीब हर अेक किसान मालगुजार है। मालगुजार को सूली चढ़ाना हो तो किसान भी सूली चढ़ाये जायेंगे। यह बात अलबत्ता ठीक है कि यदि कल मालगुज़ारी प्रथा नष्ट करने का आन्दोलन शुरू हो जाय तो कुछ नासमझ मालगुज़ार अपना अेक गुट्ट बना लेंगे। लेकिन चार जनों के थोडे समय के लिअे गुट्ट बना लेने से वर्ग नहीं बन जाता। और अेक बात मैं निश्चय से कहता हूं अुसे आप गांठ में बांध लीजिये, "दुर्जनों का वर्ग कभी हो ही नहीं सकता"। अपने स्वार्थ के लिअे वे कुछ काल अेकत्र आयेंगे, लेकिन अिसीलिअे अुनमें बिना फूट पैदा हुअे नहीं रहेगी। अुनमें चिरकाल के लिअे सहयोग हो ही नहीं सकता। अिसलिअे दुर्जनों के वर्ग से डरने का कोअी कारण नहीं है। वर्ग तो केवल सज्जनों का ही हो सकता है। और फ़िर आम जनता के विरुद्ध, किसानों के विरुद्ध, कोअी गुट्ट टिक ही नहीं सकता। आज मालगुज़ारी हटा देना बहुत जरूरी है। अिसमें किसी का नुकसान नहीं है। सभी का हित है।

लड़ाअी का तरीका

लेकिन यह देखना भी ज़रूरी है कि किसी भी दोषयुक्त प्रथा से लड़ाअी करने का सबसे अच्छा तरीका कौनसा हो सकता है? सबसे बढ़िया तरीका यह

है कि पहले अुस प्रथा में जो ज़हर हो अुसे निकाल देना चाहिअे। अैसा करने में, अगर वह प्रथा दोषमय ही हो तो विष निकालते ही वह भी नष्ट हो जायगी। अगर अुसमें कुछ निर्दोष अंश हो, तो वह अपने विशुद्धरूप में टिकेगी। किसी भी सुधार के आयोजन में अतिदूरवर्ती काल के काल्पनिक भविष्य का विचार नहीं करना चाहिअे। अैसा करने से प्रत्यक्ष दुःख–निवारण हो ही नहीं पाता। अिसलिअे हमेशा वस्तुस्थिति पर अुपाय–योजना करनी चाहिअे। कल्पना की तरंगों पर तैरते न रहना चाहिअे। हमारी मुख्य लड़ाअी अंग्रेज़ सरकार से है। अभी अंग्रेजी राज्य यहां से जाता नहीं रहा है। अैसी दशा में आगे चलकर कभी वकील, डॉक्टर, प्रोफेसर, साहूकार, मालगुजार, मिलमालिक, आदि अपना अेक वर्ग कायम करेंगे अिस की चिन्ता करने की ज़रूरत नहीं है। अगर वे वर्ग बनायेंगे, और जब बनायेंगे, तो और तब, देख लेंगे। आज हमारे सामने मुख्य सवाल अंग्रेजों का सामना करने का है। अिसलिअे हमें अपना मुख्य ध्यान अुसी पर देना चाहिअे।

खेती-सुधार और सरकारी मदद

खेतीसुधार आदि विषयों पर मैं बहुत थोडे में कह कर खतम करता हूं। खेतीसुधार में कअी बातें हैं। आज मैं आपको अेक छोटीसी चीज़ सुझा जाता हूं। आप मध्यप्रदेश के किसान कपास के खाली झाड़ तीन तीन महीने नाहक क्यों खडे रहने देते हैं? अुन्हें निकाल क्यों नहीं डालते? कपास बीनना खतम होते ही अुन्हें जाडों में ही क्यों काट नहीं डालते? ये झाड़ खेत में चुपचाप थोडे ही खडे रहते हैं। वे ज़मीन का कस (सत्त्व) चूसते रहते हैं। अेक अेक अेकड़ में कपास के ७० से ७५ हज़ार पेड़ होते हैं। अगर ये वक्त पर न निकाले जायें तो क्या वे बिना जमीन को निःसत्त्व बनाये रहेंगे? अगर तुम अितना भी कर लो तो मैं आज का अपना अध्यक्ष बनना सफल मान लूंगा। खेतीसुधार के आयोजन के बिना किसानों की हालत नहीं सुधर सकती। लगान कम करते करते कितना कम किया जा सकेगा? अुतने से किसान की हालत कैसे सुधरेगी? मेरा मतलब यह नहीं है कि लगान कम नहीं होना चाहिअे। कॉंग्रेस की यह घोषणा मशहूर ही है कि लगान ५० फीसदी कम होना चाहिअे। मैं कह चुका हूं कि अिस साल तो पूरा लगान माफ़ होना चाहिअे। लेकिन अितने से पूरा नहीं पड़ता। मेरा मतलब यह है कि सरकार से सिर्फ लगानमाफी की मांग कर के ही अुसे छोड न दीजिये। सरकार से अैसी योजनायें भी मांगिये जिनसे खेती अधिक अुर्वरा हो और भविष्य में फसल अच्छी आवे। बिना स्नान के जिस प्रकार मनुष्य शोभा नहीं देता अुसी तरह बिना कुअें के खेत शोभा नहीं देता। हर दस अेकड़ में अेक कुआं होना चाहिअे। बडे बडे पत्थर वृत्रासुर हैं। अुन्हें फोड कर पृथ्वी के पेट में जो पानी अड़ा हुआ है अुसे अूपर लाना चाहिअे। सरकार का ध्यान अिस तरफ़ क्यों नहीं दिलाते? आप यह क्यों नहीं मांगते? सिर्फ लगान कम होने से सम्पत्ति थोडे ही पैदा होगी? अुपज थोडे ही बढेगी

किसान को खेती के अलावा किसी न किसी मददगार धंदे की भी ज़रूरत रहेगी। अिसके बिना, खेती में सुधार करने पर भी हिन्दुस्तान का किसान नहीं जी सकता। सरकार का ध्यान अिधर दिलाना चाहिअे। सरकार के पास अिस तरह की मांगें पेश करो कि हम अपने गांव में तेलघानी शुरू करना चाहते हैं, बुनाअी शुरू करना चाहते हैं; आप अितने लड़कों की मुफ्त शिक्षा का अिन्तिज़ाम कीजिये। तुम अिस तरह की मांगें क्यों नहीं करते?

जीवन-सुधार

अिन सब बातों के साथ ही साथ अपने जीवन में भी कुछ सुधार करना चाहिअे। चन्द्रग्रहण के दिन और सोमवती अमावस के दिन लोग यहां नदी में नहाने आये थे। अुन्होंने बडे भक्तिभाव से नदी में स्नान किया। यहीं भोग लगाया। या यों कहिये, कि अुनका यह पिकनिक (वनभोज) ही था। लेकिन अिस पर जो धार्मिकता की छाप थी वह पिकनिक में नहीं होती। यह सब ठीक ही हुआ। लेकिन लोग जहां नहाते और खाते थे वहां से थोडी ही दूर पर दिशा-फ़रागत जाते थे। नदी में नहाना हिन्दू धर्म में पुण्यकर्म माना गया है। वेदों में कहा है, 'अुपव्हरे गिरीणां संगथेच नदीनाम्। धियाविप्रोऽजायत।' पर्वतों की गुफाओं में और नदियों के संगम पर ज्ञानप्राप्ति होती है। तीर्थस्थानों का अैसा माहात्म्य है। लेकिन वहां अैसी हरकतें! यहां के ब्राम्हण भी नदी किनारे बिना झिझक के दिशा फिरते हैं। ब्राम्हण मुझसे नाराज़ न हों। मेरा अुन्हें नमस्कार है। मैं तो अुनका ज़िक्र अिसलिअे कर रहा हूं कि वे सारे वर्णों के गुरु, स्वच्छ और पवित्र माने जाते हैं। खैर, तो अिसका कोअी अिलाज भी है? हां, अुपाय क्यों नहीं है? राम का धनुष्य कोअी निरुपयोगी चीज़ नहीं है। अुस हालत में पास तो जा ही नहीं सकते। दूर से बाण ज़रूर मार सकते हैं! यह हँसी हुअी। लेकिन मैं गंभीरता से कहना चाहता हूं कि यह पाप अिकहरा नहीं दुहरा नहीं, बल्कि तिहरा है। जहां जी चाहे तहां मैदान में मल-विसर्जन करने से कीमती खाद फ़िज़ूल जाता है। यह हुआ आर्थिक पाप। मल खुला रहने के कारण ज़मीन, हवा और पानी दूषित होते हैं। अुससे आरोग्य नाश का दूसरा पाप होता है। धर्महानि तो स्पष्ट ही है। वह तीसरा पाप है।

शुरू में यहां हमें दरिद्रता में से अुबारने के लिअे अीश्वर से चिरौरी करनेवाले गीत गाये गये। वे मुझे ज़रा भी नहीं भाये। अैसे दीनता का प्रदर्शन करनेवाले गीत लड़कों से क्यों गवाये जायें? हम दीन और दुर्बल कैसे? हमारी जैसी भावना होगी वैसी ही कृति होगी। यह दीनता नहीं चाहिअे। अीश्वर से अगर कुछ मांगना है तो हमें यही मांगना चाहिअे कि हममें यह दीनता की वृत्ति न रहे।

स्व० महावीरप्रसादजी द्विवेदी

[काका कालेलकर]

हिन्दूधर्म का वर्णन करते हुअे महाराष्ट्र के अेक अिसाअी लेखक ने अुसे वटवृक्ष की अुपमा दी थी। वटवृक्ष की हर अेक शाखा अपनी कील जमीन तक छोड देती है और मूल वृक्ष के साथ सम्बन्ध रखते हुअे भी अपना पोषण स्वतंत्ररूप से जमीन से सीधा ले सकती है। अिसी कारण मूल वृक्ष का धड़ बूढ़ा होकर सूख जाने पर, या पोला होने पर भी समूचा वृक्ष जिन्दा ही रहता है। अितनाही नहीं किन्तु अपनी छाया का विस्तार भी बढाता रहता है।

आचार्य महावीरप्रसादजी द्विवेदी की मृत्यु से हिन्दी साहित्य के जगत में और अुसके वृत्तविवेचन में अेक बडे वटवृक्ष की पींड़ का नाश हुआ है। वह कब की सूख गयी थी। तो भी अुसके आशीर्वाद का आधार वृक्ष की सब शाखाओं को मिलता रहता था। किसी गुरुकुल का कुलपति जिस तरह अपने अनेकानेक विद्यार्थियों को अन्नदानादि पोषण देकर पढ़ाता है अुसी तरह से सरस्वतीकुल के आचार्य द्विवेदीजी ने हिन्दी के कअी युवकों को प्रोत्साहन और दिशा-दर्शन का पोषण देकर साहित्यसेवी बनाया था।

महावीर प्रसादजी सच्चे भाषाभक्त थे, सच्चे साहित्यरसज्ञ थे। शुद्धि और समृद्धि का आग्रह ही तो हर अेक संस्कृति का आत्मा होता है। महावीर प्रसादजी में ये दोनों बातें भरपूर थीं। जिसे टकसाली हिन्दी हम कह सकते हैं अुसके वे आचार्य थे। अुनकी निगरानी में हिन्दी शैली ने आधुनिक रूप लिया।

वर्तमान हिन्दी के जनक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र माने जाते हैं। किन्तु आज अुनका साहित्य पढते चित्त पर यह असर होता है कि हम गुज़रे हुअे जमाने की भाषा सुन रहे हैं। महावीर प्रसादजी की भाषा आज वैसी ही प्रचलित है जैसी सरस्वती की स्थापना के दिनों में थी।

अेक बात सब प्रान्तों में देखी जाती है। जो लोग अपनी अपनी भाषा की साहित्यिक परम्परा की हलवाही करते आये हैं अुनकी भाषा मंजी हुअी और मुहावरेदार होते हुअे भी लोकसुलभ होती है। किन्तु वह भाषा अब कुछ पीछे सी पड गयी है। जिन लोगों ने अपनी भाषा और अुसके साहित्य पर कभी कुछ मिहनत नहीं की है, और कॉलेज में जाकर जिन्होंने संस्कृत और अंग्रेजी साहित्य पर ही सारा परिश्रम किया है, वे जब देशी भाषा में लिखते हैं तब अुनकी शैली सुन्दर, टकसाली, विपुलार्थवाही और संस्कारसंपन्न होते हुअे भी, परम्परा से वंचित होने के कारण, लोकसुलभ नहीं होती। भारत में विश्वविद्यालयों की स्थापना के बाद सब की सब प्रान्तीय भाषाओं की यही हालत हो गयी है। शायद अिसी कारण सभी प्रान्तों के शिक्षित समाज की भाषा, अगर हम लिपिभेद और प्रत्ययभेद को भूल जायें, तो अेकसी और जनता की भाषा से अलग हो गयी है। महावीर प्रसादजी की शैली, अिसी नयी शैली की प्रतिनिधि है या नहीं यह में नहीं कह सकता, किन्तु हम

लोगों को वह बिलकुल नजदीकसी मालूम होती है। हर प्रान्त की जनता अिस नयी शैली का ग्रहण करने की कोशिश तो करती ही है। किन्तु अिस शैली के भी अब, अपनी संस्कारिता परिपक्व करने के बाद, लोकसुलभ बनने के दिन आ गये हैं। शायद प्रेमचन्दजी ने यह कोशिश सबसे अधिक सफलता से की है।

यह बहुत ही अच्छा हुआ कि अंग्रेजी तालीम के विस्तार के साथ संस्कृत का या अरबी-फारसी का अध्ययन लाजिमी किया गया। कुछ दिन के लिअे अगर अुत्तर भारत में संस्कृत और फारसी दोनों का साथ साथ अध्ययन लाजिमी किया जाता तो सम्भव है कि हिन्दी और अुर्दू दोनों शैलियों के सव्यसाची शैलीधर पद्मसिंह के जैसे अिनेगिने नहीं रहते और मुसलमानों को हिन्दी का जितना खौफ आज है अुतना न रहता संस्कृत के कारण हमारी प्रान्तीय भाषायें अेक दूसरे के बहुत कुछ नजदीक आ गयी हैं। फारसी का अध्ययन भी अिसमें मदद ही करता; और अगर प्रान्तीय भाषायें लिपिभेद को टाल देंगी तो ये सब भाषायें बडे वेग से एक दूसरे के नजदीक अधिकाधिक आजायेंगी। प्रान्तीय लिपिभेद के कारण हम यह ज़ान भी नहीं सकते कि हम अेक दूसरे के कितने नजदीक हैं।

अेक व्यक्ति की हैसियत से भी महावीर-प्रसादजी का जीवन हमारे लिअे आकर्षक है। जीवन के सिद्धान्त निश्चित करके अुनके पालन में दृढ रहना, यह कोअी मामूली सिद्धि नहीं है। समयपालन, सिद्धान्तपालन और अखंड अुद्योग, ये त्रिविध सिद्धियां जिसने बतायीं वह अवश्य आचार्य है। फिर कोअी विद्यापीठ अुसे यह अुपाधि दे या न दे।

'सरस्वती' के द्वारा महावीरप्रसादजी ने न केवल हिन्दी का रूप निश्चित कर दिया, किन्तु वृत्तविवेचन का अेक अच्छा आदर्श भी देश के सामने रक्खा।

महावीर प्रसादजी के देहान्त के बाद जब मैंने अुनका आत्मकथन पढा—जो अुन्होंने द्विवेदी-अभिनन्दन-ग्रंथ का स्वीकार करते हुअे हिन्दी जगत के सामने रक्खा था—तब मुझे अुनके जीवन का अेक सुन्दर पहलू देखने मिला। साहित्य के द्वारा धन और कीर्ति पाने के लोभ से जब अुन्होंने अेक श्रृंगारप्रधान कथा लिख डाली और अैसे साहित्य के लेखक की 'कॅरियर' के स्वप्न देखने लगे तब अुनकी धर्मपत्नी ने अुनको किस तरह से रोका, अिसका वर्णन अुन्होंने शुद्ध और स्फटिकनिर्मल भाव से अुस आत्म-निवेदन में किया है। भारत की नारियों ने अपनी सौम्य शक्ति से देश के चारित्र्य-धन को आजतक कितना सम्भाला है अिसका यह अेक सबूत है। बिलकुल आश्चर्य नहीं कि महावीर प्रसादजी अपनी धर्मपत्नी के पूजक बने। अुनके आत्मनिवेदन का यह हिस्सा पाठक 'सर्वोदय' में अन्यत्र पढ सकते हैं।

आत्मनिवेदन के अिस अंश में अितनी पारदर्शक निर्मलता है कि साहित्यकार द्विवेदीजी की अपेक्षा आर्यव्यक्ति द्विवेदीजी ही विशेषरूप से हमारे सामने खडे हो जाते हैं। और जो पावन शक्ति स्वामी श्रद्धा-नन्दजी के "कल्याण मार्ग के पथिक" में हम पाते हैं वही शैत्यपावनत्व हम अिस रसीली पुस्तकों के बयान में अनुभव करते हैं।

द्विवेदीजी का कार्य सम्पन्न हो चुका है। अुनका कार्य आगे बढाने का अब सवाल

नहीं है। हिन्दी साहित्य के अेक युग को ही अुनका नाम मिल चुका ह। अुनकी चारित्र्यनिष्ठा, भाषा, और साहित्यनिष्ठा और निःसृह, निर्भय सिद्धान्तनिष्ठा यही हमारे लिअे अेक बडी विरासत है। द्विवेदीजी का असली स्मारक तो आज की हिन्दी में और अुसकी शैली के अेक अेक वाक्य में हम पाते हैं। द्विवेदीजी की तपस्या सिद्ध हो चुकी है। कृतकृत्य हो कर ही अुन्होंने अिहलोक छोड़ा है।

मेरी रसीली पुस्तकें

[स्व. आचार्य महावीरप्रसादजी द्विवेदी]

उस समय तक मैंने जो कुछ लिखा था उससे मुझे टकों की प्राप्ति तो कुछ हुई ही न थी। हाँ, ग्रन्थकार, लेखक, समालोचक और कवि की जो पदवियाँ मैंने स्वयम् अपने ऊपर लाद लीं थीं उनसे मेरे गर्व की मात्रा में बहुत कुछ इज़ाफ़ा ज़रूर हो गया था। मेरे तत्कालीन मित्रों और सलाहकारों ने उसे पर्याप्त न समझा। उन्होंने कहा—अजी कोई ऐसी किताब लिखो जिससे टके सीधे हों। रुपये का लोभ चाहे जो करावे। मैं उनके चकमे में आ गया। योरप और अमेरिका तक में प्रकाशित पुस्तकें मँगाकर पढीं। संस्कृत-भाषा में प्राप्त सामग्री से भी लाभ उठाया। बहुत परिश्रम करके कोई दो सौ सफे की एक पुस्तक लिख डाली। नाम उसका रक्खा 'तरुणोपदेश'। मित्रों ने उसे देखा। कहा, अच्छी तो है, पर इसमें काफी सरसता नहीं। पुस्तक ऐसी होनी चाहिए जिसका नाम ही सुनकर और विज्ञापन मात्र ही पढ़कर खरीदार पाठक उसपर इस तरह टूटें जिस तरह गुड़ नहीं, बहते हुए व्रण या गन्दगी पर मक्खियों के झुण्ड के झुण्ड टूटते हैं। कामकला लिखो, काम-किल्लोल लिखो, कन्दर्प-दर्पण लिखो, रति-रहस्य लिखो, मनोज-मञ्जरी लिखो, अनङ्गरङ्ग लिखो। मैं सोच-विचार में पड़ गया। बहुत दिनों तक चित्त दोलायमान रहा। अन्त में जीत मेरे मित्रों ही की रही। उनके प्रस्तावित नाम मुझे पसन्द न आये। मैं उनसे भी बाँस भर आगे बढ़ गया। कवि तो मैं था ही, मैंने चार चार चरणवाले लम्बे लम्बे छन्दों में एक पद्यात्मक पुस्तक लिख डाली—ऐसी पुस्तक जिसके प्रत्येक पद्य से रस की नदी नहीं, तो बरसाती नाला ज़रूर बह रहा था। नाम भी मैंने ऐसा चुना जैसा कि उस समय तक उस रस के अधिष्ठाता को भी न सूझा था। मैं तीस-चालीस साल पहले की बात कह रहा हूँ, आजकल की नहीं। आजकल तो वह नाम बाजारू हो रहा है—और अपने अलौकिक आकर्षण के कारण निर्धनों को धनी और धनियों को धनाधीश बना रहा है। अपने बूढ़े मुँह के भीतर धँसी हुई जबान से, आपके

सामने, उस नाम का उल्लेख करते मुझे बडी लज्जा मालूम होगी। पर पापों का प्रायश्चित करने के लिये, आप, पञ्च समाजरूपी परमेश्वर, के सामने, शुद्ध हृदय से, उसका निर्देश करना ही पडेगा। अच्छा तो उसका नाम था, या है–सोहागरात। उसमें क्या है, यह आप पर प्रकट करने की ज़रूरत नहीं, क्योंकि–

परेङ्गितज्ञानफला हि बुद्धयः।

मेरे मित्रों ने इस पिछली पुस्तक को बहुत पसन्द किया, उसे बहुत सरस पाया। अतएव उन्होंने मेरी पीठ खूब ठोंकी। मैंने भी अपना परिश्रम सफल समझा। अब लगा मैं हवाई किले बनाने। पुस्तक प्रकाशित होने पर उसे युक्तिपूर्वक बेचूंगा। मेरे घर रुपयों की वृष्टि होने लगेगी। शीघ्र ही मैं मोटर नहीं, तो एक विक्टोरिया ख़रीद कर उस पर हवा खाने निकला करूँगा। देहात छोडकर दशाश्वमेध घाट पर कोई तिमंज़िला मकान बनवाकर या मोल लेकर वहीं काशीवास करूँगा। कई कर्मचारी रक्खूंगा। अन्यथा हज़ारों वेल्यू–पेएबिल कौन रवाना करेगा ?

परन्तु अभागियों के सुखस्वप्न सच्चे नहीं निकलते। मेरे हवाई महल एक पल में ढह पडे। मेरी पत्नी कुछ पढी लिखी थी। उससे छिपा कर ये दोनों पुस्तकें मैंने लिखी थीं। दुर्घटना कुछ ऐसी हुई कि उसने ये पुस्तकें देख लीं। देख ही नहीं, उलट–पलट कर उसने उन्हें पढ़ा भी। फिर क्या था, उसके शरीर में कराला काली का आवेश हो आया। उसने मुझ पर वचन-विन्यास-रूपी इतने कडे कशाघात किये कि मैं तिलमिला उठा। उसने उन दोनों पुस्तकों की कापियों को आजन्म कारावास या कालेपानी की सज़ा दे दी। वे उसके सन्दूक में बन्द हो गईं। उसके मरने पर ही उनका छुटकारा उस दायमुलहब्स से हुआ। छूटने पर मैंने उन्हें एकान्त–सेवन की आज्ञा दे दी है। क्योंकि सती की आज्ञा का उल्लंघन करने की शक्ति मुझमें नहीं। इस तरह मेरी पत्नी ने तो मुझे साहित्य के उस पङ्क–पयोधि में डूबने से बचा लिया; आप भी मेरे उस दुष्कृत्य को क्षमा कर दें तो बडी कृपा हो।

('आत्मनिवेदन' का अेक प्रकरण)

मेरा यह विश्वास ही नहीं है कि जब कि अुसके पडोसी दुःख में डूबे हुअे हैं किसी अेक व्यक्ति की आध्यात्मिक अुन्नति हो सकती है। मनुष्यमात्र की––और अतअेव प्राणिमात्र की––मूलभूत अेकता में मेरा विश्वास है। अिसलिअे मैं तो यह मानता हूं कि अगर अेक मनुष्य की अध्यात्मिक अुन्नति होती है, तो अुसके साथ सारी दुनिया की अुन्नति होती है, और अेक व्यक्ति का पतन होता है तो अुस अंश में संसार का भी पतन होता है। सारी मनुष्यजाति अेक है। अीश्वर की दृष्टि में सभी मनुष्य समान हैं।

—गांधीजी

सर्वोदय की दृष्टि

कार्य समिति और प्रान्तवाद

हमारे देश में राष्ट्रवादी सार्वभौम सत्ता का राज्य हमेशा था अैसा हम नहीं कह सकते। भारतीय अैतिहासिक काल का अधिकांश भाग छोटे छोटे राज्यों का ही है। अैसा होते हुअे भी भारतीय जनता की संस्कृति अेकरूप ही रही है। अनेक भाषाओं का प्रचलन होते हुअे भी लोगों का हृदय तो अेक ही रहा है। धर्मप्रवृत्ति के कारण, सन्तमतप्रचार के कारण, चारधामों की यात्रा के कारण, सारा देश हमेशा अेक ही रहा है। मुसलमानों के राज्यकाल में भी भारतीय आत्मा का यही स्वभाव प्रभावी हुआ है। जनता में भाषा-भेद, धर्मभेद, रस्मरिवाजों और आहार का भेद होते हुअे भी अिस राष्ट्र के सांस्कृतिक दृष्टि से टुकडे नहीं पडे। हर अेक आदमी चाहे जिस प्रान्त में जाकर अुसे अपना सकता था, और वहां का होकर रह सकता था। हर अेक जाति और हर अेक प्रान्त के निन्दा स्तुति के वचन भाषा में रूढ होते हुअे भी आन्तरप्रान्तीय सहयोग अक्षुण्ण रहा। अब अैसे दिन आ-गये हैं जब लोग प्रान्तीयता को आगे बढ़ाकर अखिल भारतीय अैक्य को कम-जोर कर रहे हैं।

अेक बात अवश्य है। प्राचीन काल में जनता की जागृति और अस्मिता शायद आज के जैसी नहीं थी। और न्याय या अिन्साफ का आग्रह भी आज के जैसा अतिरेक तक नहीं पहुंचा था।

खैर, प्रान्त प्रान्त के बीच जो वैमनस्य हमारे देश में पैदा हुआ है अुसका कु अिलाज बताना जरूर हो ही गया था अच्छा हुआ कि अिस प्रश्न ने विहार-बंगाल के बीच में ही प्रकट रूप ले लिया हिन्दू-मुसलमानों के बीच जैसा परस्प अविश्वास और द्वेष बढ़ा है और न्याय दृष्टि का करीब करीब अस्तसा हो गय है वैसी हालत बंगाल-विहार के बीच है अिसलिये यह सवाल जलदी हल होने न आशा थी और न संभावना ही थी। फि पर भी बाबू राजेन्द्र प्रसाद जैसे सत्त्वशी राष्ट्रपुरुष को यह सवाल सौंपा गया था अिसलिये अिस प्रश्न का हल बहुत जल्द और वैज्ञानिक स्वरूप का हो सका। कांग्रे की कार्यसमिति ने अिस विषय में जो प्रस्ता किया है वह सब प्रान्तों के लिअे औ सब वर्गों को लागू हो सके अैसे शु स्वरूप का ही है।

असल में अगर देखा जाय तो यह सवा हमारे देश के वायुमण्डल में पैदा ही होता। यूरोप के छोटे छोटे राज्यों देशी विदेशी का झगडा हमेशा चल आया है। वही झगडा अुन्होंने दक्षि आफ्रिका में चलाया और गांधीजी भारतीय लोगों की तरफ से अिस सवा पर आठ दस सालतक लडना पडा यूरोप, अमेरिका और आफिरका, अि तीन खण्डों में यह झगडा आज भी अु रूप से चल रहा है। हमारे धर्म अुपनिषद् काल से मानवी बन्धुता का आदर्श राष्ट्र के सामने रक्खा गया है मित्र की दृष्टि से सब विश्व को दे

'मित्रस्य चक्षुषः सर्वाणि भूतानि समीक्ष्ये'। यह दुनिया मनुष्यजाति का छोटासा घोंसला है। 'यत्र भवति विश्वं अेकनीडम्'। 'अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम्। अुदार चरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्'। 'स्वदेशो भुवनत्रयम्'। यही हमारा आदर्श रहा।

अब यह आदर्श तभी सिद्ध हो सकता है जब शक्तिशाली व्यक्ति और प्रभावशाली पक्ष अपनी अपनी योग्यता समझ कर त्याग के आदर्श का स्वीकार करें, सेवाधर्म का स्वीकार करें।

तिज़ारत के लिअे चाहे जिस प्रान्त का आदमी चाहे जिस प्रान्त में जाकर रह। अुसमें रोकटोक न होनी चाहिअे। किन्तु जो आदमी जहां जाकर बसे वहीं का बन कर रहे यह स्वाभाविक और अिष्ट है।

अेक प्रान्त का आदमी दूसरे प्रान्त में जा कर रहे तो अुसे द्विभाषी या त्रिभाषी तो बनना ही चाहिअे। यह केवल अुसका राष्ट्रीय कर्तव्य ही नहीं है; किन्तु अिसी में अुसका लाभ और विकास भी है। अेक की जगह दो भाषायें सीखने से आजतक किसी का नुकसान नहीं हुआ। लाभ तो अपरिमित हुआ है। सरकारी या खानगी नौकरी में दो ही दृष्टियां प्रधान होनी चाहिअे। भाषा, सहानुभूति और परिस्थिति का ज्ञान; अिन तीन दृष्टियों से जो आदमी जनता की सेवा करने के लिअे अधिक से अधिक योग्य हो और अपने विशेष क्षेत्र का तद्विद् हो-अुसी को नौकरी मिलनी चाहिअे। फिर अैसा आदमी किसी भी जाति का, धर्म का, अथवा प्रान्त का क्यों न हो। अपनी ही जाति धर्म, पन्थ या प्रान्त के आदमी को पसन्द करने के आग्रह से न कार्य अच्छी तरह से सम्पन्न हो सकता है और न स्वकीय लोगों का अुसमें असली लाभ ही है।

हमारे राष्ट्रीय रहनसहन के आदर्श की अपेक्षा जब अधिक वेतन लोगों को मिलने लगा और लोगों का धनलोभ बढने लगा तभी ये प्रान्तीय झगडे शुरू हुअे। हर अेक नौकरी अगर सेवा का मौका और त्याग का साधन बन जाय तो ये प्रान्तीय झगडे चलेंगे ही नहीं।

अिस बात को हम भूल नहीं सकते कि हमारे देश के सारे प्रान्तों की स्थिति समान नहीं है। सब जाति और पन्थों की हालत अेकसी नहीं है। अिसलिअे दुर्बलों को कुछ तो मदद मिलनी ही चाहिअे। जमीन जब समान नहीं होती तब विषम स्थान का पानी वहां की जमीन का कस लेकर नीचे बह जाता है। अिसलिअे कुछ खास ध्यान तो रखना ही पडता है। किन्तु अिसके नियम, कानून और नीति तय करने से सम्भव है कि अिलाज ही मर्ज की बनिस्बत बदतर साबित हो। माता जैसी अपने सब बालकों के प्रति समान प्यार रखते हुअे भी हर अेक लडके को अुसकी आवश्यकतानुसार खिलाती है और हर अेक से अुसकी शक्ति तथा वृत्ति के अनुसार काम लेती है वैसी ही वृत्ति अिस प्रश्न के विषय में रखनी चाहिअे। जहां पर प्रेम का सम्बन्ध है, आत्मीयता है, वहां पर अदालती न्याय की दृष्टि से हम नहीं चलते किन्तु सर्वोदय की दृष्टि से ही चलते हैं। देश की व्यवस्था के लिअे अुसके विभाग बनाना अेक चीज है, किन्तु भिन्न भिन्न धर्म, भिन्न भिन्न भाषा और भिन्न भिन्न जतियों के कारण देश

के अलग अलग, अेक दूसरे से स्वतन्त्र हवाबन्द कमरे बनाने की अिच्छा रखना अत्यंत घृणित और पापमूलक है। अिस वृत्ति का विरोध हर राष्ट्रीय व्यक्ति को प्राणपन से करना चाहिअे।

केवल भाषाभेद से न तो संस्कृति-भेद हो सकता है, और न हितसम्बन्ध ही परस्पर विरोधी हो सकते हैं। भाषा तो लोकव्यवहार का अेक साधन है। और हमारी भारत की भाषायें तो अेक दूसरे के अितनी नजदीक हैं कि अगर लिपिभेद न होता और परस्पर मेलजोल बढ़ता जाता तो बिना प्रयास ही हमलोग अपने पडोसियों की भाषा सीख जाते। आज भी बहुत से कार्यकुशल और समर्थ लोग सीख जाते हैं।

शिक्षा के बारे में खास सोचना आवश्यक है। पिछडे हुअे लोगों के लिअे शिक्षा प्राप्त करने के साधन सब जगह अधिकाधिक सुलभ बनाने चाहिअे। पिछडे हुअे लोग आगे बढ़ने वालों को पीछे खींचते हैं। पिछडे हुअे लोगों को आगे बढ़ाने में सभी का लाभ है।

असली बात यह है कि हम जीवन को अेक सामाजिक कलह, कुश्ती या लडाअी न समझकर अगर अेक बडा सामाजिक सहयोग समझें और व्यक्ति के विकास को धनसंग्रह, और अधिकारसंग्रह से मुक्त कर दें तो सब बातें आप ही आप सुलझ जायेंगी।

१९:१:३९ का० का०

अहिंसक युद्धनीति का पथ्य-परहेज़

ता० ५ जनवरी, १९३९ की शाम को रानपुर (अुडीसा) में प्रक्षुब्ध लोगों के अेक झुंड ने, अुडीसा के राजनैतिक अेजेन्ट स्व० मेजर बाज़लगेट की हत्या की, यह समाचार पा कर हर अेक विवेकी देशप्रेमी के हृदय पर ज़बरदस्त आघात हुआ होगा। जब किसी खास जगह के लोग गुस्से में आकर अिस प्रकार के अत्याचार करने पर आमादा हो जाते हैं तो अहिंसात्मक प्रतिकार में विश्वास रखनेवाले लोकसेवकों को अन्तर्मुख हो कर विचार करना चाहिअे। अुडीसा में घटी हुअी शोचनीय घटना हमारी कमजोरी का लक्षण है। वह अिस बात का सबूत है कि अभी हम किसी तरह का अनुशासन नहीं सीखे हैं। युद्ध की मर्यादा का पालन करने की आदत हमें नहीं है।

सार्वत्रिक सिद्धान्त के रूप में अहिंसा की श्रेष्ठता और अुपयुक्तता का विचार 'सर्वोदय' के हर अंक में किया जाता है। अिस अंक में भी अुसका प्रतिपादन है। परन्तु यह टिप्पणी खासकर अुन लोगों के लिअे लिखी गयी है जो अहिंसा को केवल अेक व्यावहारिक नीति के रूप में मानते हैं। अुनकी दृष्टि से भी राजनैतिक हत्यायें या हिंसा असमर्थनीय, असंगत और अयुक्तिक है।

युद्ध चाहे सशस्त्र हो या निःशस्त्र अुसकी अपनी निश्चित मर्यादायें होती हैं, खास नियम होते हैं और नियत अनुशासन होता है। जो बेमौके वार कर देता है, गुस्से को सम्हालना नहीं जानता, क्षोभजनक परिस्थिति में आपे से बाहर हो जाता है, सब्र का नाम नहीं जानता, वह सिपाही नहीं है, आततायी, अत्याचारी, हत्यारा है।

चाहे व्यवहार्य नीति की दृष्टि से ही क्यों न हो, हमने अहिंसक प्रतिकार का मार्ग पसन्द किया है। जबतक हम अुसे निकम्मा समझकर छोड़ नहीं देते तबतक अुसकी मर्यादाओं का पालन हमें सावधानी से और अीमानदारी से करना चाहिअे। किसी चीज़ को आज़माना हो तो आधे दिल से आज़माने से कोअी नतीजा नहीं निकलता। प्रयोग की सफलता की यह अनिवार्य शर्त है कि वह अेकनिष्ठा और हार्दिकता से तथा बुद्धिमानी और सावधानी से किया जाय।

कुछ लोग कहते हैं, "हमने अहिंसा को धर्म थोडे ही मान लिया है। हमारी आज की निःशस्त्र स्थिति में हमारे लिअे वही अेक सहज–साध्य और अुपयुक्त नीति है, अिसलिअे हमने अुसे अखत्यार किया है। खालिस और कोरी अहिंसा कहांतक कामयाब होगी अिसके विषय में हमें सन्देह है। भारतवर्ष की राष्ट्रीय जागृति और अुन्नति तो हिंसा–अहिंसा के द्विविध आन्दोलन से हुअी है। अेकमुखी अहिंसक प्रतिकार से नहीं। अिसलिअे जब कभी कभी अैसी हत्यायें हो जाती हैं तो अत्याचारी सत्ताधारियों के दिल में दहशत पैदा हो जाती है। यह अुसका अेक बड़ा अच्छा परिणाम है। शस्त्र का स्पर्श होते ही सचैल स्नान करने वाली अपरसी अहिंसा को दूर ही से नमस्कार है। अैसी अहिंसा जैनियों के मठों को मुबारक हो, राजनैतिक और आर्थिक रणक्षेत्र में अुसका काम नहीं है।"

कुछ दूसरे अैसे भी हैं जो राष्ट्रीय नीति के रूप में तो निःशस्त्रप्रतिकार के ही पक्षपाती हैं। लेकिन सशस्त्र प्रतिकार या हत्या करनेवालों को अधिक बहादुर और निडर समझ कर वे अुनकी अधिक अिज्जत करते हैं। वे कहते हैं कि "जो हमसे नहीं बनता वह कर दिखाने की अिनकी सामर्थ्य और हिम्मत है। ये देशभक्तों के सरताज हैं। हमारा साधन अुपयुक्त है अिनका अुत्कृष्ट है। सबका ध्येय तो अेक ही है। अपनी अपनी कूवत के मुवाफ़िक़ जिसे जो साधन सुसाध्य हो वह अुसका स्वीकार करे। अिसमें विरोध, निन्दा और निषेध की गुंजाअिश ही कहां है?"

जो अिस तरह तर्क करते हैं वे युद्ध-नीति के नियम या तो जानते नहीं हैं, या भूल गये हैं। अुनके साधन सम्बन्धी विचारों में अुलझन या खल्तमल्त है। अुनका यह ख्याल है कि अेक ही साध्य के कअी साधन हो सकते हैं। और अुनका सह–अनुष्ठान (अेकसाथ अमल) भी हो सकता है। लो० तिलक ने अेक बार हिंदूधर्म की व्याख्या करते हुअे अुसका अेक लक्षण "साधनानामनेकता" भी बताया था। कुछ लोग अुसी सिद्धान्त को राजनैतिक क्षेत्र पर भी लागू करना चाहते हैं। लेकिन "साधनानामनेकता" का अर्थ "साधनानामनिश्चितता" नहीं है। किसी अुद्देश को प्राप्त करने के चाहे कितने ही साधन क्यों न हों, हमें अपनी शक्ति, परिस्थिति और अधिकार के अनुसार अुनमें से किसी अेक को पसन्द कर लेना पड़ता है, और अविचलित निष्ठा से अुसका अनुष्ठान करना होता है। "अेक वक्त अेक ही चीज़ को ले लो और अुसे अच्छी तरह करो" यह नियम साधनों के विषय में भी सही है। जब कुछ लोग अेक ही ध्येय की प्राप्ति के लिअे परस्पर विरोधी

साधनों के सह–अनुष्ठान का समर्थन करते हैं तब तो हमें अुनके अविवेक और अव्यवहार्यता पर ताज्जुब होता है ।

आज हमारे राष्ट्र ने—केवल अपनी मौजूदा हालत और कूवत के ख्याल से ही क्यों न हो—निःशस्त्र प्रतिकार के प्रयोग का निश्चय किया है। अपने फ़ायदे के लिअे तात्कालिक नीति के रूप में भी जब हम कोअी रास्ता या तजवीज़ पसन्द करते हैं तो बुद्धिमानी अिसी में है कि हम अपनी सारी ताकत, सारी बुद्धि और सारी बहादुरी अुसे कामयाब करने में लगा दें। सवाल यह नहीं है कि कौनसा रास्ता ज्यादा बहादुरी का या सुहावना है। सवाल यह है कि अपनी शक्ति और साधना देखते हुअे हमने कौनसा रास्ता अपने लिअे पसन्द किया है और ठीक समझा है। जब हमने अपने मुकाम पर पहुँचने के लिअे अेक खास रास्ता ले लिया है, सोच विचार कर ले लिया है, तब हमारा यह कर्तव्य हो जाता है कि हम अपने फ़ायदे के लिअे, और जल्दी से जल्दी मंजिल तय करने के लिअे, अुसी पर अडिग रहें और अुसे अीमानदारी से आज़मायें। जो अुसके खिलाफ़ रास्ता लें अुनको समझावेंबुझावें और अुनके रास्ते के विषय में अपनी अरुचि और निषेध प्रकट करें।

थोडी देर के लिअे सिद्धान्त की बात जाने दीजिये। मामूली समयज्ञता, दूरान्देशी और व्यवहारकुशलता की ही बात लीजिअे। युद्धनीति की ही बात ले लीजिअे। जिस समय जिस आयुध का और जिस पद्धति से प्रयोग करना तय हुआ हो; क्या अुसके विरुद्ध काम करना घोर अनुशासनभंग और स्वपक्षद्रोह नहीं माना जायगा? कभी कभी सामुदायिक कार्य के लिअे व्यक्तिगत वीरता भी घातक सिद्ध होती है। हमारे सामने राष्ट्रीय सामुदायिक नीति का सवाल है।

और फिर मेजर बाज़लगेट की हत्या में तो वीरता भी नहीं है। वह तो विकारवश समूह का अनियंत्रित हिंसाचार है। न अुसमें पूर्व योजना है, न व्यवस्था है और न अनुशासन। विकारवश और अुन्मत्त लोकसमुदाय का वह निर्घृण अत्याचार है। दबी हुअी हिंसा का नाम संयम नहीं है। लाचारी के कारण जो लोग प्रतिकार नहीं करते वे अहिंसक नहीं होते। अुनकी कोअी नीति या योजना नहीं होती। वे तो विकारवश होकर मनमाना आचरण करते हैं। कायरता से हिंसा श्रेष्ठ भले ही हो, परन्तु विकारवशता से अुत्पन्न अनियंत्रित हिंसाचार से कोअी भी समाज बहादुर नहीं होता। लोगों की विशेष परिस्थिति में अुनकी शक्ति और साधनों के अनुकूल प्रतिकार का जो तरीका हो अुसीकी शिक्षा अुन्हें देनी चाहिअे और अुसकी स्पष्ट मर्यादाओं की अुन्हें पग पग पर याद दिलाना चाहिअे। सुव्यवस्थित और सफल युद्धनीति का यही नियम है। सामुदायिक सत्याग्रह के नेताओं को और संचालकों को अैसे मौकों से साधननिष्ठा की नसीहत लेनी चाहिअे। केवल धिःकार के देने से हमारी योग्यता नहीं बढेगी।

साध्यसाधन के सापेक्ष महत्त्व का विवेचन अन्यत्र किया गया है। अहिंसा धर्म (क्रीड) और अहिंसा-नीति (पॉलिसी) के सूक्ष्म भेद की व्याख्या करने का यहाँ हमारा विचार नहीं है। लेकिन विचारपूर्वक हम जिस नीति को अंगीकार करते हैं असकी स्पष्ट मर्यादा

और पथ्य की तरफ़ संकेत करना हर अेक लोकसेवक का काम है। यहां वही करने की कोशिश की गयी है।

९:१:३९. दा० ध०

गांधीविचार की मौलिक विशेषता

काका साहब ने अेकबार कहाथा कि "गांधीवाद और समाजवाद समानान्तर (पैरेलल) प्रवृत्तियां हैं। हम समाजवादियों को अपना प्रतिस्पर्धी भले ही मानें लेकिन प्रतिपक्षी नहीं मानते।" गांधीवाद और समाजवाद का जैसे जैसे विकास होता जा रहा है वैसे वैसे अिन दोनों के अेक दूसरे के निकट आने के चिन्ह दिखायी देते हैं। कुछ समाजवादी अपने आपको (लेफ्टिस्ट) 'वांयी तरफ़वाले' और दूसरों को (राअिटिस्ट) 'दाहिनी ओरवाले,' कहते हैं। अिसलिअे कुछ लोग अुन्हें 'वाममार्गी' और दूसरों को 'दक्षिणमार्गी' भी कहते हैं। लेकिन गांधीजी की दृष्टि की यह खासियत है कि वह हमेशा समानता या मेल-मिलाप ही खोजती है और अुसी पर जोर देती है। विवाद की अपेक्षा अुसे संवाद अधिक प्रिय है; क्योंकि अुसकी जड अहिंसा है। अिस लिअे गांधीजी की दृष्टि से समाजवादियों को और गांधीवादियों को अेक दूसरे से हम-कदम होने की कोशिश करनी चाहिअे। अिसीमें देश का श्रेय है। समानान्तर रेखायें चाहे अनन्त में जाकर मिलें या कतअी न मिलें; परन्तु हमारे देश के हित के लिअे यह अत्यन्त आवश्यक है कि गांधीवादी और समाजवादियों का झुकाव अेक दूसरे से अधिक से अधिक मेल करने की तरफ़ रहे। अिस विधायक दृष्टि से प्रयत्न कुछ समाजवादी नेता कर रहे हैं यह अेक शुभ चिन्ह है। अिस दृष्टि से लगभग दो वर्ष पहले बाबू सम्पूर्णानन्द ने अेक लेख "विशाल भारत" में लिखा था, और पिछले दिनों, ता: १ दिसम्बर १९३८ को पूना के "विद्यार्थी सप्ताह" में श्री अेम्. आर्. मसानी ने अेक व्याख्यान दिया। अुस व्याख्यान के बाद हाल ही में अुन्होंने अेक लेख लिख कर गांधीजी से पूछा है कि क्या वे दरअसल सम्पत्ति की सामाजिक मालकियत के हामी हैं? श्री मसानी की राय में गांधीजी और समाज-वादियों में अगर कोअी मौलिक भेद है तो अिसी प्रश्न पर है। अुनके प्रश्न का अुत्तर हम गांधीजी के लिअे छोड़ देते हैं; वह हमारा काम नहीं है। श्री मसानी ने अपने व्याख्यान में "गांधीवाद और समाजवाद" के साम्य और भेद की जो मीमांसा की है अुसकी थोडी समीक्षा यहां की जाती है।

श्री मसानी ने 'गांधीवाद' और 'समा-जवाद' में ख़ासकर तीन बातों में भेद बताया है:– (१) समाजवादी खानगी सम्पत्ति के विरोधी हैं और गांधीजी तथा हिटलर अुसके पक्षपाती। (२) गांधीजी सारी बुराअी की जड़ यन्त्रों को मानते हैं और वर्ग–विग्रह के विरोधी हैं। (३) गांधीजी साध्य की अपेक्षा साधन को श्रेष्ठ मानते हैं।

श्री मसानी अपने आपको वैज्ञानिक समाज-वादी कहते हैं और समाजवाद के दूसरे संस्करणों को नकली या अशुद्ध बतलाते हैं। अिसलिअे अुनके मन्तव्यों के विषय में अपने विचार स्पष्ट कर देना हमें आवश्यक मालूम होता है—

(१) गांधीजी खानगी सम्पत्ति के आग्रही नहीं हैं। वे तो "अपरिग्रह"

के सिद्धान्त के पुरस्कर्ता हैं। जहां अपरिग्रह है वहां खानगी सम्पत्ति कहां से आयी? सम्पत्ति के अुत्पादन के साधनों के राष्ट्रीकरण के अनुकूल वे अपनी राय जाहिर कर चुके हैं। वर्तमान जगत् में जो शोषण जारी है अुसका सम्पत्ति के राष्ट्रीकरण से सदा के लिअे कहांतक अन्त होगा अिसके विषय में अुन्हें शंका है। वे मनुष्य के व्यक्तिगत विकास के अधिक परिणाम-कारक और टिकाअू अुपाय की खोज में हैं।

(२) गांधीजी यन्त्रों के विरोधी नहीं हैं, बल्कि यन्त्रवाद के। यन्त्र मनुष्य को बेकार या निष्क्रिय बनाने के लिअे नहीं होने चाहिअे। यन्त्रविरोध गांधीवाद का कोअी आवश्यक अंग नहीं है। मनुष्य को निठल्ला या निकम्मा न बनाते हुअे अुसके कार्य को सुकर करनेवाले यन्त्रों के लिअे अुसमें स्थान है। बडे पैमाने पर माल की पैदाअिश का संसार को आजतक जो अनुभव हुआ है अुसके कारण गांधीजी को अुस पद्धति के लिअे ख़ास आकर्षण या रुचि नहीं है। लेकिन वे शुष्कश्रमवादी, केवल कष्टवादी या निष्फल क्लेशवादी भी नहीं हैं। गांधीजी भी आर्थिक विषमता नष्ट करना चाहते हैं। वर्गभेद अुन्हें भी अखरता है। समाजवादी वर्ग-विहीन समाज की स्थापना चाहते हैं। अुनकी यह व्याख्या व्यतिरेकी है। गांधीजी 'वर्ग-विहीन समाज' जैसा निषेधात्मक शब्द-प्रयोग न करते हुअे 'रामराज्य' जैसा विधायक शब्द अधिक पसन्द करते हैं। अुन्होंने स्पष्ट कह दिया है कि "मेरे स्वप्न के रामराज्य में राजा और रंक का दर्जा अेक ही होगा।" याने राजा भी राम होगा और रंक भी राम होगा। "राम राजा, राम प्रजा राम साहूकार" होगा। अिसीका अर्थ हुआ न राजा होगा, न रंक होगा और न साहूकार होगा। गांधीजी को वर्ग-विग्रह या अन्य किसी विग्रह का कोअी खास शौक नहीं है; और न समाजवादियों को ही होना चाहिअे। अुनका मनुष्य-स्वभाव में असीम विश्वास है। वे किसी व्यक्ति को बिलकुल अशोध्य या ला-अिलाज़ नहीं मानते। अिसीलिअे वे पूंजीपतियों को भी अितना गयागुज़रा नहीं मानते कि अुनका सुधार ही न हो सके। फिर भी यदि वर्ग-विग्रह अनिवार्य ही हो तो वे यहां भी अपने सत्याग्रह के अमोघ अस्त्र का ही प्रयोग करेंगे।

अिस विवेचन से यह स्पष्ट हो जायगा कि खानगी सम्पत्ति, यन्त्रविरोध और वर्ग-भेद के प्रश्नों पर 'गांधीवाद' और 'समाजवाद' में कोअी मौलिक या अपरिहार्य भेद नहीं है।

(३) अब श्री मसानी के अिस आक्षेप का कि गांधीजी साध्य की अपेक्षा साधन को श्रेष्ठ मानते हैं विचार करना चाहिअे।

श्री मसानी वैज्ञानिक और विशुद्ध समाजवाद के अधिकारी प्रवक्ता हैं। गांधीवाद और समाजवाद की मौलिक समानता बताते हुअे अुन्होंने कहा है कि दोनों की मूल प्रेरणा मनुष्य के प्रति प्रेम में है। यह बिलकुल न्यायसंगत भी है। जब कि समाजवादी समाज में से "लाभ की प्रेरणा" को हटा देना चाहते हैं और अुसके बदले समाजसेवा को प्रेरकशक्ति (अिन्सेन्टिव्ह) बनाना चाहते हैं तो मनुष्य के प्रति प्रेम ही अुनकी सारी योजना का अवलम्ब हो सकता है। मनुष्य के प्रति प्रेम से अेक दूसरा अुप-सिद्धान्त अनिवार्यरूप से निकलता है। वह है मनुष्य-स्वभाव में विश्वास; जिसका अर्थ है मनुष्य

की सत्प्रवृत्ति में विश्वास। अिसी विश्वास का परिणाम गांधीजी का अहिंसा-आग्रह है। वर्ग अेक अव्यक्त या अमूर्त भावना है। दरअसल व्यक्तियों के संयोग से ही वर्ग बनता है। अिसलिअे वे किसी वर्ग या प्रणाली को अहिंसात्मक प्रतिकार का अविषय नहीं मानते।

समाजवादियों को नरमेध या शस्त्रास्त्रों में कोअी खास रुचि नहीं है। वे भी प्रचलित मूल्यों को बदलकर मनुष्य के जीवन और श्रम की प्रतिष्ठा बढ़ाना चाहते हैं। अुनका हंसिया और हथौड़ा अिसीका प्रतीक है। लेकिन अुनका साध्य जैसा विशुद्ध और वैज्ञानिक है, वैसा अुनका साधन नहीं है। क्रान्ति के विज्ञान में साधन का भी महत्त्व बहुत बड़ा है। समाजवादियों के साध्य–निश्चय में वैज्ञानिकता है, क्रान्ति है। लेकिन साधन –निश्चय में अभी पुराण–प्रियता और अवैज्ञानिकता है। गांधीजी का साधन-शुद्धि का आग्रह अिस बात का सबूत नहीं है कि वे साधन को मुख्य और साध्य को अमुख्य मानते हैं; वरन अिस बात का कि वे अपने साध्य के अनुकूल साधन की योजना और संशो-धन करना चाहते हैं। जो साधन साध्य के अनुरूप हो वह अधिक प्रत्यक्ष और सीधा होता है। साध्यानुकूल साधन की योजना गांधीजी की क्रान्तिकला का प्रधान और अपूर्व अंग है। अुनकी यह साधन –निष्ठा अुनकी विशेषता है। वे साध्य और साधन को अुलझाते नहीं हैं; बल्कि अुनमें अभेद देखते हैं। श्री मसानी जैसे वैज्ञानिक क्रान्तिवादी साध्य–साधन के अिस अभेद्य संबंध पर अपनी तर्क–कर्कश दृष्टि से विचार करें तो गांधीजी की साधन–निष्ठा का भेद समझते अुन्हें देर न लगेगी। और फिर शायद वे अुनके अधिक निकट आनेमें ही समाजवाद का भी विकास देखेंगे।

बाबू सम्पूर्णानन्द कहते हैं "समाजवाद के लिअे गांधीवाद यमुना का अभिनय करेगा" और श्री मसानी कहते हैं "गांधीवाद ने समाजवाद के लिअे सोपान का काम दिया है"। कौन गंगा है और कौन यमुना है, अिस झगडे में न सार है और न प्रतिष्ठा। गांधीजी और दूसरे क्रान्तिवादियों में सबसे महत्त्व का भेद "साध्य–साधन–विवेक" के विषय में है। गांधीजी ने साध्य के अनुरूप साधन का आविष्कार और प्रयोग करने का पुरुषार्थ दिखाया है। अिसीलिअे अुनकी क्रान्तिप्रणाली में व्यक्तिगत अनुष्ठान का बहुत बड़ा महत्त्व है।

लेकिन ये और अिस प्रकार के दूसरे भेदों का विचार यहां पर अप्रस्तुत होगा। समाजवादियों में और गांधीजी में जो मौलिक भेद है वह साधनैक-निष्ठा का है। अुसके अतिरिक्त दूसरे सारे भेद गौण हैं। श्री मसानी ने अपने भाषण में यह बात बडे स्पष्ट शब्दों में मान ली है कि हिंसक क्रान्ति के बाद फासिस्ट प्रवृत्ति ज़ोर पकड़ती है। अहिंसक क्रान्ति की ओर बढते हुअे झुकाव का यह प्रसादचिन्ह है। समाजवादी भी तलवार को मियान में रखकर अेक दिन अुसका हल बनाने के पक्षपाती हैं। अुनकी युद्धनीति में भी हिंसा आपद्धर्म है। गांधीजी में और अुनमें सबसे बड़ा साम्य अिसी बात में है। तलवार के स्थान पर अुतने ही प्रभावशाली और कार्यक्षम अहिंसक साधन के प्रयोग में हाथ बँटाना समाजवादियों के लिअे अुपयुक्त ही नहीं बल्कि सुसंगत और सयुक्तिक भी होगा।

हिंसावर्जित समाजवाद गांधीविचार की ओर दिन पर दिन अधिक झुकेगा और अुसीमें अपना सच्चा विकास देखेगा। गांधीविचार और समाजवाद के दूसरे महत्त्व के भेद भी आज की अपेक्षा कम तीव्र और कम मूलभूत जान पडेंगे। क्योंकि दोनों का विकास अभी कुंठित नहीं हुआ है।

ता० १२।१।३९. दा० ध०

निरर्थक भाषावाद

बम्बअी के अेक सज्जन का आया हुआ खत कुछ संक्षेप कर के अुन्हीं के शद्बों में नीचे दिया है।

" 'राष्ट्रभाषा' के ठीक हाल अवतक हमें मालूम नहीं है। हिन्दी, हिन्दुस्तानी और उर्दू इसका जिक्र इतना भद्दा हो गया है। और इतनी नफरत पर पहुँचा है कि हर एक शानदार हिन्दुस्तानी के लिये यह जबानी झगडा बडी शर्म की बात हो चूकी है।

" इन सब बातों को भूलने का एक ही तरीका है--वह सब बातों को दफनाना। हमारे पास कोई खास जबान है ही नहीं। अुसको बनाने के लिये जो मदद हम को चाहिये वह हम हिंदी उर्दू में से लेंगे; क्योंकि आज भी हम अगर मद्रास के बडे बडे शहरों का दौरा लगायँ तो मुसाफिरों की हिंदुस्तानी कुछ हिस्से में तो मजदूर और बेपारी लोग समझ लेते हैं। मेरी राय में यह लोग कोई खास तौर पर इस जबान की तालिम लेने को नहीं गये। इसलिये हिंदी या उर्दू जो कुछ भी हमारी सीधीसादी समज आने लगे वह है हमारी 'हिंदुस्तानी'।

"मुख्तसर नतीजा यह है।

(१) आज से "यही हिन्दुस्तानी है" ऐसा दावा न किया जाय।

(२) 'हिन्दुस्तानी' हरएक सूबे में अपनी अपनी चाल को पकड लेगी इस कदर जो तरक्की हिन्दुस्तानी की हो उस पर भले दूर रहकर निगरानी की जाय पर सीधीसीधी सलाह के रोड अुसकी राह में न डाले जायें। उदा० मैं दो बातें बताना चाहता हूं--

"श्री. वल्लभभाई पटेल जब हिंदुस्तानी बोलते थे तब पहले पहल तो मैं बहुत ही हंसता था। सुभाष बाबू का हिंदुस्तानी भी मुझे बहुत ही नापसंद रहा था। मगर आज मुझे यही बात बताने की है कि 'हिंदुस्तानी' वही है जो हमारी समझ में आ जाय--उसका खास कायदा (व्याकरण) वगैरा हम आपस आपस में उसका आमतौर इस्तेमाल कर ठीक कर लेंगे। हिंदुस्तानी की तालिम का सवाल बहुत ही बड़ा और ज़रूरी होने पर भी उसके लिये सब्र सबूरी--वेट अेन्ड सी--का रास्ता अइख्तियार करना पडेगा। फिलमवाले हिंदुस्तानी की ठीक तरक्की कर रहे हैं। मैं एक कॉलेज के पास में ही पेशा लिये बैठा हूं। देखता हूं के तालिबों की आपस की बातें वही फिलमी हिंदुस्तानी का सहारा लिये हुआ करती हैं--यह सब के सब गुजराती, महाराष्ट्री, कोंकणी, गोवा

या कारवार की ओर से आये हुये होते हैं। अंग्रेजी का असर कुछ कम नहीं है फिर भी 'हिंदुस्तानी' अब चल रहा है। महाराष्ट्री जब हिंदुस्तानी इस्तमाल करते हैं तब जहाँ हिंदुस्तानी लब्ज नहीं आया तत्सम संस्कृत ठोक देते हैं जिसका महाराष्ट्र में एक रूढ प्रयोग बन गया होता है। गुजराती भी ऐसी ही कुछ कमाल करते हैं जो किसी जबान में ढूंडने जाओ तो न मीले। ऐसा होते हुवे भी आपस की मतलब पूरी निकल आती है--काम ठीक चल जाता है। वक्त आने पर सब लोग जिस जबान को मुंह नीकालते हैं उस को ठीक कर लेने का आप ही सोच लेंगे--अुनको सोचना ही पडेगा। तब हिंदी उर्दू का या फारसी अरब्बी और संस्कृत का झगडा आपही हट जायगा।

"हमारा क्या फर्ज है? हर एक आदमी के सामने यह सवाल पेश होता ही है। हिंदुओं से फारसी अरब्बी बडी मुश्किल से पढी जाती है। तो भी थोडे हिंदु लोग फारसी पढते हैं— किन्तु शायद ही कोअी मुसलमान संस्कृत पढने की कोशिश करता होगा। नतीजा तो आप जानते ही हैं— गुजराती मराठी में कोई नामी साहित्य-स्वामी मुसलमान नहीं हुवा। आज भी हमको ही अुर्दू पढना पडेगा। फारसी अरब्बी लब्ज सीख लेने होंगे और मुसलमानों में सच्ची तालिम का फैलाव अुन्हें जचे अैसे ढंग से करना होगा। अुर्दू सीखते वक्त हिंदु को यह डर होना नामुमकिन है के वह संस्कृत को शायद भूल जाय।

"अलबत्त नागरी लिपी की बराबरी अरब्बी से कभी न हो सकेगी। अरब्बी की तकलिफ के लिये एकही उदाहरण काफी है—स्व. आतातुर्क— मुस्तफा कमाल ने उसको तुर्कस्तान में से रोमन लिपी की पसंदगी कर रूख्सद दे दी।

"मेरा भी यही तर्जुबा हुआ है। फिर भी अरबी लिपी जिसको सीखना है सीखानेवाला होना ही चाहिये यह बात सही है।"

और भी लोगों ने यह शिकायत की है कि "मुसलमान लोग अिसी देश के होते हुअे भी यहां की प्रान्तीय भाषाओं को बहुत कम सीखते हैं और राष्ट्रभाषा के बारे में भी जब हिन्दी और अुर्दू को अेक दूसरे के पास लाने की बात चलती है तब अपना स्थान तो कभी भी नहीं छोडते और दूसरे पक्ष को पास आने की आज्ञा करते रहते हैं। अगर समझौता करना चाहते हो तो तुम आधा रास्ता चलकर पास आ जाओ; किन्तु हम तो जहां थे वहीं रहेंगे। दुबारा जब समझौते की बारी आयेगी तब बाकी रहा हुआ अन्तर भी तुम्हीं काट लेना। हम तो अपने स्थान पर हैं ही। यह नीति कहांतक और कैसी चल सकती है?"

संवाददाता की अितनी राय हमें ठीक लगती है कि जब जब समझौते की बात आती है तब तब झगडा ही बढता है। राष्ट्र का घटनाप्रवाह ही हर सवाल को हल

करेगा। जिसके दिल में राष्ट्रीयता अधिक होगी वह समझौता करने के लिअे अधिक त्याग करेगा, अधिक नम्रता दिखायेगा। दुनिया का यह निरपवाद अनुभव है कि जो कमजोरी से नहीं, लाचारी से नहीं किन्तु हृदय की अुदारता से त्याग करता है वह अुसी त्याग की बदौलत अूपर अूठता है।

व्यवहार की दृष्टि से भी अुदारता बतानेवाले को लाभ ही लाभ है। अेक लिपि जाननेवाले की अपेक्षा जो दो लिपियां जानता है अुसकी शक्ति जरूर बढेगी। जिस किसी के भंडार में हिन्दी और अुर्दू दोनों के शब्द अधिक से अधिक होंगे वही जनता के हृदय तक पहुंचेगा। भाषा, लिपि, साहित्य ये सब साधन हैं; धन हैं। जिसकी साधनसंपत्ति अधिक है अुसका तो अुससे लाभ ही है। यहां किसी भी भाषा,लिपि या साहित्य को कुचलने की बात है ही नहीं। जो आरामतलब लोग सहूलियतें चाहते हैं, तकलीफ नहीं अुठाते अुनकी तरक्की कम होगी।

राष्ट्रभाषा के लिअे हम कुछ भी न करें और आप ही आप जो होगा अुसे देखते रहें यह नीति अर्थशून्य है। अगर सिनेमा फिल्म के अुद्योग का फल संवाददाता देखते हैं तो और लोग भी अपनी तरफ से कोशिश क्यों न करें।

अेक बात हम लोग भूल जाते हैं। अंग्रेजी की प्रतिष्ठा बढने के कारण हर अेक सुशिक्षित व्यक्ति केवल अंग्रेजी पर ही मिहनत करता आया है और अपना सामाजिक और व्यक्तिगत व्यवहार जहां चल सके अंग्रेजी के द्वारा ही चलाने की कोशिश करता है। अिसमें हिन्दू, मुसलमान, पारसी, अीसाअी सभी समानरूप से दोषी हैं। राष्ट्रभाषा और प्रान्तीय भाषा का अध्ययन करनेवाले लोग ही बहुत कम हैं। अिन देशी भाषाओं की सेवा करनेवाले अुनसे भी कम हैं और प्रान्तीय भाषा और राष्ट्रभाषा का प्रचलन बढाने का आग्रह रखनेवाले तो शायद हम आसानी से गिन सकेंगे। अैसी हालत में हिन्दू और मुसलमान आपस में लडते रहेंगे और आगे बढनेवालों के पैर खींचते जायेंगे तो वे देशद्रोही ठहरेंगे। जब अंग्रेजी का प्रचलन कम होगा तब आप ही आप प्रान्तीय भाषाओं का, हिन्दी अुर्दू का, और राष्ट्रभाषा का अध्ययन और प्रचलन बढेगा। धीरज के साथ राह देखनी चाहिअे। केवल बहस बढाने से हम आगे नहीं बढ सकेंगे।

ता० १५।१।३९. का० का०

गोरे देशीराज्य

देशी राज्यों से हम अच्छी तरह वाकिफ हैं। लेकिन, हममें से बहुत से लोगों का यही ख्याल होगा कि हमारे देश में केवल काले—यानी हिंदुस्तानी राजाओं के ही—देशी राज्य हैं। उन्हें यह पता न होगा कि वाइसरॉय की हुकूमत में कुछ अैसी भी रियासतें हैं, जिन्हें 'गोरे देशीराज्य' कहना मुनासिब होगा। भिन्न भिन्न प्रान्तों में वे उसी तरह बँटे हुअे हैं, जैसे कि देशी राज्य हैं। गवर्नमेंट ऑफ् इन्डिया कानून में इनका नाम रक्खा गया है "पूरी तरह अलग और कुछ हिस्से में अलग रक्खे हुअे इलाके (अेक्स्ल्यूडेड अॅन्ड पार्शियली अेक्स्ल्यूडेड अेरियाज)। इस नाम से हमारे देश का लगभग सारा पहाडी हिस्सा और वहां के

बस्ती जिम्मेवार हुकूमत से पूरी या कुछ अंश में बाहर रक्खी गई है। और वहां पर गोरे अफसर की हुक्मशाही के लिये पूरी पूरी सहूलियत रक्खी गई है।

इनके विषय में कानून की जो दफायें हैं उनका सारांश इस प्रकार है:—

(१) केन्द्रीय धारासभा या प्रान्तीय धारासभा के बनाये हुअे कानून इन इलाकों पर लागू नहीं होंगे।

(२) इन इलाकों को शांति और सुराज्य के लिअे प्रान्त के गवर्नर, गवर्नर जनरल की मंजूरी से आवश्यक नियम बनावेंगे। (दफा ९२)

(३) इन इलाकों को अलहदा रखने में जो अभिप्राय है, उसकी सिद्धि और इनकी शांति और सुराज्य के लिअे गवर्नर की खास जिम्मेवारी समझी जावेगी। (दफा ५२)

(४) इसलिअे गवर्नर इस विषय में अपने मंत्रियों की सलाह स्वीकार करने के लिअे बाध्य न होगा, बल्कि उनकी सलाह कानून के खिलाफ न हो तो भी अगर वह आवश्यक समझे तो उस सलाह के विरुद्ध चल सकेगा। (गवर्नरों का सूचना-नामा, दफा ११)

देश की जंगल और खनिजों की बहुतसी राष्ट्रीय मिलकियत इन्हीं प्रदेशों में है। इसलिअे व्यापारवृत्ति के लिअे ये इलाके बड़ा महत्त्व रखते हैं।

इन प्रदेशों की जनता के सुख की दृष्टि से इनकी हालत देशी राज्यों से भी गई-गुजरी है। देशी राज्यों में 'जबाब-राज' भले ही न हो, तो भी राजा, दीवान, किसी प्रकार का मंत्रीमण्डल, महाजन-मण्डल आदि तो होते हैं। और वहां की जनता और ब्रिटिश हिंदुस्तान की जनता परस्पर ओतप्रोत हैं और संस्कारों की दृष्टि से दोनों बराबरी की हैं। लेकिन इन प्रदेशों के लोग तो आरण्यक-जंगल के लोग--हैं और देश के पूरे पूरे दरिद्रनारायण हैं।

इस तरह इन गोरे देशी राज्यों की समस्या साधारण देशी राज्यों की समस्या से ज्यादा जटिल है। पोलवरम् (जि० राजमुन्द्री, आन्ध्र प्रान्त) के श्री० कोदण्डरामय्या ने भारतवर्ष की आरण्यक -प्रजाओं के राजकीय प्रश्नों को हल करना अपने जीवन का ध्येय बनाया है, और उसीके पीछे वे पागल हैं। इसमें शक नहीं कि कभी न कभी हमें इन इलाकों में जवाबदार राज्यशासन स्थापित कराने के लिअे जोरों का प्रयत्न करना होगा। यद्यपि कुछ कार्यकर्ताओं ने देश के भिन्न भिन्न इलाकों के आरण्यकों में सेवाकार्य शुरू कर दिया है, फिर भी वह अभी प्रारंभिक दशा में ही है। इन दरिद्रनारायणों की स्थिति हरिजनों से भी कहीं खराब है। हरिजनों का कष्ट सामाजिक बंधनों के सबब है। वह हट जाय तो सवर्ण और हरिजनों में सांस्कारिक या भाषाभेद नहीं है। लेकिन ये दलित जातियां तो हमसे इतनी दूर रक्खी गई हैं कि हमारा और उनका बहुत ही कम संपर्क हो पाता है। इनकी सेवा देहातियों और हरिजनों की सेवा से भी ज्यादा मुश्किल है। लेकिन मुश्किल हो या आसान, पूर्ण स्वराज्य के लिअे उसे करना तो होगा ही। तब जिन्होंने उसे शुरू कर ही दिया है, वे हमारे धन्यवाद के प्रथम पात्र हैं।

कि. घ. म.

जातपाँत तोडक मण्डल–

इस मण्डल का नाम सब जानते ही हैं। उसके मंत्री की ओर से विज्ञप्ति की गई है कि सन १९४१ में जब जन-संख्या की खानाशुमारी हो तब हिंदूलोग जाति के खाने में 'कुछ नहीं' दर्ज करें। गांधी सेवा संघ के अध्यक्ष से पूछा गया कि इस विषय में गांधी सेवा संघ का क्या रूख है? उन्होंने नीचे लिखा जवाब दिया है—

"गांधी सेवा संघ का कोई सदस्य जातियों में उच्चनीच का भेद नहीं मानता। संघ के सदस्यों की ओर से चलती हुई संस्थाओं में तथा संघ के सम्मेलनों में पंक्ति-भेद नहीं किया जाता। संघ में शायद ही कोई अैसा सदस्य होगा जो यह आग्रह रखता है कि जाति के अंदर ही शादी होनी चाहिअे। बल्कि, संघ के अेक सम्मेलन में सदस्यों के सामने अेक आंतर्जातीय और आंतरप्रांतीय विवाह भी हुआ है। इसलिअे मेरा खयाल है कि अधिकतर सदस्यों को अपनी जाति 'कुछ नहीं' दर्ज करने में कोई मुश्किल न होगी"।

गांधीजी वर्णाश्रमव्यवस्था को हिंदूधर्म का खास लक्षण मानते हैं और उसे शुद्धरूप में स्थापित करने की ख्वाहिश रखते हैं। लेकिन, रोटी–बेटी व्यवहार के बंधनों से बने हुअे उसके स्वरूप को वे ठीक नहीं समझते। उनकी वर्णव्यवस्था की बुनियाद समाज में चलनेवाले भिन्न भिन्न पेशों में प्रकट होनेवाले मानवस्वभाव के विविध पहलू हैं। कुछ अंश में ये स्वभाव वंशपरंपरागत होते हैं, कुछ अंश में शिक्षा, अभ्यास आदि के संस्कारों से बनते हैं। मतलब जन्म, शिक्षा और कर्म तीनों के विचार से निश्चय किया जा सकता है कि कौनसा शख्स किस पेशे के लिअे योग्य है। इनमें से अगर शिक्षा और कर्म को जन्म के संस्कारों के अनुकूल करने की कोशिश रहे तो समाज और उस व्यक्ति के जीवन में अेक प्रकार की निश्चितता आ जाना मुमकिन है। यही गांधीजी की ख्वाहिश और कोशिश है।

कि. घ. म.

नयी तालीम

[हिन्दुस्तानी तालीमी संघ की मासिक मुखपत्रिका; सम्पादिका श्री आशादेवी, वार्षिक मूल्य रु. १1. (डाक सहित) प्राप्तिस्थान-शेगांव, वर्धा]

हिन्दुस्तान की सर्वश्रेष्ठ दो विभूतियों में से अेक ने (गांधीजी ने) जिसका प्रस्ताव किया है और दूसरी ने (रविबाबू ने) अपनी समर्थ वाणी से जिसका पुरस्कार किया है और जिसका राष्ट्रसभा ने सर्व सम्मति से स्वीकार किया है अैसी नयी तालीम का यह मुखपत्र अिसी साल से देश के सामने प्रकट हो रहा है। शिक्षा में यह अेक अहिंसक किन्तु सार्वभौम क्रान्ति है। आज तक की शिक्षा तो सफेदपोशों के लिअे थी। अब वह श्रमजीवियों तक न केवल पहुंच ही जायगी किन्तु वह श्रमजीवियों को बुद्धिसम्पन्न और बुद्धि-जीवियों को श्रमसहिष्णु और श्रमकुशल बनायेगी। आज तक की तालीम शहरों के लिअे ही थी; यह नयी तालीम गांवों से ही अपना प्रारम्भ करेगी।

अिस प्रथम अंक में 'नयी तालीम' के स्वरूप को ही अनेक लेखकों ने स्पष्ट किया

है। हिन्दी और अुर्दू दोनों के सहयोग से राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी बनाने में अिस पत्रिका की प्रवृत्ति कम महत्त्व की नहीं होगी। सब प्रान्तों के, सब धर्मों के और सब भाषाओं के शिक्षासेवकों का अिस में सहयोग है। यही अेक हमारे देश के लिअे सबसे बड़ा सौभाग्य का और अभ्युदय का सगुन है। हम दिल से चाहते हैं कि भारत के कोने कोने में अिस छोटीसी पत्रिका का प्रचार हो और राष्ट्रोद्धारक, राष्ट्रव्यापी शिक्षा का स्वरूप कैसा होना चाहिअे अिसका प्रकाश वह देश में फैलावे।

१७:१:३९ का० का०

धर्मक्षेत्र के पथिक जमनालालजी

सर्वोदय छपने जा रहा है अुस वक्त श्री जमनालालजी जयपुर जाने की तैयारी कर रहे हैं। सर्वोदय में जमनालालजी के बारे में कुछ भी लिखते संकोच होना स्वाभाविक है। शायद अुन्हें यह पसन्द नहीं आवेगा कि हम सर्वोदय में अुनके बारे में कुछ लिखें।

देशी राजाओं ने और नरेन्द्रों ने यह मान लिया था कि खालसा मुल्क में जब प्रभात की किरणें फैल रही हैं अुस वक्त भी वे अपनी छोटी छोटी रियासतों में मध्यरात्रि का घना अंधेरा कायम रख सकेंगे। अंग्रेज सरकार ने अुनको पहले ही अभयदान दे रक्खा है कि आन्तरिक या बाह्य संकट आने पर वह अुनकी रक्षा करेगी। काँग्रेस ने भी अुनको अभयदान दे दिया था कि अुनकी आन्तरिक राज्यव्यवस्था में काँग्रेस हस्तक्षेप नहीं करेगी।

अंग्रेज सरकार के आश्वासन के पीछे यह अपेक्षा थी कि ये नरेन्द्र अभयदान के परिवर्तन में निपट गुलामी के रूप में पूरीपूरी कीमत दे देंगे। देशी नरेन्द्र अपनी अपनी प्रजा के तो राजा और भाग्यविधाता हैं, किन्तु अंग्रेज सरकार के अितने जलील गुलाम हैं कि जितने खालसा मुल्क के प्रजाजन भी नहीं हैं। कौन नहीं जानता कि अंग्रेज सरकार खालसा मुल्क में जितना दमन कर सकती है अुससे अधिक और मनमाना दमन अपनी मर्जी के अनुसार राजाओं के द्वारा आसानी से करा सकती है। नीति चले अंग्रेज सरकार की और बदनाम हो ये देशी नरेश। अिस सब सहूलियत के ख्याल से ही अंग्रेजों ने अिन नरशों को अभयदान दिया था कि जबतक अंग्रेजों का हित सुरक्षित है तबतक ये देशी नरेश भी सुरक्षित रक्खे जायेंगे।

काँग्रेस ने अिन राजाओं को जो अभयदान दिया था वह अिस विश्वास से कि जब भारतीय जनता की गुलामी कम हो जायगी तब अिन नरेशों की गुलामी भी आप ही आप कम हो जायगी। और अिसी देश के ये राजा अपनी प्रजा का द्रोह करके कुछ हासिल करनेवाले तो हैं ही नहीं। अिसलिअे स्वेच्छा से अपनी प्रजा के हित में अपना हित समझकर जनता को स्वराज्य के अधिकार प्रसन्नता से दे देंगे। निर्वीय प्रजा के बेमकदूर राजा बनने में अुनको आनन्द थोड़े ही आता होगा?

दोनों तरफ से अभयदान पाकर भी अिन नरेशों का अुद्धार नहीं हुआ। मालूम होता है अुत्तर-दायित्वशून्य सलामती से, और क्षेमकुशल से आदमी सडने ही लगता है। ये नरेश भी अेकाध अपवाद को छोडकर, अपनी सलामती से अपने धर्म को भूल गये हैं अिसकी बात ही क्या? वे अपने स्वार्थ को और अपनी प्रतिष्ठा को भी भूल गये हैं।

स्वराज्य के लिअे भारत के कअी किसानों ने अपनी जायदादें जप्त होने दीं; और जमाना बदलने पर वे अुन्हें वापस भी मिल गयीं। अिन गरीब किसानों की श्रद्धा अिन नरेशों में होती तो वे "पोलिटिकल अेजन्ट" के अिशारे से नाचनेवाले सरकस के जानवर या कठपुतले नहीं बनते।

अब अिन नरेन्द्रों की हालत पर अफसोस करने के भी दिन चले गये हैं। कहा जाता है कि विनाश के दिन जब आते हैं तब प्रथम मनुष्य की सद्बुद्धि अुसे छोड देती है और बाद में अुसका भाग्य अुसे छोड देता है। जयपुर राज्य का अैसा ही हुआ मालूम होता है। नहीं तो जमनालालजी जैसे शान्तिप्रिय, सेवाधर्मी और राजा-प्रजा का हित चाहनेवाले पवित्र पुरुष का जयपुर सरकार बहिष्कार क्योंकर करती? बडे से बडा संकट आनेपर जिनकी मदद ली जा सकती है अुन्हींको अकाल-पीडित लोगों की सेवा करने से रोकना और अपने राज्य में आने की मुमानियत करना यह तो अपने भाग्य को, अपनी राज्यलक्ष्मी को, ही निर्वासित करना है।

अगर साम्राज्य सरकार का यह ख्याल है कि राजस्थान की प्रजा पिछडी हुअी है, वह दब जायगी तो अुसे अपनी भूल तुरन्त ही प्रतीत होगी। अब तो दैवी चमत्कारों का युग आ गया है। दमनकारी लोगों के सारे के सारे हिसाब औंधे हो जाते हैं। जमनालालजी का सत्याग्रह सारे राजस्थान की सात्त्विकता का, और जागृति का आत्म-समर्थन है। वाणिज्य-प्रधान और शान्त जाति को सत्याग्रह के सिपाही बनने के लिअे और स्वराज्य-संग्राम में अग्रसर होने के लिअे चुनौती देनेवाला यह प्रसंग है।

हमारे बचपन में भाट-चारणों से हम सुनते थे कि हिन्दुस्तान जब स्वतंत्र होगा तब वह जयपुर के राजा के पुरुषार्थ से होगा। भविष्यवाणी भी कभी कभी सच निकलती है, लेकिन अुसके असली मतलब का भेद स्वयम् भविष्यवक्ता भी नहीं जानते!

२९-१-३९ का० का०

सार्वजनिक औषधालय, बारडोली

'दो वृत्तियां' नामक लेख में जिस औषधालय का जिक्र आया है, उसमें औषधी-वितरण के नीचे लिखे नियम हैं:-

१. ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि सधन लोग तथा पच्चीस अेकर से ज्यादा जमीन के मालिक-रोजाना दो आने; इंजेक्शन के रूपये दो, विजिट फी रुपया दो, तथा मोटर किराया।

२. मध्यमवृत्ति के लोग--क्रम से, अेक आना, अेक रुपया, अेक रुपया और किराया।

३ साधारण गरीब--आधा या पाव आना, इंजेक्शन की खरीद-कीमत, विज़िट मुफ्त।

४ बिलकुल गरीब-सब मुफ्त।

औषधालय से औसतन सौ रोगी रोज लाभ उठाते हैं। उसका वार्षिक व्यय लगभग रु. ३७०० है। जिसमें से रु. ९०० के लगभग कर्मचारियों का वेतनखर्च है। और रु. ३०० डॉक्टर का निर्वाहव्यय है। रु० ३७०० के खर्च में से करीब रु० ३००० की आमदनी हो जाती है। वार्षिक रु० ७०० की कमी रह जाती है। डॉक्टर मासिक रु० २५ वेतन लेती है जो चन्दा आदि से पूरा करना पडता है। सन १९३८ का ब्यौरा नीचे दिया जाता है।

पुराने रोगी	८३५८	कुल १४१२२
नये ,,	५७६४	

चिट्ठियाँ कटीं

दो आनेवाली	६२९०	कुल ३२९८७
अेक ,,	१०५३०	
आध ,,	५२८५	
पाव ,,	७३६	
मुफ्त	१०१४६	
इंजेक्शन	५४५	

आय

बॉटल, डिब्बियाँ आदि	१०३–११–९	कुल ३०४२–१३–६
१०९ मुलाकात की फीस	५१९– ८–०	
(मुफ्त मुलाकात १९२)		
मोटर-किराया	२६१– ८–०	
इंजेक्शन आदि	६०३– ६–९	
औषधी	१५५४–११–०	

कि. घ. म.

देवों का काव्य

[काका कालेलकर]

–४–

तारों के बारे में मैं सर्वोदय में जो कुछ लिखता हूं वह खतम होनेवाले महीने की पच्चीस तारीख के बाद ही लिखता हूं। पाठकों से विनय है कि अंक हाथ में आते ही दो चार दिन के अन्दर 'देवों का काव्य'. वाला लेख पढकर आकाश की ओर देखने का कष्ट करें अथवा जो लोग प्रातः-काल या शाम को आकाश की तरफ देखना अेक कष्ट समझते हैं वे अिस लेखमाला को न पढें यही अच्छा है, और मैं समझतां हूं कि वे पढ़ते भी नहीं होंगे।

आजकल प्रातःकाल के चार बजे से लेकर साडेपांच-छह बजे तक देखने का बड़ा मजा है। पूरब की तरफ मुंह करके कुछ दाहिनी ओर देखा जाय तो वहां पर त्रिशंकु दीख पडेगा। यूरोपीय लोग अुसे 'सदर्न क्रॉस' कहते हैं। 'क्रॉस' की खडी लकीर और आडी लकीर बिलकुल समकोण में नहीं है; फिर भी सदर्न क्रॉस को पहचानना कठिन नहीं है।

अगर शंका हो तो अुसकी तरफ अपनी अुंगली बतानेवाले जय–विजय की टेढी लकीर जरा देख लेनी चाहिअे। स्वर्ग के द्वारपाल ये जय–विजय बताते हैं कि वह देखो त्रिशंकु (सदर्न क्रॉस के अपर के तीन तारे) नीचे गिर रहा है और अुस राजा का पुरोहित (सदर्न क्रॉस का सबसे

नीचेवाला तारा) अुसे कह रहा है कि गिरो मत।

यह सदर्न क्रॉस अुगने के पहले अुसी स्थानपर अेक दूसरा क्रॉस अुगता है। अुसे अंग्रेजी में फॉल्स क्रॉस अथवा कॅरेना कहते हैं। आजकल सुबह पांच बजे सच्चा क्रॉस अितना अुत्तम दीख पडता है कि अुससे अधिक दाहिनी ओर देखकर कॅरेना को ढूंढने की जरूरत ही नहीं। असली को छोड़कर नकली के पीछे हम क्यों जायँ ? और आधी रात को कॅरेना को देखने की कौन तकलीफ करे ?

साढे पांच बजे अथवा अुसके भी बाद जब हम पूरब की तरफ देखते हैं तब सबसे अूपर विशाखा के दो तारे, अुसके नीचे लटकता हुआ मंगल, अुसके बाद अनुराधा नक्षत्र, अुसके नीचे पेट में पारिजात रक्खे हुअे ज्येष्ठा के तीन तारे और अुसके बाद मूल —अितने नक्षत्र दीख पड़ते हैं। प्राचीन काल में विशाखा को राधा कहते थे अिसलिअे अुसके बाद आनेवाले नक्षत्र का नाम अनुराधा हो गया। पाठक मंगल को अनुराधा के पेट में घुसा ही पायेंगे।

यह अनुराधा और अुसके बाद आनेवाले दो नक्षत्र ज्येष्ठा और मूल मिल कर वृश्चिक राशि होती है। निर्मल आकाश में यह बडा वृश्चिक आसानी से पहचाना जाता है। अनुराधा के चार तारे आड़े होते हैं। वे बिच्छू का सिर हैं। ज्येष्ठा के खडे तीन तारे बिच्छू का पेट हैं। और अुसके बाद अुलटे ट के आकार का मूल नक्षत्र बिच्छू का डंक है। अिस डंक के अन्त में जो दो तारे हैं, वे बहुत ही सुन्दर दिखायी देते हैं।

अिस वृश्चिक की अुत्तर की ओर (हमारी बाँयी ओर) आजकल शुक्र का तारा बडी तेजी से चमकता है। शुक्र का तेज आजकल अितना अत्यधिक है कि अुसके प्रकाश में हम अपनी छाया भी देख सकते हैं। शुक्र की चांदनी या जुन्हैय्या कवियों में मशहूर है।

जब कि मैं ये टिप्पणियां लिख रहा हूं शुक्र के बाद सिर अूंचा करनेवाला बुध दीख पडता है किन्तु वाचकों के हाथ में सर्वोदय पहुंचनेसे पहले ही बुध का अस्त हो जायगा। याने बुध दर्शन दे अिससे पहले अुषा प्रसन्नता से हंसने लगेगी और सूरज भी अपना अधिकार जमा देगा।

मुझे यंत्रोंपर कोअी अेतराज़ नहीं है, बल्कि यंत्रों के ख़ब्त पर। मिहनत बचानेवाले यंत्रों का ख़ब्त आज हम पर सवार है। हम परिश्रम बचाते चले जाते हैं; और नतीजा यह होता है कि हजारों लोग बेकार हो जाते हैं और रोटी के लिअे मुंहताज हो कर कुत्ते की मौत मरते हैं। मैं श्रम और समय मानवता के किसी ख़ास टुकड़े के लिअे नहीं बल्कि सबके लिअे बचाना चाहता हूं। मैं मुट्ठिभर लोगों के हाथों में सम्पत्ति का संग्रह नहीं देखना चाहता, बल्कि सभी के हाथों में।

—गांधीजी

भगवति स्वतंत्रते !

[काका कालेलकर]

स्वातंत्र्यात्सुखमाप्नोति
स्वातंत्र्याल्लभते परम् ।
स्वातंत्र्यान्निर्वृत्ति गच्छेत्
स्वातंत्र्यात्परमं पदम् ॥

ब्रह्मज्ञानी अष्टावक्र मुनि ने सम्राट् जनक को अुपदेश करते हुअे अुक्त शद्बों में तेरा माहात्म्य गाया है। हे देवि, स्वतंत्रता के अिस पर्व के प्रारंभ में हम अिस श्लोक के स्मरणपूर्वक तुझे नमन करते हैं। कुछ देवों का स्मरण केवल कार्यारंभ के समय ही किया जाता है। कुछ अैसे हैं जिनका स्मरण सिर्फ संकट के समय ही किया जाता है। संसारी प्रवृत्तियों में से निवृत्त होने के बाद ही हम कुछ देवों की शरण खोजते हैं। परन्तु तेरा स्मरण तो देवि, अखंड करना होता है। अेक क्षण के लिअे भी यदि तेरा विस्मरण हो जाय तो मानों सिर पर अनर्थों की परम्परा टूट पडी। जैसे कोअी अपने प्राण को नहीं भूल सकता, अुसी तरह तुझे भी हम नहीं भूल सकते हैं। तू हमें अेक क्षण भी नहीं भूलती। हमारी शक्ति हमें अपने आहार से नहीं प्राप्त होती, किन्तु तेरे आशीर्वाद से प्राप्त होती है। हमारी बुद्धि का विकास हमारी शिक्षा या अनुभव से नहीं होता, किन्तु तेरे अखंड ध्यान द्वारा ही होता है। हम जिस शान्ति के अिच्छुक हैं वह हम बलाढचों की शरण लेकर नहीं हासिल करेंगे, किन्तु तेरी अखंड अुपासना के तेज में से प्रकट होने-वाली स्वाभाविक प्रभा द्वारा ही हम अुसको अनुभव करेंगे।

कृषि जिस प्रकार वर्षा पर ही आधार रखती है, मछलियां जिस तरह महासागर की गहराअी का ही आश्रय ढूंढ़ती हैं, राजहंस जैसे मानससरोवर में ही आलंबन प्राप्त करता है, अुसी तरह हम भी तेरे वातावरण में जी सकते हैं। बालक जिस विश्वास से माता को चिपटता है, अुसी विश्वास से हम तुझे चिपटते हैं।

तेरा हृदय कोमल है, लेकिन तेरी मुद्रा तो हमेशा अुग्र ही होती है। हम मोहक रूप के अैसे रसिया कभी न होंगे जो तेरे अुग्र रूप या अुग्र मुद्रा के पीछे छिपे हुअे तेरे प्रेममय हृदय को न समझ पायें। हम तो तेरी सन्तान हैं। तेरे प्रेम के अधिकारी हैं। तेरी दया के भिखारी नहीं हैं। संकट, दुःख और मरण ही तेरा लाड़ और दुलार है। वैभव और विलास तेरे अनुग्रह की निशानी हरगिज़ नहीं है। जब हमारा हृदय शुद्ध और निर्भय होगा, बुद्धि निःस्पृह और तीव्र होगी, शक्ति पराक्रम के लिअे अुत्सुक होगी, और आत्मा निर्लिप्त तथा प्रसन्न होगी, तभी हम महसूस करेंगे कि हमारे सिर पर तेरा वरदहस्त है।

तुझे भूलकर हमने स्थैर्य की तलाश की। तुझे भूल कर शान्ति का खोज किया। तेरी अवगणना करके समृद्धि का पीछा किया। तेरी अुपेक्षा कर सुख की अुपासना की। तेरा साक्षात्कार तो हम खो बैठे, और दूसरा जो जो खोज रहे थे वह भी कुछ हाथ न आया। हाथ आये भी कैसे? और आ भी जाय तो अुसका अुपभोग हम किस

तरह ले सकें ? हमारा सर्वस्व तू ही है। तेरे प्रसाद के रूप में जो मिले वही दरअसल हमारा है। अब हम अिस निश्चय पर दृढ़ रहें यही अेक वरदान हमें दे।

शान्ति, सम्पत्ति, सुरक्षा, शिक्षा, संस्कारिता, रसिकता, सत्ता, महत्ता, ये सब तेरे बिना निकम्मी हैं। तेरे बिना ये सब गन्दे मुर्दे हैं। तुझे भूल कर हम अिन चीजों से न चिपटें अितनी संकल्पशक्ति हमें दे। जो तेरे अुपासक हैं वे ही हमारे सगे और आत्मीय हैं। अुनकी अनन्त खामियों को भूलकर, वे तेरे अुपासक हैं, अिसीलिअे हम अुन्हें अपने भाअी समझेंगे, अुन्हें सर्वस्व दे देंगे। अुनकी बराबरी के समझे जाने- में हमें अभिमान होगा। लेकिन जो तुझे नहीं पहचानते अुन्हें हम भी नहीं चीन्हेंगे। माता, पिता, पति, सगे-सम्बन्धी या भाअी- बन्द चाहे कोअी क्यों न हों, जो वे तेरा द्रोह करेंगे तो अुनसे भी हमारी तनिक भी नहीं बनेगी। हम अुनकी गैल हरगिज़ नहीं जायेंगे। लोहा जिस प्रकार चुम्बक की ओर दौड़ता है और अुसके सहवास से अुसी तरह की शक्ति स्वयं प्राप्त करता है, अुसी प्रकार हम भी तेरे ही आक[र्षण] के वशवर्ती रहेंगे और दूसरों को भी [तेरी] अुपासना में आकृष्ट करेंगे।

हम जानते हैं कि जो तेरे चरणों [के] पास ले जावे वही विद्या है, तेरी प्रा[प्ति] करावे वही भक्ति है, तेरा बोध करा[वे] वही ज्ञान है। हम जानते हैं कि ज[हाँ] अिहलोक और परलोक का संयोग है [अु]स पवित्र स्थान पर तेरा अखण्ड वास है। अब हम अुस स्थान तक पहुँचने की हिम्मत करेंगे लेकिन बिना तेरे दर्शन [किये] न रहेंगे। बहुत भूले, बेहद भटके। [ते]रा बहुत द्रोह किया। अब क्षमा कर। अनु[ग्रह] कर। अब जो साधना योग्य प्रतीत हो अुसीकी हमें दीक्षा दे। निन्दा, अुपहा[स], विडम्बना, सर्वनाश—जिस किसी भी साधना [की] दीक्षा देनी हो सो दे और हमें [अ]पने साक्षात्कार का अधिकारी बना। तेरे अन[न्य] अुपासक बनकर हम तेरे चरणों के [पास] आये हैं। अब तो यह शीश झुकेगा तो [तेरे] चरणों में; और गिरेगा तो भी तेरे च[रणों] में। अब दूसरी कोअी लालसा रही ही नहीं।

(२६ : १ : १९३९.) (गुजराती से)

वाङ्मयपरिचय और प्रश्नोत्तरी

हमें खेद है कि अिस अंक में स्थल-संकोच के कारण वाङ्मय परिचय नहीं दिया [जा] सका। कअी पुस्तकों और मासिकपत्रों के लेखकों और संचालकों ने 'सर्वोदय' [को] समालोचना के लिअे अपनी पुस्तकें और पत्रिकायें भेजी हैं। हम अुन सबका नि[मंत्रण] मानते हैं। आगामी अंक में अुसमें से कुछ का परिचय अवश्य दिया जाय[गा]। अिस बार पाठक और अन्य सम्बन्धित व्यक्ति क्षमा करें।

प्रश्नोत्तरी के लिअे भी कअी प्रश्न आये हैं। आगामी अंक में अुन्हें भी अ[वश्य] स्थान दिया जायगा।

संपादक.

३१-१-३९

ग्राहकों से

नये ग्राहक 'सर्वोदय' के शुरू से सभी अंक चाहते हैं। लेकिन पहला अंक अब खतम हो चुका है। यदि काफी संख्या में मांगें आवें तो अुसका कुछ हिस्सा या पूरा अंक ही दुबारा छपवाने का विचार किया जा सकेगा।

'सर्वोदय' हर महीने ठीक पहली तारीख को ग्राहकों की सेवा में रवाना हो जाता है। ग्राहकों से प्रार्थना है कि अंक न मिलने की शिकायत कार्यालय के पास करने से पहले वे स्थानीय डाकघर से पूछताछ कर लें और फिर कार्यालय से पत्रव्यवहार करें।

पुराने अंक न मिलने की शिकायतें दो दो महीनों के बाद आती हैं। ग्राहकों से अनुरोध है कि वे अुसी महीने की ता० २० तक अपनी शिकायतें भेजने की कृपा करें। अिस तारीख के बाद आयी हुअी शिकायतों पर ध्यान देना असम्भवसा हो जाता है।

पता बदलने की सूचना देते समय नये पते के साथ अपना ग्राहक-क्रमांक तथा पुराना पता भी भेजें तो अंक भेजने में सुविधा होगी।

जिन ग्राहकों का चन्दा अिस महीने से पूरा होता है अुनसे प्रार्थना है कि वे अपना चन्दा भिजवाने का प्रबन्ध करें। अिस महीने के आखिर तक चन्दा न आने पर मार्च का अंक व्ही. पी. से भेजा जायगा। आशा है व्ही. पी. का अवश्य स्वीकार किया जायगा।

नमुना अंक के लिअे ०-६-० के टिकट भेजे जायें।

व्यवस्थापक,
सर्वोदय कार्यालय
बजाज-वाडी, वर्धा (मध्यप्रान्त)

सूचना—

'सर्वोदय' में आम तौर पर अिश्तिहार नहीं लिये जायेंगे। अपवाद केवल वाचनीय ग्रन्थ और देशसेवा करनेवाली संस्थाओं के लिये रहेगा। अिनके अिश्तहारों के दाम नहीं लिये जायेंगे। केवल कागज, छपाई और डाकखर्च लेकर अिश्तिहार छापे जायेंगे। जो साहित्य या संस्था निर्विवादरूप से लोकोपयोगी है, अुसीको स्थान दिया जायगा। यह व्यवस्था केवल समाज-सेवा और ग्राहकों के हित की दृष्टि से चलायी जायगी।

व्यवस्थापक, '**सर्वोदय**', वर्धा।

Reg. No. N. 741

दिव्य जीवन-धर्म

मेरा यह अनुभव है कि विनाश के बीच भी जीवन कायम ही रहता है। अिसलिअे विनाश से बढ़कर कोअी कुदरती कानून जरूर है। अैसे कानून के आधार पर ही सुव्यवस्थित समाज का अस्तित्व समझ में आ सकता है, और जीवन सुसह्य हो सकता है। ज्यों ज्यों मैं अिस कानून पर अमल करता हूं, त्यों त्यों मुझे जिन्दगी में मज़ा आता है, सृष्टि की रचना में आनन्द आता है। अुससे मुझे जो शान्ति मिलती है, और प्रकृति के गूढ भाव समझने की जो शक्ति प्राप्त होती है, अुनका वर्णन करना मेरी शक्ति से परे है। ... ...

जगत् का नियमन प्रेमधर्म करता है। मृत्यु के होते हुअे भी जीवन मौजूद ही है। प्रतिक्षण विध्वंस चल रहा है। परन्तु फ़िर भी विश्व तो विद्यमान ही है। सत्य असत्य पर विजय प्राप्त करता है, प्रेम द्वेष को परास्त करता है, अीश्वर निरंतर शैतान के दांत खट्टे करता है।

गांधीजी

प्रकाशक:—दादा धर्माधिकारी, बजाजवाडी, वर्धा (मध्यप्रांत)।
मुद्रक:—वल्लभदास जाजू, श्रीकृष्ण छापखाना लिमिटेड, बच्छराज रोड, वर्धा।

सर्वोदय

अेष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके

सम्पादक–काका कालेलकर, दादा धर्माधिकारी

वर्धा, मार्च १९३९ अंक ८

अन्नब्रह्म

तीस करोड़ में से करोड़ों लोग बेकारी के कारण अुत्तरोत्तर अधिकाधिक पतित हो रहे हैं, अुनकी आत्म-मर्यादा नष्ट हो चुकी है, और अुनमें अीश्वर के प्रति कोअी श्रद्धा नहीं रह गयी है। कल्पना कीजिये यह कैसा भयानक संकट है। अुन्हें अीश्वर का सन्देश सुनाने की हिम्मत मैं नहीं कर सकता। सामने यह जो कुत्ता बैठा है अुसे अीश्वर का सन्देश सुनाना और जिनकी आंखों में रोशनी नहीं है, रोटी का अेक टुकड़ा ही जिनकी देवता है, अुन्हें अीश्वर का सन्देश सुनाना अेक ही सा है। मैं पवित्र परिश्रम का पैगाम लेकर ही अीश्वर का सन्देश अुन्हें सुनाने जा सकता हूं। सबेरे मजेदार कलेवा करके सुग्रास भोजन की प्रतीक्षा में बैठे हुअे हम जैसे लोगों के लिअे अीश्वर के विषय में वार्तविलास करना आसान है, लेकिन जिन्हें दोनों जून भूखे रहना पड़ता है अुनसे मैं अीश्वर की चर्चा कैसे करूं? अुनके सामने तो परमात्मा केवल दालरोटी के ही रूप में प्रकट हो सकते हैं।

१५:१०:३१ –गांधीजी

अेक अंक... ... रु० ०-६-०
वार्षिक ... ... रु० ३-०-०
बर्मा में ... ... रु० ३-८-०
विदेश में... ... ६ शिलिंग
१.५० डॉलर.
(सब डाक सहित)

अनुक्रमणिका

(१) यतिधर्म और क्रान्तिशास्त्र (श्री शं. द. जावडेकर) ... १
(२) कौअे की नजर से ("आश्रमवासी अुल्लू") ... ७
(३) भाषा में क्लिष्टता (श्री सियारामशरण गुप्त) ... ९
(४) ग्राम-सेवक के अनुभव (श्री प्रभुदास गांधी) ... १४
(५) रिक्तता की सभ्यता (श्री सतीशचन्द्र दासगुप्त) ... १६
(६) वर्धा योजना के माने (श्री मगनभाअी देसाअी) ... २२
(७) सर्वोदय की दृष्टि २७

राष्ट्रपति का चुनाव; सरदार वल्लभभाअी; विलासी गुलाम---देशी राजा; संकीर्णता का अकाण्डताण्डव; कानपुर; वर्धा योजना के माने ?; नेतापन और पदाधिकार; वास्तववाद बनाम ध्येयवाद; संस्था-संचालन; पर्वतीय भाअियों की सुप्त शक्ति; अेक बुरी आदत; सियारामजी की शालीनता; सत्याग्रह बनाम निःशस्त्र प्रतिकार

(८) जीवन-सेवक या साहित्य-सेवक (श्री काका कालेलकर)... ३९
(९) सत्याग्रह बनाम निःशस्त्र प्रतिकार (श्री काका कालेलकर). ४३
(१०) देवों का काव्य (श्री काका कालेलकर) ... ४५
(११) प्रश्नोत्तरी ४६
(१२) संघ-वृत्त ४७
(१३) वाङ्मय परिचय ५०

ग्राहकों से—

जिन ग्राहकों का चन्दा अिस महीने से पूरा होता है अुनसे प्रार्थना है कि वे अपना चन्दा भिजवाने का प्रबन्ध करें। अिस महीने के आखिर तक चन्दा न आने पर अप्रैल का अंक व्ही. पी. से भेजा जायगा। आशा है व्ही. पी. का अवश्य स्वीकार किया जायगा।

सर्वोदय

अेष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके

संपादकः—काका कालेलकर
दादा धर्माधिकारी

मार्च १९३९
वर्धा

यतिधर्म और क्रान्तिशास्त्र

[शंकर दत्तात्रेय जावडेकर]

(श्री जावडेकर महाराष्ट्र के प्रथितयश विद्वान् हैं। आपका राजनीतिशास्त्र और अर्थशास्त्र पर विशेष अधिकार है। आपके लेख विद्वत्तापूर्ण मननात्मक और मौलिक होते हैं। हालही म आपने मराठी में भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के अितिहास पर 'आधुनिकभारत' नामक अेक अनूठी और अुपादेय पुस्तक लिखी है। श्री जावडेकर जैसे स्वतंत्र वृत्ति के विचारक का यह लेख 'सर्वोदय' के पाठकों को विचार-प्रवर्तक प्रतीत होगा। —सं०.)

हमारे प्राचीन राष्ट्रसंगठन में यतिवर्ग का स्थान अत्यन्त श्रेष्ठ था। अिस वर्ग का राष्ट्रसंगठन में कौनसा महत्त्वपूर्ण कार्य था अिसका राजधर्म और प्रजाधर्म की दृष्टि से यहां विवेचन करने का विचार है।

सबसे पहले यतिवर्ग और यतिधर्म का अर्थ समझ लेना जरूरी है। 'यति' का अर्थ है धर्म के जनक अथवा परब्रह्म के अुपासक। "सत्यापरता नाहीं धर्म। सत्य तेंचि परब्रह्म" ('सत्य से बढ़कर दूसरा कोअी धर्म ही नहीं है, सत्य ही परब्रम्ह है'।) अिन शब्दों में धर्म की और परब्रह्म की व्याख्या साधुवर तुकाराम महाराज ने की है। अर्थात् यति माने सत्यान्वेषक सत्यप्रसारक और सत्यसंस्थापक। प्रत्येक समाज की सुस्थिति सत्य पर निर्भर है। जिस समाज में से सत्य नष्ट हो जाता है वह समाज और राष्ट्र तहसनहस हो जाता है। समाज के अन्य सब धर्म सत्यधर्म की अपेक्षा गौण हैं। अिसलिअे समाज को अेक अैसे वर्ग की आवश्यकता होती है जो अपने सर्वस्व की अपेक्षा सत्य को ही प्रधान माने और अुसी के अनुसार बोले और आचरण करे। मावाप की आज्ञा मानना, स्वामी की आज्ञा मानना, राजा की आज्ञा मानना, जनता की आज्ञा मानना, आदि कअी प्रकार के धर्म समाज में पाये जाते हैं। लेकिन ये सब धर्म सत्य की अपेक्षा गौण हैं। यदि वे सत्य के विरुद्ध जावें तो अुनको तोडना कर्तव्य हो

जाता है। समाज में प्रचलित पुराने विधि-निषेध बदलकर अुनकी जगह नये विधिनिषेध निर्माण करने पडते हैं। ये विधिनिषेध परिस्थिति-सापेक्ष होते हैं, अिसलिअे परिस्थिति-भेद के अनुसार अुनमें भी परिवर्तन करने पडते हैं। रूढ़ विधिनिषेधों से परे जाकर नये विधिनिषेध जारी करने का कार्य यतिवर्ग के द्वारा होता है। फिरभी यतिवर्ग सत्यान्वेषण और सत्यप्रस्थापना का कार्य हिंसा से नहीं करना चाहता। वह अहिंसा द्वारा ही सत्यसंस्थापना किया करता है। अहिंसा माने प्रेम। समाज में सत्य की सच्ची प्रस्थापना प्रेम के जरिये ही हो सकती ह। क्रोध या हिंसा से वह नहीं हो सकती। अुसके लिअे अहिंसा ही अुपयुक्त साधन है। क्योंकि अहिंसा में बुद्धि विकारवश होने की सम्भावना बहुत कम होती है। वह आत्मवश रहती है। लेकिन जो प्रेम के द्वारा सत्य की प्रस्थापना करना चाहता है अुसे अपरिग्रह का ही व्रत लेना होता है। क्योंकि परिग्रह से मोह अुत्पन्न होता है और मोह के कारण सत्य को गौण स्थान प्राप्त हो जाता है। लॉर्ड मोर्ले ने अपने 'समझौता' नामक विख्यात ग्रंथ का ध्येयवाक्य अिस प्रकार लिखा है--"हम सत्य को प्रथम स्थान देते हैं आया द्वितीय स्थान देते हैं, अिसीपर संसार के सारे भेदाभेद निर्भर हैं।" अपरिग्रही यतियों के सिवा दूसरे सब लोग अपने जीवन में सत्य को द्वितीय स्थान दिया करते हैं। साधारण संसारी मनुष्य की वृत्ति यह होती है कि जबतक मेरा वृत्तिच्छेद नहीं होगा तभी तक मैं सत्य का पालन करूंगा। अुसका पहला साध्य होता है अपना वृत्तिच्छेद न होने देना। [cut] अुसका दूसरा साध्य होता है। लेकिन अु[cut] हालत में समाज में अन्याय का बाज़ा[र] गर्म होता है। अुस अन्याय के निराकर[ण] के लिअे तथा न्याय की प्रस्थापना [के] लिअे ही राजधर्म का अुदय हुआ है। परन्तु सिर्फ राजधर्म से भी समाज में न्या[य] की वास्तविक प्रस्थापना नहीं हो सकती।

राजधर्म दण्डप्रधान है और राजनीति दण्डनीति है। जिस प्रकार कुटुम्ब [की] धारणा केवल आतंक से नहीं होती बल्कि प्रेम के द्वारा ही हो सकती है, अुसी तरह केवल राजा की दण्डशक्ति से समाज की धारणा न हो सकेगी। राजधर्म वैद्यशास्त्र [की] शस्त्रक्रिया के समान है। जब शरीर प[र] बहुतसे फोडे हो जाते हैं तो अुन्हें चीरना ही पड़ता है। अुसी प्रकार समाज में जब दंगे, डकैतियां, खून आदि अपराध [या] अत्याचार नित्य होने लगते हैं तो दण्डनीति का अुपयोग किया जाता है। लेकिन दण्ड-नीति से अत्याचारों का वास्तविक निवारण नहीं होता। अुसके लिअे तो अैसे अुपा[य] काम में लाये जाने चाहिये कि जिनकी बदौलत समाज में अपराध या अत्याचा[र] होना, जहां तक हो सके, बन्द ही हो जाय। यह कार्य यतिधर्म द्वारा ही हो सकता है। यदि किसी के शरीर पर रोज अेक नया फोडा आने लगे और अुसे हररोज चीरना पडे तो वह व्यक्ति जी नहीं सकता। अुस हालत में तो अुसे रक्तशुद्धि के लिअे और अपने स्वास्थ्य की रक्षा के लिअे स्वास्थ्य-विज्ञान ही सीखना होगा। स्वास्थ्य-विज्ञान का अुद्देश तो यही हो सकता है कि समाज में किसी भी व्यक्ति को वै[द्य]

या डॉक्टर के पास जाने की जरूरत ही न पड़े। धर्म का अुद्देश यही है कि न समाज में अत्याचार हों और न अुनपर पुलीस या फौज के रूप में अिलाज करने की जरूरत पड़े। राष्ट्र की धारणा केवल शस्त्रबल या कूटनीति-निपुणता से नहीं होती। अिसका बहुत अच्छा अुदाहरण मराठी साम्राज्य ही है। मराठाशाही का नाश शस्त्रबल या राजनीति-निपुणता की कमी के सबब नहीं हुआ। अुस वक्त हमारे पास अितने तो हथियार और अितनी तो सेनायें थीं कि अगर हम अुनका अुपयोग विदेशियों के खिलाफ करते तो पराधीन ही नहीं हुअे होते। परन्तु अुन शस्त्रों और सैन्यों का अुपयोग हमने अेकदूसरे के खिलाफ किया, और अुत्तर मराठाशाही के हर अेक राजनीतिज्ञ ने अपने स्वार्थ के लिअे परायों की शरण लीं। अिस कारण हमारा राज नष्ट हुआ। शिवाजी महाराज के जमाने में श्री समर्थ रामदास और अुनके अनुयायियों का अेक जबरदस्त यतिवर्ग महाराष्ट्र में था। अिस यतिवर्ग का राजा और प्रजा दोनों आदर करते थे। समर्थ रामदास ने शिवाजी से जब राज्य की भिक्षा मांगी तो अुसने अपना राज्य अुनकी झोली में डाल दिया, यह आख्यायिका सर्वश्रुत ही है। यतिधर्म और राजधर्म के अैसे अुपासक अिसके बाद महाराष्ट्र में नहीं हुअे। स्वर्गीय राजवाडे ने अपने पहले अैतिहासिक खण्ड की प्रस्तावना में पानीपत के पराभव की मीमांसा करते हुअे लिखा है, "अुस समय मराठी साम्राज्य में सब सरदारों को राजनिष्ठ बनानेवाला आत्मबल नहीं था।" अिसके अलावा मराठी साम्राज्य में जो नये प्रदेश समाविष्ट हुअे अुनके निवासियों में यह साम्राज्य हमारा है यह भाव पैदा करने की कोअी चेष्टा नहीं की गयी। अिस काम को पूरा करने के लिअे अुस समय तो रामदास स्वामी भी अकेले असमर्थ ही होते। अुस समय तो अुस राज्य को बनाये रखने के लिअे कअी रामदासों की आवश्यकता थी। जो राजा और प्रजा को अुनके अुचित धर्म का दिग्दर्शन कराती और दोनों का सिर जिसके सामने झुकता अैसी आत्मबल की शक्ति राष्ट्र में से जब तिरोहित हो गयी अुसी समय मराठी साम्राज्य का विनाश हुआ। साम्राज्य की सारी प्रजा को सन्तुष्ट रखना और राज-नीतिज्ञ तथा सरदारों को राष्ट्रनिष्ठा के अेक ही सूत्र में ग्रथित कर देना केवल आतंक और दण्डनीति के बल होना असम्भव था। मराठी साम्राज्य के अस्त की यही यथार्थ मीमांसा है। यही विचार स्वर्गीय राजवाडे ने ब्रह्मेन्द्रस्वामी के विषय में लिखते हुअे और अन्यत्र भी प्रकट किया है।

प्राचीन यतिधर्म में राज्यक्रान्ति का भी समावेश होता था। राजा को गद्दी पर बैठाने के लिअे जिस प्रकार अेक राज्या-भिषेकविधि बनायी गयी थी और अुस अवसर पर राजा से धर्म के अनुसार राज करने की प्रतिज्ञा करायी जाती थी; अुसी तरह राजा अगर अपने धर्मका पालन न करे तो अुसे पदच्युत करने के लिअे सौत्रामणी नामक विधि या यज्ञ प्राचीन यतियों ने बनाया था। यह सौत्रामणी विधि अेक तरह से राज्यक्रान्ति की ही विधि थी। लेकिन यह राज्यक्रान्ति विधिपूर्वक और अहिंसा से हो, देश में बगावत या

बलवा न हो, अिस प्रकार का यह शास्त्र है। प्रजाधर्म का विचार करते हुअे अिस का स्मरण रखना आवश्यक है। राजा के अन्याय का निवारण कैसे किया जाय अिस का निर्णय अिस क्रान्तिशास्त्र में है। अिसलिअे यह कहा जा सकता है कि सौत्रामणी यज्ञ के रूप में प्राचीन यतियों ने अेक अहिंसक क्रान्तिशास्त्र का ही सर्जन किया।

अिसके बाद शासन-विधान की दृष्टि से आधुनिक काल में ब्रिटिश लोगों ने अेक जिम्मेवार शासन पद्धति का निर्माण किया। अिसी को उत्तरदायी मन्त्रि-मण्डलों की राज्यपद्धति कहते हैं। अिसके दो मूल सिद्धान्त हैं। पहला सिद्धान्त यह है कि राजा राज्य के सारे सूत्र मन्त्रियों को सौंप कर अुनकी सलाह से चले, और दूसरा यह कि अिस मन्त्रिमण्डल पर लोगों का विश्वास हो। जिस मंत्रिमण्डल पर प्रजा का विश्वास न रहे तो वह अिस्तीफा दे दे और जिस दल पर प्रजा का विश्वास हो वह नया मंत्रिमण्डल बनावे। ये दोनों सिद्धान्त हमारे प्राचीन राजधर्म में बीजरूप में पाये जाते हैं। शुक्रनीति में निम्न श्लोक हैं:—

सर्वविद्यासु कुशलो नृपोह्यपि सुमंत्रवित्।
मंत्रिभिस्तु विना मंत्रं नैकोऽर्थं चिंतयेत् क्वचित्॥
सभ्याधिकारिप्रकृतिसभासात्सु मते स्थितः।
सर्वदास्यान्नृपः प्राज्ञः स्वमते न कदाचन॥

अिन श्लोकों का भावार्थ यह है कि राजा को अपनी मर्जी से कुछ न करना चाहिअे, हमेशा मन्त्रियों के विचार से ही चलना चाहिअे। मंत्री किसे बनाना चाहिअे अिसके विषय में शान्तिपर्व में निम्न श्लोक है:—

तस्मै मन्त्रः प्रोक्तव्यो दण्डमाधित्सतानृप।
पौरजानपदा यस्मिन्विश्वासं धर्मतो गताः॥

जिनपर पौर और जानपद, याने शहरियों और देहातियों, का विश्वास हो अुन्हींको राजा नियुक्त करे अैसा यहां स्पष्ट कहा है। अिसलिअे यह कहा जा सकता है कि प्राचीन राजधर्म में जिम्मेवार मंत्रिमंडलों की पद्धति के दोनों सिद्धान्तों का अुल्लेख है। लेकिन अिस राजधर्म की अवहेलना करनेवाले राजाओं को दण्ड देनेवाले सौत्रामणी यज्ञ की कल्पना पर अमल करना हमने आगे चलकर छोड़ दिया; और प्रजाधर्म के क्रान्तिशास्त्र की यह विधि हम भूल गये। बल्कि, राष्ट्रसंगठन में यतिधर्म और प्रजाधर्म की हमारी सारी कल्पना ही विकृत या नष्ट हो गयी। अिग्लैंड में प्रजाधर्म में से ही क्रान्तिशास्त्र अुत्पन्न हुआ; और जब वहां बार बार राज्यक्रान्तियां होने लगीं तो अुन लोगों ने जिम्मेवार मन्त्रिमंडलों की प्रथा का सूत्रपात किया। यह जिम्मेवार राज्य-पद्धति अेक तरह से राज्यक्रान्ति का वैध और कानूनी अुपाय ही है। राष्ट्र में जिस पक्ष का बहुमत हो अुस पक्ष के नेताओं के हाथ में देश के शासन की बागडोर हो और वह बहुसंख्यक लोकमत के अनुसार कारोबार चलावे। जब अुनके पीछे बहुमत न रहे और दूसरे पक्ष का बहुमत हो जाय, तो अुन्हें राज्यप्रबन्ध अुस दूसरे पक्ष के हवाले कर खुद हट जाना चाहिअे। जबसे अिंग्लैंड में अिस नयी शासनप्रणाली का अुपक्रम हुआ तबसे वहां राजद्रोह और राज्यक्रान्तियां होना बन्द हो गया। क्योंकि अुन्होंने निःशस्त्र राज्यक्रान्ति का यह वैध शास्त्र निर्माण किया। राज्यक्रान्ति का यह निःशस्त्र मार्ग हाथ आने के कारण अिस राष्ट्र का वैभव अिन दो ढाअी सौ

वर्षों में काफी बढ़ा। लेकिन अब वहां भी ज़िम्मेवार राज्यपद्धति और लोकसत्ता नष्ट हो रही है और वर्गकलह जोर पकड़ रहा है, अतअेव अ[illegible] राष्ट्रीयता भग्न हो रही है। जब अुन्होंने हमें जीता तब तो वे यहां तक कहते थे कि हम तो तुम्हें केवल राष्ट्रीयता और लोकसत्ता के पाठ पढ़ाने के लिअे ही तुमपर राज करते हैं, जब तुम यह पाठ अच्छी तरह सीख लोगे तो हम अपने वतन को चले जायेंगे। आज हम तो राष्ट्रीयता और लोकसत्ता के पाठों पर खूब अच्छी तरह व्यवहार कर रहे हैं, मगर अिंग्लैंड से लोकशाही और राष्ट्रीयता नष्ट हो रही है। यही हाल सभी देशों का है। कारण यह है कि वे राष्ट्रसंगठन में अहिंसा का महत्त्व महसूस नहीं करते।

आज हमारे देश में प्राचीन यतिधर्म के आधार पर महात्मा गांधी अेक अहिंसक राजकारण का प्रवर्तन कर रहे हैं। अुन्होंने अेक यतिवर्ग भी निर्माण किया है और सत्याग्रह के प में निःशस्त्रक्रान्तिशास्त्र का भी आविष्कार किया है। यह निःशस्त्रक्रान्तिशास्त्र अंग्रेजों के वैधक्रान्तिशास्त्र की अपेक्षा श्रेष्ठ है और सशस्त्रक्रान्तिशास्त्र की अपेक्षा अधिक सुसंस्कृत है। अिसलिअे मुझे यह आत्मविश्वास होता है कि आधुनिक भारत आज यूरोप और रशिया से भी आगे बढ सकेगा। सत्य और अहिंसा में राज्यक्रान्ति की सामर्थ्य है यह गांधीजी दुनिया को दिखा रहे हैं। कअी यूरोपीय ग्रंथकार अुनके अिस क्रान्तिशास्त्र पर निबन्ध लिख रहे हैं और प्रवचन दे रहे हैं। लेकिन जैसा कि अुपनिषदों में कहा है— 'नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यः' यह आत्मबल केवल ग्रंथ लिखकर निर्माण नहीं किया जा सकता। क्योंकि यहां कोरे पांडित्य से काम नहीं चलता। अुस पांडित्य की जड़ में परमार्थ की आवश्यकता है।

"अधिगत परमार्थान् पण्डितान् मावमंस्थाः।
तृणमिव लघु लक्ष्मीर्नैव तान् संरुणद्धि।
अभिनव मद लेखा श्याम गण्डस्थलानाम्।
न भवति बिसतन्तुर्वारिणं वारणानाम्॥"

अिन शब्दों में परमार्थ जाननेवाले पण्डितों का वर्णन भर्तृहरि ने किया है; और राजा से कहा है कि अैसे परमार्थी पण्डितों का अवमान हरगिज न करना, क्योंकि ये परमार्थी पण्डित सत्ता और सम्पत्ति से वश में नहीं आते। आज यूरोप में पाण्डित्य की अिफ़रात है, लेकिन परमार्थ तो नाम को भी नहीं है। यह पारमार्थिक आत्मबल नष्ट होने के कारण ही यूरोप चौपट हो रहा है। अिस विनाश को यूरोप का शस्त्रबल या अुसका भौतिक विज्ञान नहीं रोक सकता। और न वहां आज महात्मा गांधी जैसे यतिधर्म के मूर्त अवतार ही हैं। आधुनिक यूरोप की सारी प्रगति वहां के वैश्य वर्ग द्वारा हुअी है। लोकसत्ता का निर्माण भी अुसीने किया। लेकिन अुसने मिलकियत और जायदाद को अेक त्रिकालाबाधित और प्राकृतिक अधिकार मान लिया। आज तो वहां की धनिकसत्ता का यह दावा है कि अुस अधिकार का नियंत्रण लोकसत्ता भी नहीं कर सकती। पार्लमेन्टरी राज्यपद्धति का निर्माण करते हुअे सारे प्रश्नों का निर्णय बहुमत के आधार पर करने का जो सिद्धान्त ब्रिटिश लोगों ने खोज निकाला अुसीपर वे अिस तरह खुद पानी फेर रहे हैं। अिसलिअे वहां की लोकसत्ता धनिकसत्ता के रूप

में बदल गयी है। अिस धनिकसत्ता का ही फॅसिझम अेक नया रूप है जिसका आज यूरोप में जहाँ तहाँ दोरदौरा है। सत्याग्रह में से अैसी धनिकसत्ता अुत्पन्न नहीं हो सकती। क्योंकि सत्याग्रह में निजी सम्पत्ति, त्रिकालाबाधित प्राकृतिक अधिकार नहीं माना जाता। बल्कि शुद्ध सत्याग्रही दृष्टि से तो निजी सम्पत्ति चोरी ही है। महात्मा गांधी तो कहते हैं कि धनिकों को भी यह समझकर चलना चाहिअे कि हमारी सम्पत्ति हमारी निजी या पारिवारिक जायदाद नहीं है। वह तो हमारे पास राष्ट्र की थाती है। धनवान लोग समाज के विश्वस्त निधिधारक हैं और अिस निधि का नियंत्रण वैध अुपायों से करने का समाज को पूरापूरा अधिकार है। जब यह सिद्धान्त नहीं माना जाता तो समाज में सधन और निर्धन अिन दो वर्गों में संघर्ष पैदा हो जाता है और राष्ट्रीयत्व अेवं लोकसत्ता का लोप हो जाता है। हमें आधुनिक यूरोप से यही सबक सीखना चाहिअे और अुसकी नींव पर अपने राजधर्म और प्रजाधर्म को प्रतिष्ठित करना चाहिअे। अिसके लिअे समाज को सत्याग्रही अपरिग्रही यतियों की जरूरत है।

यूरोप में जिस क्रान्तिशास्त्र का आविष्कार हुआ अुसमें से शस्त्रास्त्रों को जनता में बाँट देने की कल्पना का जन्म हुआ। आज भरतखण्ड में आत्मबल का क्रान्तिशास्त्र बन रहा है, और महात्मा गांधी अिस चिन्ता में मग्न हैं कि यतिधर्म की—सत्य तथा अहिंसा की—स्थापना सारे समाज में किस तरह हो। जब कि यूरोप में हिंसावाद असफल सिद्ध हो रहा है अुसी समय भरतखण्ड में अहिंसावाद फैल रहा है। सत्य की प्रस्थापना और अहिंसा द्वारा अन्याय के प्रतिकार का आदेश देनेवाले भारतीय तत्त्वज्ञान में से आधुनिक भारत का अवतार हो रहा है। यह आधुनिक भारत प्राचीन भारत का ही निचोड़ है। अिसलिअे मुझे जितना अभिमान आधुनिक भारत का है अुतना ही प्राचीन भारत का भी है। राजधर्म और प्रजाधर्म अिन दोनों के परे जाकर दोनों का विकास सत्य और अहिंसा की दिशा में ही होना आवश्यक है। दोनों का अन्तिम साध्य सत्य और अहिंसा ही है। यही प्राचीन और आधुनिक भारत का संसार के लिअे शुभ सन्देश है।

(मराठी 'लोकशिक्षण' से अनूदित)

निरपेक्ष सेवा करने में हम दूसरों पर मिहरबानी नहीं करते, बरन खुद अपना अुपकार करते हैं। कर्ज अदा करने में हम अपनी ही सेवा तो करते हैं। अपनी सारी साधन-सामग्री मनुष्यता को अर्पण करना हम सबका कर्तव्य है। मनुष्यजाति की पशु से भिन्नता का लक्षण त्यागधर्म है।

—गांधीजी

कौअे की नजर से

४. गांधीवाद और साम्यवाद

–१–

संपादकभाअी,

अेक शाम को मैंने भूशुंडी से कहा, कुछ ताजी गरमागरम खबर सुनाओ। तब वह बोला, आजकल जगह जगह गांधीवाद और साम्यवाद का बडा झगडा चल रहा है। बडे बडे नेताओं से लेकर पन्द्रह साल के लडके–लडकियों तक सब कोअी अुसी पर सवाल-जवाब किया करते हैं।

मैं—ये क्या चीजें हैं? तुमने अुन्हें चखा तो होगा ही। क्या मेरे-तुम्हारे खाने लायक हैं ये चीजें?

तब **सवाअी** हँसने के तौर पर दो बार जोर से 'का–का, का–का' चिल्लाया, और बोला—तुमको तो दिनभर की नींद के बाद खाने की ही बात सूझ सकती है। मगर 'वाद' कोअी खाने की चीज़ नहीं है। वह तो अुडान के लिअे अेक दूसरा शब्द आदमियों ने निकाला है। हमारे अुडने को तो वे लोग अुडान कहते हैं, लेकिन जब वे स्वयं अुडते हैं तो अुसे 'वाद' कहते हैं। बस, अितनीसी चीज़ है।

मैं—यानी ये जो कर्कश आवाज करते हुअे बडे बडे हवाअी-जहाज़ मंडराते हैं, ये सब क्या 'वाद' ही हैं?

सवाअी—तुम्हें तो काका, लंबी-चौडी बात में समझाना होगा तब कहीं यह बात तुम्हारी समझ में आयेगी। देखो, हमारे पूर्वज महात्मा भूशुंडी ने कहा है कि प्राणियों के विकासक्रम में आहिस्ता आहिस्ता अैसे प्राणी पैदा हो गये जो चार की जगह पिछले दो पैरों के बल चलने की, और पेडों पर चढकर रहने की ताकत रखते थे। फिर सवाल यह आया कि आगे के दो डण्डों का क्या अुपयोग किया जाय? तब अंदर से आत्मा की साफ़ साफ़ आवाज आअी कि और भी अूंचे जाओ। झाड को छोड कर हवा में अुडो, और अिसके लिअे आगे के डंडों का अुपयोग करो। हम पंखियों ने अुस आवाज को मान लिया, और दो भुजाओं को परों में बदल दिया। लेकिन, मनुष्य तो आखिर बंदर और पशुओं का ही भाअी ठहरा। अुसको हवा में अुडने में डर लगता था। अिस लिअे अुसने हाथों से केवल चीजों को पकडने का ही अभ्यास किया। अुसमें अितनी अक्ल नहीं थी कि हमारी तरह चलना और पकडना दोनों काम पैरों से लें ले।

अब दुनियाभर में आदमी ही अेक अैसा जानवर है जो अंदर की आवाज को ठीक सुनने पर भी अुसके अनुसार चलने की कोशिश नहीं करता, बल्कि अुसे दबा देने का ही प्रयत्न करता रहता है, और अुम्मीद रखता है कि वैसा करने में वह कामयाब हो सकता है। अिस तरह असल में विकास का अगला कदम तो था आसमान में अुडने का, लेकिन, आदमी बिलकुल अुलटी खोपडी का होने से वह झाड से भी अुतर गया और जमीन पर ही जा बसा। ठीक अुलटी दिशा में गया। लेकिन, अंदर से आवाज तो अुठ ही रही थी कि, 'अूंचे

जाओ, अूंचे जाओ'। जब अुसने अुसपर ध्यान न दिया तो परिणाम यह हुआ कि अुसके सिर में ही अेक आकाश पैदा हो गया, और वह आकाश दिन पर दिन बढ़ने लगा। फिर, अुसका दिमाग अेक बडे बरगद-सा हो गया। अुसमें हजारों शाखायें लाखों डालियां और करोडों पत्तियां फूटीं। फिर अुनके बीचमें कअी प्रकार की मकड़ियां पैदा हुअीं। अुन्होंने दिमाग के सारे पेड़ को अपने जाले में बांध लिया। आदमियों की भाषा में अिन मकडियों को विचार और अुनके जाल को धारायें कहते हैं। फिर मनुष्यों की आत्मा ने अिन मकडियों के साथ अपना तादात्म्य कर लिया, और दिमाग के भीतरी आकाश में जाले बनाने के लिअे कूदने और चक्कर काटने में ही वे अुडान का संतोष मानने लगे। अब बेचारे आदमी की अैसी स्थिति हो गअी है कि यह कहना भी मुश्किल है कि वह अपने विचारों से अुडता है या जकड़ा जाता है; क्यों कि अुसने अपना आकाश तो अपने सिर के जितना सकड़ा कर लिया, और अुसमें भी अेक बडा पेड़ लगा दिया। अब वह जाल बिगड गया है, और पेड़ की डालियां भी काटने लायक हो गअी हैं। लेकिन यह सफाअी कौन करे? और कैसे करे? हमारे पर अगर मैले हो जायें तो हम अुन्हें चोंच से साफ कर सकते हैं, पानी से धो सकते हैं। जरूरत हो तो परों को अुखाड कर भी फेंक सकते हैं। 'जिस पेड़ पर हम बसेरा करते हैं अुसकी डालियां हमारी अुड़ान को रोक नहीं सकतीं। लेकिन आदमी के पर तो सारे, मानों, अेक संदूक के अंदर बंद हैं। न अुसकी अंगुलियाँ वहां पहुँच सकती हैं और न वे निकालकर फेंके जा सकते हैं। अिसलिअे जब आदमी को कोअी अेक विचार हटाना होता है तब मालूम है वह क्या करता है?

मैं—नहीं, भाअी, मुझे क्या पता?

सवाअी—तब वह अुसके अूपर अेक दूसरा विचार जड़ने की चेष्टा करता है। और अगर वह दूसरा विचार वहां ठीक से बैठ जाय तो मान लेता है कि पहला विचार हट गया। अगर हमारे पर में अेक चींटी घुस जाय तो क्या अुसपर दूसरी रख देनें से पहली हट जायगी? अुन्हें कुछ बदन सिकोड़कर भलेही रहना पडे, लेकिन रह तो दोनों जायेंगी न?

मैं—यह तो साफ है।

सवाअी—फिर भी मनुष्य जबरदस्ती यह मानता है कि अेक विचार के अूपर दूसरा विचार लाद देने से पहला हट जाता है।

मैं—लेकिन, तुमने गांधीवाद-साम्यवाद की बात तो अभीतक बतायी ही नहीं? कहां से कहां बहकते जा रहे हो।

सवाअी—मैं क्या करूं? तुमने पूछा कि 'वाद' क्या चीज़ है। तब तुम्हारे लिअे अितना लम्बा-चौडा बखान करना पडा। अब, पंखियों की तरह हर अेक आदमी की अपनी अपनी अेक अलग अुडान हुआ करती है। अुनमें से कअी जो जोरदार होते हैं अुन लोगों की अुडानें बुलन्द होती हैं और अुनकी मर्यादा और तरीके खास तरह के होते हैं। दूसरे लोग अुनकी नकल किया करते हैं। मैंने पहले ही बताया है कि अिन बडी अुडानों को अकसर 'वाद' कहते हैं। मसलन मेरी अुडान

को काकवाद कहना होगा, और तुम्हारी अुडान को घूघूवाद। अिसी तरह बकवाद भी जानो। अिसी तरह लोग मानते हैं कि बापू के विचारों की अुडान का अेक खास ढंग है, अुसे वे गांधीवाद कहते हैं, और मार्क्स की अुडान की तर्ज को साम्यवाद कहते हैं।

मैं—तुम्हारी और मेरी अुडान का फर्क तो मैं जानता हूं। लेकिन गांधी और मार्क्स की अुडानों में क्या फर्क है सो तो समझाओ।

सवाअी—काका, अिसको सुनने से तुम्हारा पेट थोडे ही भरेगा? तुमको भूख सता रही है और मैं नींद के मारे बेचैन हूं। अिसलिअे अिस सवाल को कल के लिअे छोड दो।

आपके
आश्रम का अुल्लू

साहित्य में क्लिष्टता

[सियारामशरण गुप्त]

चिरगांव (झांसी)
३०-१-३९

सर्वोदय की भाषा

पूज्य श्री. काका साहब, प्रणाम,

जनवरी के 'सर्वोदय' में आपने 'सर्वोदय की भाषा' के नाम से अेक टिप्पणी लिखी है। अुसमें आपने जो 'गुनाह अेकदम कबूल' किया है, अुसमें मुझे आपत्ति है।

राष्ट्रभाषा यदि कोअी हो सकती है तो वह 'सर्वोदय' की भाषा होगी। आज जो बनावटी भाषा तैयार की जा रही है, अुसे मैं ठीकसे नहीं समझ पाता। राष्ट्रभाषा में जो गुण होने चाहिअे वे मुझे 'सर्वोदय' की भाषा में मिलते हैं। 'सर्वोदय' के सम्पादक हिन्दीभाषी नहीं हैं, अिससे अुसकी भाषा में कमी नहीं आती। वरन् अिसी कारण वह और भी राष्ट्रीय हो अुठी है।

मेरा अनुरोध है कि सरलता के फेर में आकर आप अुसे अपने अिस गुण से वंचित न होने दें। आज यदि वह किसी को क्लिष्ट जान पडती है तो अिसका दोष अिस भाषा में नहीं किन्तु समझनेवाले में है। वह यथासमय ठीक हो जायगा।

मैं बाहर था, जब यह अंक आया। घर आकर ही मैं अिस विषय में अपनी सम्मति लिखना चाहता था। पर अेक निबन्ध हाथ में ले लिया और अिसी कारण देर हो गयी।

अुस निबन्ध का सम्बन्ध अिसी विषय से है, अिसलिअे अुसे सेवा में भेजता हूं। कह नहीं सकता लेख 'सर्वोदय' के योग्य है अथवा नहीं। पर अुससे आपको मेरे विचार और स्पष्टरूप से मालूम हो जायँगे, अिसी विचार से वह जा रहा है। और यदि आप अुसे 'सर्वोदय' में छाप सकेंगे तो अिसे मैं अपने लिअे प्रतिष्ठा की बात समझूंगा।

सेवक,
सियाराम शरण

साहित्य में प्रसादगुण की सराहना के मूल में क्लिष्टता का विरोध पाया जाता है। जहाँ किसी तरह की प्रशंसा है, वहीं किसी न किसी तरह की निन्दा भी है। निन्दा में अेक दुर्गुण है। वह आग की तरह झपटकर आगे बढ़ जाती है, प्रकाश की तरह निज के क्षेत्र में प्रदीपित नहीं रहना चाहती। क्लिष्टता के विषय में अैसा ही हुआ है। जहाँ वह अुचित स्थान पर है, वहाँ भी वह आज सहन नहीं की जा सकती।

सरलता की चाहना अस्वाभाविक नहीं है। प्रारम्भ से ही मनुष्य की प्रवृत्ति यह रही है कि अुसका कार्य सरलता से हो। हथयार अुसने अिसीलिअे बनाये कि आखेट की कठिनाअी दूर हो जाय। खेत में अुसने अन्न के बीज अिसीलिअे फेंके कि अुसका आहार सुगम हो। घर अुसने अिसीलिअे खड़ा किया कि अुसे सरदी, गरमी और बरसा का कष्ट न अुठाना पडे। सब तरह की सरलता पाने के लिअे न जाने अुसने कितने कष्ट अबतक झेले हैं। आदिम युग से अुसका यह प्रयत्न बराबर चला जा रहा है। अिसके लिअे वह कितनी क्लिष्टता के बीच में होकर जा रहा है, अिसका हिसाब नहीं। यह देखकर कभी कभी असा भी लगता है कि क्लिष्टता ही कहीं अुसका ध्येय न हो।

यह हो कैसे सकता है? पथ पर हम चलते हैं, अिसलिअे वही सब कुछ नहीं हो सकता। वह तो साधन है। बात यह है कि आगे की विश्रामशाला में पहुँचने के लिअे ही हम लम्बी लम्बी घाटियाँ पार करते हैं, बड़ी बडी नदियाँ तैर जाते हैं और अथाह और विस्तीर्ण समुद्रों को देखकर भी भयभीत नहीं होते।

संसार में अैसे भी कुछ लोग हैं जो पथ की क्लिष्टता देखकर डर जाते हैं। अैसे जन बच्चों की जाति के हैं। वे चाहते हैं कि कोअी गोद में लेकर सुलाता हुआ ही अुन्हें ठीक स्थान पर पहुँचा दे।

किन्तु अिस तरह पथ की आवश्यकता नष्ट नहीं होती। पथ क्लिष्ट है, अिसी कारण घर भी सुखद, सरल और चाहने योग्य हो सका है। संसार के जितने पथ हैं, यदि वे सब के सब किसी अुपाय से, किसी मन्त्रबल से, घर ही घर हो जावें तब?—जरा हम कल्पना करें, तब क्या हो? अुस समय हमारे घर अितने बडे जेलखाने हो अुठेंगे कि वहाँ से छूटकर भाग बचने का अुपाय नहीं रहेगा। वहाँ के सुख की सेज अुस समय काँटों की हो अुठेगी।

साहित्य के सम्बन्ध में आजकल कुछ अैसा ही चाहा जा रहा है। हम अुसका आनन्द तो लेना चाहते हैं, पर लेना ही लेना चाहते हैं; कुछ देने के लिअे तैयार नहीं हैं। लेने के लिअे देना पहली शर्त है। अिसे पूरा किये बिना जो कुछ मिलता है, वह 'प्राप्ति' नहीं, अुसे भिक्षा कहते हैं।

साहित्य के दरबार में हम भाषा के मार्ग से पहुँचते हैं। मार्ग में कुछ न कुछ कष्ट होगा ही। बचने का अुपाय ही क्या? अुपाय यही है कि चला जाय। जो चलना चाहते नहीं और कहते हैं कि दरबार सार्वजनिक नहीं, चलनेवालों के ही लिअे है, वे किसी तरह नहीं समझेंगे। अुनसे निबटने के लिअे यही कह देना बस होगा कि आप ठीक कहते हैं!

दरबार सार्वजनिक है, पर पथ अुनके लिअे है जो चल सकते हैं। भाषा और साहित्य का अन्तर वही है जो पथ और दरबार का है। जिस तरह अेक सीमा पर पहुँचकर पथ ही दरबार हो जाता है, अिसी तरह अेक जगह भाषा ही साहित्य बन जाती है।

भाषा और साहित्य का यह सम्बन्ध अितना गहरा है कि कभी कभी भ्रम हो जाता है। अेक दूसरे को हम ठीकसे समझ नहीं पाते। किसी भाषा में 'किन्तु' की जगह 'मगर' अथवा 'मगर' की जगह 'किन्तु' देखकर ही हम यह कहने लगते हैं कि यह साहित्य सब के लिअे नहीं है क्यों कि यह दुरुह है।

यह वैसी ही हास्यास्पद बात हुअी, जैसी कि मूर्ति देखकर हम अुसे खोटा पत्थर समझ लें। कहें कि कौन था जिसने अिसे अिस तरह बिगाड़ डाला है? अिसमें कहीं अुंचाअी है और कहीं निचाअी, और कहीं छोटी छोटी रेखाअें; साफ सपाटपन तो अिसमें अेक जगह भी नहीं दिखाअी देता। यह न हमारे लेटने के काम आ सकता है और न बैठने के ही।

साहित्य की दुरूहता बहुत कुछ हमारी अिसी तरह की है। पत्थर को हम समझ लेते हैं। अिसमें हमें श्रम नहीं पडता। देखा और तुरन्त ध्यान में आ गया कि अिससे हम अपने शत्रु का सिर चकनाचूर कर सकते हैं, और दूसरा यह हमारे निमक-मिर्च का चूरा करने के अुपयुक्त है। पत्थर के साहित्य का यह अंश अितना स्पष्ट है कि जंगली आदमी को भी अिसे समझने के लिअे कष्ट नहीं करना पड़ा। अिस सरलता के लिअे पत्थर के निर्माता के प्रति अुसके मन में कृतज्ञता का भाव अुठा होगा।

अपने प्रारम्भ में भाषा किसी पत्थर की भाँति सुबोध थी। खाने-पीने और अुठने-बैठने के काम में अुसने सहायता पहुँचाअी और अुसका काम पूरा हुआ।

यह अुसका बचपन था। बचपन की आवश्यकतायें थोडी होती हैं। अिसीलिये थोडे शब्दों में ही अुस समय काम निकल जाता है। कभी अधिक की आवश्यकता होती भी है तो रोने में, चिल्लाने में, काट-खाने में, और बहुत हुआ तो हँस-कूदने में हम अिसकी पूर्ति कर लेते हैं।

बचपन किसीका रहता नहीं है। अुस की सरलता के लिअे हम कितना ही विलाप करें, आगे के दुरूह पथ में जाकर वह कहाँ जा छिपा है, अिसका पता तक हमें नहीं मिलता। अेक बात है। वह चला जाता है, अिसीलिअे अुसके प्रति हमारा आकर्षण अितना अधिक है। यदि वह निरन्तर हमारे पास बना रहता तो हम न जाने कितना अुसे कोसते। हमारे मित्रों में अनेक तरुण अब भी अैसे हैं, जिनके लिअे कहा जाता है कि अुनका बचपन, अर्थात् अुनकी मूर्खता, अब तक गअी नहीं। अिसके लिअे अुन्हें अपने बडों से कितना भला-बुरा सुनना पड़ता है अिसकी चर्चा रोचक न होगी।

क्या भाषा का बचपन सदा अेकरस बना रहता? चिर-कुमारी या चिर-विधवा के प्रति हम श्रद्धा या अनुकम्पा का अुच्च भाव रख सकते हैं। पर यह होना हमसे कठिन था कि जीवन भर किसी बालिका

को गोद में दबाये हुअे अुसे चूमते-पुचकारते रहते। विशेषकर अैसी हालत में और भी जब कि वह गूँगी हो। अैसी भाषा हमारे किस काम आती? जीवन के जिस पथ पर हम आगे बढ़ते हैं, अुसके लिअे माता अपेक्षित हो सकती है--हमें आशीर्वाद करने के लिअे। बहिन चाही जा सकती है--हमें हमारे संकट में रक्षा-सूत्र बाँधने के लिअे। और हाँ, प्रेयसी; वह आवश्यक हो सकती है—हमें अपना पौरुष प्रदीप्त करने के लिअे। अुस अविकसित बोली के द्वारा अिनमें से हमारी किस आकांक्षा की पूर्ति होती? किसीकी भी तो नहीं। अिसलिअे अुसका विकास हमारे साथ साथ होना अुचित ही था। नहीं तो अुसे भी हम अपने बचपन के गुड्डे-गुड्डियों के साथ या तो तोड़-मरोड़ डालते या किसी अैसे सुरक्षित ठिकाने में रख छोड़ते, जहाँ के ढेर में से हमीं अुसे कभी खोज न पाते।

आदमी जंगली से बदलकर हो गया है मनुष्य, भाषा बोली से बदलकर हो गअी है साहित्य। यह ठीक ही हुआ है। भले ही अिस कारण दोनों की पहली सरलता मिट गअी हो। भले ही अिस कारण दोनों को दुरूह होना पड़ा हो।

जीवन का दुरूह की ओर अग्रसर होना अप्राकृतिक नहीं। सरलता अुसकी अिसीमें है। पानी का सोता फूटते ही टेढ़ा-मेढ़ा बहने लगता है। अिसके लिअे अुसे मूर्खता का दोषी नहीं करार दिया जा सकता। जिस पथ से वह चलता है, अुसकी अपेक्षा अुसके लिअे सीधा और कौन पथ होगा? आगे वह किसी नदी में जाकर गोता खा जाता है, अिसके लिअे भी अुसकी निन्दा नहीं की जा सकती। वह तो किसी अगम-अथाह का यात्री है। नदी से नद में और नद से किसी क्षार जलराशि में ही जाना अुसका ध्येय है।

जहाँ प्राण का अुच्छ्वास है, वहीं अैसा दिखाअी देगा। साहित्य मनुष्य का बनाया है, फिर भी यह निर्जीव होने के लिअे नहीं बना था। गणेशजी के जन्म के सम्बन्ध में अेक कथा है। पार्वती माता ने मिट्टी का अेक पुतला बनाया और अपनी अुंगली चीरकर अुसका अमृत अुसे पिला दिया। यही गणपति हमारे वाङ्मय का विघ्नविनाशन देवता है। साहित्य की सृष्टि भी ठीक अिसी प्रकार हुअी है। मिट्टी के किसी पुतले को अपना रक्तदान करके मनुष्य ने अुसे लौकिक से अलौकिक कर दिया है। अुसके प्राणोच्छ्वास का कहना ही क्या? अबाध होकर वह स्वतन्त्र है। अिसी कारण वह अपने बनाने वाले से भी अूंचा अुठा दिखाअी देता है। पार्वती के विवाह में गणेशपूजन की बात कही जाती है, अुसका आशय भी यही है। वह यही प्रकट करने के लिअे है कि व्यक्ति स्वयं अपने में बड़ा नहीं, बड़ी है अुसकी कृति।

मनुष्य बड़ा होना चाहता था, अेक से बहु होना चाहता था, अिसीकी पूर्ति के लिअे अुसने भाषा का निर्माण किया। पर बड़े होने की कुछ सीमा भी है? सीमा तभी तक है जब तक नीचे की धरती है। अुपर आकाश में अुठते ही सीमा का बन्धन टूट जाता है। भाषा तब तक धरतीपर थी, जब केवल यह बता देना अुसका काम था कि यह पत्थर है। पत्थर की अुपयोगिता जानकर मनुष्य के

मन में पत्थर बनानेवाले के प्रति आनन्द का, कृतज्ञता का, भाव अुठा। यह असीम था। यह अितना व्यापक था कि किसी अेक जगह पकड़ा नहीं जा सका। परिमित शब्द जैसे अुसे छू तक नहीं सके। पर वह रुकता कैसे? अुसके मूल में आनन्द जो था, कृतज्ञता जो थी। अिसीलिअे वह अजस्र धाराओं में अेक साथ फूट पड़ा। भाषा अिसी जगह साहित्य का रूप धारण करती है। अिसी जगह अेक छोटा सोता अनन्त दूसरे सोतों से मिलकर अेक बड़ा नद होता है।

अिस प्रकार हम देखते हैं कि भाषा में से साहित्य का अुद्भव अुसी प्रकार हुआ है, जिस प्रकार बचपन में से यौवन का। यौवन भी कम खिलाडी नहीं है। अन्तर अितना कि बचपन के खिलौने अुसें रुचते नहीं हैं। हाथ के झुनझुने की छोटी झनकार ही अुसे सन्तुष्ट नहीं कर पाती। वह कुछ अधिक चाहता है। अिसीलिअे वह अपने स्वर को घुमाफिराकर, चौडे से सकडे में आकर और सकडे से चौडे में जाकर पहले तो अपने आप कठिनता अुत्पन्न करता है और फिर अुसी कठिनता से संगीत का नया ही रस लेता है। और अिसी तरह अपने घर की बगीची में अपने स्वजनों से रक्षित होकर चलने में अपनी दौड-फिर की प्यास भी वह नहीं बुझा पाता। वहाँ अुसे अैसा लगता है, जैसे अपने पैर वह चल ही न रहा हो। पैरों का यह अपमान वह सह नहीं सकता। अिसीलिअे वह अकेला, अरक्षित ही चल पड़ता है किसी बहुत दूर के लिअे। वहाँ के लिअे, जहाँ चारों ओर भयंकर गहनता है। जहां स्वजनों की छाया नहीं है। जहाँ माता की ममता नहीं है। जहाँ दूर तक दुर्गम अरण्य फैला हुआ है। वह जानता है, अिस सबके अुस पार वह अुस विराट नदी के दर्शन करेगा, जिसका मधुर और गम्भीर घोष अुसने कल्पना की सहायता से यहीं पर सुन लिया है। अुसने अुसे देखा नहीं है, पर वह जानता है कि वह बहुत दूर नहीं है। दूर भी हो तो अुसके पैरों में बल है और मन में शुद्ध संकल्प। सारी कठिनाअियों को रूँदते हुअे जिस समय वह वहाँ पहुँचकर अवगाहन कर लेगा, अुसी समय मार्ग की सारी कलुषता और श्रान्ति अेक साथ धुल जायगी। अुस समय अुसे जान पडेगा कि बीच की सारी कठिनाअी यहाँ के लिअे सरलता का ही रूपान्तर थी।

चरखा हरअेक घर के लिअे अेक अुपयोगी और आवश्यक अुपकरण है। वह राष्ट्र के वैभव का और अिसीलिअे स्वतंत्रता का प्रतीक है। वह औद्योगिक संघर्ष का नहीं, बल्कि औद्योगिक शान्ति का प्रतीक है। अुसका सन्देश संसार के राष्ट्रों के प्रति बैर का नहीं बल्कि सद्भाव और स्वावलंबन का है।

—गांधीजी

ग्रामसेवक के अनुभव

[प्रभुदास गांधी]

[१]

"क्या तरक्की के अिस जमाने में भी सिर्फ खादी ही में आप लोग सारी ताकत लगा देंगे ? नये विज्ञान से देश को कुछ भी फायदा नहीं पहुंचाया जायगा ? सारी दुनिया जब आगेको दौडे रही है, आप अकेले यहां कब तक खडे रह पावेंगे ? और फिर जिस खादी के पीछे बीसियों बरसों से आप लगे हुअे हैं अुसमें भी आप कुछ कर तो पाये ही नहीं हैं। खादी अितनी महंगी हो गअी है कि सिर्फ पूंजीपति ही अुसे खरीदने की हिंमत कर सकते हैं। या सन के बोरे जैसी मोटी यह खादी बेचारे बुद्धू किसान शायद पहिन लें। जो कुछ हो, औसत दरजे का आदमी किसी हालत में खादी नहीं पहिन सकता। मुल्क तो स्वदेशी मिलों के कपडे ही पहिनेगा। आप लोगों को चाहिअे कि खादी से ज्यादा कारआमद हुनर की लोगों को तालीम देने में अपनी जिंदगी खर्च करें।"

मुझसा ग्रामसेवक पासपडौस के कस्बे या शहर में जब कभी पहुंच जाता है; या पढे-लिखे नागरिक हमारा काम देखने देहातों में आते हैं और ग्रामसुधार का चमत्कार हमारे द्वारा देखना चाहते हैं, परंतु रूखे और सौम्य चर्खे को छोड कर दूसरा कोअी साधन हमारे हाथ में वे नहीं देखते, तब अूपर वाली नसीहत दूने जोर से हमारे सिरपर थोपी जाती है।

अपने आपको अधिक देश-हितैषी समझनेवाले महानुभावों को दिमाग के कच्चे जंचने वाले मुझ जैसे बुद्धू की समालोचना करने में ज्यादा दिलचस्पी नहीं होती। वे दो कदम आगे बढ़ कर कांग्रेस के 'बा[illegible] नेताओं' की आलोचना करने लगते हैं और फौरन पू० गांधीजी पर भी जबान चलाने लगते हैं। वे कहते हैं "गांधीजी लाख कोशिश करें दुनिया महात्माओं की थोडे ही बन जायगी। हर अेक आदमी अपना लाभ ही देखेगा। हर अेक अच्छा खाना-पीना-पहिनना चाहेगा, रंगराग भी चाहेगा। जिंदगी का मजा अुसीमें है। वनवासी पूर्वजों का जमाना गुजर चुका है। गांधीजी को चाहिअे कि चर्खे के पीछे जो ताकत वे लगाते हैं अुस ताकत को वैज्ञानिक दस्तकारों की सेना तैयार करने और अुन्हें रोजी पहुंचाने में लगा द। अुनको चाहिअे कि वे बिड़लाजी से अैसी मिलें खुलवा दें जिनका सारा मुनाफा मिल के मजदूरों और मिस्त्रियों को ही मिले। अैसा करने से हजारों बेकार युवकों की जिंदगी तबाह होनेसे बच जायगी।"

अुक्त कथन को घंटों नहीं महीनों वे रटते रहते हैं। गांधीजी के चर्खे के शिकार बने हुअे हम लोगों पर वे तरस खाते हैं और गांधीजी को सही चीज बताने वाले पासवान अुन्हें नहीं मिलते अिसके लिये वे मन ही मन हैरान होते हैं।

पर ताज्जुब की बात है कि जिन देहातियों के बीच बरसों से बसते हुअे हमें किस[illegible] किसम की अश्रद्धा, निराशा, और आ[illegible] झेलनी पडती हैं अुनकी तरफ से चर्खे

विरोध में अुफ तक सुनाओ नहीं पडती। "हम कैसे कातें? हमें आता जो नहीं है, हमारे पास रुओ नदारद है, हमारा सूत बुनने का अिंतजाम नहीं"—अित्यादि शिकायतें तो वे करते हैं। लेकिन खादी से हमारा क्या कल्याण होगा? चर्खे में क्या धरा है?—अैसे सवाल अुनके दिल में पैदा ही नहीं होते। बल्कि सावधानी से सुनने पर अुनका देहाती हृदय खोये हुअे अिस सामर्थ्य के लिअे बिलखता दिखाओी देता है। जिस तरह अपनी कमजोरी और परिस्थिति की भीषणता के कारण मौरूसी जमीन से बेदखल हो जाने पर किसान ग़म खा लेता है और कच्ची काश्त के लिये पैरवी करता है परंतु अुस बपौती के छूट जाने का अुसका शोक नहीं मिटता अुसी तरह घर के बने अनेक थानों की जगह छः आठ पैसे गज वाले कागजी कपडों से वह तन को छिपा लेता है परंतु अुसका दिल असली सच्चे कपडे के लिये—यानी खादी के लिये—तरसता है। जब अुसे खादी हासिल करने का सही तरीका बताया जाता है तब अुसका मुझाया हुआ चेहरा खिल जाता है। जब हमारा हल्का सरल चर्खा वह देखता है और मजबूत धागे का अटूट प्रवाह तकुवे पर लिपटता हुआ अुसकी नजर में आता है तब अुसको अैसा आनंद होता है मानो खोये हुअे बैल मिल गये हों। हमारी अस्खलित कताओी निहारते हुअे वे डोलने लगते हैं।

देहातियों की बडी बडी भीडों के सामने किसम किसम के चर्खे और तकली पर कतार बांधकर कातने का सुयोग हमें प्राप्त हुआ है। अेक अेक चर्खे के सामने भीड रुकती है, देखती है, प्रसन्न होती है और हर्ष प्रकट करती है। अेक कहता है "कांग्रेस ने बड़ा भारी काम किया"। दूसरा कहता है "यही तो सच्चा काम है"। तीसरा कहता है "मानता कौन है? कांग्रेस-वाले अितनी महिनत से हमारे पुरखों का हुनर सिखाते हैं पर अब तो सब नज़ाकत और शान के पीछे मरे जाते हैं"। और फिर आगे खिसकती हुओी भीड से आवाजें आती हैं; "भैया बरक्कत तो अिसीमें है"; "यहां मर्द कात रहे हैं और हमारे यहां बहू-बेटीयां कातनेसे परहेज करने लगी हैं"; "हमारी औरतें कातने लग जायें तो बेकार के लडाओी-झगडे भी न रहें"; "घरघर चर्खा-चक्की चलने लगे तो सचमुच बड़ा ही अमन हो जाय"।

देहाती लोग विवाद करना नहीं जानते। निंदा या तारीफ के मोर्चे लगाना भी नहीं जानते। जो प्रतीत होता है अुसे प्रकट करने की परवाह भी अुनको नहीं होती। सिर्फ जब कभी खुशी या रंज के मारे रहा ही नहीं जाता तब अुनके अंतर में से गंभीर अुद्गार निकल पडते हैं। अूपर दिये गअे दो चार अुद्गारों से किसी बडी भारी पुस्तक की अपेक्षा बहुत ज्यादा यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारे देश में खादी का स्थान कितना अूंचा—अच्छे से अच्छे कल्पकों की कल्पना से कहीं अधिक अूंचा है।

कलायुक्तश्रम (स्किल्ड लेवर) और विराट अुत्पादन (मासप्रोडक्शन) के स्तोत्र गाने वालों को चाहिअे कि वे प्रथम अिस बात का पूरा पूरा अनुभव करें कि जनता का बडा हिस्सा किस अुद्योग को अधिक से अधिक चाहता है। और यह भी जान लें कि बुढ़िया के कहे जानेवाले अिस चर्खे में

वास्तव में कितना हुनर, कितनी अिंजनेरी, कितने रसायन और कितने गणितशास्त्र के लिअे गुंजाअिश है और वह समृद्ध वैज्ञानिक अुद्योग किस तरह बन सकता है।

× × ×

–२–

फर्ज कीजीये देहाती घरों से चूल्हा हटा दिया जाय। आग जलाना जानने वाला गांव में कोअी न रहे। बिजली से जलने वाली तंदूरों की रोटी घर घर पहुंचने लगे; तो ग्राम जीवन कैसा बन जायेगा? क्या अुसमें कोअी जीवन या संतोष दीख पडेगा? माता के हाथ की बनी चौथाअी रोटी गले में जो तरी पहुंचाती है, कलेजे को जो ठंढक पहुंचाती है और दिमाग को जो तरावट देती है वह चौरा मिलनेवाले सस्ते से सस्ते स्वादि से कभी मिलती है?

तो फिर क्या वजह है कि घरके गजभर कपडे का मुकाबला बाजारू खु थान से किया जाय? आकाश के को मुठ्ठी में धर लेनेवाले अिस वैज्ञा जमाने में भी जब मिट्टी का चूल्हा समाज ने गले लगाये रक्खा है, और अुसमें अपना जीवन पाता है तो चर्खा- जो मनुष्य-जीवन की अुतनी ही बडी है अुनसे समाज को क्योंकर नफरत सकती है? यदि है तो सस्ताअी-महं के नाद की मोहनी दूर होते ही वह ह हवा हो जायेगी।

[क्रमशः]

रिक्तता की सभ्यता

[सतीशचन्द्र दासगुप्त]

यह बात अेक सदी से चल पडी है कि पूरब और पच्छिम दो दिशाओं में बहने वाली दो धारायें हैं। भारतवर्ष, चीन, जापान, फारस आदि पूर्वीय देश हैं और यूरोप पाश्चात्य देश हैं। भारत वगैरह पूरबदेशों की सभ्यता अेक तरह की है और यूरोपीय सभ्यता दूसरे तरह की—यह हम जानते थे और यही हमारे शिक्षक हमें सिखाते थे। सभ्यता का अर्थ हम यूरोपीय सभ्यता ही समझते थे,—वही सशब्द क्रियाशील और युध्यमान है। यदि अुसे कोअी खराब कहे तो तुरंत वे लोग लाठी के जोर से स देते थे कि यूरोप की सभ्यता ही वास्त सभ्यता है। बाहर के अपमान और बेअिज्ज को हम बाहर ही रख देते थे और घरों में आकर बहुत तो अपनी सभ्यता बडाअी की चर्चा आपसमें कर लिया थे कि प्राचीन काल में हमारे यहां था और वह था। कभी बेजार होकर बडे दुःसाहस से हम थे कि हमारी सभ्यता ही सभ्यता है—तुम युरोपीय सभ्यता नाचीज है किन्तु

कहते वक्त हमारे हृदय की दीनता और भी अधिक प्रकट होती थी क्यों कि मन ही मन हम अुन्हींकी चीजों को अुजली समझते थे। केवल बातों से हृदय की दरिद्रता नहीं छिप सकती थी। मोक्षमूलर ने हमारी सभ्यता की बडाअी की है, हॅव्हेल ने हमारी भारतीय चित्रकला के सौंदर्य पर मुग्ध होकर अुसे अपना लिया था। स्वयं रवीन्द्रनाथ गाते हैं:-

"को' रो ना को' रो ना लज्जा हे भारतवासी
शक्ति मदमत्त अै वणिक बिलासी
धनदृप्त पश्चिमेर कटाक्ष सम्मुखे
शुभ्र अुत्तरीय परि शान्त सौम्य मुखे
सरल जीवनखानि करिते वहन।
शुनोना कि बले तारा, × × × ×
× × × × × स्वाधीन आत्मारे
दारिद्र्येर सिंहासने कर प्रतिष्ठित
रिक्ततार अवकाशे पूर्ण करि चित्त !"

याने--

'हे भारतवासी तुम शुभ्र सादी चादर (अुत्तरीय) ओढे हुअे हो। तुम्हारा चेहरा शान्त और सौम्य है। पश्चिमी, वणिक विलासी, मदमत्त और धनदृप्त (धन के अहंकार में चूर) पश्चिम के कटाक्ष के सम्मुख तुम अपना सरल जीवन यापन करने में लज्जित मत होओ--शरमाओ मत। वह यूरोपीय सभ्यता तुम्हारे बारे में क्या कहती है अिसपर ध्यान मत दो। अपनी अिच्छा से अंगीकृत रिक्तता के अवकाश या अपरिग्रह में--अपने शौक से मंजूर की हुअी ग़रीबी में--जो आनन्द, सन्तोष व स्वच्छन्दता है अुससे अपने चित्त या दिल को परिपूर्ण कर अपने स्वाधीन आत्मा को दरिद्रता या ग़रीबी के राज्य-सिंहासन पर प्रतिष्ठित करो।'

अिसको गान किये एक पुश्त बीत गयी किन्तु चिरदरिद्र भारतियों के लिये दरिद्रता या रिक्तता के सिंहासन पर प्रतिष्ठित होकर आत्मगौरव अनुभव करने के लायक वायुमंडल अभी तक तैयार नहीं हो सका। किन्तु अिन्हीं लोगों ने भारतियों को जगाया है। स्वामी विवेकानन्द और रवीन्द्र आदि ने नूतन भारत की जिस रूप में पूजा की है अुसी रूप की प्रतिष्ठा करने के लिये आज गान्धीजी बैठे हैं। रवीन्द्र का आवाहन बेकार नहीं गया—

"—तुमि थेको साजी,
चन्दन-चर्चित, स्नात निर्मल ब्राम्हण,—
उच्च शिर ऊर्ध्वे तुलि गाहियो बन्दन—
अेस शान्ति विधातार कन्या ललाटिका,
निशाचर पिशाचेर रक्तदीप शिखा
करिया लज्जित।"

"हे चन्दन चर्चित, स्नात, निर्मल व पवित्र ब्राह्मण, तुम अपने सरल पवित्र वेष में सज्जित रहो। अपने अूचे सिर को अूपर अुठा कर यों बन्दना गीत गाते रहो—

'हे शान्ति, तू विधाता की कन्या के ललाट पर वास करने वाली हो। अन्धकार में विचरण करने वाले पिशाच की रक्त दीप-शिखा (खूनी चिराग) को लज्जित करती हुअी तू आ जा।"

आज गान्धीजी की शिक्षा से भारत ने सत्य और अहिंसा को अपने राष्ट्रीय जीवन का आदर्श मान लिया है—जिससे चन्दन-चर्चित, स्नात, निर्मल ब्राम्हण वाले गीत की ध्यानमूर्ति क्रमशः प्रकट हो रही है। यद्यपि हमारी मोह-रात्रि का अन्त अभीतक नहीं हुआ है; तो भी चारों ओर के दूसरे दूसरे राष्ट्रों की वर्तमान खूनी व्यवस्था के

कारण वायुमंडल अैसा हो रहा है, कि अपने आदर्श का आदर करना हमारे लिये अनुकूल हो गया है। अैसे समय पर भारत कहीं विभ्रान्त न हो जाय--भूल न कर बैठे।

गत तीन सौ वर्षों तक लगातार वस्तु-तांत्रिक, (भौतिक अुन्नति) की राह पर चल कर आज पाश्चात्य देश अपनी दानवता की नग्न मूर्ति अपनी आखों के सामने देख रहे हैं। वैज्ञानिक बाष्प और विद्युत् को अपनी दासियां बना कर असाध्य साधन कर रहे हैं। और अिनकी बदौलत समर्थ होकर वस्तुसंग्रह करना और अुपभोग लेना ही अुनके जीवन की कामना हो गयी है। परपीडन से स्वार्थ-साधन करने में अुन्होंने अपना गौरव समझा है। भारत, चीन, जापान, मिश्र, मेक्सिको और पेगू पर आक्रमण कर अुन्होंने वहां के बाशिन्दों को गुलाम बना रक्खा है। वहां के कच्चे माल को खरीदकर यूरोप के पक्के माल को वहां भेजकर वहां के लोगों को बेकार और विव्हल बनाकर अुसे खरीदने के लिये मजबूर किया है। स्कूल और कालेज खोलकर वहां के बाशिन्दों को अपनी चापलूसी करने वाले बनाकर अुनकी मार्फत कहीं राज्यशासन के द्वारा स्वार्थ-साधन किया है, और कहीं विशेष अनुग्रहीत जाति का अधिकार (मोस्ट फेवर्ड कन्ट्री) और विशेष सुविधा (कन्सेशन्स) अित्यादि के बहाने शोषण व स्वार्थसिद्धि का काम चालू कर रक्खा है।

कोयले और फौलाद के युग का आवाहन कर वे स्वयं अुसके ऋत्विज् बन बैठे हैं। अिस वस्तु-पुजारी दल का शूरू में अिंग्लैण्ड अग्रणी व पथदर्शक था।

सन् १८७० ई० का हिसाब देखने से यह साफ मालूम होगा:--

लोहे की (पिग आअिर्न) उत्पत्ति

संसार में	१३० लाख टन
अिंग्लैण्ड	६० ,, ,,
जर्मनी	१५ ,, ,,
फ्रान्स	१२ ,, ,,
अमेरिका के संयुक्त राष्ट्र	१७ ,, ,,

कोयले की उत्पत्ति

अिंग्लैण्ड	१४७० लाख टन
अमेरिका के संयुक्त राष्ट्र	१७४ ,, ,,

अुन्नीसवीं सदी के अिस आखरी समय से ही यूरोप के अन्यान्य देश और अमेरिका भी अिंग्लैण्ड के बतलाये हुअे रास्ते पर बडी तेजी से चलते रहे और अिंग्लैण्ड के स्थान (अधिकार) को क्रमशः घटाकर आपस में बाँटते रहे। क्यों कि चीजों को तैयार करने के लिये अितने बड़े पैमाने पर यंत्रराज और कल-कारखानों को वे काम में लाते थे कि अुत्पन्न चीजों की खपत व बिक्री के लायक बाजार अुन्हें नहीं मिलता था—भारतीय, निग्रो, व चीन अित्यादि गुलाम जातियों के बीच भी अितना माल सब का सब बिक नहीं सकता था। अुसी समय से लूट की खोज और अधिकार के लिये अुन लोगों के बीच परस्पर टक्कर और होड़ चलती रही। अिंग्लैण्ड की संतान अमेरिका का संयुक्त राष्ट्र बहुत पहले विद्रोह कर अिंग्लैण्ड से अलग हो गया। ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत कैनेडा और आस्ट्रेलिया के गोरे लोग भी अब अिंग्लैण्ड के अधीन रह कर अुसका माल खरीदना अस्वीकार करने लगे--वे खुद माल तैयार कर

लगे। तथापि श्वेताङ्ग जाति का अेक लुटेरा दल (लुण्ठन-समवाय) तैयार हो गया। फिर अुसके बाद जापान जागकर भी लूट मचाने के नशे में मत्त हो गया। वह यूरोपीय व अमेरिकन सभ्यता का शिष्य बन गया। ज्यों ही जापान ने यंत्रशिल्प व कल-कारखाने के अुद्योग में पैर फैलाया कि दुनिया में पीत-आतङ्क फैल गया। श्वेत जाति की अैसी धारणा थी--अुनका अैसा विश्वास था--कि सारी दुनिया के सुख और भोग अुन्हींके लिये हैं, दुनिया की सारी सम्पदाओं को विधाता ने सिर्फ अुन्हीं के भोगने के लिये पैदा किया है, और ये सब सुख सदा अुन्हींके अधिकार में रहेंगे। किन्तु अंग्रेज, जर्मन और अमेरिकन वैज्ञानिकों और अेन्जीनियरों की सहायता से जापान ने भी वह विद्या सीख ली और अुन तमाम यांत्रिक हुनरों अेवं कल-कारखानों को अपने देश भर में खोल दिया जिनके बल से यूरोप अितना बलशाली था। अिससे श्वेत जाति के निर्विवाद अेकाधिपत्य (अविसंवादी प्रभुत्त्व) की मर्यादा घट गयी। अिसके बाद जब यूरोपीय महायुद्ध शुरू हुआ तो अुसीके दरमियान सुयोग पाकर जापान, अमेरिका, कैनेडा और आस्ट्रेलिया ने अुन बाजारों को बहुत दूर तक दखल कर लिया जहाँ पहले केवल यूरोप अपना माल बेचा करता था। और चन्द वर्षों के अन्दर ही वहाँ जम कर बैठ गये। अिस महायुद्ध ने ही यूरोप के गौरव का अन्त करते हुअे बीसवीं शताब्दी के नये युग की सृष्टि की है। हिटलर और मुसोलिनी महायुद्ध के ही फल हैं--ये अिस बात पर तुले हुअे हैं कि अंग्रेज अपने गुलाम देश वा गुलाम राज्य को निष्कंटक भोगने न पावें। अिस तरफ जापान भी अुसी पथ-पर चलने को तैयार हो गया है। यही तो आज दुनिया की हालत है। हम लोग अभी अिंग्लैण्ड को वृद्ध सिंह के जैसा देख रहे हैं। जर्मनी, अिटली, जापान, और अमेरिका ने आज महाबली होकर सारे संसार को आपस में बांट लेने की नयी समस्या खडी कर दी है। अितने दिनों तक यूरोप यही सिखलाता आया है कि लाठी के जोर से परस्वापहरण कर अपनी भोगवृत्ति की तृप्ति करनी चाहिये--अुसे फैलाना चाहिये। नम्र वा सभ्य भाषा में अिसीको जड़ वस्तुतंत्रता (मटीरियालिज़म) वा भोगविलास का साम्राज्य कह सकते हैं। अिसका पृष्ठपोषक सामरिक बल है। अतअेव आज अिसी बात की होड़ चल रही है कि कौन कितनी प्रलयंकर व खूनी शक्ति बढ़ा सकता है। यह काम अब सिर्फ यूरोप का ही नहीं रहा। अमेरिका और जापान ने अिस काम में बहुत बड़ा दर्जा हासिल कर लिया है।

गत कअी महीनों के अन्दर जर्मनी ने जो प्रलय की तैयारी कर ली है; अिटली, जापान व अमेरिका जो कर रहे हैं और बोल रहे हैं; फ्रांस और अिंग्लैन्ड में जो अिस सब की प्रतिक्रिया हो रही है अिसमें कोअी नयी बात नहीं है। सभी तोप के गर्जन से बातें करना चाहते हैं। जिसकी सामरिक शक्ति जितनी ज्यादा है अुसकी तरफ न्याय का जोर भी अुतना ही अधिक है--सभी लुटेरे हैं और लूट के काजी हैं। अिनकी युद्ध की तैयारी से आज अिनका अपना ही संहार हो रहा है यह आज

बिलकुल स्पष्ट हो गया है। अिंग्लैण्ड को आज अपने लोगों को बचाने के लिअे जमीन के नीचे सुरंग बनाने का कौशल अखतियार करना पड़ता है। जो जर्मनी कुछ ही दिन पहले शैतान की जात था अुसी जर्मनी के दरवाजे पर आज अिंग्लैण्ड को धरना देना पड़ता है। मुठमर्दी पर जो निर्भर करता है अुसका हाल यही होता है। अुससे जो अधिक जोरावर होता है अुसको अुसे बन्दगी करनी पडती है। लेकिन मुसीबत यहीं खतम नहीं होती। कौन कब किस दल में जा मिलेगा अिसका ठिकाना नहीं। अिसलिअे जीतने के लायक शक्ति हासिल करने के लिअे अितना माद्दा होना चाहिअे कि अगर सभी दूसरी दूसरी शक्तियां अेक साथ मिलकर किसीके अूपर आक्रमण करें तो भी वह आत्मरक्षा कर सके। जर्मनी यही कहता फिरता है, अिटली और अमेरिका भी बहुत दूर तक यही बात कह रहे हैं; और अिनमें युद्ध के सरंजाम बढाने के लिअे आपस में होड़ मची हुअी है। बारूद स्तूपीकृत हो रही है।

संसार की अिस पारिपार्श्विक अवस्था में भारतीय कॉंग्रेस कह रही है कि अहिंसा ही स्वतंत्रता की प्राप्ति और रक्षा का अुपाय है। यही भारतीय शिक्षा और सभ्यता के विकास का लक्षण है। भारत अेक दिन सभ्य था। अहिंसा के पुजारी भारत ने सारे संसार को अपनी अहिंसा के मंत्र से मुग्ध कर दिया था। कितने युग तक साधना करने पर कोअी जाति अहिंसा को ही सबसे बड़ा बल मान कर अुसका प्रयोग कर सकती है आज अिसकी कल्पना करना भी कठिन है। जिस तरह यह रास्ता बड़ा कठिन और बहुत अूंचा है अुसी तरह भोग-विलास का रास्ता सहज और आसान है। वस्तुतांत्रिकता वा सांसारिक भोगविलास का साम्राज्य कितनी आसानी से प्राप्त किया जा सकता है अुसका दृष्टान्त आज यूरोप है। जापान कुछ ही दिनों के अन्दर भोग-विलास की वस्तु-अुपासना विद्या में किस कदर यूरोप से भी आगे बढ गया है!

आज पारिपार्श्विक हालत देखने से मालूम होता है कि सभ्यता अेक ही प्रकार की सामग्री है। वह सार्वभौम व सार्वजनिक होती है। देश भिन्न भिन्न होते हैं किन्तु सब की वास्तविक सभ्यता अेक ही होती है। यह भारतीय सभ्यता है, वह जापानी सभ्यता है अैसी बात नहीं। वस्तु-निर्मिति की आराधना में सभ्यता नहीं है। सभ्यता मनुष्य को अीश्वर के नजदीक ले जाती है— सत्य का अुपासक बनाती है। भोग-वृत्ति की चरितार्थता मनुष्य को अुस लक्ष्य से विपरीत दिशा में ले जाती है। अिसलिये भारत ने जिस पथ का अवलम्बन किया था और बहुत दिनों तक अधःपतित रह कर आज फिर अुसने जिस पर चलना शुरू किया है वही सभ्यता का पथ है। अिसमें वस्तु की ज़रूरत कम होती है। अिसका रिक्तता में ही गौरव है। क्यों कि यह सामर्थ्यवान् और तेजस्वी की रिक्तता या ख़ालीपन है। यूरोप, अमेरिका और जापान वस्तुसंग्रह कर मृत्यु की राह पर, असभ्यता और अज्ञान की राह पर, चले जा रहे हैं। अैसे मौके पर हम भी कहीं वस्तु-पूजा या वस्तु-तांत्रिकता के अूपर जोर न दें। अिसपर जितना हम जोर देंगे

अुतने ही पथभ्रष्ट होंगे, और जिस सत्यानाशी पथ पर यूरोप ज़ा रहा है, अुसी पथ पर हम भी अग्रसर होने लगेंगे।

काँग्रेस स्वराज्य चाहती है और अिसके लिये विरोधी शक्ति के साथ युद्ध करना चाहती है; और युद्ध कर भी रही है। अिसी लिये काँग्रेस का अपनी ज़रूरतें बढ़ाना ठीक नहीं है। अभी ज़रूरत अिस बात की है कि भारत अपनी ज़रूरतों को जहां तक हो कम कर दे। अन्न और वस्त्र के बिना लोग मर रहे हैं। अन्न और वस्त्र के अिन्तजाम के लिये यंत्रशक्ति और कल-कारखानों की बहुत कम ज़रूरत है। साधारण जीवन-यात्रा के लिये जो नितान्त ज़रूरी है अुसीसे सन्तुष्ट रहकर यदि भारत आज अहिंसाश्रयी समाज-संगठन करने की प्रचेष्टा करे तो वह स्वयं तो बचेगा ही और सारे जगत् को भी बचने का रास्ता बतायेगा। और यदि भारत अिस बात की प्रतिद्वन्द्विता करने की चेष्टा करने लग जाय कि कोयला, लोहा, सिमेन्ट, सोडा व अिलेक्ट्रिसिटी कौन कितनी पैदा कर सकता है तो भारतवर्ष ने जो श्रेयस्कर रास्ता अख़तियार किया है अुससे वह गिर जायगा।

हम देख रहे हैं कि बाहर रहकर लूटने की सुविधा कम हो जाने के कारण हमारे ही शोषण से पुष्ट विराट विदेशी कम्पनियां अपने कल-बल-छल की कला को अख़्तियार कर हमारे ही देश में कायम हो गयी हैं व होती जा रही हैं। चेकोस्लोवाकिया का जूता, स्वीडन की दियासलाअी और अिंग्लैन्ड के साबुन, कागज, कपड़े अित्यादि वे ारत में ही बैठ कर तैयार करते हुअे हमें धोखा देने की चेष्टा कर रहे हैं। किन्तु काँग्रेस को अपनी कक्षा से विचलित नहीं होना चाहिये। अिस देश के धनी लोग भी तो अिसी आयोजन को बढ़ाने की चेष्टा कर रहे हैं। ये सब अपना अपना मुनाफा बढ़ाना चाहते हैं। किन्तु चीजों की अुत्पत्ति और अिस्तेमाल के नशे को कम करते हुअे अपने बोझे को हलका करने पर ही हमें स्वराज्य मिलेगा। यंत्र-शिल्प वा कलकारखाने की पूजा के जरिये हम पराधीन भारतवासी कभी स्वतंत्रता नहीं पा सकते, बल्कि अैसा करने से हम अपनी विरोधी शक्ति को ही प्रश्रय देंगे। फेडरेशन ने यही फंदा लगा रक्खा है। दुनिया की भौतिक व विलासी सभ्यता के नतीजे को देखकर हमें मुनासिब शिक्षा लेनी चाहिये। सच्ची सभ्यता कम्पास की सुई की तरह भारतवर्ष को अेक ही रास्ता दिखाती आयी है—वह है रिक्तता (अपरिग्रह) का रास्ता। तन और मन की स्वस्थता हासिल करते हुअे हमें आनन्द से अुस रिक्तता या त्याग की अुपासना करनी चाहिये जिसका आचरण बलवान् तितिक्षु आत्माओं ने अपने जीवन में किया है। यही अुपासना आज हमें और मोहमुग्ध जगत् को शान्ति का आस्वाद करायेगी।

(बंगला 'राष्ट्रवाणी' से अनूदित)

वर्धा योजना के माने

[मगनभाओी देसाओी]

श्री किशोरलालभाओी ने नवम्बर १९३८ के सर्वोदय में वर्धा योजना पर अेक महत्त्व का चर्चात्मक लेख लिखा है। अुसमें यह समझाने की कोशिश की है कि 'अुद्योग के मारफत शिक्षा' यह भाषा सप्रयोजन है, वस्तुशून्य नहीं है। अेक हदतक अुनके कथन से में सहमत हूं। फिर भी मुझे लगता ह कि अुन्होंने वर्धा योजना की कु गेंहरी और पेचीदा बातों को छेड दिया है। शायद अैसी ही बातों को लेकर वर्धा परिषद में श्री के. टी. शाह ने अपना विरोध प्रकट किया था। गांधीजी ने जवाब में कहा था कि आज ये सब बातें हमारे सामनें प्रत्यक्ष रूप से नहीं हैं। हालांकि भविष्य में हमें अुनका बिचार करना पडे यह सम्भवनीय है।

अुक्त लेख में श्री किशोरलालभाओी ने यह बतलाया है कि वर्धा योजना के अमल की "सब से वडी शर्तें...दो हैं। पहली यह कि जो सरकार की देखभाल में बडे पैमाने पर चलाये जा सकें अैसे कुछ पेशे ढूंढ लिये जायँ। अर्थशास्त्र की परिभाषा में कहें तो वे देश के अैसे जीवन-धंधे होने चाहियें जिन्हें सरकारी धन्धे (या राष्ट्रीय धन्धे) बनाना ठीक हो। दूसरी शर्त यह है कि वे बच्चों के भी लायक हों।" (प्रकृत सर्वोदय सफा ९)

ये शर्तें बताकर अुन्होंने अपने लेख का अुपसंहार निम्न शद्बों में किया है। "जिस तरह अुद्योग द्वारा शिक्षा के मानी ये हैं कि सरकार देश के फायदे के कुछ धन्धे अिस तरह चलावे जिससे देश के [शि]... माल भी पैदा हो और बच्चों की शि[क्षा] की व्यवस्था भी हो।"

यह हुआ संक्षेप में सरकार वर्धा योज[ना] के मुताबिक बुनियादी शिक्षा किस त[रह] संगठित करे अिसका दिग्दर्शन। श्री किशोरलालभाओी ने अपने लेख में अिस[का] विस्तार से विवरण किया है। 'अुद्यो[ग] के मार्फत पूरी तालीम' का संगठन [की] दृष्टि से जो अर्थ हो सकता है अुस[का] विवेचन पहली बार यहां पर श्री किशोरला[ल]भाओी द्वारा किया गया है। वर्धा योज[ना] की रिपोर्ट में अिस आर्थिक आयोजन [की] कोओी खास छानबीन या जिक्र नहीं है।

अुस रिपोर्ट को यदि हम ध्यान से प[ढें] तो विदित होगा कि वहां वर्धा योज[ना] के शिक्षा-विषयक पहलू पर अधिक जो[र] दिया गया हैं। वहां यह दिखा देने [की] कोशिश की गयी है कि साधारणरूप [से] जो विषय अक्षर-ज्ञान के समझे जाते [हैं] प्रायः अुन सब की शिक्षा अुद्योग द्वा[रा] दी जा सकती है। अन्य शिक्षणशास्[त्री] भी अिसी सिद्धान्त को कम या वेशी [हद] में और अपने अपने ढंग से स्वीकार करते हैं जैसा कि केन्द्रीय सरकार द्वारा नियु[क्त] कमिटी ने अपनी रिपोर्ट में कहा है।

"कमिटी को यह सिद्धान्त सर्वसम्म[ति] से स्त्रीकार है कि बालकों को शिक्षा अ[...] अुद्योगों द्वारा दी जाय जो सहेतुक [...] और धीरे धीरे अुत्पादक-श्रम का [...] ग्रहण कर सकें।........

"ज्यों ज्यों बालक की अवस्था बढती जायगी और वह अूंची. दफाओं में पहुंचेगा त्यों त्यों सांस्कृतिक तथा बौद्धिक विकास को बुनियादी दस्तकारी से संलग्न रखने के मौके कम होते जायेंगे।............... अिस तरह जो सांस्कृतिक विषय बुनियादी दस्तकारी में पिरोये नहीं जा सकते अुनके लिअे औपचारिक शिक्षा देना आवश्यक होगा।"

यदि वर्धा योजना के मुख्य माने यही हों तो अुसका कुल मतलब अितना ही होगा कि वर्धा योजना अध्यापनकला में, याने शिक्षणपद्धति में, अक सुधार कराने का आयोजन है। अर्थात पाश्चात्य अध्यापन-विज्ञान में जो चीज़ आज कोऑर्डिनेशन (अेकीकरण) और को-रिलेशन (अनुसंधान) के नाम से मशहूर है अुसे हम हिन्दुस्तान की शिक्षा में दाखिल करना चाहते हैं। बस, अितना ही वर्धा योजना का मतलब रह जायगा। यदि यह स्पष्टीकरण ठीक हो तो वर्धा योजना को अेक मौलिक या नयी चीज़ मानना मुष्किल होगा। शायद अिसी खयाल से डॉ० ज़ाकिर हुसेन ने वर्धा परिषद में कहा था, "जहां तक तालीम देने के तरीके का सवाल है, मेरा अब भी खयाल है, कि यह तजवीज कोअी नयी चीज़ नहीं है।" वर्धा योजना की तरफ देखने का अेक और नया दृष्टिकोण अहमदाबाद में श्री नानाभाअी भट्ट ने अपने अेक व्याख्यान में बताया। अुनके कहने का मतलब यह था कि कअी लोगों ने अपनी अपनी समझ के अनुसार अुद्योग द्वारा शिक्षा का मतलब समझाने की चेष्टा की। लेकिन अुनकी राय में अुसका खास अुसूल है शरीरश्रम या जिस्मानी मिहनत। शरीरश्रम आदमी का धर्म ही नहीं, फर्ज ही नहीं, बल्कि हक है। अुस हक को हमें हासिल करना चाहिअे। वर्धा योजना का यह बुनियादी अुसूल है।

मुझे लगता है कि यदि हम खुद गांधीजी से पूछें तो शायद वे कहेंगे कि हां, ये सारे अर्थ तो अुस योजना में मौजूद हैं और अिनके अलावा दूसरे भी कअी हैं। खादी के समान यह भी अेक मन्त्र है जिसकी साधना हमें करनी है। शिक्षा को स्वावलंबी बनाने की अुनकी बात आज भी कायम है। और शायद अुनके खयाल में आज भी वह अुसकी सफलता की सच्ची कसौटी (अैसिड टेस्ट) हो। लेकिन यह बात बहस से साबित होनेवाली नहीं है। वह तो प्रयोग और तजर्बे से होगी। आज तो हकीकत बिलकुल अुलटी है, याने वर्धा योजना के प्रयोग के आरम्भ में तो शिक्षा का खर्च बढेगा जो अुसके प्रारम्भ करने में अेक तरह का आर्थिक विघ्न भी साबित हो। लेकिन अिस चर्चा से यहां हमें कोअी मतलब नहीं है। हम तो अिस प्रश्न का विचार करना चाहते हैं कि अर्थों की अैसी अनेकता में और दृष्टि-कोणों की अैसी विभिन्नता में हम वर्धा योजना के मानें क्या समझें। मुझे लगता है कि गांधीजी ने 'बेसिक नैशनल अेज्युकेशन' नामक किताब के आमुख में जिन तीन बातों का जिक्र किया है अुनको मिलाने से वर्धा योजना का ठीक ठीक संकेतार्थ सुस्पष्ट हो जाता है। हमें अुन्हींको मद्देनजर रखकर चलना चाहिअे।

अुक्त आमुख में गांधीजी ने कहा है कि "अिस योजना को देहाती दस्तकारियों

द्वारा ग्रामीण राष्ट्रीय शिक्षा यह नाम देना अधिक यथार्थ होगा। चाहे फिर वह नाम कुछ कम आकर्षक भले ही हो।" अिसकी व्याख्या भी अुन्होंने वहां पर की है। "ग्रामीण शिक्षा से मतलब यह है कि अुसमें वह अंग्रेजी शिक्षा नहीं आती जो आजकल अुच्च शिक्षा कहलाती है। राष्ट्रीय से मतलब आज तो सत्य और अहिंसा ही है। देहाती दस्तकारियों द्वारा अिन शब्दों का मतलब यह है कि अिस योजना के निर्माता शिक्षकों से यह आशा करते हैं कि वे देहाती बच्चों की शिक्षा के लिये कुछ दस्तकारियां छांट लें और बिना किसी तरह की जबरदस्ती या कैद और हस्तक्षेप के अुन दस्तकारियों के द्वारा बच्चों की सारी प्राकृतिक शक्तियों का विकास करें।"

मेरी राय में गांधीजी का यह छोटासा आमुख वर्धा योजना की व्याख्या की दृष्टि से बडे ही महत्त्व का है। अुसमें जिन तीन लक्षणों का निर्देश है अुनमें वर्धा योजना का पृथक्कृत लेकिन पूरा पूरा अर्थ आ जाता है। अिन तीन बातों का अर्थ मैं अिस प्रकार समझा हूं:—

(१) वर्धा योजना की मनशा आम जनता में व्यापक शिक्षा का प्रचार करना है। आम जनता को अंग्रेजी की ज़रूरत नहीं है। लेकिन आज की त्रिशंकु जैसी शिक्षा में अंग्रेजी की प्रतिष्ठा अितनी है कि प्रारम्भिक शिक्षा भी अुससे प्रभावित हुअे बिना न रह सकी। अंग्रेजी शिक्षा ने अेक प्रकार की होड और सरजोर अकेलियत का अेक वर्ग पैदा किया है जो आज शिक्षा के क्षेत्र में अेक प्रतिष्ठित हित-सम्बन्ध (व्हेस्टेड अिन्टरेस्ट) का रूप धारण कर शिक्षा की प्रगति में रोडे अटका रहा है। यदि सरकार आम जनता की शिक्षा चाहती है—जैसे कि प्रजासत्ताक सरकार के लिअे चाहना ज़रूरी है— तो अिस दुःखद स्थिति को बिना हटाये वह असम्भव ही होगा। मेरी राय में वर्धा योजना का यह भाग सबसे अधिक महत्त्व का है। अुस योजना का यह दावा है कि अुसमें जो शिक्षाक्रम बताया गया है वह व्यापक शिक्षा प्रचार के लिअे बिलकुल मुनासिब और जलदी कामयाब होने-वाला है। अिस दावे के पीछे १९२० के राष्ट्रीय आन्दोलन का राष्ट्रीय शिक्षा-विषयक अनुभव है।

(२) १९२० के शैक्षणिक आन्दोलन का अनुभव पहली बात के विषय में शायद कुछ कम या शंकास्पद भी हो। लेकिन अिस योजना की व्याख्या में गांधीजी ने जो दूसरी बात बतलायी है अुसके विषय में अुस आन्दोलन का अनुभव शंकास्पद नहीं है। शिक्षा को विशेषरूप से राष्ट्रीय बनाने का संकल्प हमने १९२० में ही किया। यदि वर्धा योजना अुसी संकल्प को न अपनाती तो अुसे 'राष्ट्रीय' अुपाधि धारण करने का अधिकार भी न होता। अुस अुपाधि में कौनसा अर्थ भरा हुआ है? हमारे राष्ट्रीय शिक्षा विषयक प्रयोग का हमारा जो कीमती अनुभव है अुसके ठोस और अनुभव सिद्ध अंश को अब हमें अपनी सारी शिक्षा में फौरन और सबसे पेश्तर दाखिल करना चाहिअे अितना संकेत अुस विशेषण में भरा हुआ है। अैसा होगा तभी कॉंग्रेसी सरकार का अस्तित्व चरितार्थ

हो सकता है। मुझे अिस बात का बड़ा दुःख है कि अिस सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और प्रयोगसिद्ध बात की ओर आज कुछ कम ध्यान दिया जाता है। अुसका अुजेला हमारे शिक्षा-जगत में अबतक नहीं देखा जाता।

(३) हमने तीसरी बात को सब से अधिक महत्त्वपूर्ण मान लिया है। मेरी समझ में वह तो गांधीजी की शिक्षकों के लिअे अेक खास सिफारिश है। अुसे अिससे अधिक महत्त्व देना मेरी अल्पमति के अनुसार शैक्षणिक प्रक्रिया (टेकनिक) की अेक जबरदस्त भूल होगी। अध्यापन अेक कला है। जिस अध्यापन-शैली का वर्धा योजना ने समर्थन किया है अुसका अनुसरण तो आज भी अच्छे गिने जानेवाले अध्यापक कर ही रहे हैं। आज का शिक्षण-विज्ञान यह मानता है कि शिक्षण के सारे विषय मिल कर अेक संपूर्ण घटक बनना चाहिअे। सारा शिक्षण परस्पर सम्बद्ध और अेकीकृत होना चाहिअे। आज भी अध्यापन मन्दिरों में शिक्षकों को अिस सिद्धान्त के अनुसार अपने अपने ढंग से सिखाया जाता है। अुद्योग अेक अैसा व्यापार है कि जो अनेक विद्या और व्यवसायों से गंठा हुआ है। अेक ओर से गणित, अर्थशास्त्र और अितिहास आदि शाब्दिक विषय अुससे संलग्न हैं और दूसरी तरफ से मनुष्यों का प्रत्यक्ष व्यवहार और आर्थिक जगत् जुड़ा हुआ है। अिससे अनुलग्न शिक्षा देने के सुयोग सब से ज्यादा अुद्योग द्वारा ही प्राप्त हो सकते हैं—या हम प्राप्त कर सकते हैं। लेकिन यह सब तभी होगा कि जब हम अुद्योग को अुतना ही महत्त्व देंगे जितना आज पांडित्य के विषयों को देते हैं, जब हम अुसकी शिक्षा को पूर्ण वैज्ञानिक ढांचे में ढालेंगे और हमारे प्रतिष्ठित शिक्षाशास्त्री अुसपर पूरा पूरा ध्यान देंगे। हमें सिर्फ अुद्योग ही नहीं करना है किन्तु अुस व्यापार के द्वारा मनोविकास की सामग्री भी अनायास प्राप्त करनी है। अैसा सामान मामूली कारीगरी की शिक्षा से प्रस्तुत नहीं हो सकता।

लेकिन अुद्योग में जो सब से बढ़िया शक्ति भरी हुअी है वह तो है अुसकी चरित्र-गठन की ताकत। ठीक ठीक और सही काम करना, साफ-सुथरा काम करना, अीमानदारी और लगन से काम करना, आदि गुण चरित्र को अुन्नत करने वाले हैं। जिन्होंने गांधीजी को कातते देखा है अुनके ध्यान में यह बात आ गअी होगी कि अुस क्रिया में वे अपनी कितनी व्यवस्था, साफ-सफाअी, प्रेम और लगन व्यक्त करते हैं। यदि हमारा हर अेक लड़का अपने काम में अैसी शक्ति लगावे तो यही अेक सच्ची और बिरली तालीम होगी। अिसी तालीम से दूसरे कामों को भी अुतने ही अच्छे ढंग से करने का अभ्यास हो जाता है। प्रामाणिकता और सावधानी मानों स्वभाव ही बन जाता है। मेरी राय में आज हमें औद्योगिक शिक्षा के अिस पहलू पर अधिक ध्यान देना चाहिये; और अुद्योग द्वारा सब कुछ सिखाने के तरीके खोजना और अुन्हें प्रयोग से सिद्ध करने की चेष्टा करना तज्ञों के लिअे छोड़ देना चाहिये। आम तौर पर अध्यापन-कला दूसरे को दी नहीं जा सकती। लेकिन अपनी शिक्षा पद्धति को देहाती

भेष देना, वर्तमान शिक्षा प्रणाली को अंग्रेजी के बोझ और गुलामी से अुबारना, आज हम जिस राष्ट्रीय जीवन का विकास कर रहे हैं अुसकी पोषक शिक्षा–योजना बनाना—अर्थात राष्ट्रीय शिक्षा का संगठन करना—ये चीजें अनुभवसिद्ध हैं। अुन्हीं को हम वर्धा योजना का असली अर्थ समझें। और अुद्योगद्वारा शिक्षा वाली तीसरी बात को ही सब कुछ न समझें। मैं जानता हूं कि मेरे अिस प्रस्ताव का शिक्षित माना जानेवाला वर्ग—जिसको मैंने प्रतिष्ठित हित-सम्बन्ध (व्हेस्टेड अिन्टरेस्ट्) कहा है—विरोध करेगा। यदि राष्ट्रीय शिक्षा के आन्दोलन में कोअी तथ्य रहा हो—और था जरूर—तो अैसे विरोध को सह लेने की शक्ति हमें बतानी होगी। क्यों कि आखिर अनजाम में हमारी सारी लडाअी का अुद्देश प्रतिष्ठित हितसम्बन्धों (व्हेस्टेड अिन्टरेस्ट्स) को सत्य और अहिंसा के साधनोंद्वारा अप्रतिष्ठित (डायव्हेस्ट) करने के सिवाय और क्या है। मुझे डर तो यह है कि यदि हम अध्यापन-विज्ञान से सम्बंध रखनेवाली तीसरी ही चीज को, याने कोऑर्डिनेशन और कोरिलेशन (अेकीकरण और अनुसंधान) को ही मुख्य मान लें तो सारा का सारा शिक्षा का काम फिर अुन्ही पुराने व्हेस्टेड अिन्टरेस्ट्स (प्रतिष्ठित हितसम्बन्धों) के अधीन चला जायगा। परन्तु वर्धा योजना केवल शिक्षण-विशारद पण्डितों के लिअे नहीं है। अुसमें अेक अनमोल शक्ति भरी हुअी है। गांधीजी ने अुसे अपनी सबसे बढ़िया चीज़ कहा है। वह बडी है अपने पहले दो लक्षणों के कारण। अुसका तीसरा लक्षण वर्तमान अध्यापन-प्रणाली में क्रान्ति करेगा और अिसी दृष्टि से अुसपर व्यवहार करना होगा।

सत्य और अहिंसा का रास्ता लेने पर हमें अपनी ख़ामियों का दर्शन करना ही पड़ता है। किन्तु यदि वह दर्शन हमारी गति को वेग न दे, अुसे बढ़ावे नहीं, हमारे पुरुषार्थ को अुत्तेजन न दे, तो वह दर्शन दर्शन नहीं, किन्तु रास्ता छोड़ देने के लिअे अेक बहाना भर है।

"मुझमें योग्यता नहीं है," कह कर रास्ता छोड़ देनेवाले मुझे आजकल बहुत मिले हैं। रास्ता छोड़ देने पर अिनके मन में सत्य और अहिंसा के लिअे नफ़रत पैदा हो जाती है और अन्त में वे भोग (अैश–ओ–अिशरत) को ही धर्म समझने लगते हैं। अैसी थकान तुझमें पैदा न हो, अैसी थकान तू महसूस न कर। अेक देहधारी के नाते हम रजःकण से भी छोटे हैं, तुच्छ हैं। किन्तु आत्मा के रूप में हम अीश्वर के अंश हैं। जो शक्ति समुद्र में है, अुसमें जो गुण हैं, वही शक्ति और वे ही गुण अुसकी बूंद बूंद में हैं। अिसके विषय में जैसे कोअी सन्देह नहीं रहता अुसी तरह तू अपने बारे में भी निःशंक हो जा। अगर हम अपनी देह को आत्मा के ज्ञान का साधन मानें और आत्मा को अुसका नियंता मानें तो बाजी हमारी है।

१५ : १२ : ३६

—गांधीजी (अेक गुजराती पत्र से)

सर्वोदय की दृष्टि

राष्ट्रपति का चुनाव

पिछले कुछ बरसों से राष्ट्रपति का चुनाव बिना होड के हो जाता था। चाहे गान्धीजी कहिये या कार्यसमिति कहिये, किसी योग्य व्यक्ति की सिफारिश करती थी। दूसरे किसी के नाम अगर सुझाये भी गये हों तो भी अेक अैसा सिलसिला चल पडा था कि वे सब अपने आप हट जाते थे। अिसी तरीके से पण्डित जवाहरलाल नेहरू लगातार दो बार और पारसाल श्री सुभाषचन्द्र बोस चुने गये। राष्ट्रीय महासभा के अितिहास में अेक ही शख्स का लगातार दो बार राष्ट्रपति चुना जाना अब तक केवल श्री जवाहरलाल के ही सम्बन्ध में हुआ था। आम तौर पर रिवाज यह रहा कि हर साल नया राष्ट्रपति हो। अेक पुराना रिवाज तो यह भी था कि जिस प्रान्त में काँग्रेस होनेवाली हो अुसी प्रान्त का आदमी सभापति न बनाया जाय।

मालूम होता है कि श्री सुभाषबाबू की यह अिच्छा रही कि अुन्हें भी लगातार दो बार राष्ट्रपति बनाया जाय। लेकिन कार्यसमिति ने वैसी सिफारिश न की। बल्कि समिति के बहुमत को यह बात पसन्द न आअी। वह मौलाना अबुल कलाम आज़ाद की सिफारिश करना चाहती थी। लेकिन होड के होते हुअे राष्ट्रपति बनने के लिअे वे राजी न हुअे। दूसरी पसन्दगी डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या के लिअे हुअी। अलबत्ता प्रतिनिधियों को यह अधिकार हमेशा रहा कि वे चाहे जिस व्यक्ति के लिअे प्रस्ताव पेश करें। अिस तरह हर साल अेक से अधिक व्यक्तियों के नाम पेश हुआ करते थे। पर अेक अैसा संकेत सा हो गया था कि राष्ट्रपति के चुनाव में होड न हो। फलस्वरूप जो राष्ट्रपति बनता था अुसे काँग्रेस के सब भीतरी दल मानते थे और वह सारी काँग्रेस के नाम से बोल सकता था।

अगर हमें ठीक ठीक याद है तो काँग्रेस के अितिहास में राष्ट्रपति के चुनाव में आज तक दो बार पक्ष उत्पन्न हुअे। पहली बार सन १९०७ में, जब कि सूरत की काँग्रेस में नरम दल ने डॉ० रासबिहारी घोष को चुनना चाहा और गरम दल ने लाला लाजपतराय का नाम पेश किया। अुस वक्त काँग्रेस में जो फूट पडी वह मशहूर है। दूसरा मौका अब आया। अेक ओर श्री सुभाषबाबू ने कार्यसमिति के बहुमत के सामने झुकना नापसन्द किया और दूसरी तरफ बहुमतवालों ने डॉ० पट्टाभि को हट जानेसे रोक दिया। नतीजा यह हुआ कि दोनों के बीच होड हुअी और श्री सुभाषबाबू प्रतिनिधियों के बहुमत से चुने गये।

गान्धीजी काँग्रेस-तन्त्र से दूर हो गये हैं। लेकिन यह बात तो मशहूर है कि कार्यसमिति का बहुमत गान्धीजी की राजनीति का प्रतिनिधिस्वरूप है। और सारे महत्त्व के कामों में अुन्हींकी गैल चलता है। अैसी हालत में श्री सुभाष बाबू के चुनाव का कम से कम अितना तो मतलब होता है कि अिस साल के काँग्रेस प्रतिनिधियों का मौजूदा कार्यसमिति की कार्य-पद्धति पर

अविश्वास हो गया है और जिस हद तक अुनके कार्यों के पीछे गान्धीजी का हाथ या अनुमति है अुस हद तक गान्धीजी की नीति पर भी अविश्वास हो गया है।

खैर। लेकिन इस चुनाव में दुःख की बात तो यह थी कि श्री सुभाष बाबू ने अपने वक्तव्यों में बहुमतवाले सदस्यों पर गम्भीर आक्षेप किये। अुनमें से अेक आक्षेप यह है कि बहुमत फेडरेशन के विरोध के बारे में बहुत पक्का नहीं है। अितना ही नहीं बल्कि फेडरेशन का मन्त्री-मण्डल बनाने के बारे में भी अुसने कुछ निश्चय कर लिया है।

अेक ओर से यह कहा जाता है कि सारे देश को अेक आवाज से फेडरेशन का विरोध करना चाहिअे और सब दलों को अेक हो कर काम करना चाहिअे और दूसरी तरफ गान्धीजी और उनके विश्वास-पात्र नेताओं के बारे में काँग्रेस के अन्दर अविश्वास और असन्तोष का वायुमण्डल पैदा किया जाता है। फलतः कअी काँग्रेस प्रति-निधि तथा साधारण सदस्यों के मन में शंका और द्वेष पैदा हो गया है।

घर की फूट बुरी—यह शास्त्रवाक्य तो सभी सुनाते हैं। लेकिन यह भी समझ लेना चाहिअे कि आखिर फूट है क्या चीज़? अेक आदमी रहता तो है अपने भाअी के साथ लेकिन अुसपर अितना अविश्वास करता है कि मानों वह दगाबाज या चोर हो। यहां तक कि वह अुसका मुंह भी देखना नहीं चाहता। फिर भी अगर वह अलग होने की बात छेडे तो फूट फूट कर रोता है और अुसमें अपने कुल की प्रतिष्ठा का नाश देखता है, और प्रण करता है कि अपने जीते-जी कभी अेक के दो घर नहीं होने देगा। क्या अैसे परिवार को हम हिलमिल कर रहनेवाला परिवार कह सकते हैं? अब फर्ज़ कीजिये कि अेक दूसरा आदमी भी अपने भाअी के साथ रहता है। अुसे अनुभव होता है कि दोनों भाअियों के और अुनकी पत्नियों के बीच विचार, संस्कार आदि का कुछ भेद पड गया है और अिस वजह से दोनों को अपनी अपनी राय के मुताबिक चलने में मुश्किल होती है। अेक दिन वे दोनों अेक जगह बैठ जाते हैं और आपस में अेक दूसरे से अलग हो जाना तय कर लेते हैं। लेकिन सवाल यह खडा होता है कि बूढी माँ का क्या किया जाय? माँ से बिछुड़ना दोनों को पसन्द नहीं है। आखिर वे यह ठीक करते हैं कि अलग होने पर भी दोनों अेक दूसरे से अितने नजदीक रहें कि जिससे माँ का जब जहां जी चाहे तब वहां वह रहे और दोनों को अुसकी सेवा करने में आसानी हो। अिसे क्या हम फूट कह सकते हैं? मतलब यह कि असली फूट शंका और अविश्वास में है। बनावटी अेका अेका नहीं है और न अपरी जुदाअी फूट ही है।

जब यह लिखा जा रहा है तब तक तो यह कहा नहीं जा सकता कि श्री सुभाष बाबू ने जिन दाहिने और बायें दलों का जिक्र किया है अुनमें दर असल कितने आदमी दाहिनी ओर हैं और कितने बायीं ओर। यह भी नहीं कहा जा सकता कि नयी कार्य-समिति की नियुक्ति पर अिसका क्या असर होगा। लोगों का केवल दिखाने भर के

लिअे अेक दूसरे के साथ रहना राजकाज में कोअी नयी बात नहीं है। लेकिन हमारी राय में अैसी झूठमूठ की अेकता का कोअी मूल्य नहीं है। जब तक शंका और अविश्वास का वातावरण कायम रहेगा तब तक यही कहना होगा कि काँग्रेस के मजबूत किले में हमारी कमनसीबी से जबरदस्त सेंध लग रही है।

१६:२:३९ का० का०

सरदार वल्लभभाअी

शंका और अविश्वास के अिस जहर के सब से ज्यादह घूंट पीना सरदार वल्लभभाअी के नसीब हुआ है। अुनके खिलाफ वायुमण्डल अितना गन्दा कर दिया गया है कि अुसको साफ करने की कोशिश भी आज बेकार जायगी। फिर भी अुनके अूपर लगाये हुअे महाराष्ट्र-द्वेष के अिलजाम के विषय में मैं अपना मन्तव्य प्रकट करना अपना फर्ज समझता हूं। बीस से अधिक साल मैंने अुनकी हुकूमत नजदीक से देखी है, और अुनके स्वभाव और संस्कार-भेद के कारण कअी बाबतों में मेरा और अुनका मतभेद भी हुआ है। किन्तु अुनमें महाराष्ट्र-द्वेष का कुछ भी अंश मैंने कभी नहीं पाया। वे अेक ही शत्रु को पहचानते हैं, और वह है देश की गुलामी। वे सचमुच स्वराज्य के सरदार हैं। देश को पूर्ण स्वातंत्र्य तक ले जाने की शक्ति जिन अिने गिने व्यक्तियों में हैं अुनमें वल्लभभाअी का स्थान अूंचा है। और मेरी स्वातंत्र्य-निष्ठा मुझे पूर्ण विश्वास से अुनका सैनिक बनाती है। देश का हित और देश की अिज्जत अुनके हाथों में सुरक्षित है। जिनका मतलब नहीं सध सका, वे चाहे कुछ भी कहते रहें। अेक दिन लोग भारतवर्ष के अिस काबिल सेनापति की अुसी तरह कद्र करेंगे जैसी कि अमेरिका में जॉर्ज वॉशिंगटन की की जाती है।

१६:२:३९ का० का०

विलासी गुलाम—देशी राजा

सत्तावन साल के प्रयत्न के समय लोगों का यह खयाल था कि भारत की गयी हुअी स्वतंत्रता फिर से प्राप्त करने का भार अगर किसी के सिर पर सबसे अधिक है तो वह हमारे देशी राजाओं के ही है। काल प्रतिकूल देख कर वे दबे रहे अिसमें कोअी आश्चर्य नहीं है; किन्तु मौका पाते ही वे तो स्वतंत्रता का झण्डा फहरा-कर अुसके लिअे प्राणपण से लड़ेंगे, अैसा विश्वास सामान्य तौर पर सारी जनता में था। किन्तु अनुभव कुछ अुलटा ही हो रहा है। भारत की जनता स्वतंत्रता की ओर तेजी से कदम अुठा रही है। समय भी अनुकूल है। अिन राजाओं के स्वप्न में भी जिसकी कल्पना न हुअी हो अैसे शक्तिशाली, दूरदर्शी और चरित्रवान नेता देश को मिले हैं। अैसे समय अगर ये राजा अपनी प्रजा की—जिसका पिता होने का वे दावा करते हैं—शक्ति बढा न सके तो कम से कम सरकार को साफ साफ कह दें कि हम अपनी प्रजा के हित के लिअे हैं। अुनके सन्तोष में हमारा सुख है। अुनपर लाठी चलाना, गोली बरसाना, गुण्डा-राज का सितम ढाहना हमारा धर्म नहीं है। प्रजारंजन ही हमारा क्षात्रधर्म है। अगर राजा लोग अितना कह कर बैठ जायँ तो अुनका क्या बिगड़ सकता है? अगर अंग्रेजों ने अुनको पदभ्रष्ट किया तो

अुनको अुनका पद फिर नये रूप में देने की शक्ति राष्ट्रीय सभा में अवश्य है। ब्रिटिश सल्तनत के बेजबां गुलाम और अपनी ही प्रजा के बेरहम जालिम बनने में अुनकी क्या शोभा है ? भोग–विलास के लिअे अपने चारित्र्य की कीमत देना अबला स्त्रियां भी मंजूर नहीं करतीं। तो क्या क्षण क्षण अपमान और आत्महनन सहन करके अैश-ओ-अिशरत और विलास भोगने में अिन राजाओं को कोअी अैसा अनोखा लुत्फ आता है जो पहले कभी औरोंने चखा नहीं था ?

हम जानते हैं कि ये राजा लोग और अुनके ‘भायात’ (सरदार, अमीर-अुमराव आदि) दो डरों के बीच में फसे हुअे हैं, और जब तक वे अपनी योग्यता, पुरुषार्थ और आत्मविश्वास नहीं बढायेंगे तब तक ये डर बढते ही जायेंगे। अेक तरफ से ब्रिटिश सल्तनत अुन्हें ‘चिड़िया-बाग’ में रक्खे जानेवाले जानवरों के समान नामर्द बना कर रखना चाहती है ओर दूसरी ओर जाग्रत जनता नामर्द और प्रजापीडक राजाओं की रियाया रहना पसन्द नहीं करती। अिन दोनों के बीच में ये बिचारे क्षात्रवंशी क्या करें !

जिन्होंने कभी राज नहीं किया, जिनके पास हर साल विलायत जाने के लिअे पैसे भी नहीं हैं, अपनी मर्जी के मुताबिक पूरी तालीम भी लेना जिनके लिअे दुस्तर है, अैसे लोग अपने पुरुषार्थ से प्रजा के प्रतिनिधि बन रहे हैं। अितना ही नहीं किन्तु सिंहासनों को भी अपनी अपनी शक्ति के अनुसार गदगद हिला रहे हैं। आज का जमाना ही अैसा है कि जिसके पास थोडा कुछ चरित्र है, निर्भयता है और महत्त्वाकांक्षा है वह बहुत ही आसानी से राज्यकर्ता की योग्यता प्राप्त कर सकता है। जिन सरकारी कर्मचारियों के सामने ये राजालोग दिनरात अपना सिर झुकाते हैं और जिनके अिशारों पर नाचते हैं, वे तो सामान्य जनता के ही नमूने हैं। क्या सामान्य योग्यता, सामान्य चरित्र, सामान्य बुद्धिशक्ति और भरपूर महत्त्वाकांक्षा से जो प्रतिष्ठा आसानी से प्राप्त हो सकती है अुसे छोडकर ये राजालोग अपने भोग-विलास और आश्रितों की अर्थहीन चापलूसी के भंवर-जाल में फंसकर अपना पौरुष अपनी प्रजा के अुत्पीडन में ही व्यक्त करेंगे ?

जब अिनके पुरखाओं ने पराक्रम करके राजपद या जागीर पायी तब अुनके समय के सम्राटों ने अुन्हें साफ साफ कह दिया था कि यह जागीर तुम्हारे अुपभोग के लिअे नहीं है। तुम तो अपने पराक्रम से ही अपनी प्रतिष्ठा सम्हाल सकोगे। किन्तु जिसे रोज अपना सिर हथेली पर रख कर लड़ना है अुसके मन में अपने बालबच्चों, बुढिया और विधवाओं की चिन्ता न रहनी चाहिये। जागीर और रियासत विधवाओं के मुँह का कौर है। जागीर दी जाती थी बहादुरी के पुरस्कार के तौर पर, न कि मर्दों को नामर्द, डरपोक और प्रजापीडक बनने का सरंजाम जुटाने के लिअे।

किसीकी जागीर या रियासत अुसकी या अुसके पुरखाओं की वीरता का चिन्ह भले ही माना जावे, परन्तु वह अुसके विलास का साधन तो हरगिज़ नहीं हो सकती। यह न तो राजधर्म है, न क्षात्र-वृत्ति है और न सादी मनुष्यता ही है। यह है अविचारी भोगलोलुप मनु

की लंपटता। असीका बीभत्स और नग्न चित्र आज राजकोट, लिमडी, त्रावणकोर, जयपुर और अुडीसा में हम देख रहे हैं। यह है आसुरी विलासिता की मृत्यु-समय की विकट मर्कट-चेष्टा। रियासती जनता सत्य और अहिंसा के मार्ग पर अडिग रहेगी तो अुसकी फतह अवश्य होगी; और देशी नरेशों का भी कल्याण होगा। रियासतों को नयी और दिव्य देह प्राप्त होगी।

२०:२:३९ का० का०

संकीर्णता का अकाण्डताण्डव

हर अेक देश में प्रान्त तो होते ही हैं। जितना देश बड़ा हो अुतनी प्रान्तों की संख्या भी अधिक होती है। अेक ही धर्म के कअी भिन्न भिन्न सम्प्रदाय होते हैं। विविधता मनुष्यजीवन का स्वाभाविक अंग है। किन्तु अुसमें समाज-धारणा का यह परम सिद्धान्त है कि विविधता हमेशा अेकता को परिपुष्ट करने में ही अपने आपको कृतकार्य समझे। अेकता को शतधा विदीर्ण करनेवाली विविधता समाजोपयोगी नहीं है। शरीर में जब प्राण क्षीण हो जाता है तो वह सड़ने लगता है। अुसका अेक अेक अवयव अलग होने लगता है। जबतंक किसी राष्ट्र में स्वतंत्रता और चरित्र का चैतन्य वर्धमान अवस्था में रहता है तबतक विविधता होते हुअे भी अुसका विकास अेकता की ओर निश्चित होता रहता है। जब यह चैतन्य क्षीण होने लगता है तो अपना अपना ढाअी चावल अलग पका कर समष्टि-द्रोह करने की दुर्बुद्धि जाग्रत हो जाती है। देहली का मुगल साम्राज्य, मराठों की 'हिन्दूपद पादशाही' जब नष्ट हुअी अुस समय अुनके सरदारों में समष्टि-भावना नाम को भी नहीं रह गयी थी। अुन्हें तो अपने अपने बालिश्त भर प्रान्तों की ही चिन्ता अधिक थी।

हमारा वर्तमान सम्प्रदाय-वाद, प्रान्त-वाद, जाति-वाद और भाषा-वाद, अिन सब के पीछे जो ओछी दृष्टि है वह अिस बात का सबूत है कि हम अपने पुराने अैबों से बाज नहीं आना चाहते। विविधता में अेकता पनप सकती है लेकिन संकीर्णता तो अुसे बिलकुल सुखा देती है। अगर विविधता नाना प्रकार की खाद है तो संकीर्णता वह पाला है जो अेकता के पौधे को नष्ट कर देता है। अिसमें क्या आश्चर्य है कि प्रान्तवाद, सम्प्रदायवाद आदि भिन्न भिन्न दृष्टि-विन्दु राष्ट्र की जीवन-शक्ति क्षीण करके ब्रिटिश साम्राज्यशाही को प्राणदान करते हैं। जातीय दंगे, जातीय 'निःशस्त्र प्रतिकार,' भाषा-संबंधी वाग्युद्ध और अिन सबसे बढ़कर, रियासती अत्याचार अिसी संकीर्णता के ज़हरीले फल हैं।

२०:२:३९ का० का०

कानपुर

बडी मुश्किल से आठ साल पूरे हुअे और कानपुर जातिद्वेष की मदिरा से फिर दीवाना हो अुठा। फिर वही भीषण हत्या-काण्ड, वही आसुरी 'यादवी' (बन्धु-विग्रह), वही पाशवी विक्रीडित, 'अन्तर्वेद' की अुस पवित्र भूमि को भ्रष्ट कर रहा है। अिन भीषण दंगों के कारण स्वराज्य की गंगा भी अुलटी बहने लगती है। अिस लिअे अुनका समाचार पाते ही हृदय विदीर्ण हो जाता है। किन्तु नित्य की

मौत पर कहां तक आंसू बहावें? जब दंगे होते हैं, खून बहता है, घरबार और जायदाद को नुकसान पहुंचता है, तो शहर के शान्तिप्रिय लोगों के कान खडे हो जाते हैं। वे बडी दौडधूप करके किसी तरह अेकाध अमनसमिति मुकर्रर करते हैं। कमीशन नियत करके तहकीकात कराते हैं। अुसका ब्यौरा छपवाते हैं। अखबारवाले महीनों नहीं तो हफ्तों चर्चा करते रहते हैं। सरकार ज्यों त्यों शान्ति स्थापित करती है। अमन होते ही लोग फिर विचार-जडता की नींद में खुर्राटे लेने लगते हैं और शोहदे कुछ दिन चैन की बन्सी बजाते हैं। आग लगने पर कुँआ खोदने की यह नीति न अुपयुक्त है और न कार्यक्षम ही।

गांधीजी हर अेक राष्ट्रीय मर्ज़ की मरहमपट्टी करना तो जानते हैं। लेकिन कुछ रोग जो मनुष्य की शरीरप्रकृति में गहरे पैठ जाते हैं, मरहमपट्टी या केवल मालिश से दूर नहीं होते। अुनके लिअे पेट में दवा लेनी होती है। ये रामबाण दवाअियां सिर्फ गान्धीजी की ही पिटारी में हैं। दंगों पर अिलाज के रूप में अुन्हों ने शान्ति-सेना की स्थापना की सूचना कबकी की है। लेकिन अुसके लिअे वायुमण्डल कहां है? जिनके दिल में अहिंसा की कार्यकारिता के विषय में सन्देह है अुनकी शान्ति-सेना किस मर्ज की दवा होगी? जो लोग दर असल अहिंसा-परायण हैं, बलिदान की अमोघ आत्मिक शक्ति में जिनका विश्वास है वे ही लोग शान्तिसेना के आदर्श को सिद्ध कर सकेंगे।

शान्तिसेना के साथ साथ राष्ट्रीय सा[...] की शिक्षा भी लोगों में फैलानी हो[...] स्वतंत्रता के ध्येय का प्रचार तो [...] में काफी हुआ है। यह कोओ [...] काम नहीं हुआ। अब अुसकी सा[...] का निश्चय अुनके हृदय तक पहुंच[...] होगा। 'स्वतंत्रता ही ध्येय हमा[...] अिसमें अब शक नहीं रहा। कि[...] अुसकी प्राप्ति के लिअे निर्भयता, निःस्पृ[...] अुदारता और भाअीचारा अत्यावश्यक [...] अिस बात की साधना लोगों को समझ[...] होगी। अहिंसा का प्रचार गान्धीजी [...] काफी किया है। किन्तु राष्ट्रसेवकों [...] अपने दिमाग खरोंच खरोंच कर [...] अपने हृदयों को टटोल टटोल कर वैज्ञानि[...] ढंग से कार्यकारण-भाव का परीक्षण क[...] होगा और यह सम्यक् रून से अेक बा[...] स्थिर करना होगा कि भारतवर्ष के लि[...] तो स्वतंत्रता की साधना अेक ही [...] सकती है। जो लोग अहिंसा को केव[...] अस्थायी नीति के तौर पर स्वीकार क[...] हैं वे दर असल दिल से अहिंसक न[...] होते। अिसलिअे राष्ट्रीय साधना में अुन[...] मदद नहीं हो सकती। अुलटे वे तो [...] अपनी अश्रद्धा के कारण हिंसा की [...] प्रतिष्ठा बढाते हैं।

स्वातंत्र्य की साधना की शिक्षा [...] वास्तविक राष्ट्रीय शिक्षा है। वह केव[...] शद्बों या संस्थाओं द्वारा नहीं दी [...] सकती। लोगों की प्रत्यक्ष सेवा द्वा[...] ही अुन्हें यह नयी दृष्टि देनी होगी।

लोगों के दिल में जो हिन्दूधर्म अ[...] अिस्लाम का खयाल है अुसकी अुपेक्षा [...] करते हुअे अुसका गहरा अध्ययन क[...]

चाहिअे। शिक्षा के जरिये अुनके खयाल साफ करने चाहिअे। जब तक स्वराज्य के साधन के विषय में वैज्ञानिक ढंग से गहरा विचार न होगा और अुसका राष्ट्र-व्यापी प्रयोग न होगा तब तक साम्प्रदायिक दंगों का यह जहर बना ही रहेगा। क्यों कि दर असल यह रोग नहीं है, रोग का अेक भडकीला चिन्ह है।

२०:२:३९ का० का०

वर्धा योजना के माने?

श्री मगनभाअी देसाअी का 'वर्धा योजना के माने' शीर्षक लेख पाठक अिस अंक में पढ़ेंगे। शायद कअी पाठक असमंजस में पड जायंगे और सोचने लगेंगे कि आखिर वर्धा योजना का मतलब क्या समझा जाय। हरअेक विद्वान अपनी अलग व्याख्या करता है और सभी गान्धीजी के नाम का हवाला भी देते हैं। लेकिन असमंजस में पडने की कोअी वजह नहीं है। काका साहब का वह अुपनिषदवाला दृष्टान्त यहां पर ठीक लागू होता है। ब्रह्मदेव से कहा गया कि हमें कुछ अुपदेश कीजिये। अुसने अेक ही अक्षर में जवाब दिया 'द अिति'। किसीने अुसका मतलब दमन समझा, किसीने दान और किसीने दया। ब्रह्मा ने सोचा कि अुस अक्षर से ये तीनों भाव लिये जा सकते हैं। लेकिन अगर अिनमें से कोअी अेक ही ले लिया जाय तो भी हर्ज नहीं है। भले ही कोअी दमन का भाव ले, कोअी दान और कोअी दया का। तीनों अेक ही हैं। कम से कम अभिन्न तो हैं ही।

श्री मगनभाअी ने यह बताया है कि गान्धीजी ने वर्धा योजना के तीन लक्षण बतलाये हैं- (१) देहाती शिक्षा; (२) राष्ट्रीय शिक्षा और (३) औद्योगिक शिक्षा। देहाती शिक्षा का अर्थ है देहातों की दृष्टि से शिक्षा। अर्थात जिसमें अंग्रेजी नहीं है अैसी शिक्षा। राष्ट्रीय के मानी हैं सत्य-अहिंसा प्रधान शिक्षा और औद्योगिक से मतलब है अुद्योग के साथ अच्छी तरह मिली हुअी शिक्षा। श्री मगनभाअी की शिकायत है कि शिक्षा-पण्डित अिनमें से सिर्फ तीसरी बात पर अधिक जोर देते हैं और पहली दो को गौण स्थान दे देते हैं।

वही ब्रह्मावाली बात यहां पर भी घटती है। तीनों बातों पर अेकसा जोर दिया जाय तो बेहतर है। लेकिन किसी अेक पर भी जोर देने से भलाअी ही होगी। डॉ० जाकिर हुसेन कमिटी ने अिन तीनों चीजों को कुछ दूसरी परिभाषा में पेश किया है। अुन्होंनें शिक्षा के तीन केन्द्र बताये हैं। (१) कुदरत—अधिकतर जनता के लिअे अिसीका दूसरा नाम देहात है। (२) समाज—श्री मगनभाअी राष्ट्रीय शब्द का जो मतलब करते हैं वह अिसमें आ जाता है। और (३) अुद्योग।

अगर श्री किशोरलालभाअी ने अुद्योग पर कुछ ज्यादह जोर दे दिया है तो समझ लेना चाहिअे कि वह अुनकी व्यक्तिगत रुचि है। दूसरे दो लक्षणों का वे अिन्कार नहीं करते अितना तो हमारे लिअे काफी है। अिसी तरह श्री मगनभाई अुद्योग द्वारा शिक्षावाली बात को मिटा नहीं देना चाहते। अुनकी राय में दूसरे दो केन्द्रों का महत्त्व अधिक है। यह अुनकी व्यक्तिगत रुचि है। अैसा रुचिभेद

हर अेक पाठक में भी पाया जायगा। अिसमें किसीको असमंजस में पडने जैसी कोअी बात नहीं है।

दा० ध०

नेतापन और पदाधिकार

कॉंग्रेस के इर्दगिर्द जो गन्दगी आज फैल रही है उसमें अेक जबर्दस्त बदबू नेतापन और पदाधिकार की अभिलाषा में से निकलती हुई मालूम होती है। कई लोगों की अैसी राय जान पडती है कि सफल नेतापन के लिअे पदाधिकार जरूरी है। इसलिअे वे या तो नेता बनने की अभिलाषा से पदाधिकार हासिल करने की अथवा पदाधिकार हासिल करने के लिअे नेता बनने की कोशिश में रहते हैं। इसका प्रत्यक्ष परिणाम तो इतना ही होता है कि संस्था में अेक जबरदस्त दुर्गन्ध पैदा हो जाती है। दलबन्दियाँ जोर पकडती हैं। कारिस्तानी, कूटनीति, साजिश और फरेब का बाजार गरम हो जाता है।

वास्तव में नेतापन और पदाधिकार का कोई जरूरी सम्बन्ध नहीं है। कई बार नेता को पदाधिकार मिल जाते हैं। लेकिन पदाधिकार मिलने भर से शायद ही कोई नेता हो सकता है। नेतापन अेक भीतरी शक्ति है। पदाधिकार की बाहरी शक्ति उसे अधिक पुष्ट भले ही करे लेकिन वह उसे पैदा नहीं कर सकती। जहां नेता अच्छा होता है वहां पदाधिकार अेक गौण और सहायक शक्ति बन जाती है। लेकिन जहां नेता अच्छा न हो वहां वह पीडा देनेवाली शक्ति बन जाती है। आज कई जगह वह पीडादायक शक्ति ही साबित हो रही है।

१६:२:३९ कि. घ. म.

वास्तववाद बनाम ध्येयवाद

वास्तववाद और ध्येयवाद का झगडा केवल साहित्य में ही नहीं किन्तु राजनैतिक क्षेत्र में भी बढने लगा है। जहां दो भिन्न चीजें अेकत्र आयीं कि अुनके बीच परस्पर विरोध होना ही चाहिअे अैसा मानना ही अेक बडा भारी भ्रम है। कुटुम्ब में सत्ता किसकी हो, पिता की या माता की, अैसा सवाल अुठा कर कुटुम्ब का ही नाश करना अशक्य नहीं है।

वास्तववाद और ध्येयवाद के बीच विरोध कहां है? जिन लोगों को कुछ भी पुरुषार्थ नहीं करना है वे वास्तववाद के सहारे ध्येयवाद का विरोध करते रहते हैं। त्याग, बलिदान, आत्मसंयम, निर्भयता आदि चारित्र्य के अुज्ज्वल पहलू नष्ट करने के लिअे ध्येय-वाद का विरोध करना आसान है।

जिन लोगों को केवल कल्पना-विलास ही करना है और अपने जीवन में तनिक भी परिवर्तन किये बिना आदर्श की बडी बडी बातें करना है अुनका ध्येयवाद खोखला होता है। किन्तु जिन लोगों ने न्यायदान में हिस्सा लिया है, शिक्षा क्षेत्र में बरसों अपने जीवन का सर्वोच्च समय व्यतीत किया है, जो लोग व्यापार-तिजारत में सफल हुअे हैं और राजनीति में जिन लोगों ने देश को जाग्रत करके आजादी का रास्ता दिखाया है, अुन लोगों का ध्येयवाद वास्तववाद को नहीं पहचान सकता अैसा कैसे कहा जा सकता है?

असली बात यह है कि वास्तववाद के कीचड से ही जीवन-कमल का जन्म होता है। किन्तु ध्येयरूपी सूर्य–प्रकाश से ही वह कमल जीवन की सतह से अूपर

अुठ कर अपनी कल्याणमय प्रसन्नता खिला सकता है। अगर गन्दे किन्तु पौष्टिक कीचड से कमल पृथक किया जाय तो पानी में तैरते हुअे भी वह सड जायगा। किन्तु अगर सूर्य-प्रकाश से अुसे पूर्णतया वंचित किया जाय तो कमल की हस्ती ही असम्भव हो जायगी। फिर अुसके रंग, रूप, सुगन्ध और कोमल प्रसन्नता का सवाल ही नहीं अुठेगा। वास्तववाद का दर्शन आवश्यक है किन्तु ध्येयवाद की प्रेरणा प्राण-स्वरूप है। जिन्हें कीडे बन-कर कीचड में ही रहना है वे अवश्य वहीं रहें। किन्तु कम से कम वे ध्येयवाद की निन्दा करके देश की स्वतंत्रता का और भाषा के चैतन्य का द्रोह तो न करें।

२०:२:३९ का० का०

संस्था-संचालन

गान्धीजी जब से हिन्दुस्तान में लौटे तब से कहते आये हैं कि रचनात्मक कार्यक्रम के द्वारा ही राष्ट्र में स्वराज्य-शक्ति पैदा होनेवाली है और बढनेवाली है। अगर हम अपनी छोटी-बडी संस्थायें अपने आदर्श के और सिद्धान्तों के अनुसार सफलतापूर्वक चला सकें तो स्वराज्य प्राप्त करना और चलाना बिलकुल आसान बात होगी। कहा जाता है कि शिवाजी के समय में जो लोग छोटे-मोटे मन्दिरों की जायदाद की देखभाल और अुनका कारोबार चलाते थे वे ही आगे जा कर स्वराज्य में बडे बडे राजकार्यधुरन्धर बन गये। अगर प्रयोग-शाला में सफलता प्राप्त हुअी तो अुसी अनुभव के बल देश-व्यापी प्रयोग करना कोअी कठिन काम नहीं है।

अिसलिअे अगर हम अपनी अपनी संस्थायें आदर्श को सतत निगाह में रखकर चलावें और भीतर ही भीतर वायुमण्डल की शुद्धि और परस्पर बन्धुभाव स्थापित कर सकें तो स्वराज्य मानों हमारे हाथ में आ ही गया।

संस्थाओं के अैसे संचालन के लिअे संगठन किन तत्त्वों पर होना चाहिअे और परस्पर अनुकूलता की रक्षा के लिअे किन किन नियमों का पालन करना चाहिअे यह भी सोचना होगा। संस्था-संचालन का सारा पूरा शास्त्र ही हमें तैयार करना होगा।

२०:२:३९ का० का०

पर्वतीय भाअियों की सुप्त शक्ति

हिन्दुस्तान को अपने शक्ति-स्थान कहां कहां हैं यह पहचानना चाहिअे। अहिंसा के रास्ते अगर राष्ट्रोद्धार करने का निश्चय हो तो अहिंसा की दृष्टि से सामर्थ्य-स्थान कौन कौन से हैं अिसका भी निश्चय करना होगा।

भारत की स्त्रीशक्ति अैसा अेक सामर्थ्य का स्थान है। भारत के मज़दूर और किसान भी सामर्थ्य का स्थान हैं। भारत के हरिजन जब जाग्रत होंगे तब वे भी भारतीय सभ्यता को विश्वमान्य बनाने में अपना हिस्सा सबों से अधिक अदा करेंगे।

गांव के कारीगर भी हिन्दुस्तान की कल्पकता के प्रतिनिधि हैं। वे जब स्वराज्य की दीक्षा लेंगे तो देश में अेकाअेक अद्भुत कला-सामर्थ्य प्रकट होगा।

जिन लोगों के बिना राज्य, व्यापार या अन्य कोअी भी संगठन चल ही नहीं सकता अैसे कारिन्दा और गुमाश्ता लोग भी अेक खास अद्भुत शक्ति रखते हैं। वे जब राष्ट्रनिष्ठा को पहचान लेंगे तब

किसी भी किस्म की क्रान्ति वे आसानी से कर सकेंगे।

जंगल में बसनेवाली, पहाडों की अुपज पर अपनी गुजर करनेवाली जंगली जातियों के प्रति लोगों के मन में तनिक भी आदर नहीं है। आम तौर पर लोगों में अुनकी हस्ती की जागृति भी नहीं होती। किन्तु अिन पहाडी जातियों में जीवनशक्ति का प्रवाह कुछ अजब ही होता है। अिस जीवन-शक्ति का साक्षात्कार जब अुन्हें और हमें होगा तब अुनकी मदद से हम भारत की भौतिक और आध्यात्मिक प्रगति अेकदम दसगुनी कर सकेंगे। जो शक्ति गणित में शून्य की होती है वही शक्ति अिन पहाडी जातियों में आज है। जबतक हम अुन्हें अपनी दाहिनी ओर नहीं बिठाते, प्रेम से अुनकी सेवा नहीं करते, आदरभाव से अुनकी तरफ नहीं देखते, तबतक वह शक्ति सुप्त ही रहेगी। हमारे शत्रुओं ने अुस शक्ति को पहचाना है। अुसे हस्तगत करने की वे भरसक कोशिश कर रहे हैं। अुनके पास अखूट धीरज है। किन्तु अपना मतलब सिद्ध करने की चाबी अुन्हें अभीतक नहीं मिली है। हमें समय होते सेवा द्वारा अिन लोगों को अपनाना चाहिअे नहीं तो आगे चलकर पछताना होगा। जो लोग गरीब बन कर अिनके बीच में रह सकते हैं अुन्हें आज ही से अिस काम की दीक्षा लेनी चाहिअे। अिन सत्त्व-समृद्ध पिछडे हुअे लोगों को अपनाने से क्षीण-सत्त्व संस्कारी लोगों को अपने अुद्धार का मार्ग मिल जायगा।

२०:२:३९ का० का०

अेक बुरी आदत

कई लोगों को दूसरों के पत्र पढ लेने की बडी बेढंगी और बुरी आदत होती है। अगर खुला कार्ड हो तो वे मानते हैं कि उसे पढने में कोई दोष हो ही नहीं सकता। कई लोगों का कुतूहल बंद लिफाफा खोलने से भी उन्हें रोक नहीं सकता। फिर अगर उन्हींके हाथ किसीको पत्र पहुंचाने का मौका आ जाय, तो यह विश्वास नहीं किया जा सकता कि वे बिना पढे उसे पहुंचा देंगे।

कुछ वर्ष अे गुजरात विद्यापीठ में अेक मित्र के नाम मैंने अेक खत भेजा था। उसीमें काकासाहब आदि दो-चार दूसरे मित्रों के नाम भी चिट्ठियाँ रख दीं। मैंने मान लिया कि वह मित्र अपनी चिट्ठी रख लेगा, और दूसरी चिट्ठियाँ अेक डाकिये की तरह बाँट देगा। लेकिन, बाद में मालूम हुआ कि उसने सब चिट्ठियाँ स्वयं पढकर बाँटी। उसमें काकासाहब के किसी शिष्य के विषय में कुछ अैसी चर्चा थी जो दूसरों के लिअे नहीं थी। बेशक, इससे काकासाहब को बुरा लगा और मुझे भी।

हाल ही में अेक अैसा ही दूसरा प्रसंग हुआ। मैंने अेक पोस्टकार्ड अेक मित्र को लिखा। उसे उसके दफ्तर के अनेक कारकुनों ने नाहक ही पढ लिया, और पूर्वापर संबंध न जानते हुअे अेक वाक्य का कुछ का कुछ अर्थ समझ लिया और आपस में चर्चा करने लगे। अर्थात् मेरे मित्र को उसके कारण बहुत कष्ट हुआ।

जिस तरह परधन और परस्त्री पर दृष्टि डालना असभ्यता है, उसी तरह दूसरे के पत्रव्यवहार पर अनधिकार दृष्टि डालना भी निपट असभ्यता है।

कि. घ. म.

सियारामजी की शालीनता

जब अेक दफे गुजरात में 'वसंत' के सम्पादक आचार्य आनन्दशंकर ध्रुव को जाहिरा तौर पर मुझे अेक खत लिखना पडा तब अुनके प्रति मेरे मन में जो आदरभाव है अुसका जाहिरा प्रदर्शन टालने के लिअे अुनके नाम के पहले 'पूज्य' न लिखकर केवल 'मुरब्बी' ही लिखा। किन्तु अुन्होंने मेरा खत छापते समय मुरब्बी शब्द को हटाकर मामूली प्रिय शब्द वहां डाल दिया। यह परिवर्तन मुझे अच्छा नहीं लगा। क्या दुनिया मुझे बदतमीज नहीं कहेगी ? अुन्होंने अपनेको बचाकर मुझे बुरी हालत में रख दिया। मैंने मान लिया कि मेरे प्रति अुन्होंने अन्याय किया है।

अब की बार जब सियारामशरणजी का पत्र मेरे नाम आया तब अुसे सार्वजनिक महत्त्व का समझ कर छापने के लिअे कार्यालय में दे दिया, अिस विश्वास से कि अुसके गैर-जरूरी हिस्से काटे जायेंगे। जब पूना से लौट कर छपे हुअे फार्म देखे तब अुसमें 'पूज्य' आदि बातें जैसी की तैसी छपी हुअी पायीं। कविवर सियारामशरणजी की शालीनता तो अुसमें व्यक्त हो गयी लेकिन मुझ बेचारे का क्या हाल ? अध्यापक का काम जमाने से करता आया हूं अिसलिअे 'पूज्य' का विशेषण मेरे पीछे लगा ही है। कहां तक अुसका विरोध किया जाय। मैं अपने लडकों को तो मना कर सका। किन्तु दुनिया थोडे ही मानती है ? मित्रों को और विद्यार्थियों को मना करने से जो बहस चलती है अुसे देख कर तो और भी मायूसी हो जाती है। अन्त में मैंने मान लिया कि अपनी क्षुद्रता का भान करने के लिअे यह तरीका अच्छा है। जिसका राज्य नष्ट हो गया है अुसको राजाधिराज कहने से जैसे अुसे स्मरण होता है कि मैं राजा नहीं हूं और मुझे राज फिर से प्राप्त करने के लिअे कोशिश करनी चाहिअे, सोते रहना मेरा धर्म नहीं है। अुसी तरह यह 'पूज्य' विशेषण अिसी बात का स्मारक है कि मुझसे दुनिया को आशा कुछ और है और मैं हूं कुछ और।

आचार्य आनन्दशंकरभाअी ने जो रास्ता दिखाया था वही अुनके लिअे नहीं किन्तु मेरे लिअे योग्य है अैसा विश्वास हो गया।

२३ : २ : ३९ का० का०

सत्याग्रह बनाम निःशस्त्र प्रतिकार

१. सत्याग्रह—

काकासाहेब ने 'सत्याग्रह बनाम निःशस्त्र प्रतिकार' शीर्षक लेख में जो विवेचन किया है अुसका सारांशः– (१) सत्याग्रह का अुद्देश वैर भंजाना नहीं हो सकता। हम अुसमें प्रतिपक्षी की हानि या अुसका अधःपात नहीं चाहते। बल्कि अुसे भी बुराअी और अधःपात से बचाना चाहते हैं। (२) झूठ, दगाबाजी, षड्यन्त्र, घात आदि के लिअे सत्याग्रह में कोअी गुंजाअिश नहीं है; क्यों कि अुसके मूल में विजायाकांक्षा नहीं है। केवल सेवा-वृत्ति है। किसीको हरा कर नीचे दिखाने में सत्याग्रही की अपनी आत्म-मर्यादा को चोट पहुँचती है। (३) अपनी बहादुरी बतलाने के लिअे, धाक जमाने के लिअे, या लोगों की प्रशंसा प्राप्त करने के लिअे सत्याग्रही प्रतिकार के मौके नहीं खोजता। वह कोअी होड़ का घोडा (रेसहार्स) अथवा कुस्ती का कौशल दिखाने के लिअे या

अिनाम के लिअे जोड़ खोजने वाला पहलवान नहीं है। (४) अपनी लड़ाअी की वृत्ति और औज़ारों को धार लगाने के मौके वह नहीं ढूंढ़ता। अुसे लड़ाअी की अपेक्षा अमन और मेल अधिक पसन्द हैं। वह संग्राम या विजय का कायल नहीं है, बल्कि भाअीचारे और सेवा का (५) वह दूसरों पर अपना प्रभुत्व कायम करना पाप समझता है। न किसीको गुलाम बनाना चाहता है, न किसी की प्रतिष्ठा कम करना चाहता है। वह अपना प्रभाव नहीं बढ़ाना चाहता, सत्य और प्रेम की प्रतिष्ठा स्थापित करना चाहता है। अुसे न पराक्रम की मुराद है, न कीर्ति की चाह और न यश की लालसा। सेवा का आनंद ही अुसके लिअे पर्याप्त है।

२. निःशस्त्र प्रतिकार—

(१) सशस्त्र प्रतिकार में जो दिलेरी है वह भी यहां नहीं है, क्योंकि हम अपनी कमजोरी के कारण अिसका अवलम्बन करते हैं। कमजोरी पराक्रम की शक्ति घटाती है, युद्ध-पाटव कम करती है और द्वेषाग्नि तथा हीनता के भाव भड़काती है। (२) बिना शस्त्र के हम प्रतिपक्षी को जितना हतवीर्य कर सकें, अुस पर जबरदस्ती कर अुसे दबा सकें, जितना डरा सकें, जितना धोखा दे सकें, जितना जर्जर कर सकें, जितना अपमानित कर सकें, अुसे जितना नुकसान पहुँचा सकें अुतना पहुँचाने में कुछ भी नहीं अुठा रखेंगे। (३) यहां आत्मबल से कोअी सरोकार नहीं है। हमें तो किसी न किसी तरह बदला लेना है। बिना हथियार के बल-प्रयोग करना है। यदि हम अपने प्रतिपक्षी का शारीरिक वध नहीं कर सकते तो साम्पत्तिक, नैतिक और तेजोवध अवश्य करेंगे। (४) निःशस्त्र प्रतिकार में साजिश, गुप्त आघात, आकस्मिक आक्रमण आदि के लिअे गुंजाअिश है। सशस्त्र धर्मयुद्ध के नियम भी अुसे लागू नहीं हैं, क्योंकि वह दुर्बलों की युद्ध-विधि है।

३ सारांश—

सत्याग्रह यदि युद्ध के लिअे अेक मनुष्योचित, सुसंस्कृत, श्रेयस्कर और वीरतापूर्ण पर्याय है तो निःशस्त्र प्रतिकार अुसकी अेक बेढंगी, असफल और निःसत्त्व नकल है।

२३:२:३९ दा० ध०

आगामी सम्मेलन

अप्रैल में, संघ का पाँचवा सम्मेलन होगा। अुसको खयाल में रखकर सदस्यों और लेखकों से निवेदन है कि वे अप्रैल के अंक के लिअे अैसी व्यवहार्य योजनायें, सूचनायें, और कुछ अनुभव की बातें लिखें जो सम्मेलन में विचार करने योग्य हों। 'सर्वोदय' को विशेष अुपयोगी बनाने की दृष्टि से भी सूचनायें भेजी जायँ। —सं

जीवन-सेवक या साहित्य-सेवक

[काका कालेलकर]

साहित्य के आदर्श के विषय में प्रत्येक प्रान्त में लगातार विवाद चलता ही रहता है। व्यास, वाल्मीकि आदि आद्य साहित्यकारों ने शायद साहित्य-सेवा का खयाल किया ही नहीं होगा। वे तो धर्म के सेवक थे। संस्कृति के संस्थापक और परिपोषक थे। लोक-सेवा के लिअे और आदर्श की निर्मिति के लिअे अुन्होंने साहित्य अुत्पन्न किया। अुनके पास जीवन का, विचार का और संस्कारिता का बहुत अूंचा आदर्श था। अिसलिअे अुनका साहित्य भी प्रभावशाली और संस्कारी हुआ। वे साहित्य के आदर्श के अनुसार नहीं चले, किन्तु जिस मार्ग का अुन्होंने अनुसरण किया अुसी रास्ते साहित्य का आदर्श अुनके पीछे पीछे गया। अुनमें जो अभिजात संस्कारिता थी और लोकसेवा की लगन थी अुसीसे अनुप्राणित और आकर्षित हो कर साहित्य स्वयं चैतन्यपूर्ण हो गया और लोगों ने साहित्य में संजीवनी शक्ति देखी। सूर्यप्रकाश जैसे चंद्रमा के द्वारा शान्त और आल्हादक हो कर पृथ्वी पर अमृत का वर्षाव करता है अुसी तरह अिन आद्य क्रान्तदर्शी कवियों के चरित्र का वल और सेवा का सामर्थ्य, तपस्या का तेज और कारुण्य की प्रेमशक्ति, साहित्य में प्रतिबिम्बित हुअी और साहित्य में प्राण और प्रकाश का संचार हुआ।

साहित्य की यह शक्ति देख कर बहुतसे लोग जीवन-सेवा छोड़कर साहित्य-सेवा में लग गये। साहित्य के अुपासक हो गये और चैतन्यपूर्ण साहित्य के स्वरूप की अनेक मनोवेधक विशेषताओं से मुग्ध होकर अुनका अनुकरण करने लगे। बाज दफ़ा असल की अपेक्षा नकल ही अधिक खूबसूरत होती है। किन्तु अुसमें वह प्राणशक्ति प्रकट नहीं होती जो जीवन-अुपासक की वाङ्मयी अभिव्यक्ति में होती है।

लोग करुणा–परिपूर्ण साहित्य को चाव से पढ़ते हैं। क्योंकि अैसे साहित्य में जीवन में भरे हुअे कारुण्य का प्रतिबिम्ब अुन्हें दिखायी देता है। असली चीज़ तो जीवन को मृदु बनानेवाली कारुण्य वृत्ति है न कि अुसे व्यक्त करनेवाले पेलव साहित्य की सुकुमार शैली। अुदात्त साहित्य जब अुदात्त जीवन का निःश्वसित होता है तब अुसमें न केवल जीवन की सुगन्ध ही होती है किन्तु जीवन के आर्यत्व का तेज भी पाया जाता है।

फिर भी साहित्य का अेक निजी स्वयंभू आकर्षण तो होता ही है। संस्कारिता और पराक्रम के फलस्वरूप जो साहित्य निर्माण होता है अुसमें अपने अुपासकों में संस्कारिता और पराक्रम पैदा करने की शक्ति भी होती है। अिसलिअे जीवनवीर कभी कभी अपनी सर्वोच्च सेवा साहित्य के द्वारा देने को तैयार हो जाते हैं और अपनी जीवन-विभूति प्रत्यक्ष सेवा द्वारा और जीवन-प्रयोग द्वारा व्यक्त करने के बदले अपनी सारी अुत्कटता साहित्य में ही भर देते हैं। ये लोग देखने में तो साहित्य-सेवकसे मालूम होते हैं लेकिन अुनकी निष्ठा साहित्य के प्रति नहीं किन्तु साहित्य के द्वारा जीवन के प्रति ही होती है। साहित्य तो अुनके लिअे अेक साधन मात्र होता है। अगर अुनको पूछा जाय कि आपकी हृदय-

स्वामिनी कौन है तो वे कहेंगे, 'जीवन-देवी', जिसकी सेवा के लिअे अुन्होंने साहित्य को निमंत्रित किया है।

किन्तु दूसरा अेक वर्ग साहित्य-सेवा करता है जो साहित्य द्वारा केवल निरतिशय आनन्द पाने का ही लालायित होता है। अिस वर्ग के पास भी जीवन का मूल्य कुछ न कुछ होता ही है। साहित्य--केवल साहित्य--तो खोखली चीज हो जायगी। वह रंजन भी नहीं कर सकेगी। निरतिशय आनन्द नहीं दे सकेगी। जिनका जीवन से प्रत्यक्ष संपर्क हो अैसे कुछ न कुछ मसाले अुसमें भरने ही चाहिअे। किन्तु अिन साहित्य-सेवकों को आन्तरिक मसाले से मतलब कहीं कम होता है। भोजन के लिअे अेक भाजन अवश्य चाहिअे। किन्तु लोग भोजन से भी अधिक भाजन के आकार, प्रकार, रंगरूप और तेज की ओर ही ध्यान देते हैं। भोजन-निष्ठा और भाजन-निष्ठा का यह अन्तर ठीक ठीक समझना आसान नहीं है। किन्तु यह भेद है तो स्पष्ट। कलाकार स्पष्ट कहते हैं कि कला का हार्द चमत्कृति-जनक आकार में है। कला भाजन-विद्या है। भाजन के रूपलावण्य पर ही कला निर्भर होती है।

और जो लोग साहित्य के अध्ययन–अध्यापन में लगे रहते हैं अुनका क्या? अुनमें भी ये दोनों वर्ग पाये जाते हैं। किन्तु अिनमें से अधिकांश लोग भाजन-कला के ही अुपासक होते हैं। आल्हादक आकार-प्रकार की अुपासना को प्रधान मानते हैं।

अब समाज की दृष्टि से देखा जाय तो अुसे अिन दोनों वर्गों की आवश्यकता है। लोग सुवर्ण भी चाहते हैं और अुसका मूल्य और अुसके रूपलावण्य को बढाने वाले सुवर्णकार भी चाहते हैं। लोग मार्दव, लावण्य, सुरंग और सुगंध से भरे हुअे फूल भी चाहते हैं और अुनकी अच्छी अच्छी मालायें बनानेवाले मालाकार या सुमनगुच्छकार भी चाहते हैं। असली चीज तो सुवर्ण है। सुवर्ण का आकार कुछ भी हो वह बहुमूल्य चीज तो है ही, किन्तु अुसकी कीमत, अुसकी अुपयोगिता और अुसका सौन्दर्य बढ़ाने का कार्य सुवर्णकार ही करता है। फूल अपने अपने पौधे पर खिल कर कृतार्थ होते ही हैं किन्तु अुन्हें मनुष्य के लिअे अुपभोग-योग्य बनाने का काम मालाकार ही करता है। माली का काम अलग है, मालाकार का अलग है। माली फूलों की क्यारियां बनाता है, अुन्हें अुत्पन्न करता है, मालाकार अुनकी शोभा मनुष्य के लिअे बढाता है।

जो लोग जीवन-सेवक हैं वे माली के जैसे हैं, किन्तु जो लोग केवल साहित्योपासक हैं वे तो मालाकार की कोटि के ही हैं। जीवन-सेवक अपनी प्रेरणा साहित्य से कम लेता है। साहित्यप्रेमी होने के कारण, साहित्य का आशिक होने के कारण, वह साहित्य का आस्वाद अवश्य लेगा। साहित्य का अध्ययन भी करेगा। किन्तु अुसकी सारी समृद्धि जीवनानुभव से ही अुसे मिलेगी। मैक्सिम गॉर्की साहित्य-स्वामी अवश्य था किन्तु अुसका अध्ययन तो विश्वव्यवहार के विश्वविद्यालय में ही हुआ था। और अुसने जो साहित्य-निर्मिति की वह साहित्य की अुपासना और साहित्य के अुपस्थान के लिअे नहीं किन्तु जीवन के आकलन के लिअे, जीवन के सुधार के लिअे और जीवन के परिवर्तन के लिअे। रवीन्द्रनाथ ठाकुर कवि सम्राट हैं, शब्दसृष्टि के विधाता हैं, फिर भी अुनकी अुपासना जीवन-देवी की ही है

साहित्य द्वारा अुन्होंने मानव-जाति के जीवन की अुन्नति की ही साधना की है। केवल कवि बन कर अुन्हें संतोष नहीं हुआ। मानव्य का यह आर्य अुपासक देशदेशान्तर में घूम आया। किस लिअे? दुनिया को साहित्य का आस्वाद देने के लिअे नहीं। किन्तु साहित्य-रसिक लोगों को मनुष्यत्व की, बन्धुता की और प्रत्येक प्रकार के आर्यत्व की दीक्षा देने के लिअे।

टॉलस्टॉय रूस का अेक अप्रतिम साहित्य-कार हो गया। परन्तु अुसकी हृदय-स्वामिनी साहित्य-लक्ष्मी नहीं थी। आत्मपरायण जीवन ही अुसके भक्ति का अुपास्य दैवत था।

यूरोप के आज के सर्वश्रेष्ठ पुरुषों में रोमे रोलाँ की गणना होती है। किन्तु फरान्स के साहित्यकारों ने अुसकी गणना साहित्य-सेवियों में करने से अिन्कार किया। यह बिलकुल ही सही था।

गान्धीजी ने भी अेक नयी कोटि का बन्दूक की गोली के समान सीधा हृदय को भेदनेवाला किन्तु हृदय को भेद कर संजीवित करनेवाला, साहित्य निर्माण किया है, और अब भी कर रहे हैं। किन्तु गुजरात के साहित्य-सेवियों में वर्षों यह चर्चा चल रही थी कि गांधीजी को साहित्य-सेवी, साक्षर, गिना जाय या नहीं। और जब वे साहित्य परिषद के सभापति बनाये गये तब अुन्होंने वहां जो भाषण दिया अुससे अुन्होंने स्वयं ही सिद्ध कर दिया कि वे साहित्य-निर्माता भले ही हों, परन्तु साहित्य-अुपासक, साहित्य–सेवी या साहित्यिक तो बिलकुल नहीं हैं।

व्यास और वाल्मीकि, होमर और लोक-गीतों के रचयिता अपना जीवन किस तरह से व्यतीत करते थे? क्या वे किसी विद्यापीठ में बैठ कर या पुस्तकालय में अपना सिर झुका कर साहित्य पढते-पढाते थे? शायद वे वैसा करते भी हों। किन्तु वे प्रधानतया परिव्राजक थे। घरघर जाकर अपनी बातें जनता को सुनाते थे। अुन्हें राज-दरबार का रंजन नहीं करना था। किन्तु लोक-जागृति का काम अुन्होंने अपने सिरपर लिया था। झोपडी में रहनेवाली जनता के वे सेवक थे। अुसीके अुद्धार में वे अपना अुद्धार भी देखते थे। अुन्हींकी दी हुअी रोटी, लंगोटी, कमण्डलु और साधुवास से वे कृतार्थ होते थे। यह कोअी आधुनिक चित्र नहीं है। वाल्मीकि ने जब रामायण रची और अपने शिष्य लवकुशों के द्वारा अुसका गांव गांव में प्रचार शुरू कर दिया तब लोक-धुरीण ऋषियों ने संतुष्ट हो कर अुन्हें क्या क्या दिया अुसका वर्णन रामायण में ही पाया जाता है।

जो लोग केवल साहित्य की ही अुपासना करते हैं, साहित्य के रूप-लावण्य का अध्ययन करते हैं और अुसीको दृष्टि में रख कर अुसकी विलासवृद्धि के लिअे साहित्य-समृद्धि करते हैं वे अपने अपने स्थान पर वैसा भले ही करें। अुन्हें कोअी मना नहीं करता। अुनकी सेवा धन्यता के साथ ली भी जाती है। किन्तु वे साहित्य-सृष्टि को चैतन्य प्रदान नहीं कर सकते। वे मुशाहरों में अिकठ्ठा हो कर जनता को अपने आला दर्जे के आलाप नये नये शेरों के द्वारा सिखायें भी। किन्तु अुनके पास अिनसे बढकर कोअी अुच्च आदर्श ही नहीं होता। किसी पारमार्थिक आदर्श ने अुनके हृदय पर अपना स्वामित्व नहीं जमाया होता। अुनके पास जीवन को धूप के समान जलाने-वाला कोअी मिशन (दिव्य सन्देश) नहीं होता।

अैसे लोग अगर संगठित होते भी हैं तो केवल जनता का या परस्पर का रंजन करने

के लिअे अथवा अपनी साहित्य-कृतियों के आकारतन्त्र की चर्चा करने के लिअे। अिस से अधिक कोअी प्रयोजन दृष्टि में रख कर वे क्यों संगठित होने लगे? "चाहे कुछ भी कहो, लेकिन सुन्दर रूप में कहो, किसी भी पन्थ का पुरस्कार करो किन्तु भाषा-गौरव, शब्द-सौष्ठव और शैली की मधुरता के अुच्च आदर्श से न गिरो। तुम्हारी जीवन-निष्ठा कुछ भी हो, समाज का अुद्धार करो या अुच्छेद, जबतक साहित्य के रूप-लावण्य को बढाते हो तब तक तुम हमारे लिअे पूज्य ही हो।" अैसा संगठन अुन व्यक्तियों को और समाज को कहांतक ले जायगा?

किन्तु जो जीवन-सेवक साहित्य के द्वारा चारित्र्य-संगठन और लोक-सेवा करना चाहते हैं वे भाषा-शुद्धि के लिअे लोकमत को जाग्रत करेंगे। लोक-सेवा का कार्य करते हुअे वे शब्दसमृद्धि का खयाल रखेंगे। साहित्य द्वारा लोक-मानस में कौन कौन सा परिवर्तन होता है अुसकी चिन्ता करेंगे, जीवन-शुद्धि और जीवन-समृद्धि के लिअे दिनरात यतन करेंगे साहित्य को लोकसुलभ बनाने के लिअे तो कटिबद्ध होंगे ही। यदि भारतीय संस्कृति के प्राण अुनमें प्रकट हुआ तो अकिंचन बन कर वे जनता की झोंपडी तक जा जा कर और गा गा कर लोक-कल्याण के साहित्य को निरक्षर जनता के कानों तक पहुंचायेंगे और पराक्रम, प्रेम, और प्रयोग-परायणता के बीज लोगों के हृदयों में बोते जायेंगे। ये लोग जितने साहित्य प्रवीण होंगे अुतने ही लोकधुरीण भी होंगे फिर भाषा अुन्हींकी किंकरी क्यों न बनेगी। समाज अुन्हींसे प्रेरणा की, नवजीवन की और अिहलोक में स्वर्ग की स्थापना की आशा करेगा। जो जीवन-परायण हैं वे ही समाजधुरीण बन सकते हैं। अुन्हींकी कल्पना को सिद्ध करने के लिअे मनष्यजाति अनंत कल्पों तक पुरुषार्थ करती रहेगी। साहित्य तो जीवन सूर्य के अुपासकों की छाया मात्र है। वे सूर्य की ओर अग्रसर होते जायें और छाया अुनके पीछे पीछे जाती रहेगी।

मेरा यह दावा है कि मनुष्य का मन या अुसका समाज, सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक कहलानेवाले हवाबन्द कमरों में विभाजित नहीं है। जीवन के अेक विभाग की क्रिया-प्रतिक्रिया दूसरे पर होती ही है। अेक आदमी जीवन के अेक विभाग में अधर्म कर रहा हो तो वह अुसी समय दूसरे विभाग में धर्म नहीं कर सकता। जीवन अेक और अविभाज्य है।

—गांधीजी

सत्याग्रह बनाम निःशस्त्र प्रतिकार

[काका कालेलकर]

जिस समय गान्धीजी ने दक्षिण आफ्रिका मे अपनी कार्यसिद्धि के लिये कानूनभंग शुरू किया अुस जमाने मे दुनिया 'निःशस्त्र प्रतिकार' से ही वाकिफ थी। जब प्रतिपक्षी के पास युद्ध का पूरापूरा सामान तय्यार होता है और अुसकी शक्ति भी हमारी शक्ति की अपेक्षा बेहद अधिक होती है तब सशस्त्र विरोध का कोअी मतलब ही नहीं होता। सशस्त्र विरोध का प्रारम्भ करते ही प्रतिपक्षी हमें कुचल सकता है। प्रतिपक्षी के अिस हमले से बचने के लिअे निःशस्त्र प्रतिकार की हिकमत लोगों ने निकाली और अुसका प्रयोग भी किया। अिंग्लैण्ड में मताधिकार प्राप्त करने के लिअे वहां की स्त्रियों ने निःशस्त्र प्रतिकार कर पुरुषों और राजसत्ता के नाक में दम कर दिया। वहां शस्त्र लेकर प्रतिपक्षी को मारने की या घायल करने की बात को छोड़ कर दूसरी हर किस्म की शरारत जायज़ मानी जाती थी। जनता का और सरकार का ध्यान अपनी ओर खींचने के लिअे अिंग्लैण्ड की ये मताभिलाषी महिलायें डाकखानों की चिट्ठी डालने की पेटियों के मुंह मे तेजाब फेंकने से भी बाज नहीं आती थीं।

मिल-मज़दूर और मिल-मालिकों में जब झगडा होता है तब मिल-मजदूर जानते हैं कि अुनसे सशस्त्र प्रतिकार हो ही नहीं सकता। सशस्त्र विरोध करते ही फौजें बुलायी जाती हैं। फ़ौजी कानून जारी हो जाता है। मज़दूरों के अग्रणियों को निर्वासित किया जाता है या कडी से कडी सजा दी जाती है। अैसा दमनचक्र चलाया जाता है कि मजदूर फिर से वर्षों प्रतिकार का नाम भी लेने की हिम्मत नहीं करते। यह सब सोचकर निःशस्त्र प्रतिकार का अिलाज ढूंढा गया।

किन्तु अिसके अन्दर प्रतिपक्षी को दबाना, अुसे तंग करना, जहांतक हो सके अुसे नुकसान पहुँचाना, अुसके शत्रु के साथ सुलह करना और दोनों मिल कर अुसके दांत खट्टे करना, येनकेन प्रकारेण अपने प्रतिपक्षी को परास्त करना, आदि सब बातें जायज़ मानी जाती हैं।

गान्धीजी को यह दुर्नीति पसन्द नहीं थी। वे बिना अपनी आर्यता, सर्व-हित की कल्याण-बुद्धि छोडे ही लड़ना चाहते थे। अिसलिअे अुन्हें बार बार अपने लोगों से और विरोधियों से कहना पडता था कि अुनकी कार्य-पद्धति कुछ दूसरी ही है। अुनका अुद्देश कुछ और है। अुनकी सारी फिलसुफी ही भिन्न है। अिस नयी दृष्टि के लिअे अुन्हें अेक समर्थ शब्द की जरूरत रही। सार्वजनिक रूप से अुन्होंने अेक समर्पक शब्द की मांग की। अुसके लिअे अुन्होंने अेक होड़ या स्पर्धा भी जाहिर की। स्व० मगनलालभाअी ने अिस होड को जीत कर शब्द सुझाया 'सदाग्रह'। अुसीमें थोडी तबदील करके गान्धीजी ने अुसे 'सत्याग्रह' नाम दिया। थोरो ने जिसे सिव्हिल डिस-ओबिडियन्स (सविनय-भंग) का नाम दिया अुसीके लिअे श्री मगनलालभाअी ने सदाग्रह शब्द सुझाया। विनय के मानी हैं चारित्र्य। अुच्च चारित्र्य को न छोडते हुअे जो विजय हो सकती है, या जिस विजय के द्वारा अुच्च चारित्र्य

का प्रभाव अुत्कटरूप से प्रतिपक्षी पर डाला जाता है, अुसीका नाम है सत्याग्रह। सत्याग्रह के द्वारा हम प्रतिपक्षी को बता देते हैं कि जो आदमी सत्य पर आरूढ़ है और दुन्यवी बातों से अस्पृष्ट है अुसको परास्त करना, कुचल देना, किसी बलाढ्य सम्राट् के लिये भी आसान नहीं है। हर अेक मनुष्य में कहीं न कहीं आत्मशक्ति छिपी हुअी होती ही है। जब सत्याग्रही की आत्मक्लेश-जनित बहादुरी से, सहनशक्ति की वीरता से, दमनकारी परास्त होजाता है; अुसकी हीनता निर्वीर्य बन जाती है, तब वह सोचने लगता है कि "आखिर यह आत्मिक शक्ति है क्या चीज़? क्यों यह आदमी अपने सर्वस्व को न्यौछावर करने के लिअे अुद्यत हो गया है? और क्योंकर अिसके सामने मेरा कुछ भी नहीं चल सका है?" जब अुच्च चारित्र्य के सामने क्षुद्र स्वार्थ और हीन वृत्तियां परास्त होती हैं तब वहां आर्यता, साधुता और न्यायबुद्धि का अुदय हो ही जाता है। सत्याग्रही अपने आर्यत्व से प्रतिपक्षी को प्रथम परास्त करता है, फिर किंकर्तव्यमूढ बनाता है और अन्त में अपने तेज से अुसे भी सदाचार-परायण बना देता है।

किसी बादशाह ने कहा था कि अगर मैं किसीसे सौदा करूं और फिर भी वह आदमी दीन और दरिद्री रहे तो मेरी साहिबी कहां रही? अिसी तरह से सत्याग्रही भी कहता है कि मैं किसी से संघर्ष करूं और फिर भी अुसमें हीनता और अनार्य-वृत्ति कायम रहे, अथवा बढे, तो सत्य और प्रेम की कीमत क्या रही? मैंने जिसका विरोध किया वह अन्त में जा कर जब सत्याग्रही के योग्य प्रतिपक्षी बन जायगा, मेरे लिअे शोभास्पद विरोधी बन जायगा, तभी तो मेरे विरोध का कुछ असर हुआ? अगर मैं कल्याणकारी हूं तो मेरे विरोध से भी मेरे प्रतिस्पर्धी में आर्य-वृत्ति का अुदय होना चाहिअे। श्री भगवान ने अवतार लेकर जिन जिन दैत्यों का विरोध किया अुन सभों का अन्त में अुद्धार ही हुआ। अिसीलिअे ज्ञानी भक्त ने कहा—

"क्रोधोऽपि देवस्य वरेण तुल्यः"।

भगवान के क्रोध का भी असर वरदान के समान कल्याणप्रद होता है। सत्याग्रह का कार्य भी अैसा ही है। किसीको परास्त करना बिलकुल गौण चीज़ है। अुसकी हीनता का नाश कर के अुसका अुद्धार करना यही मनुष्योचित महत्त्वाकांक्षा हो सकती है।

निःशस्त्र प्रतिकार के सामने यह अूंचा आदर्श नहीं है। सशस्त्र प्रतिकार कर नहीं सकते अैसा देख कर लाचारी से, द्वेष से जलते हुअे हृदय से, कातर बुद्धि से, प्रतिपक्षी का जैसे बने वैसे नुकसान करते रहना अिसमें चारित्र्य का तनिक भी विकास नहीं है। अुभय पक्षों का विकास ही सत्याग्रह का अभीष्ट है। जिसने सत्याग्रह-धर्म का स्वीकार किया अुसकी परम मंगल वीरता सभों के लिअे आशीर्वाद स्वरूप होती है। क्यों कि वहां पर किसीका भी अधःपात नहीं सोचा जाता है। वहां तो सभोंका अुदय ही साधा जाता है। निःशस्त्र प्रतिकार में अपना चारित्र्य खोकर शत्रु को क्षीण-सत्त्व, क्षीण-चारित्र्य और क्षीण-तेज बनाया जाता है। सत्याग्रह के अन्त में सार्वत्रिक सर्वोदय ही निष्पन्न होता है।

देवों का काव्य

[काका कालेलकर]

-५-

आजकल के दिन तारादर्शन के लिअे और नक्षत्र-विद्या सीखने के लिअे बहुत ही अच्छे हैं। शाम को पश्चिम की ओर चन्द्रकला बढती जाती है और चन्द्र रोज अेक अेक नक्षत्र में पदार्पण करता जाता है। पंचांग (पत्रे) में देखने से पता चलता है कि चन्द्र किस नक्षत्र में और किस राशि में कहां तक है। पंचांग में तो राशिचक्र गणित शास्त्र की बारह राशियों में बाँटा जाता है। वही चक्र सत्ताअीस नक्षत्रों में भी समसमान विभागों में विभक्त किया जाता है।

अब आकाश में जो नक्षत्र दीख पडते हैं वे तो गणित के हिसाब से अेकसे फासले पर नहीं होते। न वे अेक ही रास्ते पर अेक कतार में आते हैं। कोअी नक्षत्र अुत्तर की ओर झुकता है तो कोअी दक्षिण की ओर। अिस तरह नक्षत्र-मार्ग चालीस अंश चौड़ा माना जाता है।

आकाश का गणितविभाग और होता है तथा नक्षत्रविभाग और होता है। तो भी निरयन (पुराना ग्रहलाघवी) पंचांग का गणितविभाग तारा-विभागों से बहुत कुछ मिलता है। अिसलिअे चन्द्र और बुध, शुक्र, आदि ग्रहों की स्थिति देखने के लिअे पुराना पंचांग ही देखना अनुकूल है।

अब जब हम भिन्न भिन्न नक्षत्रों के अुदयास्तों की बात करेंगे तब क्षितिज पर अुनके अुदयास्त निश्चितरूप से कहां दिखायी देंगे यह कह देना बहुत लाभदायक होगा। किन्तु नक्षत्रों के अुदयास्तों के स्थान हर अेक अंश के लिअे कुछ भिन्न ही होते हैं। हिन्दुस्तान का विस्तार अुत्तर गोलार्ध में छह अक्षांश से छत्तीस तक है। अिस हिसाब से वर्धा अिक्कीस अंश पर होने से हिन्दुस्तान के बिलकुल मध्य पर है। वर्धा का हिसाब अगर हम 'सर्वोदय' में दे दें तो हिन्दुस्तान में कहीं पर भी अुसमें थोडा फर्क करने से हिसाब मिल जायगा।

पृथ्वी पर जैसे अक्षांश-रेखांश होते हैं वैसे आकाश में भी होते हैं। किन्तु हम अुनसे काम नहीं लेंगे। व्यवहार में हर अेक नक्षत्र या तारे का 'आल्टिट्यूड' जानना ही अधिक अुपयोगी होता है। किन्तु हम अुसके भी पीछे नहीं पडेंगे। हम पाठकों से थोडे ही पुरुषार्थ की अपेक्षा करते हैं। अेक काफी बडा कार्ड-बोर्ड या लकडी का तख्ता लेकर अुसपर अेक बडा वर्तुल खींचा जाय और अुस वर्तुल पर घडी के जैसे अेक से लेकर बारह तक अंक लिखे जायँ। मिनिट मिनिट की लकीर भी खींच कर वर्तुल के साठ विभाग किये जायँ। अिस वर्तुल का जहां केन्द्र हो (जहां घडी के कांटे लगाये जाते हैं) वहां अेक स्क्रू अुसका सिर नीचे की ओर करके खडा किया जाय। मैदान में जाकर किसी मेज पर अिस तख्ती को अिस तरह से रख दीजिये कि बारह का अंक अुत्तर की तरफ ध्रुव के नीचे आ जाय। छह के अंक से केन्द्र के स्क्रू के सिर पर देखा जाय। और अुसीके सामने अगर ध्रुव का तारा आ

जाय तो मान लेना चाहिअे कि हमारा वर्तुल ठीक ठीक बैठ गया।

फिर जहां नौ का अंक है वहां से केन्द्र के (बीच के) खीले की तरफ देखा जाय तो तीन के अंक के हिसाब पर पूरब ठीक ठीक आ जायगी। अिससे अुलटा अगर तीन के अंक से केन्द्र को छेद कर नौ की तरफ देखें तो पश्चिम का बिन्दु मिल जायगा।

अिसी तरह अगर हम बारह के अंक के पास खडे हो कर केन्द्र को पार कर के छह के हिसाब से क्षितिज को देखें तो हमें दक्षिण बिन्दु मिल जायगा।

अिस हिसाब से अगर हम मैदानवाली मेज पर अेक बडा घडी का चेहरा बना कर रख दें और अुसके बीच खील का स्तंभ खडा कर दें तो हम क्षितिज के किसी भी स्थान को निश्चितरूप से बता सकेंगे। अगर हमने कहा कि अभिजित पूरब की ओर डेढ़ बजे के स्थान पर अूगता है तो अिसका मतलब यह नहीं होगा कि रात को डेढ़ बजे वह अुगेगा। किन्तु अिसका अर्थ यह होगा कि ठीक ठीक अुत्तर-पूर्व की तरफ वहां अुसका अुदय हम देख सकेंगे। हमारी मेज पर रखे हुअे घडी के चेहरे पर साढ़े सात के स्थान से अगर हम बीच के स्तंभ के सामने देखें तो डेढ़ बजे के हिसाब पर कहीं बायीं-दाहिनी ओर अभिजित का अुदय हम देखेंगे। के बजे अुदय होगा वह तो स्वतंत्रतया कहना होगा और अुसमें भी जिस तारीख के लिअे लिखा हो अुसमें हर रोज करीब करीब चार मिनिट का फर्क पडता ही जायगा। सब नक्षत्रों की यह आदत है कि वे आज की अपेक्षा कल करीब चार मिनिट पेश्तर अुगते हैं और अुनका अस्त भी अुसी हिसाब से चार मिनिट जल्दी हो जाता है।

जो नक्षत्र अुत्तर ध्रुव के बिलकुल नजदीक होते हैं वे तो तीनसौ साठ दिन क्षितिज के अूपर ही रहते हैं। अुनके लिअे अुदयास्त है ही नहीं।

प्रश्नोत्तरी

कॉलेज के अेक छात्र अभी से विवाह की समस्या से चंचल हो अुठे हैं और पूछते हैं:—

प्रश्न:—हमारे कॉलेज के विद्यार्थियों में अेक अैसी भावना दृढ हो रही है कि पुरुषों को शिक्षित याने पढीलिखी स्त्री ही चाहिअे। यह भावना कहां तक योग्य है?

अुत्तर:—विद्यार्थी के अिसी तरह के प्रश्न तो बहुतसे हैं किन्तु जबाब से अुनका खयाल आ जायगा।

यह स्वाभाविक है कि शिक्षित पति चाहेगा कि अुसकी पत्नी भी शिक्षित हो। अगर बालविवाह की प्रथा हमारे यहां अब भी चलती तो हम हर अेक पति से कहते कि तैयार माल खरीदने की अपेक्षा अच्छा लेकिन कच्चा माल लेकर जैसा दिल चाहे अुसपर संस्कार करो। बाजारू शर्ट खरीदने की अपेक्षा दर्जी को घर पर बुला कर ही अपने नाप का शर्ट बनवाना अच्छा। आज, जब कि प्रौढ विवाह

की प्रथा और स्वयंवर की प्रथा बढ़ रही है, शादी करने के बाद स्त्री को पढाने के लिअे समय बहुत कम रहता है। पढीलिखी स्त्री पाने के बाद भी दोनों को परस्परानुरूप बनने के लिअे काफी कोशिश करनी पडती है और नये नये संस्कार भी ग्रहण करने पडते हैं।

अगर कॉलेज के लडके यह मानते हों कि अंग्रेजी के ज्ञान से ही शिक्षा और संस्कार आ जाते हैं तो अुनका वह ख़याल गलत है। हिन्दुस्तान के करोडों लोगों के लिअे स्वभाषा और राष्ट्रभाषा का ज्ञान ही पर्याप्त है और अिनके साहित्य से काफी शिक्षा-संस्कार मिल सकते हैं। लोकव्यवहार का ज्ञान, आदर्शनिष्ठा की दृढता, अुद्यमशीलता, मितव्यय, रसिकता और पति-पत्नी के संबंध में संयमपूर्ण धीरज चाहिअे—अितनी बातों से पति और पत्नी दोनों सुशिक्षित हो जाते हैं। निबंध-लेखन की अपेक्षा जमाखर्च लिखने की योग्यता, वाक्पाटव की अपेक्षा हस्तकौशल्य और व्यवहार-दक्षता अधिक महत्त्व की है।

पति-पत्नी दोनों मिल कर आदर्श गृहजीवन और सामाजिक जीवन के लिअे हमेशा प्रयत्नशील रहें। जो समाजमान्य हो अैसे खानपान और वेशभूषा में भी बहुतकुछ सुधार की गुंजाअिश है।

का० का०

संघ-वृत्त

अन्दर की सड़न

कॉंग्रेस-संस्था में जो भीतरी सड़न लग रही है उसके बारे में 'हरिजन' में आनेवाले पू० बापूजी के लेख सब सदस्य पढ़ते ही होंगे। मुझे डर है कि अपने पक्ष के मतों की तादाद बढ़ाने के लिअे जिन ग़लत और नाजायज़ तरीकों से काम लिया जाता है उनसे हमारे संघ के कुछ सदस्य भी अेक हद तक बचे हुअे नहीं हैं। इस गुनाह में मैं उस कसूर को भी शुमार करता हूं जो अपने मददगारों के अैसे गुनाहों को जानबूझ कर दरगुज़र करने में, या उन्हें मूकसम्मति देने में, होता है। जो सदस्य यह मानता है कि जिन व्यक्तियों या दल में उसका विश्वास हो उसके जीत जाने भरसे ही कॉंग्रेस के वर्तमान बहुमत-वाले पक्ष का, अथवा संघ के सिद्धान्त या कार्यक्रम का, सफलता से प्रचार किया जा सकता है, वह मेरी राय में बहुत बडी भूल करता है और आत्मविश्वास खो बैठा है। अगर सिर्फ बार बार थर्मामीटर लगाने ही से किसी मरीज का बुखार उतर जाना मुमकिन हो तो केवल बहुमत होने से कार्यों की सिद्धि भी हो सकती है। मतलब यह कि हम कहां पर हैं इतना जानने के लिअे मतगणना अेक थर्मामीटर है। बहुमत स्वयं कोई शक्ति नहीं है। वह शक्ति का सिर्फ अेक नाप है। अगर वह नाप गलत हो तो बिगडे हुअे थर्मामीटर की तरह वह हमींको धोखे में डालता रहेगा।

इसी तरह जो यह मानता है कि अधिकार-पद की प्राप्ति अेक अैसी चीज़ है कि जो निर्बल को भी बल दे सकती है, और उसकी

अप्राप्ति से बलवान भी निर्बल बनाया जा सकता है, वह भी सत्य और अहिंसा के प्रदेश में रहते हुअे भी आत्मविश्वास खो बैठा है। 'समरथ को नहीं दोष गुंसाई' इस वचन का मैं अेक दूसरा ही अर्थ करता हूं। जो समर्थ है, जो सच्चा बलवान और प्रभावयुक्त है उसका अधिकारी होना-नहोना या बहुमत में होना-नहोना बहुत महत्त्व की बात नहीं है। घने अँधेरे में भी जैसे बिजली चमकती है, उसी तरह उसकी प्रभा चमक कर ही रहेगी। कृष्ण को कोई राज्याधिकार प्राप्त न थे और न कर्ण को कोई कुलप्रतिष्ठा। फिर भी क्या उनकी प्रभा कहीं छिपी-छिपाई रह सकती थी? अगर हमारी सेवा और चरित्र में कुछ तेज और पुरुषार्थ होगा तो वह हमारे झाड़ूलगानेवाले की हैसियत में रहते हुअे भी बिना प्रकाशित हुअे न रहेगा।

लेकिन, इस सड़न के विषय में मैं संघवृत्त में लिखना नहीं चाहता था। मुझे तो अेक दूसरी सडांद की बू आ रही है। वह है संघ के सदस्यों में परस्पर वैमनस्य को। संघ के सदस्यों के लिअे कॉंग्रेस के राजकीय कार्यक्रम स्वयं ध्येयरूप नहीं हैं। वे तो हमारे रचनात्मक कार्यक्रम, राष्ट्रनिर्माण तथा लोकसंगठन के साधन मात्र हैं।

फिरभी, संघ अेक गैर-राजकीय संस्था नहीं है। इसलिअे उसके सदस्यों का राजनीतिक विषयों में अेकमुंह होना आवश्यक है। अैसा हो सकता है कि अेक सदस्य कॉंग्रेस के कामों में बिलकुल दिलचस्पी न ले और रचनात्मक कामों में ही दिनरात लगा रहे। लेकिन यह नहीं हो सकता कि जब कि संघ के दूसरे सदस्य राजनैतिक मामलों में अेक नीति पर चल रहे हों, तब वह उनके खिलाफ जाय, और दूसरी राजनीति पर चलने वा[ले] की सहायता करे।

लेकिन, अैसी बात को गलत समझकर [हम] दरगुजर कर सकते हैं। किंतु, अगर इस[से] होनेवाले मतभेद के कारण सदस्यों में परस्[पर] अनबन हो जाय, तब तो यही समझना चाहि[ए] कि सड़ाहट की पराकाष्ठा हो गई। इस स[ड़न] को अगर हम दूर न कर सके तो संघ [टूट] जायगा। उसको वही रोक सकेगा [जो] समर्थ होते हुअे भी अपने व्यक्तित्व औ[र] अभिलाषा को दाब सकेगा।

तांतीपरा सम्मेलन

फरवरी के पहले हफ्ते में बंगाल हो आया[।] डॉ. प्रफुल्लचंद्र घोष ने कॉंग्रेस के विधाय[क] कार्यक्रम में लगे हुअे कार्यकर्ताओं का अ[ेक] सम्मेलन किया था। अध्यक्ष बाबू राजे[न्द्र] प्रसाद मुकर्रर हुअे थे। स्थान वीरभूम जि[ले] में दुबराजपुर स्टेशन से कोई ८ मील दूर [पर] पर तांतीपरा नाम का देहात था। बंगा[ल] के करीब १४० कार्यकर्ता हाजिर थे। तांती[परा] श्री मिहिरलाल चट्टोपाध्याय नाम [के] अेक तरुण कार्यकर्ता का केंद्र है। गांव [के] नजदीक मोचियों का मुहल्ला है। उसी[के] बगल में सम्मेलन की झोंपड़ियां बनाई [गई] थीं। दो दिन की परिषद् थी, लेकिन मा[नो] गांधी सेवा संघ के सम्मेलन की अेक छोटी[सी] आवृत्ति थी। श्री मिहिर बाबू का आसपा[स] की जनता पर अच्छा असर मालूम हुआ[।] लोगों ने अपनी स्वयंस्फूर्ति से दुबराजपुर [से] तांतीपरा तक का रास्ता साफ कर रक्खा [था] और पानी भी छिड़काया था। अतिथि[यों] की भोजन वगैरा की व्यवस्था देहातियों द्वा[रा] ही हुई थी। इसमें तांतीपरा के मोचि[यों]

ने भी पूरा भाग लिया था। दोनों दिन शाम को करीब १५ हज़ार स्त्री-पुरुष श्रोताओं की सभा हुई।

सम्मेलन में विधायक कार्यकर्ताओं (बंगाल की परिभाषा में, 'गठन-मूलक कर्मियों') ने अपना अेक संघ बनाने का निश्चय किया। उसके नियम वगैरा बनाने के लिअे डॉ. प्रफुल्लचंद्र घोष आदि प्रमुख कार्यकर्ताओं की अेक समिति बनाई गई। हर अेक सभासद के लिअे सत्य और अहिंसा में तथा विधायक कार्यक्रम में विश्वास, और मासिक दो हजार गज सूत कातना लाजिमी माना गया है। विधायक कार्यक्रम के अनेक विषयों पर तात्त्विक और व्यावहारिक दृष्टि से चर्चायें हुईं। श्री राजेंद्र बाबू पहुंचते ही बीमार हो गये। इसलिअे उन्हें सम्मेलन में पूरे समय तक बैठना अशक्य हुआ। फिर भी, उनका शुरू का और आखिर का भाषण बहुत मननीय और प्रोत्साहक रहा, और उनके द्वारा उन्होंने कार्यकर्ताओं के अनेक प्रश्नों को साफ कर दिया।

शांतिनिकेतन

तांतीपरा से शांतिनिकेतन नजदीक ही है। ता. ७ को श्रीनिकेतन का वार्षिकोत्सव था। उसके सभापति भी श्री राजेंद्रबाबू ही थे। इसलिअे तांतीपरा से वहीं चले। श्रीनिकेतन उस संस्था का नाम है, जहां से शांतिनिकेतन द्वारा संथालों की सेवा की जाती है। विविध प्रकार के उद्योगों की सिखाई वहां होती है। वार्षिकोत्सव के निमित्त अेक प्रदर्शिनी भी थी। उसमें कलाप्रधान सूत और चमडे के काम के अच्छे नमूने थे। लेकिन, मिल के सूत और कत्ली चमडे का उपयोग होता है। हाथकते सन की कुछ चीजें अच्छी थीं। बंगाल में इसके लिअे अच्छी गुंजाइश है। लेकिन, मेरी नज़र सबसे अधिक चिपकी रसे हुअे मिटिया-काम (ग्लेज्ड पॉटरी वर्क) पर। अुसकी सब क्रियायें मैंने देखीं। यह काम अभी सरकारी महकमे द्वारा होता है। मेरी राय है कि यह देहाती उद्योग हो सकता है। अवश्य, इसके लिअे खास तालीम लेना जरूरी है। जिस अवस्था में मिटिया-काम (पॉटरी) आज हमारे देश में है, उसमें, घानीकाम, चमडाकाम आदि की तरह, संशोधन की बहुत जरूरत है। बर्तनों को रसाने (ग्लेजिंग) का तरीका देहातियों को सिखाना होगा। जहां तक मैं समझ सका हूं कुशल कुम्हार के लिअे वह सीख लेना मुश्किल नहीं है। अगर रसीमिट्टी के बर्तनों की अच्छी पैदावार हो सके, तो देश के लिअे वह अेक बडे फायदे की चीज़ होगी।

शांतिनिकेतन में कविवर श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर का अनपेक्षित दर्शन और श्रवण-लाभ हुआ। श्रीनिकेतन के उत्सव के वे ही ऋत्विज् (मंत्र बोलनेवाले) गुरु बने थे, और उन्होंने अेक प्रवचन भी दिया। वहां के और बडे बडे विद्वानों का भी परिचय करने का मौका मिला।

सौदपुर

पहली बार जब मैं बंगाल गया था, तब श्री सतीशचंद्र दासगुप्त का सौदपुर का खादी प्रतिष्ठान देख नहीं पाया था। वह त्रुटि इस वक्त पूरी कर ली। श्री सतीशबाबू ने दो नये उद्योगों का आरंभ किया है। अेक, देहाती पैमाने पर दियासलाई बनाने का और दूसरा, कागज़ बनाने का। दोनों में कच्चे माल के लिअे बांस का ही उपयोग किया जाता

है। दियासलाई के कारखाने में बांस का जो भाग बेकार जाता है, वह कागज के कारखाने में उपयोग में आ जाता है। श्री सतीशबाबू ने हाथ से चलनेवाले छोटे छोटे यंत्र निर्माण किये हैं। कागज बनाने के लिअे भांफ के दबाव में बाँस के टुकडे कास्टिक सोडे में उबालने की जरूरत होती है। इसलिअे, इसमें कुछ अधिक तालीम की जरूरत है। लेकिन, मेरी राय में कागज का धंधा सीखने के लिअे जिनकी आज योग्यता हम समझते हैं उनके लिअे इतनी तालीम पा लेना मुश्किल नहीं है। लेकिन, इस तरीके के व्यवहार में और दियासलाई के कारखाने में कुछ कानूनी बंधनों में आना पडता है। इस लिये, आज की अवस्था में पढे-लिखे लोगों द्वारा ही इन उद्योगों को चलाना शक्य होगा।

कि. घ. म.

अध्यक्ष, गांधी सेवा संघ

वाङ्मय परिचय

विषूचिका –(कॉलरा) मराठी– ले० वैद्य अच्युत वामन सहस्रबुद्धे, दर्यापुर (बरार), १९३८, पृ० ८८, मूल्य १ रु०—

विषूचिका (हैजा) भारतवर्ष में लाखों आदमियों का संहार करनेवाली बीमारी है। अिस छोटीसी पुस्तिका में हैजे की अुत्पत्ति, लक्षण, प्रतिबन्ध और अुपचार की मीमांसा आयुर्वेद की दृष्टिसे की गयी है। लेकिन फिर भी यह पुस्तक केवल दकियानूसी ख़याल के या पुराणवादी लोगों के लिअे ही नहीं है। जो विज्ञान पर ही भरोसा करनेवाले हैं अुन्हें भी वह विचार–प्रवर्तक प्रतीत होगी। जन्तु या कीटाणुओं का सिद्धान्त, प्रति–विष का टीका लगाना, आदि कअी अद्यतन वादों और अुपचारों की आलोचना वैज्ञानिक ढंग से और योग्यता से की गयी है। अिस दृष्टि से पुस्तक आयुर्वेद की ओर से दूसरी चिकित्सा-पद्धतियों को चुनौती देनेवाली है। विज्ञान का तो संसार ही अैसा है कि नित्य नये अविष्कार प्रचलित प्रतिष्ठित वादों को असिद्ध या संशयास्पद ठहरा देते हैं। जो विज्ञान की अपेक्षा सेवा के अधिक कायल हैं, अुन्हें तो रोग के सस्ते, सुलभ और कार्यक्षम अुपचार में अधिक दिलचस्पी होती है। अिस पुस्तक में भारत की विशिष्ट आबहवा और अृतुओं की दृष्टि से प्रतिबन्ध और अुपचार का जो विवरण है वह सेवकों के लिअे अुपयोगी है। अिस छोटीसी पुस्तक की नामवर वैद्यों ने भूरिभूरि प्रशंसा की है और अेक विद्वान् तथा अनुभवी डॉक्टर ने अुसका पुरस्कार किया है। लेखक महाशय आयुर्वेद का वैज्ञानिक और गवेषणापूर्ण अध्ययन कर अुसकी प्रतिष्ठा बढ़ाना अपने जीवन का प्रधान कार्य मानते हैं पुस्तक का अंतरंग तो विचार–प्रवर्तक है लेकिन बाह्यांग अच्छा नहीं है। छापे की भूलें तो हैं ही। मूल्य भी कुछ अधिक प्रतीत होता है।

'निरतिवाद' (प्रणेता–दरबारीलाल सत्यभक्त, सत्याश्रम, वर्धा. मूल्य ६ आना)

'निरतिवाद' के नये नाम से पंडित दरबारीलालजी ने अेक अति पुरानी चीज पुनःप्रणीत की है। दर असल तो बुद्ध ने जिस को 'मध्यम-मार्ग' कहा, या अंग्रेजी मुहावरे में जिसे सुवर्णमध्य या 'गोल्डन मीन' कहते हैं, अुसी चीज को पंडितजी ने 'निरति' कहा है, क्योंकि आपका कहना है कि अर्वाचीन जगत में दो अतिवाद मौजूद हैं:—

(१) पूंजीवाद, जो पाप है, और (२) साम्यवाद, जो आसमानी चीज है। हमारा रास्ता पाताल के पूंजीवाद और आसमान के साम्यवाद के बीच का, अिस जमीन का, है। अैसे अतिवादों को छोड़नेवाला यह वाद है। 'निः+अति+वाद'=निरतिवाद।

अुसकी व्याख्या परसे देखें तो सचमुच वह है विवेकवाद या समाजधर्म का वह स्वरूप जो श्री दरबारीलालजी के विचार में अुपयुक्त है। संसार के सामने आज जो मुख्य प्रश्न है वह यह है:—

'समाजकारण में हम किस शक्ति से काम लेना चाहते हैं?' साम्यवाद और पूंजीवाद दोनों ने हिंसा, पशुबल, हैवानियत को अपनी शक्ति का अधिष्ठान माना है, और दूसरों से मनवाया है। निरतिवाद किस शक्ति को मानेगा? अिस प्रश्न पर यह पुस्तिका विशेष प्रकाश नहीं डालती। अनुमान होता है कि निरतिवाद पार्लियामेन्टरी सोशियालिज़्म (दरबारी समाजवाद) का ही अेक नया संस्करण है। याने, प्रजा की 'वोट' पर ही अुसकी शक्ति निर्भर रहेगी। पूंजीवाद भी अेक तरह से 'वोट' से काम चलाता हुआ हम देखते हैं। निरतिवाद अपनी नयी सृष्टि किस तरह करेगा यह प्रश्न जरूर उठता है। जो लोग नयी सामाजिक सृष्टि का दर्शन और सृजन करना चाहते हैं अुन्हें दरबारीलालजी की अिस नयी सृष्टि के दर्शन शब्दरूप में करने से भी मनोरंजन और विचार के लिअे काफी मसाला मिलेगा।

मगनभाअी देसाअी

रूरल अिण्डिया:— (देहात की भलाअी सम्बन्धी बातों की चर्चा करनेवाली, आदर्श सेवा संघ की अंगरेजी मासिक पत्रिका। सम्पादक–श्री हरिशंकरजी द्विवेदी; वार्षिक मूल्य रुपया पांच; मिलने का पता–सर्व्हंण्ट्स ऑव्ह अिण्डिया सोसायटीज् होम, सेण्ढरर्स्ट रोड, बम्बअी ४)

अिसमें हिन्दुस्तान के देहात-सम्बन्धी अनेक तात्त्विक और व्यवहारिक समस्याओं की चर्चा रहती है। लेख अपने अपने विषयों पर अधिकार रखनेवाले विशेषज्ञों द्वारा मौलिक और विचार-प्रवर्तक लिखे गये हैं। सामाजिक, आर्थिक अेवं शिक्षा-सम्बन्धी विविध विषयों का देहात की दृष्टि से विचार किया गया है। कुछ ग्रामसुधार के प्रत्यक्ष चलनेवाले कामों का कार्यविवरण भी दिया गया है। देहाती कार्यकर्ताओं के काम की चीज है। पर खेद है कि अुसका अुपयोग तो अंग्रेजी पढ़ेलिखे ही कर सकेंगे। यह निश्चित समझना चाहिअे कि दिनों दिन अैसे कार्यकर्ताओं की संख्या बढ़नेवाली है कि जो अंग्रेजी जाननेवाले न होंगे। अिसलिअे अिस पत्रिका के संचालकों को चाहिअे कि वे अिसे प्रत्यक्ष ग्रामसेवा के कामों में लगे हुओं के अुपयोग की चीज़ बनाने के लिअे अिसका हिन्दी संस्करण निकालने की कोशिश करें।

२०:२:३९ श्रीकृष्णदास जाजू

स्वराज्य प्रश्नोत्तरी–(ले० रामदयाल तिवारी, रायपुर, मूल्य ४ आना)

आजकल हमारी पाठशालाओं में बच्चों को इस तरह की कोई शिक्षा या व्यवस्थित जानकारी नहीं दी जाती कि हमारा भावी स्वराज्य किस तरह का होगा और उसके लिअे हम जिन अहिंसक उपायों का अवलम्बन कर रहे हैं उनकी क्या विशेषता और अपूर्वता है तथा वे किस प्रकार श्रेष्ठ कोटि के हैं। जबतक कि इस दिशा में कोई विशेष मनोयोग के साथ प्रयत्न नहीं किया जाता प्राथमिक शालाओं में पढनेवाले बच्चों के लिअे यह 'स्वराज्य' प्रश्नोत्तरी थोडे में उन सारे प्रश्नों की आवश्यक जानकारी दे देती है जो इन दर्जों में पढ़नेवाले बच्चों को आजकल जानना चाहिअे। लेखक ने इस छोटीसी पुस्तिका में राष्ट्रधर्म, राष्ट्रीय आन्दोलन और राष्ट्र के प्रतीक-स्वरूप काँग्रेस, सार्वजातीय तथा धार्मिक अेकता अेवं खादी आदि ग्रामोद्योगों के विषय में भी बहुत उपयोगी जानकारी प्रश्नोत्तरों के रूप में बालसुबोध भाषा में दे दी है। अतः हम इस छोटीसी किन्तु उपादेय पुस्तक का स्वागत करते हैं।

कि० घ० म०

दा० ध०

जेकिल अने हाअीड (आर्. अेल्. स्टीवन्सन कृत) गुजराती–अनुवादकः मगनभाअी प्रभुदास देसाअी (नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अमदाबाद)

गुजराती में छायानुवाद करने में श्री मगनभाअी बहुत सफल हुअे हैं। भाषा सरल होते हुअे भी अर्थघन है, शब्दयोजना अुपयुक्त है और अनुवाद प्रामाणिक है। श्री महादेवभाअी की प्रस्तावना और अनुवादक के अुपोद्घात के बाद पुस्तक की और किसी प्रकार की आलोचना अनावश्यक है।

समालोचना के लिअे प्राप्त

आधुनिक भारत– (मराठी) ले.-आचार्य श्री. शं. द. जावडेकर, प्रकाशक-सुलभ ग्रंथ माला ३७३, शनिवार पूना २, मूल्य– रु. ४

आमचे नोकर- (मराठी) सम्पादिका श्री. प्रमिला ओक, संचालक, स्वराज्य माला, अकोला

सेन्ट पर सेन्ट स्वदेशी– (अंग्रेजी) स्वदेशी के विषय में गांधीजी तथा अन्य लेखकों के हरिजन में प्रकाशित हुअे लेखों का संग्रह प्रकाशक:-नवजीवन कार्यालय, अहमदाबाद

व्हॉट अिज राँग विथ अिण्डियन अेकॉनॉमिक लाईफ (अंग्रेजी) ले. डॉ. व्ही. के. आर. व्ही. राव, पी. एच्. डी. (ऑक्सफर्ड) प्रकाशक- मेसर्स वोरा एन्ड कं.८, राऊन्ड बिल्डिंग, प्रिन्सेसस्ट्रीट, बम्बई २ मूल्य रु. १

अभिनव संगीतांजली– (नोटेशन) सर्जक-प्रकाशक, श्री पंडित ओंकारनाथ गौरीशंकर ठाकुर प्राप्तिस्थान-मेसर्स वोरा एन्ड कं. ८, राऊन्ड बिल्डिंग, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बई २, मूल्य रु. १-४-०

जवाहरलाल नेहरू– (मराठी) ले० पां. श्री. आपटे, प्र. श्री रामभाऊ भोगे, आनन्दी बाजार, अहमदनगर, मूल्य बारह आना

संगीतनी प्राथमिक माहिती (गुजराती) ले० स्व० पं० नारायण मोरेश्वर खरे, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, मूल्य दो आना

विराजबहू (शरद्बाबू प्रणीत) (गुजराती) तीसरा संस्करण, अनु० श्री महादेव देसाअी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद मूल्य दस आना

विश्वशान्ति (गुजराती) तीसरा संस्करण ले० उमाशंकर जोशी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर अहमदाबाद, मूल्य दो आना

सर्वोदय मिलने की व्यवस्था निम्न लिखित स्थानों में की गयी है :

(१) शिष्ट साहित्य भण्डार,आनंद भुवन, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बअी २
(२) वोरा अेण्ड कंपनी, ८, राउण्ड बिल्डिंग, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बंम्बअी २
(३) नवजीवन कार्यालय, १३०, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बअी, २
(४) नवजीवन कार्यालय, अहमदाबाद।
(५) खादी भण्डार, हैरिसन रोड, कलकत्ता।
(६) सस्ता साहित्य मण्डल, नया बाजार, देहली।
(७) सस्ता साहित्य मण्डल, लखनऊ।
(८) गांधी आश्रम, गोरखपुर।

सूचना—

'सर्वोदय' में आम तौर पर अिश्तिहार नहीं लिये जायेंगे। अपवाद केवल वाचनीय ग्रन्थ और देशसेवा करनेवाली संस्थाओं के लिये रहेगा। अिनके अिश्तहारों के दाम नहीं लिये जायेंगे। केवल कागज़, छपाई और डाकखर्च लेकर अिश्तिहार छापे जायेंगे। जो साहित्य या संस्था निर्विवादरूप से लोकोपयोगी है, अुसीको स्थान दिया जायगा। यह व्यवस्था केवल समाज-सेवा और ग्राहकों के हित की दृष्टि से चलायी जायगी।

व्यवस्थापक, 'सर्वोदय', वर्धा।

राष्ट्रीय अेकता

अहिंसा की दृष्टि से चाहे स्वराज्य हो या न हो, हिन्दू–मुसलिम अेकता तो होनी ही है। हिन्दू–मुसलिम अेकता हमारे लिअे स्वराज्य का साधन नहीं है। अिसके लिअे मैं आबोहवा भी नहीं पैदा कर सकता हूं। मैं जिस तरह अिस चीज़ को मानता हूं अुस तरह हजार आदमी भी आज नहीं मानते। जैसे मैं यह कहता हूं कि असत्य या हिंसा से स्वराज मिले तो मुझे नहीं चाहिअे अुसी तरह मैं आज यह भी कहना चाहता हूं कि अगर हिन्दू–मुसलिम अेकता के बिना स्वराज मिले तो मुझे अैसा स्वराज भी नहीं चाहिअे। क्यों कि मैं तो यह चाहता हूं कि आजाद भारत में न हिन्दू मुसलमानों के मातहत हों, न मुसलमान हिन्दुओं के। मैं तो सबको समानरूप से देखना चाहता हूं। शायद आपको अिस सवाल का यह पहलू कुछ नया सा मालूम पडे। अगर आपके लिअे यह चीज नयी है तो मेरे लिअे भी बिलकुल नयी है। कोअी सीधा रास्ता नज़र नहीं आता। सामने तमाम अन्धेरा है। लेकिन अितना विश्वास जरूर है कि श्रद्धा से कदम बढाअूं तो मुकाम पर पहुंच ही जाअूंगा।

२७ : ३ : ३८ —गांधीजी

(गांधी सेवा संघ के डेलांग अधिवेशन में दिये हुअे भाषण में से)

प्रकाशकः—दादा धर्माधिकारी, बजाजवाडी, वर्धा (मध्यप्रांत)।
मुद्रकः—वल्लभदास जाजू, श्रीकृष्ण छापखाना लिमिटेड, बच्छराज रोड, वर्धा।

सर्वोदय

अेष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके

सम्पादक—काका कालेलकर, दादा धर्माधिकारी

वर्धा, अप्रैल १९३९ अंक ९

काँग्रेस और संघ

सुबह जब में आया तो किसीने कहा 'फैजपुर की काँग्रेस जवाहरलालजी की थी, तो अब हुदली की काँग्रेस गान्धी की होगी'। मैं जानता हूं कि वह विनोद था। पर मुझे दुःख हुआ कि विनोद में भी अैसी बात क्यों कही जाय ? मुझमें और जवाहरलाल में, या यों कहिये कि काँग्रेस और गान्धी सेवा संघ के बीच स्पर्धा की कल्पना विनोद में भी करना गुनाह है। गान्धी सेवा संघ काँग्रेस का विरोधी नहीं है। वह तो अुसकी सेवा के लिअे है। संघ काँग्रेस का विरोधी कैसे हो सकता है, जब कि वह पैदा ही अिसलिअे हुआ है कि काँग्रेस के रचनात्मक काम को बढावे ? हम भी तो करोडों के प्रतिनिधि बनाना चाहते हैं ? और करोडों के दर्द की आवाज़ निकालने की प्रतिज्ञा तो काँग्रेस ने की है। तब हममें और काँग्रेस में कोअी विरोध कैसे हो सकता है ? मैं तो यहां तक कहूंगा कि संघ की किसी से भी स्पर्धा नहीं हो सकती। किसी की जबान से यह विनोद में भी न निकले कि काँग्रेस और संघ के बीच में स्पर्धा हो सकती है। क्यों कि यह असत्य है। और विनोद में भी असत्य कहना मना है। हम किसीके साथ युद्ध तो करना नहीं चाहते हैं, हम तो अिस किस्म की बात भी नहीं कर सकते।

१६:४:३७ —गांधीजी

(हुदली सम्मेलन में दिये हुअे अेक भाषण में से)

अेक अंक...	...	रु० ०—६—०
वार्षिक ...	...	रु० ३—०—०
बर्मा में ...	...	रु० ३—८—०
विदेश में...	...	६ शिलिंग
		१.५० डॉलर.

(सब डाक सहित)

अनुक्रमणिका

(१) सम्मेलन और यात्राओं का प्रयोजन (विनोबा का अेक प्रवचन) १
(२) कौअे की नजर से ("आश्रमवासी अुल्लू") ... १०
(३) ग्राम-सेवक के अनुभव (श्री प्रभुदास गांधी) ... १३
(४) देहातियों के लिअे पेटभर मजदूरी (श्री कि. घ. मशरूवाला) १७
(५) हमारा फर्ज (श्री प्रेमा कण्टक) २१
(६) सत्याग्रही भारत की स्वराज्ययात्रा (डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या) २५
(७) संगठन–विवेक (श्री काका कालेलकर) २९
(८) संघ-वृत्त ३४
(९) सर्वोदय की दृष्टि ३८

त्रिपुरी पर अेक नजर; वाममार्ग; त्रिपुरी की फलश्रुति; अहिंसा और साम्यवाद; बम्बई की मजदूर हडताल; गुण्डाबाजी; कॉंग्रेसी झगडे; स्वार्थ-भेद; स्वार्थ-प्रातिनिधिक राज; संस्थाओं का प्रतिनिधित्व.

(१०) दो आखें (श्री काका कालेलकर) ४७

ग्राहकों से—

जिन ग्राहकों का चन्दा अिस महीने से पूरा होता है अुनसे प्रार्थना है कि वे अपना चन्दा भिजवाने का प्रवन्ध करें। अिस महीने के आखिर तक चन्दा न आने पर मअी का अंक व्ही. पी. से भेजा जायगा। आशा है व्ही. पी. का अवश्य स्वीकार किया जायगा।

सर्वोदय

अेष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके

संपादक:—काका कालेलकर
दादा धर्माधिकारी

अप्रैल १९३९
वर्धा

सम्मेलन और यात्राओं का प्रयोजन

[विनोबा का अेक प्रवचन]

आज तुम्हें देखकर मेरे हृदय में स्फूर्ति का समुद्र अुमड रहा है। कल शाम को लोग भोजन कर रहे थे। यों अैसी पंगतों में जाने की मेरी आदत नहीं है। लेकिन कल मुझसे रहा न गया। वहां मैं कोअी काम तो नहीं करता था, लेकिन घूम रहा था। तब बाबासाहब ने मुझसे पूछा कि क्या तुम यहां सब का अिन्तजाम देख रहे हो? मैंने कहा अिन्तजाम नहीं, सूरतें देख रहा हूं। अुन सूरतों को देखकर मुझे आनन्द हो रहा था। गांववालों को देख कर मुझे विशेष आनन्द होता है। अुनकी सूरत में अैसी क्या चीज है? अुनके चेहरों की और दूसरों के चेहरों की बनावट में कोअी फर्क नहीं है। दूसरे लोगों के दो आंखों के बीच नाक होती है, और अुनके दो नाकों के बीच अेक आंख, अैसा कोअी निरालापन नहीं है। फिर मुझे खुशी क्यों होती है? कल काकासाहब ने अपने व्याख्यान में कहा कि दूसरी जगह के लोगों से यहां के लोग अधिक जड़ हैं। विचार कम करते हैं। यह अुनका अवलोकन सही हो सकता है। लेकिन तिसपर भी गांववालों के चेहरों में हिन्दुस्तान की पुरानी परम्परा का जो अितिहास हम देख सकते हैं वह शहर के बुद्धिमान लोगों के चेहरों में नहीं पाया जाता। वह अितिहास अुनके चेहरों पर से पुछ गया है। शहर में नयी नयी छापवाली और नये नये आकार की शकलों के नमूने देखने को मिलते हैं। लेकिन देहात में—फिर चाहे वह देहात पंजाब का हो या बरार का—सब लोगों की सूरत पर प्राचीन अितिहास की छाप लगी हुअी दिखाअी देती है। बिलकुल प्रतिबिम्ब ही लिखा हुआ दिखाअी देता है। अिस प्रतिबिम्ब को देखकर पुरानी परम्परा से पहचान हो जाती है। अिसलिअे खुशी होती है। दस या बारह हजार साल पहले जो अृषि मन्त्र बोल गया अुसके चेहरे से अिनके चेहरे की समानता है, यह स्पष्ट देख पडता है।

अिस समानता का कारण हिन्दुस्तान की जनता की नस नस में पैठी हुअी गरीबी है। लेकिन अिस गरीबी के दो रूप हैं।

अेक महान शक्तिशालित्व और दूसरा वह बावलापन जिसे यहां हम आज देख रहे हैं। अैसा माना जाता है कि परमात्मा के दो रूप हैं। अेक शिवरूप और दूसरा घोररूप। सूर्य के भी प्रकाश और अन्धेरा ये दो रूप हैं। अुसी प्रकार अिस गरीबी के भी दो रूप हैं। अुनमें से अेक है आज दिखायी देनेवाला अनाडीपन और दूसरा रूप है अहिंसा। हमें यह जान लेना चाहिअे कि अिस गरीबी में ही शक्ति समायी हुअी है। जिन लोगों ने यह मान लिया कि "हिन्दुस्तान के सारे दोष सात्विकता के अुत्कर्ष से अुत्पन्न हुअे और अुन्हें दूर करने के लिअे प्राचीन काल में जिस तरह के यज्ञ होते थे, जिन में बकरों की बलि चढायी जाती थी, अुसी तरह के यज्ञ फिर शुरू करने चाहिअे और दूसरे भी नाना प्रकार के हिंसा के प्रयोग जारी करने चाहिअे और अैसा होगा तभी हिन्दुस्तान संसार में अूंचा स्थान प्राप्त करेगा"--अुन लोगों ने हिन्दुस्तान में निराशावाद फैलाया यह निश्चितरूप से मान लेना चाहिअे। क्यों कि हिन्दुस्तान की रग रग में जो गुण भरा हुआ है अुसीका आधार अुन्होंने तोड डाला। अिस-लिअे अब अुन्हें नयी जनता गढ़नी चाहिअे। अगर कोअी गाय जैसे गरीब जानवर का शेर बनाना चाहे तो जिस तरह वह असम्भव होगा अुसी तरह यहां की जनता में हिंसावाद का जड पकडना असम्भव है। कहा जाता है कि हिन्दुस्तान ने हथियार छोड दिये। हथियार अगर हिन्दुस्तान के खून में होते तो वे छिन नहीं सकते थे। लेकिन वे अूपरी चीजें थीं जैसे कि अंगुली के छोर पर नाखून होते हैं। नाअी के काटते ही वे अपने आप गिर जाते हैं। अुसी तरह हिन्दुस्तान के खून में जो शस्त्र थे ही नहीं वे अपने आप गिर गये। मैं कहना यह चाहता था कि गरीब जनता की सूरत पर अिस प्रकार प्राचीन परम्परा की छाप लगी हुअी देख पडती है। अिसीलिए अुन्हें देखकर मुझे आनन्द होता है।

अब यह जो यात्रा यहां लगी है अुसका अुपयोग जनता किस तरह करे अिसके विषय में अपनी दृष्टि बताता हूं। कल किशोरलाल भाअी ने हमें अेक सावधानी की सूचना दी है। अुसके लिअे हमें अुनका निहोरा मानना चाहिअे। अुनका अभिप्राय यह था कि "यात्रा कहते ही जिस प्रकार हमारे दिल में कुछ धार्मिक भाव जाग्रत होते हैं अुसी प्रकार दूसरे कुछ अैसे भाव भी पैदा होते हैं कि जिनकी बदौलत साम्प्रदायिक वृत्ति या संकुचितता अुत्पन्न होती है। योंही तो हमारे देश में पन्थों की भरमार है। अुनमें यह अेक नया पन्थ और मिल जायगा। नाना प्रकार के भेदभाव कायम हो जायेंगे। अेक ही सभामण्डप में खादीवाले अेक तरफ बैठेंगे और बिना-खादीवाले दूसरी तरफ बैठेंगे। याने नाहक अेक और भेद खडा हो जायगा, और खादीवालों का अेक अलग फिरका बन जायगा।" अुनकी यह सावधानी की सूचना ठीक है। परन्तु मैं समझता हूं कि खादीधारियों का अैसा सम्मेलन कराने की कल्पना योग्य है। अिसमें अेक दृष्टि है। हिन्दुस्तान की जनता मानों दूध का समुद्र है। लेकिन अुस दूध से हमें यथेष्ट पोषणद्रव्य नहीं मिलते। अिसलिअे अुस समुद्र का हम दही बनाना चाहते हैं। दूध का दही बनाने के लिअे हम जामुन का दही अेक अलग बर्तन

में रख देते हैं। लेकिन हमारा हेतु तो यही होता है कि यह दही दूध के बडे बर्तन में मिलाकर अुसका भी दही बनाया जावे। छुटपन में हम विद्यार्थियों को समाज से अलग रखते हैं। लेकिन जन्मभर अुन्हें थोडे ही अलग रखना होता है। अुन्हें अलग रख कर हम अुनमें भावना भरते हैं, अुनपर संस्कार करते हैं। और जब वे अिस तरह तय्यार हो जायें तो अुन्हें समाज में विचरने देते हैं। अिस सिलसिले में मुझे रामदास के वचन हमेशा याद आते हैं। "महन्तों को महन्त बनाने चाहिअे। अुन्हें युक्ति और बुद्धि से भर देना चाहिअे और अिस तरह जानकारों को नाना देशों में बिखेर देना चाहिअे।" वही अुद्योग हमने शुरू किया है। हम अेक ही भावनावाले लोग अेकत्र आते हैं। अिसका अुद्देश यह है कि हम आत्मपरीक्षण कर सकें। आत्मपरीक्षण के लिअे अेकान्त में जाना होता है। कुछ अलग जाना पडता है। और आत्मपरीक्षण से हम जो प्राप्त करते हैं अुसे जनता को देने के लिअे जनता में फिर मिल जाना होता है। सूर्यनारायण संसार की लगातर सेवा करता है। हम सोते हैं लेकिन वह कभी नहीं सोता। अितनी अुसकी सेवा अखण्ड चल रही है। लेकिन वह भी आत्मचिन्तन के लिअे अलग जाता है। अुसीको हम रात कहते हैं।

मतलब यह है कि हमारा यह अलग होना जनता की सेवा के लिअे आवश्यक स्फूर्ति-संचय के हेतु है। वह स्फूर्ति पा कर हम ताजे दम से सेवा कर सकेंगे। हमें संघ बना कर जनता को लूटने नहीं जाना है। किसी देहात में जा कर अगर आपलोग कहने लगें कि अब हम सब सदा के लिअे अिसी देहात में रहने आये हैं तो बेचारी जनता के नाक में दम हो जायगा। संघ बनाने का अुद्देश यह है कि हम जनता की अुत्तम सेवा कर सकें। अैसी यात्रा के मौके पर हम पिछले साल के और अिस साल के काम का हिसाब देखेंगे। अगर हिसाब न ले सकें तो कम से कम अेक दूसरे से विचार विनिमय करेंगे। नयी नयी बातें मालूम कर लेंगे।

बाअिबिल की अेक कहानी मुझे याद आती है। जब अीसा का अन्तकाल नजदीक आया तो अुसने अपने सब शिष्यों को अेकत्र बुलाया। अुसका सब से प्यारा शिष्य बिलकुल अुससे सट कर बैठा था। अीसा अपने शिष्यों को निरन्तर यह अुपदेश देता था कि तुम दुनिया से प्रेम करो। और दुनिया से प्रेम करो अिसीके मानी हैं कि अपने शत्रु से भी प्रेम करो। लेकिन अुस दिन अुसने यह अेक आखरी और खास नसीहत अपने चेलों को दी कि तुम अेकदूसरे से प्रेम करो। विष्णुभक्तों के परस्परप्रेम का स्वरूप कुछ और ही होता है। सजातियों के दर्शन का आनन्द विशेष हुआ करता है। लेकिन परस्पर-प्रेम का मतलब डच, फरासीसी, अंग्रेज आदि जातियों जैसे गुट बनाना और अुन गुटों के दायरे में ही अेकदूसरे से प्रेम करना तथा बाकी की दुनिया को लूटना नहीं है। वह तो संगठन का दुरुपयोग है। हमें सेवा करना है। अुस सेवा की सिद्धि के लिअे संघ बना कर शक्ति निर्माण करनी है। भगवद्गीता सर्वत्र अनासक्ति का अुपदेश देती है। अनासक्ति का ही प्रतिपादन करती है। लेकिन अेक जगह कहती है "मय्यासक्त मनाः पार्थ", 'मुझमें आसक्त हो'। मतलब, गीता को भी आसक्ति

रखने के लिअे अेक जगह मिल ही गयी। अुसी तरह हमने यह जगह खोज ली है। यहां हम विचार करें और अुन विचारों को मजबूत बना कर संघशः सेवा करें। हम सालभर काम करके अेक बार अेकत्र होकर स्फूर्ति-संचय कर रहे हैं।

अगर हम मणिदीप के समान होते तो कोअी सवाल ही नहीं था। जहां रहते वहां निरन्तर प्रकाश ही देते रहते। चिराग के सामने अन्धेरा ठहर ही नहीं सकता। अेकाध दीपक से जाकर आप कहिये, "अे दीपक, फलानी जगह लाखों वर्षों का जाने कितने मन अन्धेरे का ढेर है।" तो वह कहेगा कि "अगर अितना अन्धेरा आपके पास है तो अुसका थोडासा नमूना मुझे बताअिये।" फिर लेकर जाअिये अेक पुटरिया भर अन्धेरा अुसके पास। अुसे अन्धेरा आप कैसे दिखायेंगे? चिराग के सामने अन्धेरा अपना मुंह काला नहीं, अुजला कर लेता है। अगर हम भी अैसे स्फूर्ति के स्वयंभू दीपक होते तब तो हिन्दुस्तान में जगह जगह अलग अलग काम करनेवालों को अेकत्र होने की कोअी जरूरत न होती। जब तक सूर्यनारायण संसार के सामने सेवा करने के लिअे खडा है तब तक चिराग और तारे बिलकुल चुपचाप बैठे रहते हैं। लेकिन जब वह चिन्तन के लिअे चला जाता है तो दीपक और तारे बिना बुलाये स्वयंस्फूर्ति से प्रकट हो कर सेवा के लिअे तत्पर रहते हैं। बडे प्रकाश के जाते ही तारे चमकने लगते हैं। अुसी तरह राष्ट्र में जब कोअी बडा आन्दोलन चल रहा हो तो हमें अपनी अपनी जगह पर चुपकेसे काम करते रहना चाहिअे। लेकिन अुसके खतम होते ही तारों के समान चमक कर प्रकट होना चाहिअे।

कल धर्माधिकारी ने हंसी में कहा कि "स्वराज्य के लिअे मुझे जो जो करना पडेगा वह सब करने के लिअे मैं तय्यार हूंगा। अगर चटनी-तरकारी से स्वराज्य मिले तो मैं अुन्हें बनाना भी सिखूंगा।" परन्तु बहुत छोटी छोटी चीजों का भी जीवन में बहुत बडा अुपयोग होता है। जीवन को बनाने के लिअे अुनकी जरूरत होती है। जीवन अेक घडी के समान है। घडी में जो छोटे से छोटा पुर्जा हो अुसके लिअे भी आप यह नहीं कह सकते कि यह तो तुच्छ है, क्षुल्लक है। दूसरे सारे कलपुर्जे अपना काम भले ही ठीक ठीक कर रहे हों लेकिन अुस अेक पुर्जे के बन्द होते ही घडी का चलना बन्द हो जायगा। यही हाल जीवन का है। जीवन की कौनसी बाबत गौण और कौनसी मुख्य है यह ठहराना मुश्किल है। तिपाअी के तीन पायों में से कौनसा अधिक महत्त्व रखता है यह कहना मुष्किल है। तीनों में से अेक पाया गिर जाय तो भी तिपाअी खडी नहीं रह सकती। अिसी तरह समाज की अुन्नति के जो अनेक अंग है वे अेकसा महत्त्व रखते हैं और अुन सब का विकास करना जरूरी है।

अिसलिअे हमारी खादीयात्रा जीवन के हर अेक अंग के विषय में आदर्श होनी चाहिअे। वरना दो दिन मेला लगेगा, अुसके लिअे हडबडी मचेगी और अन्त में कुप्रबन्ध होगा और अगर पूछा जाय कि "यह अव्यवस्था क्यों"? तो जबाब मिलेगा "अजी, आखिर यह यात्रा ही तो ठहरी। मेले में तो यह सब चलने ही वाला है"। यह ठीक नहीं है। यहां होनेवाला हर अेक काम व्यवस्थित ढंग से होना चाहिअे। हमारी रसोअी आदर्श बननी चाहिअे और लोगों को वह प्रेम और आदर से दी जानी चाहिअे।

अेकनाथ के विषय में अेक किस्सा है। वे कथाकीर्तन के बाद प्रसाद बांटते थे। दो दो तीन तीन घण्टे संकीर्तन चलता था। अेकनाथ ने सोचा कि ये लोग बेचारे अितनी देर तक बैठे रहते हैं। क्या अिन के श्रम की कोअी कीमत ही नहीं है? दो घण्टों की मजदूरी का अुचित परिवर्तन अुन्हें मिलना चाहिअे। अपने श्रीखण्डचा नामक शिष्य को बुला कर अुन्होंने कहा, "अरे श्रीखण्डचा, ये लोग यहां दो दो घण्टे बैठ कर कथा-श्रवण करते हैं और तू अुन्हें चिमटीभर प्रसाद देता है?" दूसरे दिन श्रीखण्डचा ने भरपूर प्रसाद तैयार किया। क्यों कि वह समझ गया था कि अेकनाथ ठीक कह रहे हैं। अुसने प्रसाद बाँटने के लिअे अेक बडासा कटोरा लिया। कीर्तन खतम होनेपर लोग प्रसाद के लिये अेक ही हाथ बढाने लगे। लेकिन कटोराभर प्रसाद अेक हाथ में कैसे आ जाय? तब लोगों ने अपने पिछोरों के पल्ले पसारे। दूसरे दिन से नाथ के कीर्तन में खूब भीड होने लगी। बढते बढते वह अितनी बढी कि कुछ लोग नाथ के घर में भी बैठने लगे। अेक जन तो अेक दिन अुनके बिस्तर पर ही सो गया। लेकिन नाथ ने अुसे जगाया नहीं। रातभर सोने दिया और दूसरे दिन भोजन करा कर अुसे अुसके घर पहुंचा दिया।

अिसमें अेकनाथ का प्रेम प्रकट होता है। हम भी यहां जो रसोअी बनायें वह प्रेम और भक्ति-पूर्वक बनावें। हमारी रसोअी स्वच्छ, सुन्दर और देहाती जीवन से मेल खानेवाली हो। अेक-बार मैं सेटपल्ली गया था। वहां के कार्यकर्ताओं से मेरा निकट परिचय है। अिसलिअे अुनके बारे में बोलने में मैं सकुचाता नहीं। वहां अुन लोगों से मैंने पूछा कि "तुम लोग बगैर कुटा चावल खाते हो?" तब किसीने कहा "वह अच्छी तरह सुरता नहीं।" मैंने अेक दिन वहां ज्यादह मुकाम किया और भाप से वह चावल अच्छी तरह कैसे पकता है यह अुन्हें दिखा दिया। अुस दिन सब को अेक जगह भोजन कराया। तब वे कहने लगे कि हमारा भात भी अितना अच्छा नहीं पकता। मैं वहां दूसरे काम से गया था लेकिन अिसके लिअे और अेक दिन बिताया। यहां तो हम काम के लिअे ही अेकत्र आये हैं। अैसी हालत में अगर हम रद्दी रसोअी पकावें तो यात्रा में कोअी सार नहीं रह जाता। आप कहेंगे कि व्याख्यान, प्रवचन आदि कार्यक्रमों के मारे अुधर ध्यान देने के लिअे फुरसत ही नहीं मिलती। मुख्य चीज़ को नष्ट करने वाले अैसे दीगर कार्यक्रम किस काम के?

अब यात्रा शद्ब के सम्बन्ध में थोडा कहना चाहता हूं। यात्रा शद्ब के अर्थ को लोगों ने अब बिगाड दिया है। अुस शद्ब का मूल अर्थ बहुत शुद्ध है। लोगों ने अुसे बिगाड दिया। यात्रा के नाम पर ढोंग शुरू कर दिया। लेकिन अुस ढोंग से भयभीत हो कर मैं भागूंगा नहीं। मनु कहता है "दुनिया के सब व्यवहार वाणी के बल चलते हैं। जिसने अुस वाणी को ही बिगाड दिया वह दुनिया के सारे पाप कर चुका"। यात्रा शद्ब पर मेरी मालिकी है। अुस मालिकी को मैं छोडनेवाला नहीं हूं। अपनी अच्छी से अच्छी तोफें दुश्मन के हाथ सौंप कर भाग जाना अक्ल का काम नहीं है। अच्छे शद्ब लोगों ने बिगोड दिये अिसलिअे अगर मैं अुन्हें छोडने लगूं तो दूसरे नये शद्ब कहां से लाअूं? अृषियों ने जिन शद्बों को

गढा, अुनकी तपस्या का बल जिन शद्बों के पीछे है, अुन शद्बों को अगर ढोंगी बिगाड सकते हैं तो यह कौन कह सकता है कि वे मेरे गढे हुअे नये शद्बों को नहीं बिगाडेंगे। अिसलिअे मैं तो हार माननेवाला नहीं हूं। हां, अिस पर अेक अुपाय है। वह अुपाय है मौन। अुस अुपाय का आश्रय लेने में मुझे अुज्र नहीं है। लेकिन अगर शद्ब का प्रयोग करना पडे तो मैं अुसे अुसके असली अर्थ में ही बरतूंगा।

हमने यहां पर अेक नैवेद्य विभाग रक्खा है। नैवेद्य का अर्थ है भगवान को अर्पण करने की वस्तु। लोगों ने छह छह महीने तकली पर कठिन मिहनत करके भक्तिभाव से जो कपडा बनाया वह जनता के देखने के लिअे यहां रक्खा गया है। अगर अैसी चीजों के लिअे नैवेद्य शद्ब अुपयुक्त न हो तो फिर वह किस जगह शोभा देगा? जो खाता ही नहीं अैसे देवता को चढाये जानेवाले भोग के लिअे क्या नैवेद्य शब्द शोभा देता है? नामदेव दूध की बिलिया देवता के सामने नैवेद्य के लिअे लेकर पहुंचा। कुछ भी किये देवता वह दूध पीता ही नहीं था। नामदेव ने निश्चय किया कि अगर देवता ने नैवेद्य का ग्रहण नहीं किया तो यहां से हिलूंगा नहीं। कहते हैं कि देवता को वह नैवेद्य खाकर ही छुट्टी मिली। हमारा नैवेद्य खानेवाला देवता हमारे सामने मौजूद है। जरा अुस देवता का वैभव तो देखो! अुसके पास खाट का अेक टुकडा है। पूरी खाट भी नहीं है। अेक बैल है, सो भी दुबला हो रहा है। ओढने के लिअे कुछ नहीं है। अिसलिअे वह चूल्हे में जा कर सोता है। अिस तरह वह स्वयंभू महादेव जैसा है। स्वयंभू महादेव अपनी जगह नहीं छोडता। तुम अुसके पास भले ही जाओ। अपना नैवेद्य लेकर जाओ। अुसे खाने के लिअे वह अुत्सुक है। अेवंगुणविशिष्ट अिस जनता–जनार्दन को अिस नैवेद्य का भोग चढाना है! अिसलिअे हमारे नैवेद्य विभाग नैवेद्य नाम शोभा देता है।

अगर किसी शब्द का दुरुपयोग हो रहा है तो अुसका अुद्धार करो। जीर्णोद्धार का पुण्य अधिक कीमती है। नया मन्दिर बनवाने में अुतना पुण्य नहीं है जितना पुराने मन्दिर के जीर्णोद्धार में है। अतः यात्रा जैसा शब्द आज बिगाड दिया गया है अिसलिअे अुसे तज नहीं देना चाहिअे। शब्द के साथ कुछ भावनायें होती हैं। अिण्डिपेण्डेन्स के लिअे संस्कृत में कोअी शब्द ही मिल नहीं रहा था। आखिर लाचार होकर स्वराज्य के पीछे पूर्ण शब्द जोड दिया। लेकिन वर्तुल को पूर्ण वर्तुल कहने से अुसमें कौनसी विशेषता आ जाती है? लेकिन बात गले नहीं अुतरी। स्वराज्य शब्द की जगह दूसरा शब्द तो ले नहीं सकते थे क्योंकि स्वराज्य शब्द में जो भावना है वह दूसरे किसी शब्द से पैदा ही नहीं हो सकती। अिसी तरह यात्रा शब्द छोडकर गुजारा नहीं हो सकता। और फिर हमारी यह यात्रा अपने ही ढंग की है।

पंढरपुर की यात्रा में जानेवाले यात्री लोगों से भोजन मांगना अपना हक समझते हैं और लोग भी अुन्हे जिमाते हैं। यात्रा में अुन्हें भोजन पर खर्च नहीं करना पडता। लेकिन यहां तो हमने भोजन के लिअे दो आने का टिकट रक्खा है। और दो आने देने पर भी हर अेक से यह आशा रक्खी जाती है कि वह रसोअी के काम में कुछ न कुछ हाथ

बटावे। दो आने अपनें आलस की कीमत नहीं देनी है। बल्कि परिश्रम करने के बाद यह दक्षणा देनी है। अिसलिअे हमारी खादी-यात्रा में पहला सबक परिश्रम का होना चाहिअे। यहां आदर्श स्वच्छता होनी चाहिअे। पाखाने आदर्श होने चाहिअे। यहां के पाखानों को देखने के बाद लोग अुसी तरह के पाखाने अपने गांवों में बनावें अिस तरह के वे होने चाहिअे।

लेकिन हिन्दूसमाज में अेक बडी विचित्र कल्पना रूढ हो गयी है। जो भक्त या ज्ञानी हो अुसे कर्म करनें की जरूरत नहीं है। जाने क्यों, भक्ति या ज्ञान कर्म से बहुत घबडाते हैं। भक्ति या ज्ञान को कर्म बरदाश्त ही नहीं होता। लेकिन कोअी यह क्यों नहीं पूछता कि क्या तुकाराम अितना बडा साधु होकर भी भोजन करता है ? समझ लीजिये कि आज कोअी नामदेव का चित्र बनाना चाहता है। तो वह किस तरह का चित्र खींचेगा ? अुसे ध्यानस्थ बैठा हुआ बतलायेगा, या बीमार हो कर बिस्तर पर लेटा हुआ ? शिष्यों को अुपदेश दे रहा है अैसा चित्र खींचेगा, या मिष्टान्न खा रहा है अैसा चित्र ? अृषि भोजन करते थे तो अुसके लिअे मिहनत भी करते थे। अितना ही नहीं, बल्कि अगर अुन्हें किसी क्रिया की शर्म ही लगती हो तो भोजन की शर्म आती होगी। अुन्होंने प्रत्यक्ष अपने मन्त्र में कहा है "अक्षैर्मा दीव्य: कृषिमित कृषस्व"। वे कहते थे "खेती करो, अव्यपारेषु व्यापार न करो। और यह भी आशा न करो कि खेती में से तुम्हें धन का ढेर मिल जायगा। धन तो थोडा ही मिलेगा। लेकिन अुस थोडे से ही सन्तोष मान लो।" "वित्ते रमस्व बहुमन्यमानः।" 'थोडे धन को प्रभूत धन मान कर सन्तुष्ट हो।' हमारे यहां जब संन्यासी आता है तो हमें यह फिक्र पडती है कि अब अिसके प्रसाद की क्या व्यवस्था करें। क्यों कि सन्यासी काम तो करता नहीं, लेकिन भोजन जरूर करता है।

मेरे अेक मित्र थे, वे संन्यासी बनने की अिच्छा प्रकट करने लगे। अुनके पिता मेरे पास आकर कहने लगे, "मेरा लडका संन्यासी बनने जा रहा है। वह तुम्हारा दोस्त है। तुम अुसे समझाओ। तुम्हारा अुसपर असर है न ?" मैंने अुनसे कहा, "मेरा अुसपर क्या असर हो सकता है ? अपने दिमाग पर किसी भी कल्पना का बोझ न रखने का नाम ही तो संन्यास है। खैर, लेकिन आप अितनी चिन्ता किसलिअे कर रहे हैं ?" वे बोले, "अगर वह संन्यासी न बना तो हमारी कुछ सेवा करता रहेगा और अगर संन्यासी बन गया तो हमको अुसकी सेवा करनी पडेगी।" अिसपर से स्पष्ट है कि लोगों के संन्यास के विषय में क्या खयाल हैं।

यात्रा शब्द की अैसी सडियल परिभाषा न कीजिये। हमें यात्रा को अुचित स्वरूप देना चाहिअे। तुकाराम पंढरपुर की यात्रा करता था। अगर हम अुससे पूछते कि "क्यों रे, पंढरपुर में क्या धरा है ? किसलिअे जाता है तू वहां" ? तो वह जवाब देता, "दर्शनों को जाता हूं। वहां अेक सुन्दर मूर्ति खडी है। जी चाहता हो तो तुम भी आओ।" लेकिन अुस सुन्दर मूर्ति का क्या अर्थ है ? अच्छा खुरदरा पत्थर है। खूब मजबूत और सीधा खडा ! अुस मूर्ति पर से कारीगर का हाथ भी शायद फेरा न गया होगा। हाथ चलाने की हिम्मत ही नहीं हुअी होगी अुसकी।

भगवान तो सबका तारनहार है न ? फिर वह दुबला-पतला कैसे हो सकता है ? लेकिन वह अूबडखाबड पत्थर तुकाराम को सुन्दरता की मूर्ति प्रतीत हुआ। और जिनकी श्रद्धा हो अुन्हें वह सुन्दर ही दिखाअी देगा।

अेक वेश्या की लडकी की कहानी है। वह अत्यन्त सुन्दर थी। लेकिन अुसकी मां को यह चिन्ता थी कि लडकी का व्याह कैसे हो। अितनी सुन्दर कन्या को दुलहा भी सुन्दर ही चाहिअे। अेक दिन पंढरपुर के यात्रियों का झुंड अुसके घर होकर जा रहा था। वे लोग अपनी मस्ती में 'देखि राम छबि नयन जुडाने' 'तेरा रूप सुन्दर सांवला और मनोहर है', वगैरा आशय के तुकाराम के अभंग गाते हुअे जा रहे थे। लडकी ने सोचा यह सुन्दर रूपवान कौन है। अुसने अुन यात्रियों से पूछा "कहां है वह सुन्दर पुरुष" ? यात्रियों ने कहा "वह पंढरपुर में रहता है। अगर तू देखना चाहती है तो हमारे साथ हो ले। हम अुसीके दर्शनों को जा रहे हैं।" वह लडकी भी अुनके साथ हुअी। वहां जा कर अुसने बेडौल विठोबा की अुस मूर्ति को देखा। वह अुसे सुन्दर दिखायी देन लगी। सौन्दर्य कल्पना के आधीन है। सन्तों की संगति से अुस लडकी की सौन्दर्य की कल्पना शुद्ध हो गयी थी। अिसलिये वह मूर्ति अुसे सुहावनी लगने लगी। पंढरपुर में रहकर हर रोज वह अुस मूर्ति की पूजा करने लगी। कुछ दिन बाद बेदर के यवन बादशाह को पता चला की कोअी एक अत्यन्त सुन्दर लडकी अपना जीवन बरबाद कर रही है। बादशाह ने अुसे लिवा लाने के लिये सिपाही भेजे। पंढरपुर जा कर अुन सिपाहियों ने बादशाह का हुक्म अुसे सुनाया। वह लडकी भयभीत हो गयी। लेकिन अुसने अेक विनती की कि मुझे मेरे देवता की आज्ञा ले लेने दो। आज्ञा लेने के लिअे वह मन्दिर के अन्तर्गृह में गयी। अुसनें सहसा विठोबा के चरण पक्के पकड लिये और वहीं अपने प्राण छोड दिये। मैं कोअी कल्पित कहानी नहीं कह रहा हूं। प्रत्यक्ष घटी हुअी घटना है। बाहर सिपाही सोचने लगे कि अितनी देर हो गयी, लडकी अबतक क्यों नही आ रही है। बहुतकरके भाग गयी होगी। अुसे देखने लिअे वे मन्दिर में गये। लेकिन वहां अुन्होंने क्या देखा? लडकी का शव। अैसी तपस्या पंढरपुर में हुअी है। अिसलिअे अुस स्थान का अितना माहात्म्य है, आज तक अनगिनती जडजीवों का अुद्धार अुस पंढरपुर ने किया है और आज भी वहां का वही विठोबा अनेकों का अुद्धार कर रहा है। श्रद्धा न होती तो हिन्दूधर्म आज जिन्दा न रह पाता।

गरीब जनता की सेवा यही हिन्दूधर्म की सिखावन है। वह अुस धर्म की नींव है। अुसीपर अुस धर्म का मन्दिर खडा है। कोअी भी भक्त अैसी अिच्छा नहीं रखता कि मुझे परमात्मा के नेत्रों का दर्शन हो। अुसे तो चरणों के दर्शन की ही अिच्छा होती है। चरण-दर्शन से तसल्ली है। भगवान के चरण दर असल अगर कोअी हैं तो वह है गरीब जनता। जनताजनार्दन की सेवा का अुपदेश वैदिक धर्म भी देता है। लेकिन मूढलोगों को जब तक स्पष्ट शब्दों में नहीं बतलाया जाता तब तक अुनकी समझ में नहीं आता। अिसलिअे बिलकुल स्पष्ट भाषा में वेद भगवान ने कहा कि "जो अकेला खाता है वह पाप खाता है"। अितना ही

नहीं। "पाप खाता है", तो भगवद्गीता ने भी कहा है। लेकिन वेद भगवान आगे बढकर कहता है कि "वह अपना वध प्राप्त करता है।" "मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध अिप्सितस्य।" क्या अृषि भी कभी झूठ बोलता है? वह कहता है 'सत्यं ब्रवीमि'। सच कहता हूं कि 'वह अपना वध प्राप्त करता है'। यह नहीं कि "मृत्यु प्राप्त करता है।" मृत्यु और वध का फर्क समझ लेना चाहिअे। वह वध कैसा सो भी वेद भगवान ने बता दिया है। गरीबों को सताकर जो शरीरश्रम से जान बचाते हैं वे भगवान को ही सताते हैं। फिर भगवान रुद्ररूप धारण करते हैं। रुद्र याने रुलानेवाला। बुभुक्षुमाण गरीब आदमी ही रुद्र है। गरीबों को कष्ट होते ही समाज में भूकम्प हो जाता है। अुस भूकम्प के कारण समाज का नीचे का तला डगमगाने लगता है। तब अपर के मंजिल भी डगमग डगमग डोलने लगते हैं। जो मंजिल जितना अूपर हो अुतना ही अुसे अधिक खतरा होता है। यूरोप में आज अैसे ही भूकम्पों की तय्यारियां हो रही हैं। अिस संकट से समाज को बचाने का अेक ही अिलाज है और वह है समाज में पैठे हुअे आलसरूपी महारोग का नाश करना। हर रोज शरीर परिश्रम करना चाहिअे। अिस सिखावन के चिन्ह के तौर पर हमने यहां आध घण्टा तकली कातने का नियम बनाया है। पंढरपुर की यात्रा से दूसरे हजार फायदे भले ही होते हों लेकिन वहां जाने में तुकाराम का अुद्देश तो केवल देवदर्शन ही था। अुसी तरह अिस यात्रा से अितर अनेक लाभ भले ही हों लेकिन मुख्य वस्तु तो शरीरपरिश्रम का पदार्थपाठ ही है। अिसलिअे तकली कांतने के वक्त सब को अेकत्र आना चाहिअे। और दूसरी चीज़ है जिस भगवान को यह सारा परिश्रम समर्पण करना है अुसकी सांझ-सवेरे प्रार्थना।

अिस तरह खादीयात्रा की योजना की पांच बातें मैंने आपको बतलायीं:—

१. तकली-उपासना; २. प्रातः-सायं प्रार्थना; ३. देहाती जीवन का नमूना पेश करना; ४. स्वच्छता का पदार्थपाठ; ५. सालभर का काम निवेदन करना। अिसीका नाम यहां नैवेद्य विभाग है। अिस तरह अिस यात्रा की योजना कुछ विस्तार से मैंने आपके सामने पेश की है।

खादीयात्रा, पवनार
ता. ६:५:१९३६

('ग्राम सेवा वृत्त' से अनूदित)

सत्याग्रह और निःशस्त्र प्रतिकार में अुतना ही अन्तर है जितना कि अुत्तर और दक्षिण ध्रुव में है। निःशस्त्र प्रतिकार की मूल कल्पना ही यह है कि वह दुर्बलों का अस्त्र है। अपना अुद्देश हासिल करने के लिअे अुसे शारीरिक बल या हिंसा के प्रयोग से परहेज नहीं है। लेकिन सत्याग्रह की मूलभूत कल्पना यह है कि वह बलिष्ठों का अस्त्र है। अुसमें किसी भी रूप या प्रकार की हिंसा के लिअे गंजाअिश नहीं है।

—गांधीजी

कौअे की नजर से

४. गांधीवाद और साम्यवाद

–२–

सम्पादक भाअी,

दूसरे दिन कौअे के आते ही मैंने कहा, "देखो, आज गान्धीवाद और साम्यवाद समझाने से पहले मैं तुम्हें सोने न दूंगा।"

तब **सवाअी** बोला, "ठीक है, अैसी ही अिच्छा है तो सुनो। पहले तो यह जान लो कि गान्धीवाद शब्द बापू के बिलकुल नापसन्द है। वे कहते हैं मैं 'वादीगर' नहीं हूं, बल्कि 'कारीगर' हूं। मेरे पास 'वाद' नहीं है, 'कार' (कार्य) है। अिसलिअे चाहे 'गान्धीकार' भले ही कहो लेकिन गान्धीवाद मत कहो। वे अपने शिष्यों से कहते हैं कि तुम सब 'वादी' मत बनो, 'कारी' (कर्मी) बन जाओ। अगर कोअी अुनसे यह पूछे कि मैं 'कारी' कैसे बनूं? तो वे कहेंगे कि चर्खा चलाओ, झाडू लगाओ, पाखाने साफ करो, आदि।

"लेकिन मानवों की बातें अुलटी ही होती हैं। अुनमें गुरुशिष्य नाम से अेक रिश्ता होता है। अुसमें जो बडे शिष्य माने जाते हैं वे अक्सर अपने गुरु के पैरों को पूजते हैं और अुसके मुंह का अपमान करते हैं। अथवा मुंह से वे अुसका नाम जपते हैं और पैर से अुसे ठुकराते हैं। अिसलिअे बापू के बडे शिष्य गान्धीवादी बनते हैं, गान्धीकारी बनना छोटे शिष्यों के ही भाग में बदा है।"

मैं—अब तुम्हारी ये टिप्पणियां जाने दो। अगर गान्धीवाद और साम्यवाद का फर्क तुम्हें सचमुच मालूम हो तो बता दो।

सवाअी भूशुंडी–अच्छा, काका, सुनो। कुछ फर्क तो केवल हंसने योग्य है। मिसाल की तौरपर बताता हूं।

पहली बात, भाअी शब्द गान्धीवादी के नाम के पीछे अक्सर लगाया जाता है—यथा किशोरलालभाअी, महादेवभाअी, पण्ड्याभाअी वगैरा। लेकिन साम्यवादी अुसे अपने नाम के पेश्तर लगाते हैं। जैसे भाअी डांगे, भाअी रां[illegible] भाअी गोरे आदि। जब अंग्रेजी में ये लोग लिखते हैं तब गान्धीवादी दूसरों को फ्रेण्ड (दोस्त) लिखते हैं और अेक दूसरे को कलीग (साथी) कहते हैं। लेकिन साम्यवादी दोनों जगह कॉम्रेड लफ्ज का अिस्तेमाल करते हैं। अिन शब्दों में कोअी भेद मैं तो नहीं खोज सका हूं। लेकिन दोनों को पहचानने का यही अेक चिन्ह है।

फिर गान्धीवादी अेक तिरंगे कपडे को मानते हैं और अुसपर चरखा देख कर खुश हो जाते हैं। साम्यवादी अेक लाल रंग का कपडा फहराते हैं और अुसपर हंसिया और हथौडे का चिन्ह बनाते हैं और अुसके गीत गाते हैं। गान्धीवादी 'वन्दे मातरम्,' 'महात्मा गांधी की जय', अैसी घोषणायें करते हैं लेकिन साम्यवादी अक्सर 'स्वतन्त्र भारत की जय,' 'साम्यवाद की जय' 'किसानों की जय' अैसी बहुतसी जय-घोषणायें करते हैं और साथ साथ कुछ शापों की भी घोषणा करते हैं—यथा 'जमीनदारी की क्षय' 'पूंजीवाद की क्षय' आदि। वे कुछ फारसी घोषणायें भी करते हैं, जैसे

'इन्किलाब जिनदाबाद,' 'जमीनदारी मुर्दाबाद' आदि।

गान्धीवादियों में जब आपस में वादविवाद होता है तब हर अेक बापू का कोअी प्रमाण पेश करता है और कहता है कि यही बापू की सच्ची राय है। साम्यवादियों में जब अैसी चर्चा होती है तब हर अेक शख्स मार्क्स के मन्तव्यों की दुहाअी देता है। मतलब, अपनी निजी राय बनाने में दोनों डरते हैं। गान्धीवादी कहते हैं कि बापू अिस जमाने का सबसे बडा आध्यात्मिक महात्मा है, साम्यवादी कहते हैं कि मार्क्स अिस जमाने का सब से बडा भौतिक पैगंबर है। जहां गान्धीवादी अीश्वर अीश्वर कहते हैं वहां साम्यवादी कुदरत कुदरत पुकारते हैं। उदा०–अेक कहता है अीश्वर का नियम, अीश्वर की अिच्छा, दूसरा कहता है कुदरत का कानून, कुदरत की तरक्की या नियति आदि। गांधीवादी दरिद्रनारायण, हरिजन अैसे नाम देना पसन्द करते हैं। अपने बच्चों के नामों में भी अीश्वर या भक्तों को लाते हैं। साम्यवादी प्रोलिटेरियन (गैर-पूंजीदार), दलित, अैसे नाम पसन्द करते हैं और अपने बच्चों को क्रान्तिकुमार आदि नाम देते हैं।

और फिर दोनों के बीच में कैसी बहसें होती हैं, सुनो।

गान्धीवादी (साम्यवादी से)—तुम हिन्दुस्तान को नहीं जानते।

साम्यवादी (गान्धीवादी से)—तुम जगत् के बारे में अनजान हो।

गान्धीवादी—हमें देश के सवालों का ज्यादा खयाल करना चाहिअे।

साम्यवादी—हमें दुनिया के महान प्रश्नों पर गौर करना चाहिअे।

गान्धीवादी—अपने देश के सवालों को हल करने से दुनिया के प्रश्न भी सुलझ जायेंगे।

साम्यवादी—दुनिया को सुलझाने से देश के सवाल भी सुलझ जायेंगे।

गान्धीवादी—हम राजा, जमीनदार, पूंजीपति आदि को ट्रस्टी समझते हैं और अुनसे ट्रस्टी के कर्तव्य अदा करा लेंगे।

साम्यवादी—हम अुन्हें चोर, डाकू के समान समझते हैं और अुनको निःशेष कर देंगे।

गान्धीवादी—हम यह ज्यादा ठीक समझते हैं कि जनता को आज ही कुछ अधिक सुखसहूलियतें मिल जायँ। अुससे अुसका अच्छा संगठन होगा।

साम्यवादी—हम यह ज्यादा ठीक समझते हैं कि फिलहाल तो जनता के कष्ट बढें। अुसीसे वह ज्यादा संगठित होगी।

गान्धीवादी—हमारा आदर्श यह है कि राजा और रैयत दोनों की तनख्वाह पंदरह रुपया हो। दोनों छोटी छोटी झोपडियों में बसें, हाथघानियोंका तेल जलावें और बैलगाडी में चलें।

साम्यवादी—हमारा यह आदर्श है कि हाकिम और रैयत दोनों को अच्छा वेतन हो। दोनों बडे बडे पक्के मकानों में रहे, जिनमें बिजली, टेलिफोन, ठंढे और गरम पानी के नल आदि हों। और हर अेक के पास मोटर हो।

गान्धीवादी—हम चाहते हैं कि छोटे बडे सब लोग चरखा कातें।

साम्यवादी--हम चाहते हैं कि यह चरखा जला दिया जाय और अुसके साथ हल भी। अुनकी जगह मिलें खोली जायँ और ट्रॅक्टर्स (यान्त्रिक हल) काम में लाये जायँ।

गान्धीवादी--हम बडे बडे कारखानों को ज्यादा प्रोत्साहन न देंगे।

साम्यवादी--हम सारे देश को कारखानों से भर देंगे।

गान्धीवादी--हम थोडेसे बूर्ज्वाओं (आराम-तलब लोगों) को बरदाश्त कर सकते हैं पर आम तौर पर लोगों में भोगमय जीवन की लालसा नहीं चाहते। हमारा आदर्श संयम और सादगी है।

साम्यवादी--हम तो अेक भी बूर्ज्वा बरदाश्त नहीं कर सकते। पर आमतौर पर सब लोगों के लिअे भोगों की प्राप्ति को अच्छा समझते हैं। हम संयम और सादगी के आदर्श को नहीं मानते।

गान्धीवादी--हम दुनिया की भिन्न भिन्न जातियों और वर्गों के लोगों में परस्पर प्रेम करो, न्याय करो अैसी भावनायें बढ़ाना चाहते हैं।

साम्यवादी--जब तक हम लक्ष्मीपतियों की लक्ष्मी छीन नहीं सकते तब तक दरिद्रों और लक्ष्मीपतियों के बीच प्रेम की भावना को पोषण देना हम अच्छा नहीं समझते। द्ररिद्रों के मन में असूया पैदा होना यही हम ठीक मानते हैं।

गान्धीवादी--आदि और मध्य में वर्गविग्रह हो सकता है। अहिंसा का शुद्ध प्रयोग हो तो अन्त में वह न रहेगा।

साम्यवादी--जब तक वर्ग हैं तब ... तीनों काल में विग्रह रहेगा। ... या अहिंसा के सफल प्रयोग से ... का नाश करने से ही विग्रह मिट... जा सकेगा।

गान्धीवादी--हम मानते हैं कि आ... मध्य और अन्त तीनों काल में ... और अहिंसा की प्रतिष्ठा हो।

साम्यवादी--हम मानते हैं कि अ... में सत्य और अहिंसा की प्रतिष्ठा ... है। लेकिन आदि और मध्य में ... और असत्य, हिंसा और अहिंसा दो... चाहिअे।

गान्धीवादी--हम अहिंसा से हिंसा ... मिटा देंगे। हिंसा से हिंसा ही बढेगी।

साम्यवाद--हम हिंसा से हिंसा ... मिटायेंगे। और फिर हिंसा से आत्मह... करायेंगे।

गान्धीवादी--वह आत्महत्या ... करेगी।

साम्यवादी--अगर वह आत्महत्या ... करेगी तो हम अुसका जिन्दा रह... बरदाश्त कर लेंगे। अुसे अेक किले ... बन्द कर देंगे। आये दिन भले ही का... आ जाय।

भूशुंडि--बस गान्धीभक्त और मार्क्सभक्त... में अैसे वादविवाद होते रहते हैं। क्या कु... समझे भी हो?

मैं--हां, अितना समझा गया कि मैंने ... प्रश्न नाहक ही पूछा। अिसमें अुल्लुओं ... काम की कोअी चीज़ नहीं। लेकिन फिर भी ... अेक सवाल पूछना चाहता हूं। मेरे जैसे ... अुल्लू गान्धीवादी और साम्यवादी को आसानी ... से किस तरह पहचान सकता है?

सवाओ--वाह, काका, अितने साल से आश्रम में रहते हुओ भी अितना नहीं समझ पाये। देखो, पक्का गान्धीवादी जब प्रवास करता है तो साथ चर्खे की पेटी और अक्सर गाय के घी का डिब्बा रखता है। और पक्का साम्यवादी साम्यवाद की पुस्तकों की अेक सन्दूक और अक्सर सिगरेट का डिब्बा रखता है।

सम्पादक भाओी, मैं नहीं समझ पाया हूं कि कौओे ने अिन बातों को मसखरी के रूप में कहा है या गम्भीरता से। क्या अुल्लुओं के लिओे ये बातें मुश्किल ही हैं? या कौओे की समझाने की ताकत ही नहीं है?

आपके,
आश्रम का अुल्लू

ग्रामसेवक के अनुभव

[प्रभुदास गांधी]

-३-

भले से भले आदमी आजकल जमा और नामे की तोड-जोड करने के बाद ही बात करते हैं। और तो और हमारे अच्छे से अच्छे खादी-निष्णात भी हिसाब लगाते हैं कि घर घर कते सूत की खादी बुनवाने में और बुनकरों से मनमाना कपड़ा हासिल करने में अितना अधिक खर्च होता है कि बुनाओी की मजदूरी के दामों में मिल का तैयार कपड़ा लोगों को मिल जाता है। अुनका कहना है कि "साधारण धोती बुनवाने, धुलवाने और अच्छी किनार कराने में दस आने देने पडते हैं और प्रत्येक धोती में चार पांच आने की रुओी लग जाती है जब वैसी ही धोती मिल की खरीदी जाय तो बाजार से तेरह चौदह आने में मिल जाती है। अिस प्रकार कातनेवाले की कताओी धुनाओी रुओी-सफाओी और बुनवाने की तवालत भाड में जाती है। अैसी बेकार की मथ्थापच्ची करने के बजाय महंगी से महंगी खादी खरीदना लोगों के लिये आसान होगा। और वास्तव में यही होता है। खादी-बिक्री जितनी शीघ्रता से बढाओी जा सकती है अुतनी जल्दी वस्त्रस्वावलंबन नहीं कराया जा सकता। घर घर कताओी के साथ बुनाओी होने लगे तो शायद वस्त्रस्वावलंबन चल जाय, पर बुनवाने के अिस प्रयोग में नब्बे फीसदी असफलता ही मिलेगी।"

खादी-विशारदों की यह बात गहरे अनुभव की और तीव्र बुद्धिमत्ता की है। परंतु यही बात देहाती आदमी को संतोष देनेवाली है। जब वह समझ लेता है कि जिन दामों में मिल की धोती बाजार में मिलती है अुससे कौडीभर भी अधिक खर्च किये बिना घर बैठे खादी की वैसी ही बारीक और लंबी चौडी धोती मिल जाती है तब अुसकी आंखें चमकने लगती हैं। खादी के फटे चिथडे

का भी आदर वह बाजारू धोती से अधिक करता है। फिर यदि अुसे समझा दिया जावे कि "मिल के कपडे के बहाने बाहर जानेवाले रुपये बहुत दूर चले जाते हैं, लौट कर नहीं आते और दहलीज परके जुलाहे की जेब में गये हुअे पैसे किसी न किसी बहाने फिर अपनी ही जेबों को गरम करते हैं" तब अुसके दिल में ज़रा भी रंज नहीं रहता। बहरहाल कताअी, धुनाअी आदि के पीछे किये गये परिश्रम को वह कभी व्यर्थ नहीं मानता। अैसी दिल बहलानेवाली और घर में संजीदगी पैदा करनेवाली दस्तकारी में समय खोने का पश्चात्ताप करनेवाले बहुत कम लोग होते हैं।

पूरा करने से पहले खादी-वृक्ष-घाती बाजार का फंदा कतरने की कोशिश करने में मिलने वाले कुछ अनुभवों का जिक्र करना अनुचित न होगा।

–४–

कपास जगह जगह पैदा होती है। थोडासा भ्रमण करने पर हजारों की संख्या में कातनेवाले मिल जाते हैं। परंतु कते सूत का ठीक कपडा बना कर अुसका अुपयोग कर लेने में बडी अव्यवस्था है।

अमंत्रमक्षरंनास्ति नास्तिमूलमनौषधम्।
अयोग्यो पुरुषोनास्ति योजकस्तत्र दुर्लभः॥

यही बात घरेलू खादी बुनवा देने के बारे में है। गांवों में ठुकराता हुआ सूत बुनवा देनेवाला योजक दुर्लभ है। नाममात्र मजदूरी ले कर साधारण दरों से संतोषप्रद खादी बुनवा देनेवाला योजक यदि गांव में मिल जाय तो वह ग्राम की जनता के असीम आशीर्वाद का पात्र होगा। मैं स्वयं अिस काम का शिथिल और कुछ प्रमादी योजक हूं। पिछले डेढ़ वर्ष से लगातार मिहनत करने पर भी मैं अभी लोगों के आशीर्वाद को प्राप्त नहीं कर पाया हूं। अुनकी गालियों से प्रायशः बच जाता हूं यह ग्राम जनों की उदारता और सहृदयता है। कभी कभी मेरे द्वारा बुनवाअी गअी खादी की बुनाअी कातनेवालों को अपने सूत के मूल्य से भी कुछ ज्यादा देने का मौका आता है, क्योंकि अुनका सूत कच्चा होता है। परंतु जब अुनसे मैं कहता हूं, "लाअिअे मुझे कपडा दे दीजिये और सूत के दाम ले लीजिये," तब मेरा यह प्रस्ताव अुन्हें बहुत बेहूदा मालूम देता है। अपने सूत पर अुनका अितना अधिक मोह होता है कि रुपयों में अुसका मूल्य लगाना अुन्हें अपमान-जनक प्रतीत होता है। कअी थान अैसे बुने गये जिनके पूरे दाम से एक रुपया ज्यादा देनेवाले ग्राहक अुन्हें खरीदने की स्पर्धा करने लगे। मैंने थान बुनवानेवाले से कहा "बुनाअी के बदले तिहाअी कपडा मुझे फाड दीजिये"। परंतु मेरी अिस मांग को अुन्होंने मेरी बदतमीजी समझा। वे कहते हैं "बुनाअी के दाम चाहो तो ले लो परंतु अपने सूत का गजभर कपडा भी हम नहीं फाडने देंगे"। एक गरीब बढ़अी अपना सूत लेकर आया, रजाअी की रुअी का सूत था वह। अिसलिये मैंने अुसे बुनने से अिनकार किया। पर वह तो चिपट गया। अिस चार नंबर के सूत से जनानी साडियों का जोडा बना देने और तीन अिंच चौडा हरा पट्टा अुसमें डालने का हुक्म वह दे गया। प्रत्येक साडी की बुनाअी १) पड गअी। बाजार में मिल की बारीक साडी अिससे ज्यादा खुशरंग की अुतने दामों में मिल सकती थी। पर वह बढ़अी बुनाअी के पूरे दाम चुका कर साडी जोडा ले गया और अपनी स्त्री को किसी जेवर की तरह अुसने वह पो

तीन रतल की अेक अेक साडी पहिनाओ ! अैसे अनुभव भी कओ बार आये कि जो शख्स महंगी बुनाओ के कारण अुग्रसे अुग्र बहस कर गया वही बहुत ही जल्दी अपना सूत दुबारा बुनवाने के लिये हाजिर हुआ। क्यों कि कपडे की पुख्ताओ से वह आकर्षित हुआ। संक्षेप में खादीअुद्योग के प्रति ग्राम–जनता के दिल में कितनी भारी श्रद्धा है अिसका अनुभव रोजमर्रा नये नये रूप में मिलता ही रहता है। खादी का भविष्य कम अुज्ज्वल नहीं है। जरूरत सही तरीके और परिश्रम की है।

–'१–

लेकिन मैं जो बयान दे रहा हूं वह न तो खादी से अधिक कारआमद चीज की कल्पना करनेवालों के लिये है और न देहाती किसान के वास्ते ही है। फिर मेरा बयान शहरों के बजाजे के बीच रणद्वीप की तरह खादीभंडार चलानेवाले वीरों के लिये या अुत्पत्तिकेंद्रों में खादी कारीगरों को अधिक से अधिक मजदूरी पहूंचाने में लगे हुअे निष्णातों के लिये भी नहीं है। मेरा यह बयान सिर्फ हम पेशेवर ग्रामसेवकों के लिये है जिन्हें ग्रामोद्योग के सूर्यमंडल में चर्खे को सूर्य के स्थान पर प्रतिष्ठित करने की दीक्षा पूज्य बापूजी से मिली है।

खादी-विज्ञान असीम है। हमारे विशाल राष्ट्र के ३५ कोटी दिमाग, सत्तर कोटी हाथ और सत्तर कोटी नेत्रों का संगठन और विकास अिस विज्ञान का क्षेत्र है। बल्कि अिससे भी कहीं ज्यादा अिस विज्ञान का क्षेत्र है। अैसे अिस विज्ञान का छोटासा बिन्दु भी में आत्मसात् कर पाया हूं या नहीं अिसमें मुझे शक है। सच बात तो यह है कि सीधीसादी कताओ में भी में अभी काफी कमजोर हूं। फिर भी ग्रामसंजीवनी खादी के बारे में कुछ कहने की अनधिकार चेष्टा मैं कर रहा हूं। और अपनी अयोग्यता और धृष्टता के लिये पाठकों से क्षमा चाहता हूं।

अपनी अल्पमति को तान तान कर चारों ओर फैलाने के बाद में अिस नतीजे पर आया हूं कि खादीअुद्योग अपने आप दिन दूना और रात चौगुना पनपने की ताकत रखता है। अेक वृक्ष का रूपक लेकर खादीअुद्योग का चित्र अिस तरह बताया जा सकता है:– खादी वृक्ष की जडें जनतारूपी जमीन की सतहों में चारों ओर फैली हुओ हैं। वे जडें निर्जीव नहीं हैं, बहुत ताकतवर हैं। खादी वृक्ष का तना तगडा है। लोगों की अरुचिरूपी दीमक अुसे बरबाद नहीं कर पायी है। खादीवृक्ष की शाखायें और पत्तियां साबित हैं। अर्थात् कपास और अुसके संस्कार का विज्ञान लुप्त नहीं हुआ है। परंतु जैसे शेर मामूली रस्सी के फंदे में फंस कर निश्चेष्ट बन जाता है अुसी तरह खादीवृक्ष अमरबेल के भद्दे जाल में जकडा गया है। अमरबेल फूलती जाती है और खादीवृक्ष मुर्झाता जाता है। नन्हींसी चुहिया ने जिस तरह अपने बारीक दांतों से शेर के फंदे कतर डाले थे अुसी तरह हम ग्रामसेवकों का खादीवृक्ष को दबा लेनेवाली अिस अमरबेल को तीक्ष्ण बुद्धि और चतुराओ से कतर देना जरूरी है। ग्रामसंस्कृति को जीवन-दान देने वाले पौधे ढूंढने का, अुसे जमाने का, कलम करने का और पौधे से वृक्ष बनने तक दिनरात परवरिश करने का सवाल हमारे सामने नहीं है। सब कुछ तैयार है। सिर्फ अुस अमरबेल को हटाने की देर है। सारे मुल्क को जिलानेवाली खादी को मार

कर अपनी जिंदगी अमर बनाने वाली अुस अमरबेल का नाम बाजार है।

ठीक अमरबेल की तरह ही बाजार का यह फंदा भी चुप्पा जल्लाद है। अिसमें चुभनेवाले कांटे नहीं हैं, और देखने में वह बडा सुहावना है। जिस तरह वृक्ष स्निग्ध अमरबेल से ज्यों ज्यों चिपटता जाता है त्यों त्यों अपना जीवनरस खोता जाता है अुसी तरह ग्रामीण लोग भी सुहावने–लुभावने और आनंद देनेवाले बाजार में ज्यों ज्यों अुलझते जाते हैं अपना सत्त्व और स्वत्व खोते जाते हैं। बच्चा दौडता खुद है, पर आसमान में चांद को दौडता हुआ देखता है। अैसा ही भ्रम अुसे अूंचा झूला लेने के वक्त भी होता है। झूलना बंद कर देने पर भी अुसे जमीन खिसकती हुअी दीखती है और वह गिर पडता है। अुसी तरह निर्जन खेतों में और नीरव सीमाओं में बसते हुअे भी देहाती आदमी अपने पैरों पर भरोसा नहीं कर पाता। बाजारों की चमक-धमक से वह बिचारा दिनरात चौंधियाया हुआ सुन्न रहता है। कहां जाअूं? क्या करूं? कैसे बचूं? अिस प्रकार अुसका दिल चीखता रहता है। और फिर अुसी धोखेबाज बाजार का सहारा लेने के लिये वह दौडता है। सचमुच यह बडा करुण तांडव मचा हुआ है।

बाजार-मृदंग के ताल का ठेका है "सस्ता-महंगा"। जो नाच में शामिल न होना चाहें वे भी सस्ताअी-महंगाअी का नाद सुनते ही होश भूल कर कूदने लग जाते हैं और अुस प्रलयंकर नृत्य में शामिल हो जाते हैं।

घरघर मौजूद खादीमैया ही अिस आफत से बचा सकती है। खादीमैया अपने वत्सल अंचल से अुस भीषण दृश्य को आंखों से ओझल करती है और कान में मंत्र फूंकती है कि "आपेसे बाहर मत जाओ, अपना खयाल करो, अपने हाथपैरों को मजबूत रखो और अपने ही भरोसे अपनी रक्षा करो"।

सत्याग्रह का प्रयोग सिर्फ सरकार के खिलाफ ही नहीं, बल्कि परिवार और समाज के विरुद्ध भी किया जा सकता है। थोडे शब्दों में, सत्याग्रह पति-पत्नी, पिता-पुत्र और मित्र-मित्रों में भी हो सकता है। हम चाहे जिस क्षेत्र में और चाहे जिस अन्याय के निराकरण के लिअे अिस अस्त्र का अुपयोग कर सकते हैं। जो अुसका प्रयोग करता है अुसकी, और जिसपर प्रयोग होता है अुसकी, दोनों की यह अस्त्र शुद्धि करता है। अुसका सत्प्रयोग कभी भी अनिष्ट नहीं होता, और सदैव अव्यर्थ होता है। अगर सत्याग्रह का दुराग्रह में रूपान्तर हो जाय, और अुससे दुष्परिणाम निकलें, तो अुनके लिअे सत्याग्रह को दोष नहीं दिया जा सकता।

१३-९-१९१९

—गान्धीजी

देहातियों के लिओ पेटभर मज़दूरी

[किशोरलाल मशरूवाला]

गान्धीजी का यह आदर्श है कि औसत देहाती को हर रोज (आठ घण्टों के काम के लिअे) आठ आने मज़दूरी मिले, फिर चाहे वह अपने लिअे काम करता हो या दूसरों के लिअे। चरखासंघ की सभी प्रान्तीय शाखाओं से अपना पूरा जोर देकर वे कह रहे हैं कि जितनी जल्दी हो सके कातनेवालों की मज़दूरी वे इस हद तक ले आवें। आजकल देहातों में जो मज़दूरी मिलती है उससे यह ढाई गुनी से पांच गुनी तक ज्यादा है। इसलिअे प्रान्तीय शाखाओं के सञ्चालक कुछ घबडाते हैं और धीरे धीरे पग बढाना चाहते हैं। फिर भी हर अेक प्रान्त ने इस दिशा में काफी तरक्की की है। मुझे जहां तक पता है किसी भी प्रान्त को तीन आने से कम की हद रखने की अब इजाजत नहीं है। और महाराष्ट्र चरखा संघ को तो यह इजाज़त दी गयी है कि वह मज़दूरी की प्रणाली इस तरह बनावे कि पूरी तालीम पाया हुआ कातनेवाला नये से नये, याने मगन चरखे पर, सख्त और बराबर मिहनत करे तो आठ आने या उससे भी बेशी कमा सके। अलबत्ता अैसे कातनेवालों की संख्या अभी बहुत कम है। तो भी मैं समझता हूं कि औसत कत्तिन को तीन साल पहले जितनी मज़दूरी मिलती थी उससे तिगुनी अब मिलने लगी है। हो सकता है कि मेरी जानकारी बिलकुल ठीक न हो।

इससे कई सवाल खडे हो गये हैं। १९३६ की खादी से १९३९ की खादी दुगनी महंगी है। मिल के कपडे के मुकाबले में तो इससे भी ज्यादा अन्तर है। हिन्दुस्तान में देशप्रेम ज्यादातर मँझले दर्जे के लोगों का सद्‌गुण है। वह वर्ग शिकायत करता है कि खादी की कीमत बहुत ही बढ जाने से सब से ज्यादा चोट उसे पहुंची है। हां, इतना जरूर है कि आज भी खादी चरखा आन्दोलन की शुरूआत के जमाने से तो सस्ती है। फिर भी लोगों के दिल में यह भाव तो हैं। मध्यम श्रेणी के मामूली मनुष्य की समझ में यह बात नहीं आती कि गान्धीजी अडोस-पडोस के लोगों को जितनी मज़दूरी मिलती है उससे ज्यादा मज़दूरी देने की बरबस जिद क्यों करते हैं। कत्तिनों के लिअे यह विशेष पक्षपात क्यों? और सो भी जब कि उनने अपनी मज़दूरी बढ़ाने की मांग नहीं की अैसी हालत में? और फिर वह दलील करता है कि आखिर इतनी जल्दी मज़दूरी बढाने का फल भी क्या हुआ? जो जो कात सकता है अैसे हर अेक आदमी को चरखासंघ काम नहीं दे सकता। वह तो जितनी खादी बेच सकता है उतनी ही तैयार कर सकता है। काँग्रेसी सरकारें कायम होने के बाद खादी को कुछ प्रोत्साहन तो मिला है। लेकिन उसकी कीमत बढ जाने के कारण उसकी पैदावार कम हो गयी है। नतीजा यह हुआ कि कत्तिनों की तादाद बढने के बदले घट गई है।

इसके अलावा चरखासंघ को अेक नये हरीफ का मुकाबला करना पड रहा है। कई व्यापारी खानगी तौर पर खादी बनवाने

लगे हैं। वे पेटभर मज़दूरी के सिद्धान्त की शर्त मानते ही नहीं। इसलिअे उन्हें कम मज़दूरी पर काम करनेवाली कत्तिनें मिल जाती हैं, और वे बीच के दर्जे के ग्राहक के लायक सस्ते दामों में हाथ-कता और हाथ-बुना कपडा बना कर बेंच सकते हैं। पहले खादी से मतलब हाथ-कता और हाथ-बुना कपडा था। यह तो ग्राहक अपनी बारीक निगाह से पहचान सकता था। लेकिन अब गान्धीजी चाहते हैं कि वह खादी से हाथ-कता हाथ का बुना ही नहीं बरन् पूरी मज़दूरी से बना हुआ कपडा ही समझे। आखिरी गुण अैसा है कि जो वह अपनी आंख से नहीं देख सकता। और इसलिअे वह उसकी कद्र करने में असमर्थ है।

तीसरा सवाल यह है कि मज़दूरों से काम लेनेवाले देहाती (यानी आम तौर पर किसान) मजदूरी बढाने की बात कतई पसन्द नहीं करते। उन्हें यह डर है कि, क्या जाने उन्हें फिर खेती के काम के लिअे सस्ते मज़दूर मिलेंगे या नहीं। खेती तो आज भी बे-गुंजाइशी धन्धा है। इसलिअे मज़दूरी बढाने की कल्पना भी वे कर नहीं सकते।

इस तरह जिन लोगों का खादी या देहाती मज़दूरी से सीधा ताल्लुक है—याने जो माल तैयार करते हैं या उसके खरीदार हैं, अथवा मज़दूरों से दूसरी तरह का काम लेने वाले हैं—वे सब मज़दूरी बढने के कारण असमंजस में पड गये हैं। इसलिअे इस मसले को अच्छी तरह समझ लेना चाहिअे।

अगर किसी का यह खयाल हो कि गान्धीजी सिर्फ कुछ इनीगिनी कत्तिनों को पेटभर रोजी और पेटभर खाना देना चाहते हैं और दूसरे धन्धों में लगे हुअे देहातियों की उन्हें कुछ पर्वाह नहीं है, तो वह गान्धीजी को समझ ही नहीं पाया है। वे तो यह चाहते हैं कि हर अेक पेशेवाले को कम से कम आठ आने रोजी तो मिलनी ही चाहिये। यह तो मानना ही पडेगा कि इस आयोजन का अभिप्राय बहुत दूर तक जाने का है। गांधीजी के आर्थिक आयोजन का यह अेक अंश है। बुद्धिमान सरकार के द्वारा यह अभिप्राय जल्दी सफल हो सकता है। लेकिन गान्धीजी अपने कार्यक्रमों के लिये उनको अमल में लानेवाली सरकार की राह देखते नहीं बैठते। वे तो अपनी योजनाओं का अमल जिस क्षेत्र पर उनका काबू हो उसी से शुरू कर देते हैं। वे यह विश्वास रखते हैं कि अगर सरकार दर असल जनता की भलाई चाहती हो तो उसे अेक न अेक दिन यह महसूस करना होगा कि इस योजना पर अमल करना उसके लिये अपरिहार्य है।

इस योजना के मूल में जो विचारधारा है वह इस तरह है:—

हिन्दुस्तानियों का मुख्य धन्धा खेती ही बना रहेगा। उन्हें अधिकतर देहातों में ही बसना पडेगा। खेती का धन्धा अेक बडी हद तक और बहुत लम्बे अरसे तक आइन्दा भी मौसमी धन्धा होगा। वह कभी पूरे दिन और कभी आधे दिन के लिये, समय समय पर, साल में कुल मिला कर डेढसौ दिन का काम दे सकता है। यह डेढसौ दिन का काम भी लगातार नहीं होता। इसलिये किसान को अपने खेत के पास ही रहना पडता है। इसलिये उसे यह समझ लेना चाहिये कि अपने खाली वक्त के लिये उसे कोअी दूसरा देहाती

धन्धा ढूंढ लेना जरूर है। अगर वह केवल बरसात और खेती के ही भरोसे रहेगा तो चाहे जितना कर्ज या लगान की माफी मिलने पर भी उसे बेखटके रोटी नहीं मिल सकेगी। उसे या तो आबपाशी की मदद से सालभर खेती करनी होगी या तो दूसरा सहायक धन्धा करना होगा। जहां आबपाशी की गुंजाइश न हो वहां तो सहायक धन्धे के सिवा दूसरा चारा ही नहीं रह जाता।

तब, सवाल यह है कि दूसरा धन्धा कौन सा हो। खेती के बाद कपडे बनाने का धन्धा ही अेक अैसा धन्धा है जो बडे पैमाने पर किया जा सकता है। खादी-आन्दोलन का जन्म इस कल्पना में से हुआ। लेकिन उस वक्त यह मान लिया गया था कि अेक सौ पचास दिन खेती पर मिहनत करने से किसान को स्वस्थ जीवन की कम से कम जरूरी चीजें अधिकांश में मिल जाती थीं। जो कुछ कमी रह जाती थी उसके लिये सिर्फ थोडीसी आमदनी काफी थी। कभी कभी तो यहां तक कहा जाता था की कताई की मजदूरी नमकमिर्च या सागपात के लिअे काम आ सकती है। इस कल्पना के मूल में दुष्ट बुद्धि न होते हुअे भी वह गलत और अनुदार थी। इसलिये यद्यपि कत्तिनों के हित के लिये यह आन्दोलन जारी किया गया तथापि इस मूलभूत कल्पना के कारण उसके संचालकों का उद्देश सस्ती से सस्ती खादी बनाने का रहा। कुछ लोगों का तो यह भी खयाल रहा कि खादी कुछ समय के बाद मिल के कपडे का भी मुकाबला कर सकेगी। १९३६-३७ में यह गलती गान्धीजी के ध्यान में आयी। काम चाहे किसी किस्म का क्यों न हो यह जरूरी है कि हरेक शख्स को अेक दिन की पूरी मिहनत से स्वास्थ्यपूर्ण जिन्दगी के लायक आमदनी होनी ही चाहिये। उन्होंने यह हिसाब लगाया कि कोई भी परिवार तीस रुपया माहवार से कम में स्वास्थ्य-पूर्ण जिन्दगी गुजर नहीं कर सकता। परिवार के मानी औसत दो कमानेवाले और तीन आश्रित माने गये हैं। इस हिसाब से हरअेक देहाती मज़दूर को कम से कम पंदरह रुपया माहवार मजदूरी मिलनी चाहिअे। इससे कम मज़दूरी में माल तय्यार करने की कोशिश देहाती की बेबसीसे नाजायज फायदा उठाने के बराबर है।

जब मज़दूरी कम दी जाती थी तब भी खादी कीमत में मिल के कपडे की बराबरी नहीं कर सकती थी। मिल के कपडे के विरुद्ध खादी की रक्षा करने की कोई स्पष्ट सरकारी नीति नहीं है। उसे सिर्फ लोगों के देशप्रेम की भावना पर ही आधार रखना पडता है। खादीधारी देशभक्तों के लिअे यह समझ लेना जरूरी है कि जो खादी या दूसरी चीज़ मज़दूर को पेटभर मज़दूरी नहीं देती, उसमें रही स्वदेशीभावना कृपण है और अर्थ-शास्त्र की दृष्टि से निष्फल है। अगर खादी को बने रहना है तो उसे पेटभर मज़दूरी की शर्त पर ही टिकाना चाहिअे। अिसलिअे कत्तिनों की मज़दूरी बढाने की नीति अखतियार की गयी।

अब सवाल यह है कि यह नीति सफल कैसे हो? अगर सफलता से इतना ही मतलब हो कि थोडीसी खादी बने और उसे इनगिने देशप्रेमी, कलाप्रेमी या पैसेवाले लोग

आश्रय दें, तो कोई बडी मुश्किल बात नहीं है। चरखा संघ के लिअे कुछ लाख की खादी तैयार कर उसे बेच देना और अेक अच्छी परोपकारी संस्था के रूप में काम करते रहना असम्भव नहीं है। लेकिन खादी-आन्दोलन का अभिप्राय इतना संकुचित नहीं है। उसका उद्देश तो यह है कि देहाती की गरीबी और बेकारी दूर करने की सुव्यवस्थित योजना में वह अधिक से अधिक हाथ बटावे। इसी तत्त्व के आधार पर उसकी सफलता नापनी चाहिये।

इसके लिये यह जरूरी है कि देश के व्यवहार पर जिनका काबू है, या जो उसमें हिस्सा लेते हैं, वे मिल के कपडे के विषय में अपना अेक बिलकुल साफ रुख तय कर लें। अगर देहातों की गरीबी और बेकारी की समस्या का हल राष्ट्रीय पैमाने पर खोजना है तो, —यन्त्रों से बनी हुअी दूसरी चीजों की तरफ हमारा रुख चाहे जो हो—मिल के कपडे को तो हटना ही होगा। और उसकी जगह पेटभर मज़दूरी के सिद्धान्त के अनुसार बनी हुई खादी को देनी होगी।

फर्ज कीजिये कि राष्ट्र ने यह नीति मंजूर कर ली। तो अुसका मतलब यह होगा कि स्वदेशी या विदेशी किसी तरह का मिल का कपडा नहीं मिलेगा। अब खरीदारों का सवाल लीजिये। उपलब्ध आंकडों के आधार पर हिसाब किया जाय तो हिन्दुस्थान को हर साल करीब छह सौ करोड गज कपडे की जरूरत होती है। याने फी आदमी सोलह गज। आज के हिसाब से इसकी कीमत करीब अेक सौ बीस करोड रुपया होगी। मिल के कपडे की अपेक्षा पेटभर मजदूरी देनेवाली खादी कमसे कम दुगनी महंगी है। याने उसकी कीमत दो सौ चालीस क[...] रुपया होगी। सोलह गज खादी बनाने [...] लिअे ज्यादा से ज्यादा डेढ सौ घण्टे, या मोटे तौर पर, हर रोज आठ घण्टों [...] हिसाब से उन्नीस दिन कातना होगा, [...] सालभर तक रोज आधा घण्टा। आज मिल [...] सस्ता कपडा मिल जाता है इसलिअे अ[...] लिअे खादी बना लेना फुरसत होते [...] भी देहाती को नहीं सुहाता। कभी क[...] तो मिल का कपडा और खास कर जापा[...] कपडा अपने हाथकते सूत की बुनाई [...] मजदूरी से भी सस्ता पडता है। क[...] कभी तो वह निरे कपास से भी स[...] पडता है। इससे साफ जाहिर है [...] उसकी तह में कहीं न कहीं कुछ बुरा[...] जरूर है। अगर मिल का कपडा मिल[...] बिलकुल बन्द हो जाय तो फिर जो लो[...] बनावनाया कपडा खरीद नहीं सकते [...] अपने लिये कात लेना अधिक पसन्द करेंगे [...] देहातियों में से बहुतेरे जरूर कातेंगे। अ[...] उन्हें कच्चा माल ही न मिले या स्थानि[...] परिस्थिति अनुकल न हो तो बात दूस[...] है। जो लोग कताई में स्वावलम्बी [...] जायेंगे उनके लिअे कताई के दर बढने [...] कोई रुकावट नहीं होगी। उसका उन [...] कोई असर नहीं होगा। सिर्फ वे ही लो[...] नहीं कातेंगे जो कत्तिनों को जितना दे[...] पडता है उससे कहीं अधिक कमाते हैं। कुछ बहुत थोडे अैसे ी होंगे जो का[...] से लाचार हैं। कुल मिला कर ये [...] हमारी जनसंख्या के बीस प्रतिशत से अधि[...] नहीं होंगे। इन्हें लगभग बीस करोड [...] याने अडतालीस करोड रुपये की खादी [...] जरूरत होगी। यह खादी रोजी के लि[...]

कातने वालों को बनानी होगी, चाहे फिर वे बेकारी के दिनों में या हररोज अपने खाली समय में कातें। करीब पचास लाख कातनेवाले इससे अधिक खादी बना सकेंगे। उन्हें पेटभर मज़दूरी देना उनके साथ महज न्याय करना है, इससे अधिक कुछ नहीं। उनकी तादाद इतनी बडी नहीं होगी कि मज़दूरों से काम लेनेवाले किसान आदि दूसरे लोग उनका विरोध करें। किसान खुद भी कम से कम अपने लिअे कातने वाला तो होगा ही। इसलिअे अुसकी समझ में यह बात आ जायगी कि कताई के दर अधिक होंगे तभी अुसे कपडा सस्ता पडेगा। अगर वह कपास बोता है और कपास का भाव गिर जाता है तो उसका फायदा इसी में होगा कि जब खेती का काम न हो तब वह अपने परिवार से और मज़दूरों से कतावे। तब तो खानगी तौर पर खादी बना बना कर कताई के भाव घटानेवाले व्यापारियों का वह भी उसी तरह विरोध करेगा जैसे कि आज चरखासंघ करता है। अैसा व्यापारी चूसनेवाला समझा जायगा।

पश्चिम में मालिकों के यह बात मुद्दतों बाद खयाल में आई कि कम मज़दूरों अन्त में किफायती चीज़ नहीं है। मज़दूरी को पेटभर मज़दूरी, पूरी पूरी शिक्षा और आराम देना राष्ट्रीय दृष्टि से हीं नहीं तो खानगी दृष्टि से भी लाभकारी है। देहाती किसान और दूसरे लोगों को भी यह सबक सीखना होगा। जब वे उसका प्रत्यक्ष पदार्थपाठ देखेंगे तब ही यह उनकी समझ में आयेगा। अगर सरकारी अर्थनीति भी इस विषय म मदद दे तो खादी के द्वारा वह सबक जल्दी मिलेगा। यह, जैसा कि अेक बार गान्धीजी ने कहा था, 'अहिंसक समाजवाद' का प्रत्यक्ष व्यवहार है।

हमारा फर्ज

[प्रेमा कण्टक]

गुलामी की जंजीर को तोड देने की घोषणा के शब्द भारतभर में गूंजते ही हैं। हमारी दृष्टि के सामने अुस संग्राम का दृश्य आज भी ताजा है। लेकिन अैसा मालूम होता है कि पराधीनता की परिधि को पार कर जानेवाली योग्यताओं से भारतीय अंतःकरण मानों आज भी अपरिचित ही है। लोकशासित राज्यप्रणाली हमारा ध्येय तो है। किंतु युद्धचमान परिस्थिति में सर्वव्यापी रहनेवाले अेक महत्त्वपूर्ण नियम का परिचय हमें पूर्णतया नहीं मिला। अिसी नियम के अभाव की वजह से आज तक हमारी शक्तियों का गुणन नहीं हुआ, विभाजन ही होता आया है। मुसलमानों के विजयकाल में कहिअे, या तो अंगरेजों के विजय काल का अितिहास लीजिये, भारत की असमर्थता ने सूचित कर दिया है कि देश की सामुदायिक शक्ति में गति उत्पन्न नहीं हो

सकती। न लोक शक्ति संगठित हो सकती है, न प्रभावित। हमारी सभ्यता की रोशनी भी बुझ गअी–सी मालूम होती है। अभ्युदय के पथ पर ले जानेवाले भारतीय गुणों पर पानी फिर गया है। और अब तक दबे हुअे सब घृणित अैब अुद्दीपित होकर सामने आये हैं। क्या अिसमें हमारी जिम्मेदारी नहीं है ?

असल बात तो यह है कि राष्ट्रीयता का विकास करने के लिअे अेक अनिवार्य आवश्यक गुण है, और वह है फरमाबरदारी (डिसिप्लिन)। अैतिहासिक समय से यह हम में नहीं–सा मालूम होता है। हमें यह बात माननी होगी कि सुसंगठित शासन-व्यवस्था सफल होने के लिअे और युद्ध-काल में स्वाधीनता-देवी के दर्शन शीघ्रता से होने के लिअे यही सर्वमान्य और प्रभावी नैतिक आधार होता है। अुसका व्यापकरूप यूरोप ने हमारे सामने वर्षों से रक्खा है। काँग्रेस ने अुसका थोडासा पर्यवेक्षण और प्रयोग करके हमें दिखा दिया है कि अेकमेव प्रभावशाली कर्णधार नेता और अुसका आज्ञापालन करनेवाला संगठित जनसमुदाय दोनों मिल कर संसार को विस्मयकारी चमत्कार दिखला सकते हैं। काफी अनुभव के बाद भी लोग अपने भेदों को मिटाना नहीं चाहते।

कुछ पुरुषार्थ बताने के बाद जो अधिकार आज काँग्रेस के हाथ में आया है अुससे अनेकों का दिमाग फिर गया है। मानों यह कमर–तोड बोझ सहन नहीं हो सकता। अुन्मादग्रस्त मतवाले ताण्डव कर रहे हैं। धोखेबाजी की मानों अेक बाढ–सी आ रही है। आज काँग्रेस से अेका विलुप्त हुआ–सा दीख पडता है। फूट की धूल उडती है। मुद्दतों से छिपी हुअी दुष्टता, स्वार्थ और बर्बरता सहसा मुक्त होकर अेक प्रकार के विस्तीर्ण अग्निकांड में परिवर्तित हो गअी है। गांधीजी ने अनेक वर्षों की तपस्या के बाद काँग्रेस में जो पवित्रता और विचारशीलता स्थापित की थी वह मानों धूल के बादलों में धुंधली हो रही है। हिंसा का भी काफी प्रदर्शन हो रहा है। अगर काँग्रेस की नीति अंतःकलह से डाँवाडोल हो जायगी तो हमें सफलता का दर्शन होना तो दूर रहा, अुलटे हमारी शक्तियाँ अुत्तरोत्तर क्षीण होती जायँगी। आपस की फूट की वजह से आत्याचारिणी राजसत्ता के खिलाफ आन्दोलन करती हुअी जनता की गति कुंठित हो जायगी।

भारतवर्ष में गांधीजी ने अेक नअी विचार-धारा प्रविष्ट की है। अुनकी तपस्या और साधना का शुद्ध स्वरूप हमारे सामने आज वर्षों से खडा है। अुसने भारत का मस्तक अूँचा कर दिया है। भारत की ज्यादातर जनता गांधीजी के प्रति प्रेम और सम्मान रखती है। लेकिन राजनीति में समय समय पर जो जटिल प्रश्न अुत्पन्न होते हैं, जिनको हल करना आसान नहीं है, अुनका संपूर्ण दर्शन और सम्यक् आकलन सामान्य जनता तो नहीं कर सकती। अुनका अुत्तरदायित्व तो हमारे तत्त्वद्रष्टा नेता पर ही रहता है। लेकिन अफसोस की बात है कि जनता की प्रतिभा अधिकांश तो अुत्सव मनाने में ही व्यय होती है। अुनके बुद्धिवादी सिद्धांतों का कार्यक्रम पूरा करने में सब मिलकर कोशिश कम करते हैं। फिर भी अुसमें बुद्धिभेद कराने का प्रयत्न किया जा रहा है। प्रभुत्वप्राप्ति तथा प्रसिद्धि पर निगाह

रख कर दंभ और ओीर्ष्या से प्रेरित हो कर समुन्नत वातावरण में अेक जहरी विचार-धारा फैलाओी जा रही है। कॉंग्रेस के प्रति निष्ठा रखनेवाली भोलीभाली और अज्ञान जनता कॉंग्रेस के ही नाम पर प्रचार करने वाली अलग अलग विचारधाराओं को और बुद्धिभेदी रंग-ढंग को सत्य स्वरूप में नहीं पहचान सकती। जनता मानती है कि सभी कॉंग्रेसवादी लोग हैं, और सब का कहना सुनने लायक है।

यह दुःख भरी बात है। अपने घर में ही चौकस रहने का समय अब आया है। स्वतंत्रता तो पास ही आओी-सी मालूम होती है। अेक तरफ साम्राज्य सत्ता दीवार से पीठ लगा कर अंतकाल का महासमर मचाने के लिअे तैयार खडी है। दूसरी तरफ रियासतों का जटिल प्रश्न खडा है। जातीय खींचातानी समाज को दिन प्रति दिन जर्जर कर रही है। अब बद-किस्मती से कॉंग्रेस के अंदर जहर फैल रहा है। यह दिल का दर्द ज्यादा असहनीय मालूम होता है। क्यों कि अगर हमारी सब शक्ति का मूलाधार ही नष्ट हो जाय तब तो सारा मामला चौपट है। हमारे प्राणों को प्रकाश देने-वाले दीपक को हम बुझाना नहीं चाहते।

राष्ट्रीयता की भावना दृढ करने के लिए हमें चाहिए कि हम अपने व्यक्तित्व को भूल जायँ और सिपाही या सेवक की हैसियत से सोचना सीखें। जब तक भारत वर्ष आजाद नहीं हुआ है तब तक हम याद रक्खें कि हमें फिर भी लडना है। देशभर में अेक ही नीति और विचारधारा होनी चाहिअे। अेक ही नेता काफी है। अुसकी नीति का ज्ञान होने पर और अुसे पसंद करने पर अुसपर चलने से ही राष्ट्र का कल्याण होगा। नीतिच्युत होने पर राष्ट्र का भी शीघ्र नाश हो जायगा। प्रसंगवश नेता को सलाह देने में हानि नहीं है। लेकिन अुसका स्वरूप सार्वजनिक नहीं हो सकता। अपने अपक्व विचारों को सार्वदेशिक बनाने की अुत्कट अभिलाषा रखनेवाले देशसेवकों को थोडा संयम तो ज़रूर सीखना चाहिअे। सिपाही तो सब कोओी बन सकते हैं। सेनापति होना मुश्किल है। बहुत साधना और सेवा के बाद ही सच्चा सिपाही समर्थ सेनापति बन सकता है। आज तो अेक ही बात की आवश्यकता है। जनता को और ख़ास कर कार्यकर्ताओं को तालीम देनी चाहिअे कि वे अपने नेता के प्रति अनन्यनिष्ठ रहें। अुसकी सब आज्ञाओं की प्रेम से और ओीमान से तामिली करें। अुसने नियुक्त किअे हुअे अधिकारियों के हुक्मों को शीघ्रता से बजा लावें। जनता की शक्ति सुसंगठित और प्रभावशाली करने का यही अेक मार्ग है। बिखरा हुआ पानी कमजोर बन कर सूख जाता है। हम अुसे अेक रास्ते पर केंद्रिन्त करके शक्तिमान् बना सकते हैं और काम में भी ला सकते हैं।

दूसरे, किसीके आत्मगौरव को आघात पहुँचने का डर है ही नहीं। हम अपने मनोवेगों को अेक नेता की नीति के द्वारा व्यक्त कर सकते हैं। सेनापति का चुनाव तो हमारे हाथ की बात है। लेकिन यह बात तो सिद्ध है कि अक्सर सेनापति स्वयंसिद्ध ही अवतीर्ण होता है। देश की चिरसंचित, चिरलालायित भावनाओं का वह साकार स्वरूप होता है। जनता की आकांक्षा का वह सहज अधिकारी बन कर आता है। जनता को वह प्रोत्साहन देता है,

जनता अुसे प्रोत्साहन देती है। अुसके अमर, संजीवन-प्रद शब्दों से जनता के हृदय में से प्राणोन्मेषक चिनगारियाँ निकलती हैं। क्या अैसे औश्वरदत्त नेता को चुनाव करके नियुक्त करने की आवश्यकता रहती है ?

और जब वह अपने पूर्ण गौरव से राष्ट्र का कर्णधार बन चुकता है, तब क्या यह हमारा फर्ज नहीं कि हम अुसको देश का नियन्ता बना दें ? अुसका अनुकरण करें ? अुसके आदर्शों को आत्मसात् करने का प्रयत्न करें ? अगर देश अपनी शक्ति अुसके हाथ में न सौंपे तो क्या देशभक्ति के मानी सिर्फ वाणीविलास ही समझना चाहिअे ?

दूसरी बात भी महत्त्वपूर्ण है। हमारे नेता की नीति अहिंसा की सुदृढ नींव पर स्थित है। अिसलिअे अुसका अनुकरण करनेवाले कोअी गुलाम नहीं हो सकते। गुलाम वे हो सकते हैं जो हिंसा के अनुगामी हैं। सिकंदर, सीजर, नेपोलियन स्वयंसिद्ध नेता थे लेकिन वे सब हिंसावादी थे। अिसलिअे अुनके अनयायी सब गुलाम बन गये। अुनका बुद्धिस्वातंत्र्य सब नष्ट हो गया। अहिंसावादी सिपाहियों को अिस बात का डर नहीं। अुनका आत्मगौरव और आत्मविश्वास कभी नष्ट नहीं हो सकता। अेक अपूर्व संस्कृति का पुनरुत्थान गांधीजी कर रहे हैं। वे संस्कृति को नष्ट करना नहीं चाहते। संस्कृति को सब से बड़ा खतरा स्वच्छंदता से होता है। संयम से अुसकी शक्ति बढती है। अुपर्युक्त हिंसावादी सेनापतियों ने अपने आपको अपने सिपाही और जीवन के बीच में रक्खा था। सिपाहियों को वे जीवन का सीधा दर्शन नहीं होने देते थे। लेकिन गांधीजी तो चाहते हैं कि सब हिन्दी-जनता जीवन का संपूर्ण दर्शन करे और अुसका हृदय भी विशाल हो जाय। जनता और जीवन के बीच में आये हुअे पर्दों को गांधीजी हटा देते हैं। प्रजा की अन्तरात्मा को वे अुन्नत बनाने की कोशिश कर रहे हैं। अैसे आत्मनिग्रही और आदर्शवादी की नीति का पूर्णतया अवलंबन करने से लोगों की विद्याबुद्धि कैसे रफू-चक्कर हो जायगी ?

आजकल गान्धी सेवा संघ के समान सुसंगठित कार्य करनेवाली अेक भी संस्था नहीं है। वह गान्धीजी की नीति का स्वीकार करनेवाली संस्था है। फिर भी मैं प्रार्थना करती हूं कि अपने नेता के प्रति अनन्य निष्ठा प्रकट-रूप से घोषित करने की चेष्टा वह करे और देशभर में अुसीका प्रचार करने का निश्चय भी करे। अपनी नीति को न छोड़ते हुअे अेक अच्छा कार्यक्रम भी बनाया जाय जिससे कि देशभर का शैथिल्य और अुच्छृंखलता शीघ्रता से दूर हो सके। अिससे अनुचित हस्तक्षेप और निरंकुश स्वच्छंदता निर्जीवसी हो जायगी और लोग भविष्य के प्रजातन्त्र के लायक बनेंगे।

सत्याग्रही भारत की स्वराज्ययात्रा

[डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या]

खास कर भारतवर्ष को कॉंग्रेस की जिन जीतों की तरफ विशेष ध्यान देना चाहिअे और जिनपर खास गर्व करना चाहिअे अुनमें अेक जीत अैसी है जो मनुष्य-समाज के लिअे निरन्तर अेक दिव्य दृष्टान्त के रूप में चमकती रहेगी। अुस जीत को हम राष्ट्रीय झगडों के निपटारे में भारतीय जगत में अहिंसा की हिंसा पर विजय भी कह सकते हैं।

यहां भारतवर्ष में अेक पुराणप्रसिद्ध प्रतापी पौरस्त्य राष्ट्र अेक आधुनिक नन्हेसे द्वीप-निवासी राष्ट्र के विरूद्ध खडा है। अिस नन्हेसे राष्ट्र ने हथियारों के जोर पर अपनी हिम्मत, साहस, कपटप्रपंच, जमीन की कमी, अैतिहासिक परिस्थितियों का तकाजा और जीवनकलह की आवश्यकताओं के कारण अेक अैसा साम्राज्य कायम कर लिया है कि जिसपर, जैसा कि कहते हैं, "सूरज कभी नहीं डूबता"। अिसके जवाब में मजाक के तौर पर यह भी कहा गया है कि "ब्रिटिश साम्राज्य में सूरज अिसलिअे नहीं डूबता कि अुसे दुनिया के विभिन्न हिस्सों में फैले हुअे ब्रिटिश लोगों पर अपनी तेज रोशनी डाल कर निरन्तर निगरानी करनी पडती है।" ब्रिटन और हिन्दुस्तान के अिस अैतिहासिक संघर्ष में भारत ने जो विजय पायी है वह नैतिक, राजनैतिक और आर्थिक तीनों अेक ही साथ है। सच तो यह है कि मानवीय समाज के अितिहास में पहली बार भारत में राजनीति तथा अर्थशास्त्र और नीतिशास्त्र का भेद मिटा दिया गया है, और जीवन अेक ही दिव्य सारभूत द्रव्य का विविध-पहलूदार व्यक्तस्वरूप सिद्ध हुआ है। अुस विविधतापूर्ण जीवन के ये भिन्न भिन्न विभाग सिर्फ पहलू मात्र हैं।

यह चमत्कार भारत में कैसे हुआ? गुलामी और मुहताजी में जकडी हुअी अिस प्राचीन भूमि को यह विजय किसके प्रयत्नों की बदौलत प्राप्त हुअी? यह बात कैसे बनी कि अुन्नीसवी शताब्दी में राजनीति जिस असभ्य और अवनत तल पर थी वहां से अुठ कर वह अब अेक धर्म, संस्कृति या सदाचार के रूप में परिणत हो गयी है? कअी दिन पहले अिस प्रश्न का अुत्तर दिया जा चुका है। वह अुत्तर महात्मा गांधी के सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों के पक्षपाती भारतीयों ने नहीं दिया, बल्कि अेक पाश्चात्य ने, जिनका नाम प्रो० गिल्बर्ट मरे है। अुनके शब्द ये हैं:-

"अैसे आदमी के साथ सावधानी से पेश आओ जिसे न तो वैषयिक सुखों की रत्ती भर भी पर्वाह है, न आराम या प्रशंसा, या पदवृद्धि की। बल्कि जो केवल अुस काम को करने का निश्चय कर लेता है जिसे वह ठीक समझता है। अैसा आदमी भयंकर और दुःखदायी शत्रु है। क्यों कि अुसके शरीर पर तो तुम आसानी से विजय प्राप्त कर सकते हो पर अिससे अुसकी आत्मा पर तुम्हारा जरा भी क़ब्जा नहीं हो सकता।"

शारीरिक क्लेश की कअी पद्धतियों द्वारा गांधीजी ने शरीर पर आत्मा की प्र[illegible]ता कायम की है और अुस सिद्धान्त को

भारत के व्यापक राजनैतिक जीवन में विष्ट किया है। देशप्रेम का सारा मैल छुडाकर वह मनुष्य के प्रति प्रेम के मार्जित और अुन्नत रूप में प्रस्तुत किया गया है। भारतीय राष्ट्रीयता का विश्वबन्धुत्व की भावना के साथ सामंजस्य किया गया है। कोअी भी मानवीय प्रश्न, चाहे फिर अुसे आप किसी भी नाम से क्यों न पुकारें, धर्म और नीति के दायरे से बाहर नहीं माना जा सकता। जब धर्म की परिभाषा केवल मन्तव्यों की अेक तालिका या पूजापाठ की विधि ही हो सकती थी वह जमाना कब का जाता रहा। धार्मिकता की तह में त्याग की और अपने आपको मनुष्य की सेवा के लिअे समर्पित कर देने की वह वृत्ति होती है जो धर्म को पवित्र बनाती है। राजनीतिधर्म तो अिसके बिना पवित्र हो ही नहीं सकता।

अिस तरह कॉंग्रेस का ध्येय जो पहले गोलमोल और परोक्ष या टालमटोल की भाषा में व्यक्त किया जाता था अब हिन्दुस्तान का स्वराज्य पर अधिकार बिलकुल सीधे और असंदिग्धरूप में जाहिर करनेवाली भाषा में प्रकट किया जाने लगा। और अुसमें स्वराज्य प्राप्ति के शान्तिमय और अुचित साधनों का भी अुल्लेख सुस्पष्ट भाषा में कर दिया गया। गान्धीजी की यह कोशिश रही कि 'शान्तिमय और अुचित' के बदले 'सत्यमय और अहिंसक' ये शब्द रख दिये जायें। क्यों कि अुनके मत से तो शान्ति का अर्थ अहिंसा और औचित्य का अर्थ सत्यनिष्ठा ही है। हां, यह जरूर है कि असत्य सत्य पर सस्ती और शीघ्र फतह हासिल करता है। श्रीमती बेझण्ट हमेशा कहा करती थीं कि झूठ सांच के छह महीने आगे दौडती है। अगर सत्य और अहिंसा की वृत्ति भारत की सारी जनता में भरपूर न होती तो हिन्दुस्तान जैसे पैंतीस करोड जन-संख्यावाला और अितनी व्यापक संस्कृति और सभ्यता--या अुनका अभाव कह लीजिये--वाला देश कभी जाग्रत नहीं हो पाता। और न अुसे अपने सत्त्वों और कर्तव्यों का भान होता। अिसलिअे कॉंग्रेस का यश राजनैतिक सफलता के गज से नहीं नापा जा सकता। किसी राष्ट्र का अपनी गुलामी और अुससे छुटकारा पाने की तात्कालिक आवश्यकता का भान केवल अैसे मापकों से ही नाप सकते हैं जो कुछ अंश में अव्यक्त और सूक्ष्म होते हैं। अुन्हींका अुपयोग कॉंग्रेस का यश नापने में भी करना होगा।

भूतकाल में कॉंग्रेस ने अिस विमुक्ति के लिअे कअी तरह की कोशिशें कीं। पहले सुधारों का जमाना था। अुसके बाद निषेध का जमाना आया। फिर होमरूल का युग आया। तदनन्तर साम्राज्यांतर्ग औपनिवेशिक स्वराज्य का काल-खण्ड आया। फिर-- अगर शक्य हो तो साम्राज्य के भीतर, वरना साम्राज्य से बाहर-- स्वराज्य का जमाना आया। और अन्त में आया भारत का ध्येय सम्पूर्ण स्वाधीनता या पूर्ण स्वराज्य है अिस असंदिग्ध घोषणा का युग। अिस युग में जब कि यूरोप में साम्राज्य अुखाड दिये गये और राजाओं का शिरच्छेद किया गया और न केवल राजनीति की दृष्टि ही पक्षपाती होती गयी बल्कि अुसकी वृत्ति में भी कटुता फैल गयी, अुक्त घोषणा केवल राजनीतिज्ञों का वक्तृत्व या नीति-निपुणता से ही नहीं हो सकती थी। अुसके लिअे तो चरित्र और ध्येय की संशयातीत शुद्धता और अुसे सिद्ध करनेवाले तथा अुन

पर व्यवहार करनेवाले अेक सन्त, तत्त्वज्ञ और पूर्ण विकसित मनुष्य की ही आवश्यकता थी। अहिंसा के सिद्धान्त की संसार के दूसरे राष्ट्रों ने अब तक कद्र नहीं की है। हिन्दुस्तान में भी बहुतसे लोगों पर पाश्चात्य संस्कृति और पाश्चात्य राजनैतिक संस्कारों की गहरी छाप पड गयी है। अिसलिअे अुन्होंने अुस सिद्धान्त को अपने जीवन में व्यवहृत नहीं किया है। अहिंसा के सिद्धान्त का आधार मनुष्य का वह स्वभावसिद्ध सौजन्य है जिसके बिना हर क्षण, या हर किसी क्षण, मानवी जीवन का स्वास्थ्य खतरे में आ जायगा। अिसलिअे अिस सिद्धान्त की मान्यता अुस दूसरे निश्चित सिद्धान्त पर आधार रखती है जिसके अनुसार अिस संसार में मनुष्य का कर्तव्य शत्रु को जीतना नहीं बल्कि अुसका हृदय-परिवर्तन करना है। वह दूसरे अेक सामाजिक सत्य पर भी निर्भर है। वह सत्य यह है कि अिस संसार में अधिकार का जितना महत्त्व है अुतना ही कर्तव्य का भी है। और जिसमें सा साथ क ्व्य की भावना का भी अन्तरभाव न हो अैसे अधिकार की कल्पना करना भी असम्भव है। अेक बार जब लोग यह समझ लेंगे कि अधिकार के साथ कर्तव्य जुडा हुआ है तब अुनकी सम में यह भी आ जायगा कि हमारी दृष्टि से जो कर्तव्य दीख पडता है वह हमारे पडौसी की दृष्टि से अधिकार है। अिन आवश्यक तत्त्वों के आधार पर भारतीय स्वराज्य के सिद्धान्त का पुनर्निर्माण हुआ है। अिससे यह साफ है कि जब कि हम अेक राष्ट्र की दूसरे राष्ट्र के प्रति गुलामी का नाश करना चाहते हैं, तो अुसी न्याय से हर अेक व्यक्ति को अपने पडौसी के प्रति अपनी दासता को भी मिटाना चाहिअे। जब व्यक्ति दासता के जुअे को फेंक देंगे तो देहाती भी अपना जुआ फेंक देंगे और हर अेक गांव स्वयंपूर्ण हो जायगा। यह सब होते हुअे मनुष्यों के समुदायों का, याने समाज का, स्वातन्त्र्य भी सुरक्षित रहेगा।

संसार की सारी बुराअियों की जड है भय और लोभ। अिन दो दानवों की चुंगल से समाज मुक्त हो जायगा। मनुष्य को डर अिसलिअे लगता है कि कहीं अुसकी महत्त्वाकांक्षा अपूर्ण न रह जाय। मनुष्य लोभ का शिकार अपने पडौसी के डर के कारण बनता है। अिस तरह लोभ से भय और भय से लोभ पैदा होता है। जब मनुष्य अिन दोनों को छोड देता है, जब अुसकी यह धारणा हो जायेगी कि पडौसी की भलाअी मेरी भलाअी है, अुसका स्वास्थ्य मेरे स्वास्थ्य के लिअे अुपकारक है, अुसका अैश्वर्य मेरे सुख के लिअे पोषक है और मनुष्य अेक दूसरे से असम्बद्ध नहीं किन्तु सिर्फ परस्परावलम्बी हैं—तब परस्पर हित की आकांक्षा अुत्पन्न होगी। तब हिन्दुओं की प्राचीन प्रार्थना 'सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः' सत्याग्रह का सिद्धान्त समझने की कुंजी होगी। अिसीलिअे अहिंसा की वृत्ति से प्रभावित होकर कॉंग्रेस ने ग्रामोद्योगों के पुनरुज्जीवन पर जोर दिया है और स्वयंपूर्ण ग्रामीण जीवन तथा आधुनिक राजनीति के शुद्धीकरण में हाथ डाला है।

अिस प्रकार गान्धीजी ने भारत की राजनैतिक, सामाजिक तथा नैतिक भूमिका अेक ही साथ अुन्नत की है। अिस आन्दोलन के प्रारम्भ के कुछ दिन बाद ही खादी भारतीय स्वराज्य की आधारशिला बन गयी। और आज जब

कि शासन की बागडोर काँग्रेसी मन्त्रियों के हाथ में है, खादी अेक राजद्रोही संस्था का बिल्ला नहीं रह गयी, बल्कि पुनर्जीवित राष्ट्रीयता का प्रतीक हो गयी है। यह फल गान्धीजी ने कअी अनशनों के बाद प्राप्त किया है। लेकिन अस्पृश्यता को नष्ट करने के लिअे तो अुन्होंने आमरण अुपोषण जाहिर कर अुसके लिअे अपने प्राण न्यौछावर कर देने का ही संकल्प किया था। अिन दो चमत्कारों को सिद्ध करने के बाद हम जानते थे कि वे तीसरे बडे सुधार की ओर मुडेंगे। यह तीसरा सुधार है शराब-बन्दी। लेकिन अिसके लिअे हम जिनकी कल्पना करते थे अुनकी अपेक्षा कहीं सौम्य अुपायों का प्रयोग करने से अुनका काम चल रहा है। आर्थिक तल पर खादी, सामाजिक तल पर अस्पृश्यता-निवारण और नैतिक तल पर शराब-बन्दी ये तीन मयालें हैं जिनपर अिस अहिंसा के कारीगर ने स्वराज्य का मन्दिर अुठाया है।

अक्सर लोग पूछते हैं कि अहिंसा की यह कला क्या साधारण मनुष्य के बरतने के लिअे अत्यधिक क्लिष्ट नहीं है? हमें अिस सवाल का जबाब देना चाहिअे। स्वयं धर्म की कला और परमात्मा के अस्तित्व के प्रमाण भी तो साधारण मनुष्य की बुद्धि से परे हैं। लेकिन फिर ी संसार में जो लोग अपने अनेकविध कर्तव्य केवल सुचारूरूप से ही नहीं बल्कि बन्धुत्व की वृत्ति से सम्पन्न करते हैं अुन सब की प्रवृत्ति की प्रेरक और स्फूर्तिदायक शक्ति धर्म और अीश्वर के प्रति विश्वास की ही अुपज है। सत्याग्रह का मूलभूत सिद्धान्त समझ में आने पर अुसकी विधि बहुत सरल है। दर असल पुराने जमाने में जितने धर्म प्रस्थापित हुअे अुनके तत्त्व बहुत ही सरल थे। तो भी अुनके आसपास बहुत ही क्लिष्ट दर्शन ग्रथित किये गये। फिर भी अिस क्लिष्टता के कारण समूचे राष्ट्रों के जीवन अुनके तत्त्वों की सरलता से लबालब होने में कोअी रुकावट नहीं हुअी। और न अुनके कारण अुन तत्त्वों पर स्थित धर्मों की विजय में ही कोअी बाधा पहुंची।

हमने अपने जमाने में ही यह देखा है कि सत्याग्रह ने अपनी प्रारम्भिक और असंस्कृत अवस्था में निःशस्त्र प्रतिकार का स्वरूप कैसे लिया। अिस आन्दोलन में गर्व और कटुता थी और द्वेष तथा हिंसा की छटा से वह बिलकुल मुक्त न था। फिर अुसका विकास असहयोग में हुआ। असहयोग में क्रोध और शायद प्रतिशोध का भी अंश रहा। लेकिन जल्दी ही वह सविनय अवज्ञा के रूप में परिणत हुआ और लोगों को यह समझाने के लिअे कि आन्दोलन के अिस पहलू का असली स्फूर्तिदायक तत्त्व अहिंसा है गान्धीजी को भगीरथ प्रयत्न करने पडे। जब लोगों के दिलों में यह बात अच्छी तरह बैठ गयी कि संज्ञा का (अवज्ञा का) जितना महत्त्व है अुतना ही अुसके विशेषण (सिव्हिल) का भी है तब कहीं सत्याग्रह का अुपक्रम हुआ। अिस तरह अहिंसा केवल अेक नकारात्मक घटक नहीं रह गया, वरन् अेक विधायक शक्ति जो कि अुस प्रेम के रूप में प्रकट हुअी जो दूसरों को नहीं जलाता बल्कि खुद खाक हो जाता है।

सत्याग्रह अपने जन्म और दृष्टि में पूर्णतया भारतीय है। समय समय पर प्राचीन ॠषियों ने सत्य और अहिंसा पर डटे रहने

के और राजाओं तथा योद्धाओं के आक्रमणों का सफल प्रतिकार करने के अिस सरल मार्ग का अनुसरण किया है। अुसका अेक व्यावहारिक अस्त्र के रूप में प्रयोग करने की अेक जरासी शर्त है। वह यह है कि सत्याग्रही अपने आपको सत्य की खोज करनेवाला माने और मनुष्य, सरकार, समाज, गरीबी तथा मौत के डर से छुट्टी ले ले। अैसी साधना के कारण त्याग और विनय की यथार्थ भावना और अुसके द्वारा साहस की वृत्ति अुस सिद्धान्त के अनुयायियों में अुत्पन्न हो जाती है। अिस नये तत्त्व से परिपूर्ण राजनीति भी अेकदम समुन्नत और आध्यात्मिक हो जाती है। अिसी कारण वर्षों के वन्दीवास के बाद काकोरी और अन्दमान के कैदियों ने अहिंसा के लोहे को मान लिया है और प्रकटरूप से आतंकवादी मार्गों का परित्याग कर दिया है। केवल भारतवर्ष के लिअे ही नहीं वरन् सारे संसार के लिअे अेक नये युग का आरम्भ हुआ है। हमारी यह आशा है कि लडाअियों और लडाअी की अफवाओं के दौर दौरे के अिस जमाने में भी हमारे जीते जी वह दिन आयगा जब कि राष्ट्रीय और आन्तर्राष्ट्रीय झगडों का निपटारा द्वेष और युद्ध के बजाय प्रेम और शान्ति से होगा।

(अंग्रेजी से अनूदित)

संगठन-विवेक

[काका कालेलकर]

"अिधर कुछ दिनों से जातीय मण्डल बनाने की अनिष्ट प्रथा विद्यार्थियों में चल पडी है। आम तौर पर अैसे मण्डल धार्मिक दृष्टि से काम नहीं करते। वे तो केवल अपनी जाति के विद्यार्थियों को अधिक सुविधायें प्राप्त करा देने के लिअे और अपने सहधर्मी भाअियों को सुखी करने के प्रयत्न में ही लगे हुअे रहते हैं। कौम को कितनी सुविधायें हों तो वह सुखी समझी जाय अिसकी कोअी हद ठहराअी नहीं जाती। अूपर से देखने में तो अुनकी सारी कार्यपद्धति राष्ट्र की प्रगति के प्रतिकूल नहीं मालूम होती। परन्तु फिर भी जब कि जातिवाद का जहर समाज में अितना ज्यादह फैल गया है अैसी हालत में क्या आप यह नहीं समझते कि अिस तरह की जातीय संस्थायें खास कर विद्यार्थियों में तो कतअी नहीं होनी चाहिअे? क्यों कि यह तो स्पष्ट ही है कि अैसी संस्थाओं में काम करते हुअे विद्यार्थी दूसरी जातियों के संसर्ग में कम आवेंगे। यह भी साफ है कि जातिवाद की दवा तो अेकदूसरे का संसर्ग बढाना ही है। यह लिखते हुअे मुझे आपके "जीवन विकास" में सें अेक वाक्य याद आ रहा है। अुसे अगर यहां टांक दूं तो मेरा दृष्टिबिन्दु अधिक स्पष्ट हो जायगा।

"मेरा नम्र मत है कि जातीय छात्रालय अन्ततः लाभदायक नहीं होते। आज के जमाने

में तो विभिन्न समाज के लडके साथ साथ रहें, साथ साथ पढें तभी अुनकी बुद्धि और हृदय का योग्य विकास हो सकता है।"

(छत्रालय-जीवन)

यह तो छात्रालयों के विषय में हुआ। लेकिन क्या जातीय मण्डलों के विषय में भी आपका यह कथन अुतना ही सत्य नहीं है? अिन मण्डलों के संचालकों के पास अेक बड़ा अच्छा बहाना होता है। "हम छोटे क्षेत्र से ही आरम्भ क्यों न करें? अेकदम विशाल क्षेत्र में पडने से कोअी काम ही नहीं हो पाता"। अिस और अैसी दलीलों में कितना तथ्य है? छोटा क्षेत्र ही खोजना है तो ज़िले ज़िले के अलग मण्डल क्यों नहीं बनाते? अैसे क्षेत्र-निष्ठ मण्डल जातीय मण्डलों से कौमी अैक्य के लिअे क्या अधिक लाभदायी न ठहरेंगे?"

यह पत्र मेरे पास आये दो महीने हो गये। अनवधान के कारण अुसका जवाब देना रह गया। आज अेकाअेक वह अैसे मौके पर हाथ आया जब कि मैं स्वयं अिसी विषय पर बहुत जोर से सोच रहा हूँ। अेक तो 'जातपांत तोडक मंडल' की ओर से अेक अंग्रेजी परिपत्र आया है, जिसमें यह सूचना है कि आगामी मर्दुमशुमारी में हमें अैलान करना चाहिअे कि हम किसी जात के नहीं हैं। और दूसरी ओर अिसी समय मैं गोवा के 'सारस्वत ब्राह्मण समाज' के वार्षिक अधिवेशन का सभापति बनने जा रहा हूँ। सावंतवाडी और गोवा मेरे पुरखाओं का स्थान है। हम सारस्वत लोग गोवा को अपना खास निजी स्थान मानते हैं। अुक्त समाज के वार्षिक अधिवेशन पर जाने का वादा मैंने १९२२ में किया था। वहां जाने के बदले तब मैं जेल चला गया। अिस वादे से अुऋण होने के लिये अब सत्रह बरस के बाद वहाँ जा रहा हूँ।

'जातपांत तोडक मंडल' को क्या जवाब दूं? अपने जातभाअियों को क्या संदेशा सुनाअूं? अूपर के प्राश्निक को क्या जवाब दूं?

वर्ण और जाति के बारे में जो विचार मैंने कायम किये हैं, जिन सिद्धांतो पर मैं आ पहूँचा हूँ अुनका कुछ निर्देश मेरे 'लोकजीवन' में मैंने किया ही है।

मैं जाति नहीं मानता। अितना ही नहीं किंतु मैं जाति को वर्ण की विरोधी मानता हूँ। सनातनी लोग अक्सर कहते हैं कि जातियां वर्ण के ही सिद्धान्त पर रचे हुअे समाज-संगठन के अुपविभाग हैं। वर्ण अगर विराट-समाज की डालियां हैं तो जातियां अुसकी टहनियां कही जा सकती हैं। मेरी दृष्टि से यह ख्याल गलत है। वर्ण समाज के 'फंक्शनल' (कामकाजी, कर्तव्यात्मक) विभाग हैं, तहां जातियाँ "क्लैनिश" (गोत या कुल-संबंधी) हैं। वर्ण सद्धर्म-मूलक है, जाति केवल वंशमूलक है अथवा बहुत तो वर्गमूलक है। सब जातियाँ अेक ही तत्त्व से बनी हुअी नहीं है। जातिमीमांसा किसी महा-कान्तार से अधिक जटिल है।

जाति-संस्था प्राकृतिक है। अिसलिअे अुसे पापमूलक नहीं कह सकते। किन्तु वह संस्था अब काल ग्रस्त हो गयी है। बिना अुसकी निन्दा किये अुसे दफनाना चाहिअे। जाति प्राकृतिक होने से अुसमें काफी शक्ति थी और अब भी है। किन्तु वह अब संस्कृति के लिअे और प्रगति के लिये पोषक नहीं है। राष्ट्रीयता के लिये तो स्पष्टरूप से वह घातक है। अिसलिअे भी अुसे तोड़ना ही चाहिअे।

समाजशास्त्र का अेक व्यावहारिक सिद्धान्त हमें हमेशा ध्यान में रखना चाहिअे। हर समय समाज के सामने संगठन की अेक स्वाभाविक मर्यादा होती है। अुसे युगधर्म ही समझना चाहिअे। युगधर्म के बताये हुअे संगठन से अगर छोटा यानी संकुचित संगठन किया जाय तो वह समाज द्रोही सिद्ध हो जाता है। और अगर युगधर्म की मर्यादा लांघ कर अधिक व्यापक संगठन करने की कोशिश की जाय तो वह व्यर्थ जाती है। परशुराम के दिनों में ब्राह्मण-संगठन और क्षत्रिय-संगठन शायद योग्य था। आज अगर कोअी वैसा संगठन करने जावे तो अुससे कोअी लाभ नहीं होगा। बल्कि विराट हिन्दू समाज का अुससे द्रोह ही हो जायगा। शिवाजी या पृथ्वीराज के दिनों में किसीने ब्राह्मण-संगठन करने की बात नहीं छेडी। किन्तु सब लोग हिन्दू संगठन के ही पीछे पडे। अुन दिनों हिन्दू संगठन में अेक बडी खामी रह गयी थी अस्पृश्यता निवारण की। हरिजनों को अस्पृश्य समझ कर समाजबाह्य करार देने से जो द्रोह हमने किया अुसकी काफी सजा हमें भुगतनी पडी, और आज भी भुगत रहे हैं। जो समाज अपने कमजोर हिस्से की अुपेक्षा करता है वह शापित हो जाता है। अुसकी जीवन-सिद्धि नष्ट हो जाती है।

आज अगर हम राष्ट्र-संगठन को छोड कर केवल हिन्दूसंगठन करने जायेंगे और हिन्दू-संगठन में भी हरिजनों को भूल जायेंगे तो वह युगद्रोह होगा। आज तो सब जातियाँ, सब धर्म, सब प्रान्त और सब वर्गों का अेक भारतव्यापी विराटसंगठन आवश्यक है अैसा युगधर्म पुकार पुकार कर कह रहा है। अिससे छोटा संगठन राष्ट्रद्रोही होगा। युगधर्म से वह गिर जायगा।

जातियां तो आखिर अेक विराट समाज के छोटे छोटे हिस्से हैं। जाति कहीं कहीं वंशमूलक है। कहीं कहीं आजीविका के धंधे पर आधार रखती है। अुसके साथ साथ कहीं कहीं प्रादेशिक तत्त्व भी मिला हुआ है। धार्मिक मतभेद के तत्त्व ने भी कहीं कहीं जातिभेद पैदा किये हैं। अिन जातियों का नाश ही करना आज का युगधर्म है। अुनके संगठन की बात हो ही नहीं सकती।

अब रही प्राश्निक के सुझाये हुअे क्षेत्र-संगठन की बात। क्षेत्र-संगठन, ग्राम-संगठन, प्रादेशिक संगठन आजकल बडे लोकप्रिय होते जा रहे हैं। पुराने संगठन के दोष अनुभवसिद्ध होते हैं। अिसलिअे अुनके प्रति अरुचि पैदा करना आसान है। नये सुझाये हुअे संगठन में अेक ही दोष होता है। वह यह है कि अुसका अनुभव कहीं किसीने नहीं किया होता। अिसीलिअे नयी बात का पुरस्कार सुधारक बडे जोश से कर सकते हैं। और पुरानी बातों से अुकताया हुआ समाज नयी बात को अुसकी नवीनता के कारण ही आजमाने के लिये तैयार हो जाता है।

किसी भी संगठन की बुनियादी प्रेरणा ही जब मलिन होती है तब— चाहे वह किसी भी किसम का संगठन हो— अुसमें भयानक दोष आ ही जाते हैं। संकुचित स्वार्थ, परस्पर अविश्वास, अीर्ष्या, द्वेष आदि सामाजिक दुर्गुण जब समाज में फैलाये जाते हैं तब किसी भी किसम का संगठन शुभ परिणाम नहीं दे सकता। क्या क्षेत्र-संगठन और क्या भाषा-संगठन, जब लोगों का चारित्र्य हीन हो जाता है तो अिन सब से गंदगी

ही पैदा होती है। क्या आज भारतवर्ष में हम नहीं देखते कि जातीयता के झगडों से प्रान्तीयता के और भाषा के झगडे किसी कदर कम भद्दे नहीं हैं? जहाँ भेद देखा वहाँ अिन तंगदिलों को विरोध की बू आने ही लगती है। जहाँ तनिक अलग रिवाज देख लिया वहाँ वे कहने लगते हैं कि यह तो बड़ा संस्कृति-भेद है। और फिर स्वत्व-रक्षा की बात वायुमंडल में गूंजने लगती है। ये सब बातें किस चीज़ के लक्षण हैं? ये बातें यही बताती हैं कि हम लोगों में प्रागैतिहासिक बर्बरता के काफी अंश अब भी मौजूद हैं और धर्म के नाम पर हमने अुन्हें अभी तक सम्हाल रक्खा है।

अदूरदृष्टि और जल्दबाज सुधारक अिस राष्ट्रीय दोष का मूल ढूंढ कर अुसे अुखाडने की अपेक्षा भेद के तत्त्वों का ही नाश करना चाहते हैं। वे यह नहीं देखते कि भेद के सब के सब तत्त्व नष्ट करने लायक नहीं होते। अर्थशून्य, कालग्रस्त या असामयिक भेदों का तो तुरन्त नाश करना ही चाहिये। किन्तु भेदमात्र का नाश न तो शक्य है, न अिष्ट। भेद से तो व्यक्तिगत अेवं सामाजिक जीवन समृद्ध भी हो सकता है। भेद के होते हुअे भी अभेद को परिपुष्ट करना, हृदय-संगठन करना, यही तो जीवन-कला है।

अब सवाल यह अुठता है कि जो जाति-संगठन मौजूद हैं अुनका क्या किया जाय? अुनके लिये दो रास्ते हैं। जिन लोगों का जाति और जाति-संगठन पर से विश्वास हट गया है अुन्हें चाहिये कि वे तुरन्त दोनों से अपना अिस्तीफा दे दें और अुन चीजों के प्रति केवल असहयोग ही की नीति रक्खें। प्रतिष्ठित, संस्कारी, चारित्र्यशील और सेवापरायण लोग जब किसी संगठन को छोड़ देते हैं तब वह संगठन आप ही आप अप्रतिष्ठित होकर टूट जाता है या गल जाता है। जातिसंगठन का भी अैसा ही होगा। किन्तु अैसे संगठन पर विश्वास रखनेवाले शरीफ लोग भी हैं और अुनकी संख्या भी कम नहीं है। अिसलिअे जाति पर से जिनका विश्वास हट गया है वे अपने जीवन में तो जाति-तत्त्व का पालन कहीं भी न करें और अैसा होते हुअे भी जाति में माननेवाले शरीफ लोगों के साथ संगठन-सुधार के कामों में सहयोग दें।

मैं अूपर कह चूका हूं कि जाति-तत्त्व मूलतः दोषपूर्ण नहीं है, जाति-संगठन स्वभावतः पापमूलक नहीं है। किन्तु वह कालग्रस्त है और अुसमें अनेक दोष घुस गये हैं। अुसका अेक प्रधान दोष तो यह है कि जातिनिष्ठ लोग जाति के बाहर के समाज के प्रति अपना जो स्वाभाविक कर्तव्य है अुसको भूल जाते हैं। अगर जाति-संगठन में घुस कर अुसे अिस कर्तव्य का बोध कराया जाय और अैसे कर्तव्य का पालन पूर्णरूप से करने के लिये प्रेरणा दी जाय तो वह अिष्ट ही है।

कहा जाता है कि किसी बछडे को काफी लंबी रस्सी से अेक झाड से बांध कर चरागाह में चरने छोड़ दिया था। अुसने अपनी रस्सी झाड के आसपास चक्कर लगा-कर अुसमें लपेट लपेट कर ओछी कर डाली। यहाँ तक कि अुसके गले में ही फांसी लगने लगी। अब अुस बछडे की मुक्ति दो तरह से हो सकती है। या तो रस्सी काट दी जाय या बछडे को पहले से उलटे चक्कर लगाने की प्रेरणा दी जाय जिससे रस्सी ढीली हो

जाय और अुसे घमने-चरने का सुभीता हो।

जहाँ स्वार्थ बढे और कृतार्थ का गला घुटने लगे वहाँ स्वार्थ की दिशा छोड कर परार्थ, परमार्थ और बलिदान का तत्त्व बढ़ाना चाहिअे। और अिस तरह जाति-तत्त्व का अुद्धार कर के अुसका व्यापक संगठन और व्यापक सेवा में विसर्जन करना चाहिअे।

छोटे छोटे संगठन कार्यशक्ति की मर्यादा को ले कर ही किये जाते हैं। स्व-पर भाव बढ़ाने के लिये नहीं।

प्राश्निक ने क्षेत्र-संगठन की बात हमारे सामने रक्खी है। चन्द साम्यवादी लोग क्षेत्र-संगठन का घोर विरोध करते हैं। वे कहते हैं कि "अेक प्रदेश में या क्षेत्र में रहना यह कोओी अेकता का और संगठन का तत्त्व नहीं है। अेक गांव में रहने से सब किसम के लोगों में अेकता नहीं पैदा होती। जिनके हित-संबंध परस्पर विरोधी हैं, वे अेक ही प्रदेश में रहते हैं, अिसलिये क्या वे अेक हो सकते हैं? प्रादेशिक संगठन अर्थशून्य है अिस-लिये वर्ग-संगठन की ओर ही ध्यान देना चाहिअे।" कॉम्युनॅलिस्ट (जातिवादी) और कम्युनिस्ट (साम्यवादी) में अितना साम्य है तो सही।

असली बात यह है कि हमें वंश, वर्ण और वर्ग, अिन तीनों सामाजिक प्रस्थानों का स्वभाव समझ लेना चाहिअे। किन बातों में भाषा-संगठन ठीक है? किन में क्षेत्र-संगठन लाभदायी है? वर्ण-संगठन किस स्वरूप का होना चाहिअे? वर्ग-संगठन का हेतु क्या हो सकता है? वंश-संगठन क्यों नहीं करना चाहिअे?— आदि सब बातें अच्छी तरह समझ लेनी चाहिअे। अिन बातों का स्वरूप समझने से ही आगे का रास्ता साफ हो जायगा।

जिस संस्था के लिये मैं गोवा जा रहा हूं अुसका केवल नाम ही जातिनिष्ठ है। अुसके सदस्यों में और दाताओं में भिन्न जाति के लोग भी हैं। अखिल समाज की ही वे सेवा करते हैं। शिक्षा-प्रचार और साहित्य-सेवा के अुसके काम में अुसने किसी किसम की संकुचितता नहीं रक्खी है। बछड़ा अपने गले का फांसा ढीला कर रहा है और अपने घूमने का दायरा भी बढ़ा रहा है।

जब मिल के मज़दूर लोग अपनी मज़दूरी बढाने के लिये नहीं किन्तु ग्राहकों के लिये माल सस्ता कराने के हेतु संगठन और हड़ताल करते हैं तब अैसे संगठन का स्वरूप ही बदल जाता है।

बन्धुत्व से यह मतलब नहीं है कि जो तुम्हारा बन्धु बने और तुमसे प्रेम करे, अुसके तुम बन्धु बनो, और अुससे प्रेम करो। यह तो सौदा हुआ। बन्धुत्व में व्यापार नहीं होता। और मेरा धर्म तो मुझे यह सिखाता है कि बन्धुत्व केवल मनुष्यमात्र से ही नहीं बल्कि प्राणिमात्र के साथ होना चाहिअे। हम अपने दुश्मन से भी प्रेम करने के लिअे तैयार न होंगे तो हमारा बन्धुत्व निरा ढोंग है। दूसरे शब्दों में कहूं तो, जिसने बन्धुत्व की भावना को हृदयस्थ कर लिया है वह यह नहीं कहने देगा कि अुसका कोओी शत्रु है।

—गांधीजी

संघवृत्त

आगामी संमेलन

संघ का पंचम वार्षिक सम्मेलन गुरुवार, ता० २० अप्रैल सन् १९३९, से बुधवार, ता० २६ अप्रैल सन् १९३९ ई०, तक सात दिन **वृन्दावन** (जि. चंपारन, प्रान्त, बिहार) में करने के निश्चय की सूचना सदस्यों को दी जा चकी है।

इस संमेलन में हम कौन से महत्त्व के निर्णय करेंगे, इसकी कल्पना मैं नहीं कर सकता। अभी तक मेरे मन में कोई अैसे नये प्रस्ताव खडे नहीं हो रहे हैं, जो मैं सदस्यों के सामने रखूं। फिर भी चारों ओर देश की जो हालत और आबोहवा है, उसपर से हमारा संमेलन फीका जाने का संभव नहीं है। भाषण के रूप में कोई विशेष बातें कहने का ख्याल मेरे दिल में नहीं उठ रहा है। लेकिन, अगर सदस्य मुझे अपने प्रश्न भेज देंगे तो उनका समाधान करने की कोशिश करूंगा।

चर्चा के कुछ विषय

संमेलन में चर्चा के योग्य जो विषय आज हमारे सामने आ सकते हैं, उनमें से कुछ यहां बताता हूं :-

१. कई जगह पर विधायक कार्यक्रम में देहाती कार्यकर्ताओं का जनता अच्छा साथ देती है। कई जगह जनता उदासीन या विरोधी भी होती है। दोनों के कारण और इलाज।

२. हुदली में हमने देहाती सेवा के लिये अेक कार्यक्रम सूचित किया था। इसमें कुछ कम-ज्यादा करने की जरूरत।

३. काँग्रेसी सरकारों से विधायक कार्यक्रम के क्षेत्रों में की जानेवाली अपेक्षा।

४. जातीय और राजकीय झगडों में होती हुई गुंडागिरी का इलाज।

५. हुदली में जो नीति-बदल हुआ, उसके अनुभव और आगे के लिये विचार।

६. काँग्रेस के तंत्र में पैठी हुई सड़न के कारण और इलाज। काँग्रेस को सच्चे दिल के लोगों का सहयोग दिलाने और फरेबी लोगों से बचाने के इलाज।

७. संघ की तारीफ अेक राजनैतिक दल के रूप में होने लगी है,- इस पर विचार।

८. हम में आपसमें परस्पर असंतोष के कारण और उसके लाज।

इन चर्चाओं को उपस्थित करने का अच्छा रास्ता यह है कि जिस सदस्य को जिस विषय में रुचि हो, वह अेक छोटे प्रस्ताव या प्रश्न के रूप में उसे मंत्री के पास भेज दें। प्रस्ताव के रूप में रखने के मानी यह न समझे जायें कि संमेलन को उस विषय पर कोई प्रस्ताव मंजूर करना ही होगा। लेकिन, सदस्यों को उसपर चर्चा करने के लिये वह अेक अनुकूल तरीका है। उदाहरणार्थ नं० २ को इस तरह उपस्थित किया जा सकता है :- 'संघ ने हुदली में जो देहाती कार्यक्रम बनाया था उसमें देहाती उपचार-गृह और परिश्रमालय द्वारा जनता की सेवा करने के कार्यक्रम पर जोर देने की सिफारिश की जाय।'

आर्यसमाज-सत्याग्रह और संघ के सदस्य

संघ के कुछ सदस्य आर्यसमाजी हैं। उन्होंने यह प्रश्न पूछा है कि निजाम-रा

में आर्यसमाज का जो दमन किया जाता है, उसके विरोध में जारी किये गये आंदोलन में वे हिस्सा ले सकते हैं या नहीं ? इस विषय में संमेलन तक के लिओ पू० बापूजी तथा स्वामी अभयदेवजी आदि से सलाह कर के जो राय मैंने दी है वह नीचे देता हूं।

"इस में शक नहीं कि आर्यसमाज का आंदोलन अपने धार्मिक हकों की रक्षा या प्राप्ति के लिओ है। लेकिन जो बातें हमारे सामने पेश हुई हैं, उनसे मालूम होता है कि उसके संचालन में कौमी (सांप्रदायिक) द्वेष रखनेवाले व्यक्ति और संस्थाओं से वह बचने नहीं पाया है। (अब तो यह भी सुना जा रहा है कि कुछ बंब-स्फोट के बनाव हुअे हैं। मुमकिन है कि उनका इस आन्दोलन से कोई भी संबंध न हो, लेकिन यह साफ है कि उसके अहिंसक संचालन में अडचनें पैदा हो रही हैं।) इस अवस्था में संघ के सदस्यों का उसमें प्रत्यक्षरूप से शरीक होना योग्य न होगा। संघ के आर्यसमाजी सदस्यों में जो ताकत हो उसे वे आंदोलन को कौमी-वादी और हिंसा-वादी व्यक्ति और संस्थाओं के संसर्ग से बचाने के लिओ लगा दें तो आर्यसमाज और हैद्राबाद स्टेटकाँग्रेस दोनों के लिओ अच्छा होगा। अगर इस दोष का निवारण न किया जा सके तो इस आन्दोलन को चालू रखने में खतरा है और संघ के सदस्य का उस में भाग लेना दोष होगा। अच्छा तो यह मालूम होता है कि और सब आंदोलन समेट लिओ जायँ, और कौमी तथा हिंसा-वादियों से बचने का प्रबंध कर कर जवाबदार राज्य-तंत्र प्राप्त करने के लिओ अधिक व्यापक आंदोलन करने की स्टेटकाँग्रेस की ताकत बढाई जाय।"

ज्यादा चर्चा संमेलन में हो सकती है।

परिपत्र

हाल ही में संघ के सदस्यों को मैंने अेक परिपत्र भेजा था।

अनेक सदस्यों की ओर से उसके उत्तर मिले हैं। कई उत्तर अब तक नहीं आये हैं। उनका सार संमेलन के समय बताया जायगा। परिपत्र की कलम २, ३, और ५ के विषय में मैंने जो राय दी है, उसकी योग्यता के विषय में कुछ सदस्यों ने शंका उठाई है, और संमेलन में उसकी चर्चा करना चाहा है। यह ठीक ही है। सदस्यों से मेरा निवेदन है कि परिपत्र के सारे विषय के बारें में संघ को किस नीति पर चलना चाहिये, उसे प्रस्तावों के रूप में वे कार्यालय में भेज देंगे तो चर्चा व्यवस्थित ढंग से चलाने में सुविधा होगी।

श्री सुभास बाबू का आक्षेप

त्रिपुरी अधिवेशन के कुछ दिन पहले राष्ट्रपति सुभास बाबू ने अेक वक्तव्य निकाला था। उसमें संघ पर राजनैतिक दल होने का आक्षेप किया गया था। उसके प्रत्युत्तर में संघ के अध्यक्ष ने अेक वक्तव्य निकाला था। वह सिवा 'डेलीन्यूज,' नागपुर के और कहीं नहीं छपा। वह महत्त्व का होने से उसका हिंदी अनुवाद नीचे दिया जाता है :-

"हाल ही में राष्ट्रपति का अेक जाहिर वक्तव्य छपा है जिसमें उन्होंने गान्धी सेवा संघ का जिक्र करते हुअे कहा है, "अगर जल्दीवादी (रैडिकल) लोग अेक पक्ष बनाने की बात सोच रहे हों तो क्या उन्हें दोष दिया जा सकता है ? क्या दूसरों का अेक

पक्ष मौजूद नहीं है जिसका कि नाम और पहचान गान्धी सेवा संघ है?" मुझे यह शक हो रहा है कि राष्ट्रपति को गान्धी सेवा संघ का इतिहास तथा विधान, और राजनीति में उसके हिस्से के बारे में गलत जानकारी मिली है। उनके वक्तव्य से जनता में शायद गलतफ़हमी फैले। इसलिअे उनकी गलती जाहिरा तौर पर सुधारना जरूरी है।

लोगों को यह जान लेना चहिअे कि गांधी सेवा संघ अपने विधान से राजनैतिक संस्था नहीं है। उसके सदस्यों के लिअे कॉंग्रेस के चारआनेवाले सदस्य बनना भी लाजिमी नहीं है और कितने ही अैसे हैं जो कॉंग्रेस के सदस्य नहीं बनते। इतना ही नहीं बल्कि पारसाल डेलांग में संघ का जो सम्मेलन हुआ उसमें जो प्रस्ताव मंजूर किये गये उनमें से अेक यह भी थाः—

"सदस्यों से बिनति है कि संघ के तीनों वर्गों के सदस्य बढ़ाने की वे कोशिश करें। फिर भी सूचना करते समय यह सावधानी रखनी चाहिअे कि—

१. अेक राजनैतिक दल बनाने की अभिलाषा से सदस्यों की भरती करना हमारा ध्येय नहीं है।

२. सदस्यत्व का इच्छुक अपने या अपनी संस्था के लिअे निर्वाह या सहायता प्राप्त करने की आशा से वह सदस्य बनने की इच्छा न करता हो।

३. उम्मीदवार की गान्धीजी के सिद्धान्त और कार्यक्रमों में श्रद्धा हो, वह अपने स्थान में अपनी शक्ति के अनुसार उन सिद्धान्तों और कार्यक्रमों को व्यवहार में लाने के लिअे प्रयत्नशील हो और उस वर्ग के सदस्यों के नियमों में ठीक आ सकता हो। अैसे व्यक्तियों का संघ में दाखिल होना इष्ट है और उनको दाखिल करना कर्तव्यरूप है।"

संघ के सभी किस्म के सदस्यों की तादाद कुल मिला कर ज्यों–त्यों दो सौ है। इनमें से कॉंग्रेस-संगठन में क्रियात्मक हिस्सा लेने वाले करीब पैंतीस होंगे। संघ की सदस्यता की शर्तें कुछ कडी हैं। इसलिअे अगर सदस्यता के लिअे भारी प्रचार भी किया जाय तो भी जिन्होंने कॉंग्रेस में गान्धीजी की नीति का समर्थन किया है उनमें से इनेगिने ही संघ के सदस्य बन पायेंगे। इसके अलावा हमारी कार्यवाहक समिति का रुख भी सदस्य बढाने की कोई जल्दी करने के प्रतिकूल है।

इसपर शायद किसी को यह आशंका हो कि मैं अपनी संस्था को हद से ज्यादा निर्दोष दिखा रहा हूं। इसलिअे मैं यह भी साफ कर देना चाहता हूं कि इसका मतलब यह नहीं है कि संघ राजनीति की ओर से बिलकुल अुदासीन ही है। उसका जन्म ही देश की राजनैतिक परिस्थिति से—असहयोग आन्दोलन से—हुआ। गांधीजी को जब पहली बार सज़ा पडी उस वक्त असहयोग के कार्यक्रम को बनाये रखने के लिअे ही यह संघ बना। गान्धीजी ने सत्याग्रह के जो सिद्धान्त बतलाये हैं उन्हींको उसने अपना ध्येय माना है। मतलब, उसके सदस्यों के लिअे राजनैतिक आन्दोलन में पड़ना मना नहीं है। सच तो यह है, कि उसे बनानेवाले, अुसे कायम करने से पहले भी, कॉंग्रेस के बडे बडे अगुआ थे। कॉंग्रेस के चरखासंघ और ग्राम-अुद्योग संघ आदि कायम करने से पहले ही यह संघ बना था। इन संस्थाओं की स्थापना के लिअे जो तैयारी करना जरूरी

था, वह इस संघ ने की। जिसे 'खालिस राजनीति' कहते हैं उससे इन रचनात्मक कामों में संघ को ज्यादा दिलचस्पी है। रचनात्मक कार्यक्रम के भिन्न भिन्न अंगों में जिसे सक्रिय रुचि नहीं है वह संघ में नहीं आ सकता, चाहे उसने कॉंग्रेस में गान्धीजी या संघ के दूसरे कार्यकर्ताओं के साथ हमेशा अपनी राय भले ही दी हो।

संघ के नाते उसे कॉंग्रेस की राजनीति में दूसरी तरह से भी दिलचस्पी है। उसने अपने सदस्यों को सिवा कॉंग्रेस के दूसरी राजनैतिक संस्था का उपयोग करने की छूट नहीं दी है। उसने या तो कॉंग्रेस के प्रस्तावों का अमल कराने का काम किया है, या कुछ तैयारी का काम करके बाद को अुसे कॉंग्रेस के सामने अपनाने के लिअे रखा है। करीब बारह साल यह काम लोगों के ध्यान म न आते हुअे ही होता रहा। संघ सत्य और अहिंसा को सभी आन्दोलनों के निरपवाद नियम (लाज़िमी अुसूल) मानता ह। खादी, ग्राम उद्योग, राष्ट्रीय शिक्षा, कौमी अेका, छुआछूत मिटाना, आदि रचनात्मक कार्यक्रम में भी उसका विश्वास है। जब तक कॉंग्रस साफ लफ्जों में या अपनी करतूतों से इन तत्वों को छोड़ नहीं देती तब तक संघ के सदस्यों को कॉंग्रेस में रहने की इजाज़त रहेगी। राष्ट्रपति के 'जल्दीवादी' (रैडिकल) नाम में जो शुमार नहीं किये जा सकते उन सब कॉंग्रेसियों का यही रुख रहेगा या नहीं इसमें शक है।

संघ की फेहरिस्त में बडे बडे राजनैतिक नेताओं के नाम दर्ज हैं और अुनके जरिये अुसने कॉंग्रेस तथा जनता की बहुत कुछ सेवा भी की है। लेकिन अूपर जो कुछ कहा गया है अुसपर से यह बात मालूम हो जायगी कि संघ की यह सब खुश-नसीबी होते हुअे भी वह कॉंग्रेस के अन्दर अेक राजनैतिक दल के नाते काम नहीं कर सकता। फिर ी जब तक संघ जिन्हें मानता है उन सिद्धान्तों को कॉंग्रेस छोड़ नहीं देती तब तक उसीके द्वारा वह जनता की सेवा उसी तरह करता रहेगा जैसा कि अब तक करता रहा है।"

वर्धा, ५ वीं मार्च, १९३९ — कि. घ. मशरूवाला, अध्यक्ष, गांधी सेवा संघ

मैं शान्ति-परायण मनुष्य हूं। शान्ति में मेरा विश्वास है। लेकिन मैं चाहे जो कीमत दे कर शान्ति नहीं खरीदना चाहता। आप पत्थर में जो शान्ति पाते हैं वह मुझे नहीं चाहिअे। जिसे आप कब्र में देखते हैं वह शान्ति मैं नहीं चाहता। लेकिन मैं वह शान्ति अवश्य चाहता हूं जो मनुष्य के हृदय में सन्निहित है, और सारी दुनिया के वार करने के लिअे अुद्यत होते हुअे भी सर्वशक्तिमान अीश्वर की शक्ति जिसकी रक्षा करती है।

—गांधीजी.

सर्वोदय की दृष्टि

त्रिपुरी पर अेक नजर

कई लोगों ने मान लिया है कि त्रिपुरी में गांधीमत की विजय हुई। मेरी यह राय नहीं है। त्रिपुरी में जो हुआ उसे यही उपमा दी जा सकती है कि घाव अंदर से भरा पडा है लेकिन ऊपर से चमडी आ गई है। काँग्रेस के कुछ लोगों ने जो गांधीजी में, या गांधीवादी नेतृत्व में, अपना विश्वास जाहिर किया वह इस यकीन से नहीं कि इसीमें देश की भलाई है, लेकिन अपनी इस कमजोरी को महसूस करके कि आज उनके बिना अपना काम चल नहीं सकता। संस्कृत में राजनीति का अेक श्लोक है कि जब तक अपनी कमजोरी है, विरोधी को अपने सिर पर उठा के चलो और फिर मौका देख कर मिट्टी के घडे की नांई उसे पत्थर पर पटक दो। जाने अनजाने इस नीति से कई लोगों ने काम लिया है।

त्रिपुरी अधिवेशन के पहले अेक मित्र को मैंने लिखा था कि असल में काँग्रेस में तीन तरह के लोग हैं। 'राइटिस्ट' के अंग्रेजी में दो अर्थ होते हैं। 'दाहिना' और 'सच्चा,' और 'वाम' के हमारी भाषा में दो अर्थ होते हैं 'झूठा' और 'बांया'। इसमें आम तौर पर दाहिने के मानी 'नरम' और बांये के मानी 'गरम' बताये जाते हैं। वास्तव में काँग्रेस में 'नरम पक्ष' अेक भी नहीं है। इसलिअे राइटिस्ट से गांधी-नीति पर विश्वास करनेवाले और लेफ्टिस्ट से उस नीति पर विश्वास न रखनेवाले समझिये। इनके अलावा तीसरा अेक दल है जो वाममार्गी है, यानी झूठ पर ही विश्वास रखता है। कुछ निजी स्वार्थ, गुस्सा या कमजोरी के कारण वह कभी इस ओर और कभी उस ओर चला जाता है। वह जिस तरफ जाता है उस दल को बाहर से बडा और अंदर से सडा बना देता है। उसका बाहरी बड़प्पन जिस पक्ष में वह जाता है, उसे भूल में डाल देता है।

त्रिपुरी काँग्रेस में इसका पूरा परिचय हुआ। काँग्रेस में कुछ अैसे लोग हैं, जो किसी न किसी निमित्त से गांधीवादी कार्य-समिति से नाराज कर दिये गये हैं। जब सुभास बाबू ने डॉ० पट्टाभि के विरुद्ध खडे होने का निश्चय कर लिया, इन लोगों ने सोचा कि कार्यसमिति-या सरदार वल्लभाई आदि कहिये--को अब अपना हाथ बताने का अच्छा मौका हाथ आया। उन्होंने सुभास बाबू को जिता दिया।

सुभास बाबू की जीत से सोशियालिस्टों (साम्यवादियों) ने क्षण भर मान लिया कि यह उनकी विजय हुई। काँग्रेस में उनका पक्ष बडा हो गया। वास्तव में गांधीपक्ष और साम्यवादी पक्ष अपने अपने स्थानों में ही थे। वाममार्गियों की हलचल से अेक झूठा दिखावा उत्पन्न हो गया था। त्रिपुरी में उस दल का वास्तविक रूप सामने आया। उससे सोशियालिस्टों का हौसला खतम हो गया।

वाममार्ग

गांधी पक्ष और समाजवादी पक्ष के बीच सिद्धान्त के कुछ भेद भले ही हों, लेकिन अेक बात याद रहे कि अपने को कामयाब करने के लिये जो पक्ष किसी व्यक्तिगत द्वेष या संकीर्ण वृत्ति के कारण असंतुष्ट लोगों की सहायता पर भरोसा करेगा, उसे आखिर में अफसोस ही करना पडेगा। राष्ट्रपति के चुनाव के अंकों पर निगाह डालने से यह साफ होगा। तामिलनाड से क्यों सुभास बाबू को बहुतसे मत मिले? जवाब है—विशेषकर के तामिल और आंध्र के बीच के प्रान्तीय द्वेष के कारण। इसी तरह महाराष्ट्र, और बम्बई में श्री नरीमान और डॉ. खरे के निमित्त सरदार वल्लभभाई के प्रति रोष के कारण। बंगाल में विशेषकर प्रान्तीय अभिमान के कारण। हिंसक राजनीति में दूसरे के दुश्मन को अपना मित्र बनाने में सयानपन समझा जाता है। अहिंसक संस्थाओं में वह मूर्खता सिद्ध होती है। जो आज हमारे दुश्मन को दगा दे रहा है, वह कल हमें भी देगा।

मेरी दृष्टि में कॉंग्रेस जैसे लोकशाही या अहिंसक तंत्र में सबसे बडे धोखे की बात यही है। अपनी निजी महत्त्वाकांक्षा में बाधा आने के कारण, या प्रान्तीय, जातीय वर्गीय वर्णीय, (ब्राह्मण–ब्राह्मणेतर, हरिजन आदि) वगैरा संकीर्ण दृष्टियों के कारण जो मित्र बनने आवें, उनसे जो लाभ उठावेगा वह न केवल कॉंग्रेस को ही बल्कि अपने सिद्धान्तों को भी खतरे में डाल देगा। कॉंग्रेस को अगर किसी से बचाना है तो इनसे बचाने की जरूरत है।

त्रिपुरी की फलश्रुति

लोग कहते थे कि त्रिपुरी सूरत कॉंग्रेस की नयी आवृत्ति होगी। त्रिपुरी का अधिवेशन जब खतम हुआ तो सब लोगों को तसल्ली हुई कि राष्ट्र सूरत जैसी आपत्ति से बच गया। क्या हम सचमुच बच गये हैं? भविष्य ही कहेगा।

जब मैं त्रिपुरी के खुले अधिवेशन में बैठ कर चन्द प्रतिनिधियों की चिल्लाहट सुन रहा था तब किसीने मुझसे पूछा, "क्या यह वही हमारी राष्ट्र-सभा है जिसकी परवरिश महात्मा गान्धी ने आज बीस बरस तक की है?" हम लोग व्याख्यान-मंच के पास ही बैठे थे। प्रतिनिधियों की 'नो, नो,' की चीत्कार से कान फूट रहे थे। पृच्छक ने अपर के प्रश्न के द्वारा अपनी निराशा और अपना दर्द व्यक्त किया था। मैंने शान्ति से जवाब दिया, "जी हां, यही हमारी राष्ट्रीय सभा है जिसकी परवरिश महात्मा गान्धी ने की है। जरा सोचिये तो सही। पचास या पौन सौ हजार, या अुससे भी अधिक, लोग यहां बैठे हैं। ये सौ दो सौ आदमी चारों ओर से व्याख्यान-मंच पर धावा बोल रहे हैं और अितना शोरगुल मचा रहे हैं तो भी अिस सभा में कोअी अपनी शान्ति डिगने नहीं देता। कोअी अिधर-अुधर दौडता नहीं। स्वयंसेवक शान्ति से खडे हैं और अितना चीत्कार होते हुअे भी सभा की शान्ति का भंग नहीं होता। और यह सामने मौलाना साहब बैठे हैं, जवाहरलालजी खडे हैं। अिन दोनों के चेहरों पर कितना धीरज और शान्ति है? जवाहरलालजी की मुस्कहराट अिस वक्त कितनी मीठी लगती है?

कि. घ. म.

"सूरत के दिन होते तो आवाज का जवाब चिल्लाहट से दिया जाता। अुसकी प्रतिध्वनि शायद गाली-गलौज से भी होती। कुर्सियां फेंकी जातीं। जूतों की मार से भी चन्द लोगों की पूजा हो जाती, और फिर पुलिस आ कर सभास्थान का कब्जा ले लेती। यहां वैसा कुछ भी नहीं हो रहा है। यह शान्ति और यह धीरज महात्माजी की ही देन हैं। मैं बिलकुल निराश नहीं हूं।"

किन्तु त्रिपुरी ने मुझे अेक दूसरी ही दृष्टि से चिन्तित किया है। व्हेटले ने लिखा है, "It makes all the difference in the world whether we put Truth in the first place or in the second place". (हम सत्य को पहला स्थान देते हैं या दूसरा स्थान देते हैं—अिससे जमीन आसमान का अन्तर पड़ जाता है।) जबर्दस्त मक्कार और धूर्त साम्राज्यशाही की चुंगल में फंसे हुअे गुलाम राष्ट्र के लिअे यह कहना चाहिअे कि अैसे राष्ट्र में किसी भी दल के लोग अगर राष्ट्र की स्वाधीनता को प्रथम स्थान से हटा कर द्वितीय स्थान दे दें,— तृतीय या चतुर्थ स्थान नहीं, द्वितीयस्थान ही दे दें— तो भी अुस राष्ट्र का भाग्य अुज्ज्वल नहीं है। त्रिपुरी में हमने देख लिया कि राष्ट्र की स्वातन्त्र्य-साधना शिथिल हो गयी है। व्यक्तिगत स्वार्थ और महत्त्वाकांक्षा, प्रान्तीय-वादनिष्ठा और पक्षनिष्ठा, आदि आदि, अनेक बातों को प्रथम स्थान दिया जाता है और स्वाधीनता को अुसके सर्वोच्च स्थान से हटा-कर द्वितीय स्थान दिया जाता है। स्वाधीनता की पुकार तो पहले से कम नहीं है। किन्तु अुस आवाज में पहले जैसा ठोसपन नहीं रहा।

त्रिपुरी में पन्तजी का जो प्रस्ताव पास हुआ अुससे अितना सिद्ध होता है कि अब भी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के अनन्य और अेकनिष्ठ सेवक की कुछ कद्र है। अगर अिस राष्ट्र को यत्किंचित् भी संगठित कर सकता है तो वही अेक पुरुष जिस के पास न तो कोअी स्वार्थ है, न महत्त्वाकांक्षा; जो राष्ट्रीय अेकता सिद्ध करने के लिअे अपना प्राणोत्सर्ग भी हंसते हंसते करने को तय्यार है।

राष्ट्र में राजनैतिक शिक्षा का प्रचार बढ रहा है। राजनैतिक नेताओं के दौरे चलते रहते हैं। व्याख्यान होते हैं। और अखबार तो किसी को नींद ही नहीं आने देते। तो भी देश की बुद्धिशक्ति बढती जा रही हो अिसका सबूत नहीं पाया जाता। हृदय-शुद्धि के बिना बुद्धि का विकास हो ही नहीं सकता।

दुःख से कहना पडता है कि राष्ट्रपति सुभाष बाबू ने अुस अुच्च स्थान की प्रतिष्ठा बढायी नहीं है। त्रिपुरी में और त्रिपुरी के बाद जो वायुमण्डल अुन्होंने पैदा किया है वह देश को जाने कितने बरसों तक पीड़ा देगा और कितनों की बलि लेगा।

जिन प्रतिनिधियों ने त्रिपुरी में कहा कि हमने बिना सोचे ही सुभाष बाबू के हक में मत दिया था, क्या वे आज निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि अब वे सोच-विचार कर ही चल रहे हैं?

अेक बात स्पष्ट है कि फेडरेशन का विरोध करने का नाम ले कर सुभाष बाबू ने देश की अैसी हालत कर दी है कि फेडरेशन मीलों नजदीक आ गया है। अब अुसे हटाने के लिअे और साम्राज्य की नीति को परास्त

करने के लिअे देश को दस गुनी शक्ति खर्च करनी पडेगी।

ता. २८।३।३९ का० का०

अहिंसा और साम्यवाद

अहिंसक राजनीति के विषय पर पं. जवाहरलाल नेहरू ने अपने इस्तीफा माने गये वक्तव्य में जो विश्वास प्रकट किया है, उसपर अगर सोशियालिस्टों का भी यकीन हो तो गान्धीवाद और समाजवाद के बीच का अन्तर कम हो जाता है। उस राजनीति का ही गहराई से विचार करने पर मालूम होगा कि वर्ग-वर्ग के बीच द्वेष बढ़ाने वाला प्रचार अहिंसक राजनीति के पंख तोडने के बराबर है; और अन्त में जिन दलितों के नाम पर और जिनकी भलाई को निगाह में रख कर हम यह करते हैं उन्हींका नुकसान और दमन होता है। राजकीय गुंडापन का ज्यादा से ज्यादा जुल्म उन्हींको सहन करना पडता है। जातीय और प्रान्तीय संघर्षों के बारे में जिस तरह समाजवादी भी यह मानते हैं कि उन्हें विग्रह नाम न देना चाहिअे और उनमें द्वेष बढानेवाला नहीं, बल्कि प्रेम बढानेवाला प्रचार ही होना चाहिअे, वही बात अेक समाज के भिन्न भिन्न वर्गों के आर्थिक संघर्षों को भी लागू होती है। अन्यायों को हमें जरूर मिटाना है और सब लोगों को अधिक से अधिक समान बनाना है। अन्याय-पोषक संस्थाओं को तोडना भी है। लेकिन अगर अहिंसा से ही हमें वह करना हो तो विग्रह और द्वेषात्मक भाषा छोड देनी चाहिअे।

बंबई की मजदूर हडताल

गत वर्ष की अन्तिम तिमाही में बंबई सरकार ने मालिक और मजदूरों के झगडों के सम्बन्ध में अेक कानून बनाया। सर्वोदय की दृष्टि से यह कानून मालिक और मजदूर दोनों के फायदे की, और मजदूरों की ताकत और हितों को सम्हालनेवाली चीज है। लेकिन, काँग्रेस के विरोधी दलों ने इस कानून का सख्त विरोध किया। बंबई की धारासभा में इस कानून की हर अेक दफ़ा पर इतनी चर्चायें हुईं कि शायद हिंदुस्तान की धारासभाओं के इतिहास में वह सबसे लंबी बैठक हुई। पाठक खयाल रक्खें कि धारासभा की अेक अेक दिन की बैठक का खर्च तीन-चार हजार रुपयों तक हो जाता है। इस हिसाब से इस कानून के पीछे जनता के अेक लाख से ज्यादा रुपये खर्च हुअे होंगे। परन्तु द्रव्य के अितने दुर्व्यय से काम पूरा नहीं हुआ। विरोधी मजदूर नेताओं ने इस कानून के प्रति अपना गुस्सा जाहिर करने के लिअे ता. ७ नवंबर, १९३८ को सारे बंबई इलाके में हडताल ज़ाहिर की। बहुत जगह यह हडताल सफल नहीं हुई। लेकिन, बंबई शहर में करीब १,१६,००० मजदूरों में से सुबह अंदाजन ५४,००० और दो पहर के बाद लगभग ६५,००० आदमी गैरहाज़िर रहे। हडताल से शहर के भिन्न भिन्न भागों में गंभीर दंगा भी हुआ और अुसे मिटाने के लिअे अधिकारियों की तरफ से बंदूक और लाठी का अुपयोग हुआ।

यह बात कहां तक ठीक हुई इसकी जांच करने के लिअे सरकार द्वारा बंबई हाईकोर्ट के अेक न्यायाधीश, श्री कणिया, की अध्यक्षता में अेक समिति मुकर्रर की गई।

इस समिति ने हडताल का सारा अवलोकन करनेवाली अपनी रिपोर्ट पेश की है। समिति ने अधिकारियों की कार्रवाई को वाजिब जाहिर किया है। लेकिन, हमारे लिअे अधिकारियों की निर्दोषता या सदोषता इस वक्त ज्यादा महत्त्व की चीज नहीं है। लाचार होकर ही क्यों न हो, मगर बंदूक और लाठी चलाने की नौबत आना यही हमारे लिअे बडे कष्ट की बात है। और वैसी परिस्थिति पैदा होने पर अहिंसा का कौनसा मार्ग लिया जा सकता है, इसकी खोज महत्त्व का सवाल है। इसलिअे जिन तरीकों से यह हडताल और दंगा पैदा हुआ, उन्हें समझने की विशेष जरूरत है।

पूंजीपति, जमींदार, विदेशी राज्यकर्ता आदि के शोषण (अेक्सप्लॉइटेशन) के बारे में हमने आज तक बहुत सुना है। वास्तव में यहां 'शोषण' शब्द अधूरा है। दरिद्र-नारायण और अज्ञ-नारायण की कमजोर हालत से किसी भी तरह बेजा फायदा——दुर्लभ—— उठाना, यह भी अेक्सप्लॉइटेशन ही है और इस रिपोर्ट में यह अच्छी तरह बताया गया है कि किस तरह न केवल साम्यवादी मजदूर नेताओं ने, लेकिन किसी न किसी कारण से कॉंग्रेस का विरोध करनेवाले सब दलों ने, अपनी अपनी राजकीय महत्वाकांक्षाओं को हासिल करने के लिअे बंबई की मजदूर जनता से बेजा फायदा उठाया। हडताल के लिअे उन्होंने जो प्रचार किया और जिन तरीकों से काम लिया, उसकी कुछ मिसालें रिपोर्ट में से पेश करता हूं:—

१. ता० १६ अक्टूबर १९३८ को मजदूरों के अेक जलसे में इस हडताल को सफल करने के लिअे अेक प्रमुख नेता ने नीचे लिखी हुई सूचनायें दीं:—

"ता. ७ को सिर्फ मिल-मजदूरों की हड़ताल से काम नहीं चलेगा। मिलें तो बंद होनी ही चाहिअे। दुकानें बंद होनी चाहिअे। अगर दुकानें अपनी खुशी से बंद न हों, तो आप उन्हें बंद करें, यह मैं आपको बताना चाहता हूं। अगर ट्राम-गाडियां बंद न हों तो आप उन्हें बंद करें। वैसा न किया जायगा तो सरकार की आंखें नहीं खुलेंगी। न सिर्फ मिल-मजदूरों को ही बल्कि म्युनिसिपालिटी के कामगार, बाहरकाम करने वाले, दूसरी जगह काम करनेवाले, सब लोगों को हडताल में शरीक होना चाहिअे। ट्राम-गाडी, मोटरगाडी, विक्टोरिया (बंबई के टमटम) भी बंद होनी चाहिअे। अगर फिर भी सरकार यह बिल पास करे तो हम सिर्फ इस बिल को ही बंबई में दफन नहीं कर देंगे, बल्कि उसके हक में मत देनेवालों को भी दफन कर देने में नहीं चूकेंगे। यह हमारी चुनौती है। मुनशी साहब की ओर से कुछ परचे बांटे जाते हैं। आप उन पर्चों को सिर्फ बांटनेवालों के हाथ से छीन ही न लें बल्कि उन्हें कुछ तमाशा भी बतायें। आप मजदूर विरोधियों को.. ...मिल के नजदीक न घूमने दें। उन्हें आप कहें कि अगर आप मिल के पडोस में रहेंगे तो हम नहीं कह सकते कि मजदूर लोग कब आपको अपना हाथ बतायेगें और कब आप के सिर उनके द्वारा फोडे जायेंगे।"

२. २३ अक्टूबर, १९३८ को मजदूरों की अेक सभा में अेक दूसरे नेता ने अपने भाषण में कहा: "......बम्बई शहर में सब की सब ट्राम गाड़ियां, रेलगाड़ियां, मोटरबस, और दूसरी सवारी की गाड़ियां बन्द हो जायेंगी, बं

की जायेंगी या नहीं? (मजदूरों का जवाब, 'हां, हां,')...कुछ दिन हुअे कुछ कॉंग्रेसी गुंडों ने फर्ग्युसन रोड पर हमारे लाल झंडे-वाले स्वयंसेवक को लाथ मार दी। क्यों, मारी न? ('हां')। मजदूरों को चाहिअे था कि वे उनके गालों में तमाचे जड कर उन्हें माकूल जवाब देते।"

३. ३० अक्टूबर, १९३८ को 'कामगार मैदान' में मजदूरों की अेक सभा हुई जिसमें पहले नेता ने फिरसे कहा :-

"...ट्रामगाडियों का चलना रुक जाना चाहिअे। तुम्हें उसे रोकना चाहिअे।...... १९२६ में इंग्लैंड के लोगों से मैंने वहां सुनाथा कि उन्होंने वहां ट्रामगाडियां और मोटरें कैसे रोक दीं। मैं तुम्हें वह सुनाना चाहता हूं। १९२६ में वहां के मजदूरों ने आम हडताल की। सभी मजदूर अपने अपने घर रहे। कोई भी काम पर नहीं गया। तब मोटरें और ट्रामगाडियां चलाने के लिअे सरकार कुछ भाडे के टट्टू ले आई। ट्रामगाडियां चलने लगीं। बसें चलने लगीं। अब मजदूरलोग उनके रोकने की तरकीब सोचने लने। हमारे यहां जैसे परल है, अैसे हि वहां भी अेक 'ईस्ट अेन्ड' है जहां मजदूर रहते हैं। जब बसें वहां पहुंचीं तो मजदूरोंने उनके ड्राइवरों को कमरों में बन्द कर दिया और इसे काफी न समझकर, बसों को भी उलटा दिया। अब उन्हें सीधा करने कौन आने वाला था? इस तरह अिंग्लैंड के मजदूरों ने अपनी हडताल सफल की। उसी तरह तुम भी जो कुछ जरूरी हो, वह सब करो। .....जुलूस निकालो, ट्रामगाडियां रोको, बसें रोको। दूकानें बन्द कराओ। ......"

४. अेक मजदूर पत्र के १ नवंबर, १९३८ के अग्रलेख में कहा गया:—

"......ट्रामगाडियों के लिअे कामाठीपुरा वडे महत्त्व का केन्द्र है। शहर में जो ट्राम की पटरियां हैं उनके कई गुच्छे कामाठीपुरे में हैं। कामाठीपुरा के मजदूरों ने यह ठान लिया है कि इन गुच्छों को काट कर वे ट्रामगाडियों में चलनेवाले लाखों लोगों को ७ नवंबर की हडताल की याद दिलायेंगे।"

५. ४ नवंबर, १९३८ को मजदूरों की अेक सभा में अेक और नेता ने कहा:-

"......तीसरी बात, मैनेजर, नायब मैनेजर, जॉबर, बडे जाबर, जिन लोगों ने गये दस बारह साल हडताल तोडने का ही काम किया है, उनसे हम कहना चाहते हैं कि अगर वे ७ तारीख की हडताल तोड कर काम पर जाने की कोशिश करेंगें तो उनके पुतलीघरों के 'बॉबिन' उनके सिरों पर आ पडेंगे और उन्हें पता भी नहीं चलेगा कि ये 'बॉबिन' कहां से आ रहे हैं।"

६. उसी सभा में अेक पूर्वोक्त नेता ने कहा:—

"......इसी तरह उस दिन देशसेविकाओं से भरी हुई कॉंग्रेस-लॉरियां दौडेंगी। तुम उनकी तरफ़ घूरने के लिअे रुक कर अपना दिल बहलाओ तो अच्छा है। लेकिन मिलों में हरगिज न जाना। और अगर कॉंग्रेस-लॉरियां तुमसे काम पर जाने को कहें तो उनका बन्दोबस्त करो।"

७. पूर्वोक्त पत्र के ५ नवंबर के अंक में लिखा था:—

"......वे श्री मुन्शी से कहना चाहते हैं कि १९२९ में जब कि आप नरम दल के सदस्य थे, मजदूरनियों ने पुलीस सार्जन्टों से बन्दूकें छीन कर उन्हें भगा दिया था।

१९३४ की हडताल में परभादेवी रोड पर पुलीस के हाकिमों और सिपाहियों को अपनी लाठियां और तमंचे छोड कर अपनी जानें बचाने के लिअे भागना पड़ा था।"

८. इन्हीं नेताओं के भाषणों से मालूम होता है कि ता. ७ नवंबर रूस की क्रान्ति की जयंति का दिन है। उसकी याद दिलाते हुअे अेक पूर्वोक्त नेता ने कहा:—

"जिस तरह रूस के मज़दूर और किसानों ने ज़ारशाही का नाश करके २१ वर्ष पहले मज़दूर-किसान राज्य स्थापित किया, उसी तरह उसी ७ तारीख को, अेक दिन की हडताल कर के हमलोग मज़दूर-किसान राज की नींव डोलेंगे। उसकी स्थापना की पूर्व-तय्यारी करेंगे।"

इस तरह के और भी अनेक वाक्य पेश किये जा सकते हैं। पाठक खुद ही देख लें कि साम्यवाद का अत्यंत वाम-मार्ग जनता को किस ओर ले जाना चाहता है।

गुंडाबाजी

पिछले साल गांधीजी ने जातीय दंगों के बारे में अपने दिल की वेदनायें गांधी सेवा संघ के संमेलन में सुनाई थीं। वे हमसे उनको मिटाने के लिअे अेक कार्यक्रम पूरा कराना चाहते थे। हमने वैसा कोई कार्यक्रम पूरा करने की ताकत अपने में न पाई। इससे गांधीजी को कुछ निराशा अवश्य हुई। लेकिन उनको, इस बात की खुशी हुई कि हमने सिर्फ उन्हें राजी करने के लिअे अेक दिखाऊ कार्यक्रम नहीं बनाया! सदस्यों का कहना यह रहा कि आज-कल जातीय दंगों का स्वरूप खुली लडाई का नहीं होता लेकिन गुंडों द्वारा गलीकूचे में निरपराधी की हत्या करने का होता है। इसलिअे हम लाचार हो जाते हैं। गांधीजी का कहना था कि तब हमें खोजना चाहिये कि मनुष्य के भीतर गुंडापन कैसे पैदा होता है, और उस गुंडावृत्ति को हम कैसे हटा सकते हैं।

गांधीजी हमसे इस बारे में कुछ कदम न बढ़वा सके। लेकिन, उनके मन में यह बात तभीं से बैठी हुई थी।

डेलांग संम्मेलन के बाद आज तक जातीय गुंडाबाजी के बहुत मामले नहीं हुअे। लेकिन दूसरे तरह की गुंडाबाजी चल पडी। बहुत सी रिसायतों में जनता पर सरकारी कर्मचारियों द्वारा गुंडाबाजी की गई। मज़दूर, किसान और कहीं कहीं कांग्रेस के लोगों में भी गुंडाबाजी चली। निमित्त कुछ भी हो करनेवाले कोई भी हों, सब में गुंडापन की वृत्ति समान ही है। इस गुंडापन का हमें इलाज खोजना चाहिअे।

मैं इसे लिख रहा हूं, उस वक्त गांधीजी राजकोट गये हुअे हैं। वहां जाते समय उन्होंने जो निवेदन निकाला, उसमें उन्होंने कहा है कि राजकोट का झगडा तो अेक छोटीसी चीज़ है, लेकिन यह गुंडापन बड़े खतरे की बात है। उसके कारण और इलाज की खोज में मैं वहां जाता हूं। मनुष्य को अपनी मानवता छोड कर राक्षस बनने का क्यों मोह होता है, यह मेरे सामने सवाल है। संभव है कि आगामी संमेलन का यही प्रधान सुर हो जाय।

काँग्रेसी झगडे

इसके आगे काँग्रेसी मतभेद हमारे लिअे कम महत्त्व का सवाल है। गुंडाबाजी को रोकने का अहिंसात्मक इलाज हमें मिल जाय, तो काँग्रेसी मतभेदों से कोई नुकसान होने का डर नहीं रह जाता। काँग्रेसी मतभेदों का कारण अेक यह भी तो है कि हमारे मन में यह आशंका है कि कुछ राजकीय पक्षों का गुंडाबाजी के साधनों से काम लेने में विश्वास है, और हम मानते हैं कि इससे देश की बहुत ही खराबी होगी। स्वराज्य मिलना दरकिनारे रह जायगा, उलटे जनता की रही-सही स्वतंत्रता पर अंकुश बैठेगा, और उस में डरपोकपन पैठ जायेगा। अनेक निर्दोष आदमियों को नाहक कष्ट भुगतना पडेगा।

स्वार्थभेद

मतभेद के पीछे स्वार्थभेद होता है। वर्ग-विग्रह, जाति-विग्रह, प्रान्त-विग्रह, आदि, अलग अलग समाजों के स्वार्थ अलग अलग होने के कारण होते हैं। हर अेक दल अपना स्वार्थ बढ़ाना चाहता है और दूसरे से ऊंचा उठना चाहता है। लेनेवाला ज्यादा से ज्यादा लेने की और देनेवाला कम से कम देने की नीयत रखता है।

स्वार्थ-प्रातिनिधिक राज

इस स्वभाव को देख कर प्रातिनिधिक राज की कल्पना निकली। हरअेक दल अपनी जन-संख्या के परिणाम में अपने वकील भेजे, वे सब अपने अपने स्वार्थों को पेश करें, और बहुमति से सब मामले तय किये जायें, इस के मूल में अहिंसा से अपने स्वार्थ साधने की इच्छा रही। लेकिन, अनुभव से यह साधन हमेशा संतोषकारक नहीं मालूम हुआ। मतों की गिनती न्याय का अेक स्थूल तरीका है। और फिर भिन्न स्वार्थ रखने वाले हर अेक दल के कितने प्रतिनिधि हों, उनके चुनाव कैसे हों, आदि मुश्किलें भी हैं। इस लिअे प्रातिनिधिक राज का शुद्ध स्वरूप अभी हासिल नहीं हुआ है। क्यों कि वह अब तक अक्सर स्वार्थ-प्रतिनिधि-राज रहा है।

संस्थाओं का प्रतिनिधित्व

सन १९३४ या '३५ से काँग्रेस में यह विचार बार बार पेश किया गया है कि मजदूर संघ, किसान संघ आदि संस्थाओं को काँग्रेस में विधिवत् प्रतिनिधित्व देना चाहिअे। वर्ग-विग्रह की अनिवार्यता में माननेवाले भाई यह भी कहते हैं कि काँग्रेस मजदूर और मालिक, किसान और जमींदार, रैयत और राजा, दोनों परस्पर विरोधी दलों की प्रतिनिधि हो ही नहीं सकती। उसको निश्चय कर लेना चाहिअे कि वह दोनों में से किस वर्ग को अपनायेगी।

गांधीजी इस विचार का विरोध करते आये हैं। वे कहते हैं कि काँग्रेस सब वर्गों और जातियों की संस्था है। अैसा कहने में उनका मतलब यह नहीं है कि उसमें सब समाजों के प्रतिनिधि समप्रमाण में शरीक हैं, और हर अेक प्रतिनिधि अपने अपने समाज का हित अच्छी तरह देखता है। बल्कि, यह कि काँग्रेस का प्रतिनिधि किसी भी अेक समाज के स्वार्थ का प्रतिनिधि नहीं है, लेकिन सबों के स्वार्थों को न्याय और सम-दृष्टि से सम्हालने की इच्छा रखता है। इस-लिअे, यद्यपि देश की जनता में ८० से अधिक फी सदी किसान हैं, या देश की संपत्ति बढाने

में मजदूरों का बहुत बडा हाथ है, फिर भी किसान–राज या मजदूर–राज की स्थापना गांधीजी की दृष्टि से काँग्रेस का ध्येय नहीं हो सकता।

इस दृष्टि से उन्होंने हुदली में कहा था कि पैंतीस करोड हिंदियों में से सिर्फ तीन करोड को मताधिकार मिला है और उन तीन करोड में से पूरे लाख भी काँग्रेस के सदस्य नहीं हैं। इस काँग्रेस को हम किस तरह सारे देश की प्रतिनिधि संस्था बना सकते हैं? यह तब हो सकता है जब कि काँग्रेस के सदस्यों द्वारा उसके तीन करोड मतदारों की तथा उन तीन करोड द्वारा बत्तीस करोड मतहीन जनता की सेवा और उनके हितों की रक्षा हो।

मतलब यह कि, अगर प्रातिनिधिक संस्था से हमारा यह खयाल हो कि हर अेक भिन्न भिन्न दल अपने अपने प्रतिनिधि भेजे और उन प्रतिनिधियों का कर्तव्य अपने मतदारों के स्वार्थों को ही बढाना हो, तब तो काँग्रेस सारे देश की प्रातिनिधिक संस्था नहीं कही जा सकती। इस कल्पना में पुराने अर्थशास्त्रियों का इकरार (कंट्राक्ट) और स्पर्धा के बारे में जो रुख था, वही हमारा प्रातिनिधिक राज के संबंध में है। यानी, हर अेक प्रतिनिधि अपने समाज के स्वार्थों को अच्छी तरह पेश करेगा, तो आखिर में जो तय होगा वह न्याय और सब के लाभ का ही होगा। हकीकत में यह विचार अधूरा है। अेक बडे परिवार में अगर हर अेक भाई केवल अपना और अपने बालबच्चों का स्वार्थ देखने में चतुर हो, तो वह परिवार जल्दी टूट जायगा। हर अेक भाई को अलग हो जाना पडेगा और अेकाध भाई कम चतुर हो तो उसको सदा अन्याय सहन करना पडेगा। परिवारिक सुख और अेके की रक्षा इस काम से नहीं होती। बल्कि उसमें इस नजर की जरूरत रहती है कि हर अेक भाई अपने दूसरे भाई और उसके बालबच्चों की उसी तरह परवाह करेगा जैसी उसे अपनी और अपने बाल-बच्चों की सहज होती है। वह अपनी बीबी और बच्चों को दूसरे भाई के स्त्री-बालकों का नुकसान न करने देगा और सब मिलकर सारे परिवार का हित सोचेंगे। वैसा परिवार संपत्ति और संस्कृति में आगे बढता है, जिसका मुखिया और प्रभावशाली भाई अपनी अपेक्षा अपने दूसरे भाईयों के सुख की ज्यादा चिंता किया करते हैं।

प्रातिनिधिक राज में भी यही न्याय चाहिअे। हर अेक प्रतिनिधि का अपने समाज के स्वार्थों की रक्षा करने की प्रतिज्ञा करना कोई बडी बात नहीं है। हिंदू हिंदुओं के और मुसलमान मुसलमानों के, मालिक मालिकों के और मजदूर मजदूरों के स्वार्थों को पेश करते रहें, इसमें कोई गौरव की बात नहीं है। और अैसे प्रतिनिधियों की अेक प्रतिनिधि सभा बनाना, या उनके द्वारा राज चलाना इसमें कोई बडी संस्कृति नहीं भरी है। जरूरत तो इस बात की है कि हर अेक प्रतिनिधि की यह प्रतिज्ञा हो कि जिन समाजों का मैं प्रतिनिधि नहीं हूं, उनके भी हितों की मैं उसी तरह चिंता करूंगा, जैसे स्वभाव से मुझे अपने समाज की होती है और दूसरे समाजों के वाजिब हितों के लिअे मैं अपने समाज से स्वार्थत्याग कराने में न हिचकूंगा। सर्वार्थ–प्रातिनिधिक राज का यही आदर्श होना चाहिअे।

२–३–३९ कि. घ. म.

दो आंखें

[काका कालेलकर]

मनुष्य के दो आँखें होती हैं। दाहिनी या बांयी आँख की बात यहाँ पर नहीं कह रहा हूं। मेरा मतलब यह है कि मनुष्य के दो तरह की आँखें होती हैं। अेक हैं कुदरती आँखें और दूसरी किताबी आँखें। मनुष्य-मात्र पहले पहल कुदरती आँखों से ही काम लेता है। अक्षर सीखने के बाद और किताबें पढ़ने की आदत डालने के बाद वह किताबी आँखों से काम लेता है। अिस तरह दो की जगह चार आँखों के लाभ से मनुष्य की शक्ति बढ़ जाती है।

किन्तु किताबी आँखों से काम लेने की आदत पड़ने के कारण बहुत दफे हमारे देश में पढे लिखे लोग कुदरती आँखों से काम लेना ही भूल जाते हैं। अिस बुरी आदत के परिणाम क्या क्या होते हैं यह समझ लेना बहुत जरूरी है। शिक्षा की वर्धा योजना जब मैं सर्वोदय द्वारा समझाने की कोशिश करूंगा तब अिस बात की विस्तार से चर्चा करूंगा।

× × × ×

हमारे राजनैतिक और जाहिरी जीवन की भी यही हालत है। अपनी निजी आँखों से देखने की अपेक्षा और निजी दिमाग से और दिल से सोचने की अपेक्षा हम अखबारी आँखों से देखने के आदी हो जाते हैं। सोचनासमझना, दलील करना, निर्णय करना, सबकुछ हम अखबारों को सौप देते हैं। गांधीजी के लेख पढे और तुरन्त गांधीवादी बन गये। गांधी-विरोधी साहित्य पढ़ लिया और तुरन्त गांधीजी से नफरत भी करने लगे।

जब कोअी मुझे कहते हैं कि "गांधीमत का अितना घोर विरोध हो रहा है तब आप गांधीमत के पक्ष में अुतना ही अखबारी आंदोलन क्यों नहीं करते ?" तब मैं मन में यही सोचता हूँ कि अिससे लोगों की शक्ति कैसे बढ़ सकेगी ? अिससे तो अखबारी आँखों पर निर्भर रहने की लोगों की आदत और भी बढेगी। अखबारी आँखों से काम ले कर जो गांधीवादी बनते हैं वे तो गांधीवाद के केवल वाचक ही बनेंगे। मत देने में अिनका अुपयोग हो सकता है, कार्य बढ़ाने में नहीं। हमें तो निजी आँखों से काम लेनेवाले लोग चाहिये। अैसे लोगों के अनुभव से अगर गांधीमत सही मालूम हुआ तो भी गांधीमत की विजय होगी। किताबी और अखबारी आंखों का व्यवहार ही जब तक बढ़ता है और कुदरती निजी अनुभवी आंखों की शक्ति क्षीण होती जाती है तब तक चाहे किसी भी वाद की विजय हो, मनुष्य–जाति का विकास होनेवाला नहीं है।

राजनैतिक क्षेत्र में अखबारी आंखें अितनी प्रभावशाली हो गयी हैं कि अिस मर्ज की चिकित्सा भी विस्तार के साथ करनी होगी। यह फिर क ी देखा जायगा। अिस वक्त तो मुझे अेक छोटीसी बात पर ही अिस दृष्टिभेद के विषय में प्रकाश डालना है।

× × × ×

हर महीने देशों के काव्य का कुछ विवरण करता आया हूँ। पाठक अुसे पढ़ते भी न होंगे अैसी शंका मन में अनेक बार आती थी। कुछ दिन हुअे अेक गुजराती मित्र ने कहा कि मैंने तो मान लिया था कि "अिसी शीर्षक से आपने आज तक गुजराती में जो लिखा है अुसीका

यह अनुवाद होगा। अैसा सोच कर मैं अुसे पढ़ता ही नहीं था। अब आपसे सुन रहा हूँ कि आप हर महीने की २५ तारीख को प्रत्यक्ष आकाश देख कर ही सूचनायें लिखते हैं। अब यह सारी लेखमाला ध्यानपूर्वक पढ़ लूंगा।"

दूसरे अेक मित्र लिखते हैं कि "देवों का काव्य पढ़ तो जाता हूँ किन्तु अुसमें मैं वह काव्य नहीं पाता जो आप के गुजराती लेखों में पाता हूं, न वह प्रसन्नता अनुभव करता हूँ।"

तीसरे मित्र कहते हैं कि "देवों का काव्य पढ तो लेता हूं, किन्तु अुससे कोअी विशेष अर्थबोध नहीं होता।"

बम्बअी के अेक वाचक की शिकायत है कि "जब तक अिन सब तारों को पहचानने का तरीका आप नहीं बताते तब तक आपका वर्णन पढ़ कर क्या लाभ होगा ?"

अिन सब से नम्रता के साथ मुझे अितना ही कहना है कि गुजराती में मैंने जो लिखा था वह मुख्यतया परस्मैपदी नहीं था। तारों को देख कर रात्रि की अुस समृद्धि के बारे में अपना आनंद अपनी "वासरी" (डायरी) में शब्दबद्ध कर रखना था। यह प्रवृत्ति आत्मनेपदी और 'स्वान्तः सुखाय' थी। जो लोग हमारे तारा-मंडल के सदस्य बन कर मेरे पास से अिन सितारों का ज्ञान प्रत्यक्ष लेते थे अुनके आनंद के लिये ही लिखता था। जहाँ आनंद है वहाँ कुछ काव्य-छटा आ ही जाती है।

'सर्वोदय' में लिखते समय मैंने सोचा कि मैं अपनी अध्यापन-शक्ति से काम लूं और जिस ढंग से प्रत्यक्ष पढ़ाता आया अुसी ढंग से कुछ सूचनायें मात्र दूं।

किन्तु मेरी बदकिस्मती से मेरे पाठक अिस लेखमाला को किताबी आँखों से पढने लगे तो अुसमें मेरा क्या कसूर ? अगर वे अेक छोटीसी लालटेन पास रख कर रात के आठ बजे या सुबह के पांच बजे घर के छत पर या मैदान में जा कर बैठें और आकाश की ओर देख कर मेरी सूचनायें पढें तो बहुत आसानी से बिना किसीकी मदद के वे तारों को पहचान सकेंगे और अुनको स्वतंत्र खोज का अपूर्व आनंद मिलेगा। हर रोज अिन तारों की मुलाकात लेने से अुनसे अुनका परिचय भी बढ़ेगा और तारों की गति भी ध्यान में आयेगी। बिना गणितविद्या के और चित्रकला के सहारे मैं पाठकों को ताराप्रेमी बनाना चाहता हूँ। रोज शाम और सुबह को नियत समय पर पूरब की ओर अेवं पश्चिम की ओर आध घंटा देखने की आदत डालनी चाहिये और स्वयंभू ज्योतिर्विद बनने की हिम्मत रखनी चाहिये।

पिछले मास मैंने जो सूचनायें दी थीं अुनके अनुसार अगर पाठक अेक गोल मेज बनायेंगे तो हमारी 'गोल मेज परिषद' हर महीने बैठ सकेगी। आज तक जो कुछ लिखा है वह अब पढने से तारों का ज्ञान आसानी से नहीं होगा। जिस महीने के लिये लिखता हूँ अुसी महीने के लिये वह काम का होता है। अब सुबह या शाम अुसी समय देखने से आकाश की स्थिति वही नहीं पायी जायेगी। जो लोग थोडी कल्पना के साथ गणित कर सकते हैं अुनकी बात अलग है। जो आकाश-दृश्य आज हम किसी समय देखते हैं अुसीको कल हम चार मिनिट जल्दी अुसी स्थान पर पाते हैं। अेक दिन के चार मिनिट के हिसाब से अगर सोचा जाय तो पुराने महीने की सूचनायें भी आज काम आयेंगी।

किन्तु यह सब किताबी आँखों से पढ़ने की चीज़ नहीं है। रात को कुदरती आंखों से देखने के लिये ये केवल सूचनायें हैं। अिनमें शाब्दिक काव्य और भाषानंद बिलकुल आने नहीं दिया है, क्यों कि अिरादा यह है कि वाचकों को प्रत्यक्ष बन कर दर्शनानंद लूटने का पूरा अवसर मिले।

सर्वोदय मिलने की व्यवस्था निम्न लिखित स्थानों में की गयी है

(१) शिष्ट साहित्य भण्डार,आनंद भुवन, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बअी २

(२) वोरा अेण्ड कंपनी, ८, राउण्ड बिल्डिंग, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बअी २

(३) नवजीवन कार्यालय, १३०, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बअी, २

(४) नवजीवन कार्यालय, अहमदाबाद।

(५) खादी भण्डार, हैरिसन रोड, कलकत्ता।

(६) सस्ता साहित्य मण्डल, नया बाजार, देहली।

(७) सस्ता साहित्य मण्डल, लखनऊ।

(८) गांधी आश्रम, गोरखपुर।

सूचना—

'सर्वोदय' में आम तौर पर अिश्तिहार नहीं लिये जायेंगे। अपवाद केवल वाचनीय ग्रन्थ और देशसेवा करनेवाली संस्थाओं के लिये रहेगा। अिनके अिश्तहारों के दाम नहीं लिये जायेंगे। केवल कागज, छपाई और डाकखर्च लेकर अिश्तिहार छापे जायेंगे। जो साहित्य या संस्था निर्विवादरूप से लोकोपयोगी है, अुसीको स्थान दिया जायगा। यह व्यवस्था केवल समाज-सेवा और ग्राहकों के हित की दृष्टि से चलायी जायगी।

व्यवस्थापक, '**सर्वोदय**', वर्धा।

Reg. No. N. 741

अडिग श्रद्धा

दूसरे लोग जो अहिंसा को नहीं मानते, वे मुझपर भी अिलजाम लगायेंगे, आज भी लगाते हैं, अहिंसा पर अिलजाम लगाते हैं। अैसी अतिशयोक्ति करते हैं, अैसी अैसी बातें कहते हैं जो मेरे ख्वाब में भी नहीं थीं। कहते हैं अिसने तो अेक सम्प्रदाय बना रक्खा है। वे मानते हैं कि मेरे अहिंसा के शिक्षण से हिन्दुस्थान का बहुत नुकसान हुआ है। और अुनमें से कअी तो यहांतक कहते हैं कि 'हमारा वास्तविक बल अहिंसा में नहीं है। अिस अहिंसा की निष्क्रिय नीति ने तो हमें चौपट कर दिया है।' अुनकी दृष्टि से जिस मनुष्य ने अितना नुकसान किया है, वह तो अेक काँटारूप बन गया है। अुसे दूर करने के लिअे चाहे जो अुपाय काम में लाना अुनकी नीति के प्रतिकूल नहीं है। थोडीसी अतिशयोक्ति भी हो गअी तो भी वह अुनके तत्त्व के विरुद्ध थोडे हो सकती है? मैं अुनको धन्यवाद देता हूं। सिर्फ आप लोगों के सामने धन्यवाद देता हूं सो बात नहीं। दूसरों के सामने और अपने दिल में भी वही समझता हूं। अगर मैं अुनकी जगह होअूं तो शायद मैं अुनसे ज्यादह ज्वलन्त बन जाअूं। लेकिन मेरे दिल में जरा भी यह शंका नहीं आती कि मैं गलत राह पर जा रहा हूं। अुलटे मेरी श्रद्धा दिन ब दिन अुज्ज्वल ही होती जा रही है। यह कोअी छोटी बात नहीं है। हमारे पास अिसका अिलाज है। अुसे हमने पूरी मात्रा में नहीं आजमाया है। अिलाज तो माकूल है। लेकिन जितनी मात्रा में अुसे हमने आजमाया है वह बहुत कम है। हम जो अहिंसा का प्रयोग कर रहे हैं, अुसे समझ-बूझकर नहीं कर रहे हैं। प्रस्तुत कर्तव्य तो यह है कि हम अिस चीज को फिर से अच्छी तरह आजमावें।

ता० २६-३-३८

—गांधीजी

(डेलांग अधिवेशन में दिये हुअे अेक भाषण में से)

प्रकाशकः—दादा धर्माधिकारी, बजाजवाडी, वर्धा (मध्यप्रांत)।
मुद्रकः—वल्लभदास जाजू, श्रीकृष्ण छापखाना लिमिटेड, बच्छराज रोड, वर्धा।

सर्वोदय

अेष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके

सम्पादक–काका कालेलकर, दादा धर्माधिकारी

वर्धा, मअी १९३९ अंक १०

स्वराज्य का चौकोर

स्वराज्य के मेरे ख्याल के बारे में कोअी गलत-समझी न रहनी चाहिअे। स्वराज्य से मेरा मतलब है विदेशी शासन से पूरा पूरा छुटकारा और पूरी पूरी आर्थिक आज़ादी। अिस तरह अेक सिरे पर राजकीय स्वाधीनता है और दूसरी तरफ आर्थिक स्वतंत्रता। उसके दो सिरे और भी हैं। उनमें से अेक नैतिक और सामाजिक है। अिसीके अनुरूप सिरा है, धर्म—अुस संज्ञा के सबसे अुदात्त माने में। अुसमें हिन्दू धर्म, अिस्लाम, अीसाअी धर्म आदि शामिल हैं, लेकिन वह अुन सबसे आला है। आप अुसे 'सत्य' के नाम से पहचान सकते हैं। मौजूदा हालत के लिहाज़ से अपना काम निकालने के लिअे हम जिसे अिख्तियार करते हैं वह 'सत्य' नहीं, बल्कि वह सजीव सत्य जो हर अेक चीज़ में भरा हुआ है और जो प्रलय तथा सारी सृष्टि के रूपान्तर के बाद भी बना रहेगा। नैतिक और सामाजिक अुन्नति को हम अपनी सुपरिचित संज्ञा, 'अहिंसा' से पहचान सकते हैं। हम अिसे स्वराज्य का चौकोर कहें। अगर अुसका अेक भी कोण गलत हुआ तो अुसकी सूरत ही बिगड़ जायेगी। अिस राजकीय और आर्थिक स्वतंत्रता को कांग्रेस की भाषा में, हम सत्य और अहिंसा के बिना नहीं पहुँच सकते। अधिक प्रत्यक्ष भाषा में, अीश्वर में जीवन्त श्रद्धा और अिसीलिअे नैतिक अेवं सामाजिक अुत्थान के बिना नहीं पहुँच सकते।

२।१।१९३७ —गांधीजी

अेक अंक... ... रु० ०-६-०
वार्षिक ... ... रु० ३-०-०
बर्मा में ... ... रु० ३-८-०
विदेश में... ... ६ शिलिंग
१.५० डॉलर.
(सब डाक सहित)

अनुक्रमणिका

(१) गोवा की अेक झांकी (श्री काका कालेलकर) १
(२) कौअे की नजर से ("आश्रमवासी अुल्लू") ... ७
(३) सव्य और अपसव्य की मीमांसा
(आचार्य श्री जीवतराम कृपालानी) ... ९
(४) देशधर्म (श्री काका कालेलकर) ... १९
(५) अेकता-"वादी" किन्तु विविधता-"परायण"
(श्री काका कालेलकर) २२
(६) सांप का डर (श्री सतीशचन्द्र दासगुप्त) २५
(७) भारतीय संस्कृति क्या है? (श्री काका कालेलकर) २७
(८) साहित्य संगठन (श्री काका कालेलकर) ... ३०
(९) सर्वोदय की दृष्टि ३२
महान राष्ट्रभक्त लाला हरदयाल; लोक-जीवन की गंगोत्री; निन्दाजीवियों का प्रतिकार; अविश्वास का शाप; राजकारण या सद्गुण-संवर्धन? केवलवादी और समुच्चयवादी; हथियारबन्द की कायरता; ब्राह्मणाः सन्तु निर्भयाः; छंदपिंगल शास्त्र की आवश्यकता; गांधी-साहित्य.

सर्वोदय मिलने की व्यवस्था निम्न लिखित स्थानों में की गयी है

(१) शिष्ट साहित्य भण्डार, आनंद भुवन, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बअी २
(२) वोरा अेण्ड कंपनी, ८, राउण्ड बिल्डिंग, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बअी २
(३) नवजीवन कार्यालय, १३०, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बअी, २
(४) नवजीवन कार्यालय, अहमदाबाद।
(५) खादी भण्डार, हैरिसन रोड, कलकत्ता।
(६) सस्ता साहित्य मण्डल, नया बाजार, देहली।
(७) सस्ता साहित्य मण्डल, लखनऊ।
(८) गांधी आश्रम, गोरखपुर।
(९) मगनलाल हिम्मतलाल भट्ट, नाणावट, सूरत

सर्वोदय

अेष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके

संपादक:—काका कालेलकर
दादा धर्माधिकारी

मअी १९३९
वर्धा

गोवा की अेक झांकी

[काका कालेलकर]

पच्चीस बरस के बाद मैंने गोवा की पुण्य-भूमि के दर्शन किये। मेरे पुरखाओं की वह कर्मभूमि थी। अिसलिअे मेरे लिअे तो वह पुण्य-भूमि है ही। किन्तु भारतीय अितिहास में भी गोवा का महत्त्व अपूर्व है। सनातनी क्षत्रियों ने और जैनियों ने अुसकी जाहोजलाली (अभ्युदय) असाधारण बढायी थी। ब्राह्मणों ने यहां पर अपनी तपस्या का चमत्कार दिखाया था। परशुराम ने और श्रीकृष्ण ने गोवा के रमणीय पहाड और पवित्र नदियों के सौंदर्य का पान किया ही था। किन्तु आज गोवा अीसाअियों की धर्मान्धता के अेक अवशेष के रूप में ही हमारा ध्यान आकर्षित करता है। गोवा में मुसलमान और अीसाअी आपस में काफी लडे। हिन्दूलोगों ने अपनी धर्मरक्षा के लिअे काफी बलिदान किया। और जब अुनको आन्तरिक कमजोरियों के कारण अीसाअी राजसत्ता का अुन्हें स्वीकार करना पडा तब परास्त प्रजा भी अपना सांस्कृतिक रक्षण किस तरह कर सकती है अिसका परिचय वहां की हिन्दूजाति ने दिया।

जो लोग भिन्न जाति के, भिन्न धर्म के और भिन्न संस्कृति के लोगों से पेश आने की कला नहीं सीखना चाहते अुनको अितिहास-विधाता जबरदस्ती वह पाठ सिखाता है और विविधता में अेकता की प्रस्थापना करने का समन्वयकारी जीवन-सिद्धान्त अुन्हें बता देता है। गोवा में अैसा ही हुआ है।

दक्खिण भारत के पश्चिम किनारे पर महाराष्ट्र और कर्नाटक के बीच गोवा अेक छोटासा प्रदेश है। सह्याद्रि के शिखर और पश्चिम समुद्र की लहरें अिस प्रदेश को निसर्गतया सीमित करती हैं। अिस प्रदेश पर पोर्तुगाल के कॅथॉलिक लोगों का राज आज करीब चारसौ साढे चारसौ वर्षों से है। विजयनगर के साम्राज्य का अुदय और अस्त हुआ, मराठों ने हिन्दवी स्वराज्य स्थापन करके अुसे छिन्न-भिन्न भी किया, अंग्रेजों ने यहां पर अपनी

तिजारती कोठियों से प्रारम्भ करके अपना साम्राज्य देश भर में फैलाया और अब अुसे वे आहिस्ता आहिस्ता खो रहे हैं। किन्तु गोवा में पोर्तुगीज लोगों का राज्य आजतक अबाधित ही रहा है।

फरासीसियों ने अिस देश में दरबारी राजनीति चलायी। अंग्रेजों ने बेपारी राजनीति से बहुत कुछ लाभ अुठाया। किन्तु पोर्तुगीज लोगों ने धर्म और संस्कृति की दृष्टि से यहां की प्रजा को आत्मसात् करने की नीति आजतक चलायी है यह बात जितनी आश्चर्यकारक है अुतनी ही अध्ययन करने लायक है। जहां तक अुनका चला पोर्तुगीज लोगों ने अिस देश में केवल अेक ओसाओ धर्म ही प्रचलित करने की कोशिश की। विशिष्ट भागों में मन्दिर या मस्जिद टिकनी ही नहीं चाहिये अैसे भी नियम किये और अुनका कठोरता से पालन करवाया। आज भी गोवा की प्राथमिक शालाओं में पोर्तुगीज रीडरें चलती हैं जिनमें बच्चों को सिखाया जाता है कि पोर्तुगाल हमारा स्वदेश है। जब कोओ राष्ट्रीय वृत्ति का नवयुवक अपने मास्टर महाशय से पूछता है कि पोर्तुगाल से अिस गैर मुल्क में हम कब आये? तब वह ओसाओ विद्यागुरु लाजवाब होकर नाराज हो जाते हैं। गोवा में आज आधी से अधिक लोकसंख्या ओसाओ है। अिसमें कोओ आश्चर्य नहीं। किन्तु करीब करीब आधी जनता दृढतापूर्वक कट्टर हिन्दू ही रही है यह बात ध्यान में रखने लायक है। अैसी हालत में वहां पर हिन्दू-ओसाओ तनाजा रहे यह स्वाभाविक बात थी। राज्यकर्ताओं के मन में गैर-ओसाअियों के लिअे कोओ स्थान ही नहीं था।

जब १९१२ में पोर्तुगाल में राज्यक्रान्ति हुओ और धर्ममात्र के प्रति अुदासीन अैसा लोकसत्ताक राज्य स्थापन हुआ तब गोवा के हिन्दुओं के धार्मिक दमन का करीब करीब अन्त हो गया। पोर्तुगाल में प्रजासत्ताक राज्य की स्थापना होते ही गोवा को स्वराज्य मिल गया। किन्तु गोवा की आम जनता में अुसे हजम करने के लायक न कोओ शक्ति थी, न बुद्धि थी और न कोओ जागृति भी। संगठन का नामोनिशान तक न था। राजनैतिक कार्यों के लिअे संस्थायें स्थापित करनी चाहिअे और अुनके लिअे धन अिकट्ठा करना चाहिअे, भिन्न भिन्न समाजों के बीच हार्दिक संगठन करना चाहिअे, अपने हकों के लिअे जाग्रत रह कर प्रसंग आने पर राजसत्ता के साथ संगठित रूप से प्रजाकीय पद्धति से लड़ना चाहिअे, आदि बातें वहां के लोग बिलकुल जानते नहीं थे।

खुद पोर्तुगाल में ही रिपब्लिक का अन्त हुआ। और वहां पर तानाशाही का अुदय हुआ और लोग पहले जैसी स्थिति में थे फिर वैसी ही स्थिति में आ गये।

अगर पोर्तुगाल की सरकार अपने हित को भी समझे तो भी गोवा की हालत बहुत कुछ सुधर सकती है। किन्तु वहां पर कओी दृष्टि से अन्धेर-नगरी ही है। गोवा की जनता भारतवासी ही है। हम अेक समाज हैं। हमारे सामाजिक, आर्थिक और बेपार-विषयक हितसम्बन्ध अेक-से तो क्या, बल्कि अेक ही हैं। अैसा होते हुअे भी वहां का राज अलग है। गोवा के लोग हमारे जिगर का टुकडा होते हुअे भी अेक भिन्न राष्ट्र की प्रजा हैं। ब्रिटिश सरकार और पोर्तुगाल के बीच केवल मित्रता का सम्बन्ध है। जो हालत पांडिचेरी और चन्द्रनगर की है वही हालत गोवा की भी है। (दीव और दमण अित्

छोटे हैं कि अुनका सवाल यहां पर छेडने की जरूरत नहीं ।)

गोवा के राजनैतिक आन्दोलन में हम कोअी हिस्सा नहीं ले सकते । हमारी स्वराज्य की प्रवृत्ति का प्रत्यक्ष लाभ गोवा की जनता को नहीं मिल सकता । किन्तु गोवा के सुखदुःख के बारे में हम अुदासीन भी नहीं रह सकते । गोवा की परिस्थिति से हमलोगों को कम से कम वाकिफ़ तो रहना ही चाहिअे ।

—२—

गोवा का प्राकृतिक सौंदर्य अनुपम है । अुत्तर से काश्मीर और दक्षिण से केरल के सौन्दर्य को ही मिला कर मानों कुदरत ने गोमान्तक की रचना की है । रेल से गोवा जाते हुअे तिनअी घाट की बन्य शोभा, पहाडों को छेद कर तय्यार किये हुअे सुरंग और छहों ऋतुओं में हरेभरे दिखाअी देने वाले पेड तो चेतोहर हैं ही । किन्तु वहां का काली नदी से बनने वाला दूधसागर का प्रपात तो केवल अुन्मादकारी है । गिरसप्पा का जोग प्रपात शायद दुनिया में सब से अूंचा होगा । नायगरा का प्रपात सब से बडा और भीषण होगा । किन्तु दूधसागर तो सब से अधिक अुन्मादक और सौन्दर्य-मूर्ति है ।

गोवा की नदियां समुद्र की खाडी में जा कर मिलती हैं और नदी और खाडी में अितना बडा चक्रव्यूह बना है कि अगर हम कहें कि गोवा में किसी भी अेक गांव से दूसरे गांव तक जाना हो तो हम ज्वारभाटे की अनुकूलता देख कर किश्ती में जा सकते हैं तो अुसमें विशेष अतिशयोक्ति न होगी । रेल का और मोटरों का प्रवेश होने के कारण जहां जहां लोहे के या वज्रलेप रास्ते हो गये हैं वहां की स्थिति कुछ बदल गयी है सही । तो भी गोवा में जहां देखें वहां पानी का जल-जंजाल अपनी शोभा से चित्त को पुलकित कर ही देता है ।

नारियल, सुपारी, केले, काजू, आम, कोकम, आदि के पेडों की शोभा तो अितनी वनगभीर है कि मनुष्य मानो पेडों की रजामन्दी से ही वहां पर बस सका है अैसा मालूम होता है । और अिनके बीच जब हिन्दुओं के मन्दिर या अीसाअियों के गिरजे अपना सिर अूंचा अुठाते हैं तब तो सौंदर्य की परिसीमा होती है । और मुंह से बेअिख्तियार अुद्गार निकलता है कि सचमुच यह देवभूमि है ।

लोगों में पुरानी शिक्षा यद्यपि क्षीण हो रही है तो भी साहित्य का शौक वहां पर कम नहीं है । अपने संगीत के लिअे तो गोवा मशहूर है ही । नृत्यकला और कारीगरी की परम्परा आज तक वहां पर अक्षुण्ण है । जब गोवा में जागृति के युग का प्रारंभ होगा तब गोवा अपनी संस्कार-समृद्धि के कारण महाराष्ट्र में और बम्बअी प्रान्त में अगर अग्रसर हुआ तो कोअी आश्चर्य नहीं । किन्तु गोवा की विशेष शक्ति तो अुसकी आज तक की विपत्ति में से ही अुसे मिलनेवाली है ।

—३—

गोवा में अधिकांश जनता कैथॉलिक पंथीय अीसाअियों की है । अीसाअियों का नाम लेते ही हमारे नज़र के सामने कोट-पतलून और टोप-बूट पहननेवाला आदमी खडा होता है । गोवा में हजारों और लाखों अैसे अीसाअी दीख पडते हैं जो कमर में अेक डोरी बांध कर अेक बडी रंगीन पिछौरी की लंगोटी के सिवा और

कुछ भी नहीं पहनते। समुद्र किनारे की नमी में ज्यादा कुछ पहनना भी नहीं चाहिअे। ये लोग खेती करते हैं। नारियल सुपारी आदि के बगीचे करते हैं, काजू के फल से शराब बनाते हैं, रविवार को गिरजे में जाते हैं। अीसाअी हो कर सैकडों बरस हो गये तो भी शादी के समय अपनी जाति का खयाल रखनेवाले लोग भी अिनमें पाये जाते हैं। ब्राह्मण–अीसाअी जहां तक हो सके भंडारी–अीसाअी को अपनी लडकी नहीं देगा। ग्यारस के दिन अुपवास करनेवाले और घर में शादी होने पर महादेवजी को नारियल चढानेवाले अीसाअी भी मैंने अपने बचपन में देखे हैं।

अब तो अिन अीसाअियों में शिक्षा का प्रचार बहुत हुआ है। गोवा के कअी अीसाअी पोर्तुगाल और फरान्स में जा कर बसे हैं। पोर्तुगीज आफ्रिका में तो गोआनीज अीसाअी बहुत पाये जाते हैं। मैंने सुना है कि अमेरिका और रूस तक अिन लोगों ने अपनी प्रतिष्ठा जमायी है। पोर्तुगाल को स्वदेश और पोर्तुगीज भाषा को स्वभाषा कहने में ये लोग अपना गौरव समझते थे। आज भी बहुत-से अैसे देशी अीसाअी गोवा में हैं जो घर में या तो पोर्तुगीज बोलेंगे या अंग्रेजी।

कुछ दिनों से अिनमें राष्ट्रीयता का खयाल पैदा होने लगा है। अब वे हिन्दुस्तान को ही स्वदेश मानते हैं और 'कोंकणी' को स्वभाषा। ब्रिटिश हिन्दुस्तान में लोगों को स्वराज्य के लिये कोशिश करते देख कर गोवा के लोगों में भी स्वराज्य की भूख जागी है। हिन्दू और अीसाअी अेक होने से ही स्वराज्य की आशा फलीभूत होगी अितना वे जानते हैं। किन्तु यह अेकता कैसी स्थापित की जाय अिसका निश्चय वे अभी तक नहीं कर पाये हैं। पादरियों ने तो अीसाअियों को हिन्दुओं से अलग रखने की पूरी पूरी कोशिश की। अब अुनका असर कुछ कम होने लगा है।

गोवा के हिन्दुओं को और अीसाअियों को अेक करनेवाले तत्त्व असंख्य हैं। भिन्न धर्मीय होते हुअे भी अिनका खून अेक है। रहन-सहन में कुछ थोडासा फर्क हुआ है तो भी दोनों की संस्कृति अेक ही है। सामाजिक जीवन में अलग अलग रहने की आदत होते हुअे भी सार्वजनिक जीवन में और सामान्य व्यवहार में ये दोनों समाज पूर्णतया ओत-प्रोत हैं।

और सब से बडा समान बन्धन तो अिन की प्यारी मधुर बोली कोंकणी है। हिन्दुस्तान की सब भाषाओं की और बोलियों की अगर कसौटी की जाय तो मधुरता में कोंकणी किसी से कम नहीं प्रतीत होगी। कोंकणी में संस्कारिता है। अर्थवाहित्व असाधारण है। अुपमा, रूपक आदि स्वाभाविक अलंकारों से वह सम्पन्न है। कोंकणी में कोअी सिर्फ "सबेरा हुआ" नहीं कहेगा। वह कहेगा कि "प्रभात फूल गयी है"।

कोंकणी और मराठी ये दो भाषायें भिन्न होते हुअे भी अेक दूसरे के अितनी नजदीक हैं कि ये दोनों अेक कुटुंब की नहीं हैं अैसा कोअी कहे भी तो अुसपर कोअी विश्वास नहीं करेगा।

पाठकों को सुन कर आश्चर्य होगा कि कोंकणी की गोवा में वही हालत है जो अुत्तर भारत में हिन्दी की है। गोवा के हिन्दू लोग जब कोंकणी में लिखते हैं तो अुसे नागरी अक्षरों में लिखते हैं। अुसी भाषा को जब अीसाअी लिखते हैं तो रोमन लिपि में लिखते हैं। हिन्दुओं की कोंकणी

में मराठी और संस्कृत के शब्द अधिक होते हैं असलिअे वह शुद्ध स्वदेशी जैसी लगती है। ओसाअियों की कोंकणी में दिन पर दिन पोर्तुगीज भाषा के शब्द बढते जाते हैं असलिअे वह अनपढ ओसाअियों के लिअे भी दुर्बोध बनती जाती है।

जो लोग गोवा छोड कर दक्षिण में कर्नाटक में जा बसे हैं अुनकी कोंकणी में कानडी शब्द आते हैं अितना ही नहीं, किन्तु वे कोंकणी को कानडी लिपि में लिखने व छापने में सहूलियत देखते हैं।

गोवा के हिन्दूलोगों में अेक छोटासा पक्ष है जो मराठी को कोंकणी का प्रतिस्पर्धी मानता है। मराठी के अध्ययन में वह कोंकणी का नाश देखता है। अगर कोंकणी के बाद सीखने लायक कोअी भाषा है तो वह राष्ट्र-भाषा हिन्दी ही है अैसा वे कहते हैं। दूसरा अेक पक्ष है जो कोंकणी को अेक भाषा की प्रतिष्ठा भी नहीं देना चाहता। अुसका कहना है कि कोंकणी मराठी की अेक छोटीसी बोली है। अुसमें न तो कोअी साहित्य है न व्यापक सामाजिक प्रचलन और जिस प्रदेश में अुसका प्रचलन है। अुसमें भी कोंकणी के अितने परस्पर भिन्न भेद हैं कि अुनका संगठन करना भी कठिन है। लोक-व्यवहार में कोंकणी का भले ही प्रचलन हो किन्तु हमारी **स्वभाषा** तो मराठी ही है। अिंग्लेंड में हर अेक कौण्टी की बोली अलग होती है किन्तु संस्कारी लोग लिखने-पढने में और सार्वजनिक व्यवहार में 'स्टैंटर्ड अिंग्लिश' का ही प्रयोग करते हैं। अिसी तरह हमें भी गोवा में मराठी का ही प्रचार करना चाहिअे।

महाराष्ट्र के मराठीवालों ने आजतक कोंकणी भाषा बोलनेवालों की निन्दा नहीं की होती और कोंकणी को गंवारू भाषा न कहा होता तो मराठी विरोधी कट्टर कोंकणी पक्ष पैदा ही न हुआ होता। मराठीवाले अब कुछ सुधर गये हैं। खुले तौर पर कोंकणी की मखौल नहीं करते। तो भी कोंकणी के प्रति अुनका तुच्छभाव अभी साफ नष्ट नहीं हुआ है।

अिधर गोवा के हिन्दू लोग मराठी के अध्ययन को जी जान से बढा रहे हैं। सरकार से तो पाअी की मदद नहीं। जहां बन सके वहां सरकार मराठी का विरोध ही करती है। महाराष्ट्रियों की सहानुभूति केवल नाम मात्र। अैसी प्रतिकूल परिस्थिति होते हुअे भी गोवा के हिन्दुओं ने स्थान स्थान पर मराठी के स्कूल चलाये हैं। अिन स्कूलों में लडके आपस में कोंकणी में बोलते हैं, मराठी का अध्ययन करते हैं, राजभाषा पोर्तुगीज तो अुन्हें सीखनी ही पडती है, व्यवहार व्यापार के लिअे अुन्हें अिंग्लिश भी सीखनी पडती है; और जो अुत्साही नवयुवक अुच्च शिक्षा पाते हैं अुन्हें अिन सब भाषाओं के अलावा अिटालियन या फरेन्च, या स्पॅनिश या जर्मन सीखनी पडती है। अैसे लोगों के बीच हिन्दी प्रचार की बातें करना आसान नहीं था। तो भी हिन्दी के लिअे वहां पर अच्छा वायु-मण्डल पैदा हो सका है। दो तीन दिनों में दिनरात कोशिश करने पर भी कितना काम हो सकता है? तो भी जिन ओसाअियों से मैं मिल सका अुन लोगों ने मान लिया कि कोंकणी भाषा नागरी अक्षरों में लिखने से ही अुसका प्रचार बढेगा। कोंकणी में जो पोर्तुगीज शब्द रूढ हो गये हैं अुनका बहिष्कार करने की कोशिश न की जाय यह बात वहां के हिन्दू मान गये और हिन्दुओं की कोंकणी में जो मराठी शब्द आते हैं अुन्हें सीखने

का अपना कर्तव्य अीसाअी भी समझ चुके हैं।

अिस तरह से गोवा में कोंकणी को अेक तरफ से मराठी के सहारे और दूसरी तरफ से पोर्तुगीज भाषा के अनिवार्य अध्ययन के कारण दो-मुखी प्रगति करनी पडती है। गोवा के लोग मराठी को छोड नहीं सकते। पोर्तुगीज तो अुन्हें सीखनी ही पडती है। किन्तु आन्तर-जातीय अेकता के लिअे परस्पर अविश्वास, मत्सर और असूया छोड कर दोनों समाजों को कोंकणी का ही विकास करना चाहिअे।

गोवा के अीसाअीलोग बम्बअी से लेकर मंगळूर तक फैले हुअे हैं। फैले हुअे हैं अितना ही नहीं, किन्तु हिन्दुस्तान का पश्चिम किनारा और आफ्रिका का पूर्व किनारा अुन्हींका है। हिन्दुस्तान के स्वराज्य का प्रश्न अुनके निजी जीवन के लिअे भी बहुत महत्त्व का है और अिसी कारण गोवा की राजनैतिक प्रगति का सवाल भी अुतना ही महत्त्व का है। गोवा के हिन्दू और अीसाअी जब अेक होंगे तब बहुत ही आसानी से अपने भाग्यसूर्य का अुदय देख सकेंगे। अेक दूसरे को अुपदेश करने से यह काम नहीं होगा। अपनी अपनी ओर से हार्दिक संगठन करने की कोशिश करने से और अेक दूसरे के लिअे मन में आदरभाव रखने से ही यह काम सिद्ध होगा। अगर गोवा के अीसाअी अुत्तर भारत के मुसलमानों का अनुसरण करेंगे और गोवा के हिन्दू जातीयता से घिरे हुअे हिन्दुओं का अनुसरण करेंगे तो गोवा की राजनैतिक समस्या ब्रिटिश हिन्दुस्तान की समस्या से हजार गुनी जटिल हो जायगी। हमें विश्वास है कि ब्रिटिश भारत के पचास बरस के अितिहास से गोवा की जनता सबक सीखेगी और कांग्रेसी ढंग से काम चला कर अपना अुद्धार शीघ्राति-शीघ्र कर लेगी।

गोवा में आज तानाशाही का राज है। अगर सरकार को खयाल हुआ कि किसी आदमी का आन्दोलन––वह चाहे जितना शुद्ध हो––राज्य के खिलाफ है तो वह अुसे गिरफतार करके आफ्रिका के किसी अुपनिवेश में चाहे जितने दिनों के लिअे निर्वासित कर सकती है। अैसी बुरी दशा के कारण वहां की जनता दिल खोल कर बोल नहीं सकती। अैसे दमनकारी कानूनों से राजसत्ता का और जनता का चारित्र्य तो बिगड ही जाता है। किन्तु स्वातंत्र्य-लालसा कभी भी मर नहीं पाती। जब स्वातंत्र्य सूर्य का अुदय होता है तब फलानी रियासत पोर्तुगीज है अिसलिअे वहां पर अपनी किरणें नहीं ले जानी चाहिअे अैसा स्वधर्म भगवान सूर्यनारायण ने आज तक नहीं माना है।

मेरे मन में दिन पर दिन यह श्रद्धा मजबूत होती जाती है कि अीसाअियों के ये बडे बडे और धनाढ्य मिशन जब हिन्दुस्थान को, या कमसे कम अुसके भोलेभाले देहातियों को, अीसाअी बना कर अुनकी वह समाज-रचना जो अनेक नुस्कों के होते हुअे भी न मालूम किस पुराने ज़माने से भीतरी और बाहरी हमलों के बावजूद भी टिकी हुअी है, तोड देने के अवान्तर अिरादे को छोड़ कर शुद्ध परोपकारी सेवा का ही काम करने का विचार करेंगे तभी वे भारत की सच्ची सेवा कर सकेंगे।

गांधीजी

२८:९:१९३५.

कौअे की नजर से

'५. गांधी सेवा संघ

संपादक भाअी,

मैंने आपके संघ का नाम तो हाल हाल में बहुत बार सुना है, लेकिन मुझे यह ठीक पता न था कि यह आपकी जमात असल में किस तरह की है। अिसलिअे जब मैंने कौअे से सुना कि आप की जमात बिहार के अेक देहात में अिकट्ठी होनेवाली है, तब मैंने अुसे तुरन्त संघ की तारीफ सुनाने के लिअे फरमाया।

तब **भुशुंडी** बोला कि अिसकी पहचान कराना जरा मुश्किल है। क्योंकि संघ के सदस्य ही यह ठीकसे नहीं जानते कि संघ क्या है और क्यों है। जो अंदर हैं वे अक्सर अुसे बिना किसी खास काम का समझते हैं, और जो अंदर नहीं हैं वे सोचा करते हैं कि कब हमारा अैसा सौभाग्य हो कि हम अुसके सदस्य बनें! हाल हाल में अुसने तरह तरह के विरोधी भी पैदा कर लिये हैं। कअी अुसका बड़ा मज़ाक अुडाते हैं। कहते हैं कि ये सब बुद्धू हैं जो सिर्फ 'चर्खा चला चला के लेंगे स्वराज लेंगे,' अितना ही समझते हैं। दूसरे कहते हैं कि ये सब गांधीबाबा के भगत हैं, जैसे बापू नचाते हैं वैसे नाचते हैं। कअी कहते हैं कि यह भांति भांति के धुनी लोगों का अेक अजायब घर है। अुनमें न कोअी रूप है, न शोभा। दो-चार छोड कर सारे रोगी और दुबले-पतले! हरेक में कुछ न कुछ अैब होता है, जिससे वे व्रत करते हैं। कोअी दूध छोडते हैं, तो कोअी सिर्फ दूध ही खाते हैं। और अुनमें कोअी गाय के दूध-घी के ही आग्रही हैं। कोअी केवल फलाहार करते हैं, तो कोअी कच्चा अनाज ही खाते हैं। कोअी मसाले को नहीं छूते, और कोअी नमक से भी परहेज रखते हैं। कोअी पूरे कपडे पहनते हैं, तो कोअी अैसे भी है कि जो सिवा अेक ओछी धोती के और कुछ नहीं पहनते। कोअी विवाह में शामिल नहीं होते, तो कोअी पूजा में शामिल नहीं होते। कोअी अपनी तसबीर खिचवाते हैं, तो कोअी तसबीरवाले को देख कर छिप जाते हैं। साहित्य और संगीत का तो अुनमें कुछ शौक है, मगर काका और अुन त्रावणकोरवाले रामचंद्रन् को छोड कर शायद ही किसी में कला का खयाल हो। कअी विरोधियों का कहना है कि यह तो गांधीवालों की दलबंदी है, और वे कांग्रेस-राज की जगह गांधीराज कराना चाहते हैं। दूसरे कहते हैं कि ये सब अैसे लोग हैं जिन्होंने अपने दिमाग गांधी के पास गिरो रख दिये हैं।

मैं—यह क्या? मैं तो समझता था कि दिमाग अैसी चीज नहीं होती जो गिरो रक्खी जा सके। क्या मैं अपना दिमाग गिरो रख सकता हूं?

भुशुंडी—तुम्हारे लिअे तो अैसा सवाल ही नहीं अुठ सकता, काका। भगवान ने दया करके आदमी के सिवा दूसरे प्राणियों को अैसा पूर्ण और स्थिरबुद्धि बना दिया है कि अुन्हें अैसी झंझट में पडना ही नहीं पडता।

मैं— तब मनुष्य किस तरह अपने दिमाग को गिरो रखता है?

भुशुंडी— काका, बात यह है कि सब आदमी बाहर से अेक-से दीखते हैं, लेकिन अुनके दिमाग की बनावट में बहुत फरक होता है। चंद लोगों का दिमाग ही सच्चा

होता है। वह सूरज की तरह अपना प्रकाश फैलाता है। और कअी लोगों का दिमाग अेक गोल कांच के जैसा होता है। वह बाहर के प्रकाश को अंदर केंद्र में लाता है, और असीसे काम चलाता है। और कअी लोगों का दिमाग अैसा होता है मानों फूटे हुअे आअिने के टुकडों से भरा हो। अुसमें सब जगह से प्रकाश जाता है, लेकिन वह चारों और बिखर जाता है। न अपने काम का होता है, न दूसरे के काम का। जिन लोगों का अैसा दिमाग होता है, अुनका अेक अैसा खयाल हो गया होता है कि अुन्हींके पास सच्चा सूरज-सा दिमाग है। और वे मानते हैं कि जिनका दिमाग गोल कांच के जैसा है, अुनका दिमाग दूसरे के पास गिरो रखा हुआ है। वे कहते हैं कि अेक तो बापू के पास दिमाग है, और दूसरे अुनके पास। बाकी सारे गांधी सेवा संघ के सदस्यों के दिमाग गोल कांच हैं।

मैं–लेकिन, फिर सच बात क्या है?

भुशुंडी— वह मैं भी तो कैसे परखूं, जब कि अुसके सदस्य ही नहीं जानते? मुझे तो अितना ही दीखता है कि अुसमें बापू का नाम है, बापू का बताया हुआ कुछ काम होता है और बापू अुसमें दिलचस्पी लेते हैं। फिर अुसमें अेक फंड है। और अुसमें धोत्रे हैं, जो अुसकी बडी चिंता रखते हैं। और सब चर्खा और खादीवाले हैं।

मैं–यह धोत्रे कौन हैं?

भुशुंडी–क्या अुन्हें भूल गये? यहां विनोबा के साथ ही तो रहते थे। तब तो छोटे लडके थे, अब बडे हो गये हैं।

मैं–वे क्या बडे हुशार आदमी हैं।

भुशुंडी–देखो, काका, अिन सदस्यों की व्यक्तिगत पहचान न मांगो। अगर सच बताता हूं तो उनके भगत लोग नाराज हो जाते हैं। और सत्याग्रहाश्रम में रहकर झूठ कैसे बताअूं?

मैं–अच्छा तो ये लोग संमेलन कर के क्या करते हैं?

भुशुंडी–अेक पोखर (तलैया) या कुंआ खोदते हैं। या अैसा ही थोडा मजदूरी का काम बताते हैं। और अेक प्रदर्शिनी करते हैं। और रोज आध घण्टा चर्खा चलाते हैं। चर्खा चलाते हैं तब मौन रखते हैं। अुतने ही समय मालूम होता है कि ये लोग कुछ 'गांधीकारी' भी हैं। बाकी तो सारा समय 'गांधीवाद' में चला जाता है। बापू ने अपने अुस तोते को, किशोरलाल को, फरमाया है कि वहां वे अपनी कुछ बोली सुनाया करें। अिसलिअे वे अेक लंबा–चौडा भाषण पढ जाते हैं जिसको सुनते सुनते कअी लोगों को नींद आ जाती है। लेकिन, बापू कहते हैं कि देखो, अुन्होंने कितनी मिहनत ली, कैसी कैसी बातें सुनाअीं! तब किशोरलाल का हृदय खिल उठता है, और बुद्धि थक जाती है। फिर, बापू अपनी बातें सुनाने लगते हैं। किसीने कुछ पहले से तो सोचा ही नहीं होता कि वहां क्या वाद करना है। अिसलिअे वाद तो होता है, लेकिन अंत तक उसकी कोअी थांग नहीं लगती। जब वाद जोर से चलता है, तब सरदार, जमनालाल और कृपालानी बीच में गडबड मचाते हैं। वैसे तो वहां हँसना बहुत होता है। लेकिन बीच में ही बापू कुछ अैसी बात छेडते हैं, जिससे अैसा वायुमण्डल छा जाता है, मानों अभी सब की आँखों से पानी बरसने लगेगा। और अेकाध आदमी तो जरूर रो देता है। अिस तरह सात दिन तक हँस-रोकर सब अपने अपने घर लौट जाते हैं। अिसीको वे संमेलन कहते हैं। चलो न, अेक बार हम साथ जा कर देख आवें?

मैं-यह कैसे हो सकता है? हमें कौन बुलाने बैठा है?

भुशुंडी-अरे, अिस सम्मेलन में बुलाने की कोअी जरूरत नहीं है। किशोरलाल ने अेक नया वर्ग निकाला है, 'असभ्य सभ्यों' का। अिन की जिम्मेवारी कुछ नहीं होती, लेकिन सभ्यों के सब लाभ वे उठा सकते हैं। हम तो आश्रम के पंखी हैं। हम तो हक से असभ्य सभ्य माने जा सकते हैं।

क्या, संपादक भाअी, यह बात सच है? क्या हम बिना न्यौता मिले जा सकते हैं? फौरन उत्तर दें।

आपके
आश्रम का उल्लू

सव्य और अपसव्य की मीमांसा

[आचार्य जीवतराम कृपालानी]

राजकीय सत्ता की जरूरत

जिन्होंने कुछ भी अनुभव या अध्ययन किया है अैसे लोग जिनको मानने से कभी अिन्कार नहीं करते अैसी बातें बडी लम्बी चौडी दलीलों द्वारा सिद्ध करने का प्रयास हमारे कुछ विद्वान मित्र करते रहते हैं। अेक दृष्टि से वे श्रद्धावानों का मत परिवर्तन करना चाहते हैं। हमारे देश में गरीबी और बेकारी है और अुसकी खरीदारी की शक्ति बहुत ही क्षीण है यह तो सभी मानते हैं। खेती और अुद्योग के यन्त्रीकरण से अुपज बहुत ज्यादह बढ़ जायगी अैसे सुस्पष्ट सिद्धान्त का प्रतिवाद भी कौन कर सकता है? यन्त्रीकरण केवल साम्यवादी शासन में ही भलीभांति किया जा सकता है यह भी हम, बहस के लिअे, मानने को तय्यार हो सकते हैं। लेकिन फिर भी हम यह तो जानना चाहेंगे ही कि हम अपने अभीष्ट परिवर्तन किन साधनों से सिद्ध करेंगे? अपने लक्ष्य तक पहुंचने के लिअे आवश्यक सत्ता और साधन कैसे प्राप्त करेंगे? यह तो मानी हुअी बात है कि हमारे पास यह आवश्यक सत्ता और साधन मौजूद नहीं है। अिसलिअे सवाल यह है कि हम अिनको कैसे हासिल करें? औद्योगीकरण, समाजीकरण, प्रचलित स्वार्थों का निवारण, अुपज के साथ क्रयशक्ति बढ़ाना और बेकारी दूर करना—ये कोअी केवल तात्त्विक या किताबी सवाल नहीं हैं। वे व्यावहारिक राजकारण के सवाल हैं और जब तक राज्य की सत्ता और तन्त्र हमारे अधीन न होगा तब तक वे हल नहीं हो सकते। पहले राजनैतिक सत्ता प्राप्त कर लेने के बाद ही लेनिन रूस में बिजली जैसा असर पैदा कर सका, अुसे जजबे में ला सका। और न बिना निरपवाद और अबाधित सत्ता के अुसके अुत्तराधिकारी ही औद्योगीकरण और यन्त्रीकरण को अनजाम दे सके।

मसलन, हमारे अुद्योगधन्धों का स्वाभाविक विकास क्यों नहीं हो पाता? हम जिधर को मुडते हैं अुधर ही रास्ते में रुकावटें पाते हैं।

ये रुकावटें तात्त्विक नहीं, व्यावहारिक हैं। जब तक वे दूर नहीं होतीं हम कुछ भी सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। हमारे रास्ते में जो रुकावटें हैं अुन्हें मोटे तौर पर राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक, अिन तीन विभागों में बाँट सकते हैं। हम जानते हैं कि आखिर हमारी तमाम आर्थिक कठिनाअियों की जड़ हमारा राजनैतिक संगठन है। जब तक ये राजनैतिक कठिनाअियां दूर न होंगी तब तक हम कोअी कहने लायक आर्थिक प्रगति भी नहीं कर सकते। अिधर हमने यह भी महसूस किया है कि राजनैतिक सत्ता के बिना हम अपनी प्रमुख सामाजिक कुरीतियां भी दूर नहीं कर सकते। जब कि सारा राष्ट्र छुआछूत मिटाने के लिअे तत्पर है अैसी हालत में भी कानून अिस या अुस बहाने की ओट में अुसके रास्ते में रोडे अटकाता है। अगर हम शराब-बन्दी करना चाहें तो कानून कोअी मदद नहीं करता। हम अगर राष्ट्र को साक्षर करना चाहें तो राष्ट्र-निर्माण के लिअे पैसा देने से अिन्कार करके सरकार हमारे रास्ते में विघ्नरूप हो जाती है। जब तक सरकार खुद अपने सिर पर जिम्मेवारी नहीं लेती, या कम से कम सुधारक का पक्ष नहीं लेती, तब तक कोअी भी बडा सुधार करना असम्भव है। हमें या तो राजनैतिक शक्ति निर्माण करनी चाहिअे या विद्यमान सत्ता पर कब्जा करना चाहिअे।

जापान के हाथ में राजनैतिक सत्ता थी। अिसलिअे लगभग तीस साल में अुसने केवल अपना औद्योगीकरण ही नहीं किया बरन् पाश्चात्य संसार को परिणामकारक चुनौति भी दे दी। हिन्दुस्तान ने औद्योगीकरण कुछ पहले शुरू किया लेकिन अुससे क्या परिणाम निकला? मर्दुमशुमारी के विवरण तो यह बताते हैं कि पहले के किसी भी जमाने की अपेक्षा आज कहीं अधिक परिणाम में अिस देश के लोगों को खेती पर निर्भर रहना पडता है। रूस ने पंद्रह साल में अपना औद्योगीकरण कर लिया। राजनैतिक सत्ता हस्तगत होने से पहले रूसी आदर्शवादियों के सपने कैसे निरर्थक मालूम पडते थे?

औद्योगीकरण का प्रयत्न

हिन्दुस्तान ने औद्योगीकरण का जो प्रयास किया अुसके परिणामों का कुछ विस्तृत निरीक्षण करें। सभी अुद्योगधन्धों की हालत डाँवाडोल है। आज का संसार अैसे राष्ट्रों में बँटा हुआ है जो अेक दूसरे से नित्य आर्थिक और राजनैतिक लडाअियां करते रहते हैं। अैसी हालत में जब तक सम्पत्ति, मुद्रित धन, चुंगी, और विदेशी नीति पर किसी देश का पूरा पूरा अधिकार न हो तब तक अुसके अुद्योगधन्धे टिक नहीं सकते। अिस अधिकार के बिना अुद्योगधन्धों का डाँवाडोल हालत में रहना अनिवार्य है। जगद्व्यापी आर्थिक संकट की बदौलत सम्पत्ति, चलन, चुंगी और परराष्ट्रीय नीति पर जिनका पूरा पूरा काबू है अैसी सरकारें भी अपने अुद्योगों की हिफाजत नहीं कर सकतीं। तो फिर हमारे देश में जहां हमारे बडे से बडे राष्ट्रभक्त भी राजनैतिक सत्ता से वंचित हैं वहां का हाल क्या कहना? हिन्दुस्तान के अुद्योगधन्धों का स्वाभाविक और स्वस्थ विकास जैसी कोअी चीज ही नहीं है। बंग-भंग के आन्दोलन के बाद स्वदेशी के जमाने से देशी अुद्योगों की रक्षा के लिअे बहुत भारी चुंगी, याने कभी कभी तो सैंकडा दो सौ

तक, लगायी गयी है। अिसके वावजूद भी यह हाल है। जो देश अपनी खरीदारी की ताकत की तुच्छता के लिअे बदनाम है अुस देश के खरीदारों ने बडी खुशी से और स्वेच्छा से यह अतिरिक्त भार वहन किया है। सार्वजनिक कार्यकर्ताओं ने देशी अुद्योगों के अवैतनिक दलालों और अिश्तिहारदारों का काम किया है। काँग्रेस और दूसरी सार्वजनिक संस्थाओं ने प्रदर्शिनियों और बाजारों के आयोजन में लाखों रुपये खर्च किये हैं। प्रान्तीय और केन्द्रीय धारासभाओं में बडे बडे अुद्योगों का हमेशा समर्थन किया गया है और सरकार से जबर्दस्ती अुनके लिअे कुछ न कुछ संरक्षण प्राप्त किया गया है। लेकिन अिस सब प्रयास और त्याग का जनता को या गरीबों को क्या फल मिला? अुन अुद्योगों ने अपना घर तक सँवारने की चेष्टा न की। अुनकी योग्यता सारी दुनिया में सब से कम दर्जे की है। शायद अुनके लिअे प्रेरक शक्ति का अभाव है। लेकिन दूसरा और हो ही क्या सकता है? वे जानते हैं कि अर्थसचिव की कलम की अेक फटकार अुनपर गजब ढा सकती है। अिसलिअे वे बहती गंगा में हाथ धो लेना चाहते हैं। जिस तरह बन पडे वे कमसे कम वक्त में ज्यादह से ज्यादह नफा अुठाना चाहते हैं। सरकार अुन्हें वैसा करने देती है क्यों कि अिससे अिस देश में जो विदेशी पूंजी लगी हुअी है अुसको बराबरी का ही नहीं बल्कि कुछ विशेष सुयोग मिलता है। तो फिर काले पूंजिपतियों को थोडेसे टुकडे मिलने में हर्ज ही क्या है? शर्त अितनी ही है कि ये टुकडे अितने विपुल न हों कि अुनकी बदौलत अिंग्लैंड का अुद्योग या अुसके आन्तर-राष्ट्रीय राजनैतिक और व्यापारिक सम्बन्धों को कोअी नुकसान पहुंचे।

जनता के प्रति पूंजिपति और सरकार की अिस अुपेक्षा के दुष्परिणाम अितने बडे होते हैं कि श्रमिकों के प्राथमिक अधिकारों की भी रक्षा नहीं हो सकती। जहां तक कामों के घण्टे, जिन परिस्थितियों में काम करना पडता है वे परिस्थितियां, रहने का अिन्तजाम, नुकसान का हरजाना, वेतन, पेन्शन, शिक्षा, दवादारू और दिल बहलाने के साधनों का सम्बन्ध है, हिन्दुस्तान के श्रमिक संसार के श्रमिकों से कहीं पिछडे हुअे हैं। निकृष्टतम शोषण से राष्ट्र अुनकी रक्षा नहीं कर सका। अिस तरह के घृणित शोषण का परिचय दूसरे देशों को अर्ध-शताब्दी के पूर्व भले ही रहा हो।

खेती का प्रश्न

खेती का ही प्रश्न ले लीजिये। जमीन तो मानों होमिओपाथी की सूक्ष्म गोलियों जैसे छोटे छोटे टुकडों में बँट गयी है। कअी सूबों में फी-आदमी औसतन दो अेकड़ से भी कम जमीन है। अिसका यही मतलब हुआ कि आधे या पाव अेकड़ से भी कम अेकडवाले कअी खेत होंगे। यह बँटवारा सूक्ष्म से सूक्ष्मतर हो रहा है। देश में अैसा कोअी कानून नहीं जो अुसे रोक सके। किसान-परिवारों के संपत्तिविहीन व्यक्तियों का अिन्तजाम जो सरकार कर सकेगी वही कानून भी बदल सकेगी। अुनके लिअे तो सिर्फ व्यापार और अुद्योग के क्षेत्र में ही प्रबन्ध हो सकता है। सरकार यह बात बहुत अच्छी तरह जानती है। और अिसीलिअे खेती के अिस बँटवारे को रोकने का कोअी यत्न नहीं किया गया।

हर अेक के पास जमीन का बहुत छोटा टुकडा है यही बात नहीं। वे टुकडे भी

अेक दूसरे से जुडे हुअे नहीं हैं, बल्कि बिखरे हुअे हैं और अेक दूसरे में मिले हुअे हैं। अैसे खेतों के लिअे यान्त्रिक हल का क्या अुपयोग होगा? मतलब, यह सवाल केवल तात्त्विक नहीं है। जमीन के छोटे छोटे टुकडे ज्यादा फायदेमन्द हैं या बृहत परिमाण में अुत्पादन, जमीन किसानों की निजी संपत्ति होना अधिक अनुकूल होगा या अुसका राष्ट्रीकरण— अितना ही सवाल नहीं है। प्रश्न तो यह है कि अिस या अुस प्रकार की क्रान्ति के लिअे सत्ता कहां है? क्योंकि मेरी तो यह राय है कि वर्तमान परिस्थिति में अुक्त दोनों प्रकार के परिवर्तन क्रान्तिकारी ही साबित होंगे। और अुनके लिअे सुधारकों को सारे भारत पर संपूर्ण आर्थिक और राजकीय सत्ता की आवश्यकता रहेगी। किसी न किसी तरह की आर्थिक योजना के बिना अिनमें से कोअी बात नहीं हो सकती। सत्ता के सिवा आर्थिक योजना की बात तो सिर्फ अुन गैरजिम्मेवार अर्थशास्त्रियों की परिषदों में ही हो सकती है जो कि सच बात जानते हुअे भी अुसे कहने में हिचकते हैं मगर विद्वान और अद्यतन होने की अकड और अिच्छा तो रखते हैं।

अिसलिअे भारतवर्ष के लिअे पहला सवाल अुस क्रान्तिकारी पुनःसंगठन का नहीं है, जो औद्योगीकरण और समाजवाद के लिअे जरूरी है, बल्कि राजकीय सत्ता पर कब्जा करने के आत्यन्तिक कार्यक्रम का। जब तक अैसी सत्ता हाथ में नहीं आयेगी तब तक दूसरे सब आर्थिक और सामाजिक कार्यक्रम केवल सुधार का ही रूप ले सकते हैं।

गांधीजी की अर्थनीति

गान्धीजी आज देश के सामने अैसा कार्यक्रम रखते हैं जो राज-सत्ता और राज्यतन्त्र की सहायता बिना पूरा किया जा सकता है। अिसका कारण केवल गान्धीजी की अेक सनक या खब्त ही नहीं बल्कि अुपर्युक्त विचार-धारा है। अुनके खादी और ग्रामअुद्योग के सारे कार्यक्रम के पीछे यही राजकीय और आर्थिक भूमिका है। हाल ही में कोअी लॉर्ड फेरिंगुडन नामक समाजवादी अमीर गान्धीजी से आकर मिले। अिन सज्जन ने गान्धीजी से अुनके ग्रामअुद्योग संघ का असली अुद्देश जानना चाहा। गान्धीजी का मौन था। अिसलिअे अुन्होंने लिखा, "लोगों को कचरे का रूपान्तर सम्पत्ति में करना सिखाना।" पृच्छक ने पूछा, "आप देहाती कर्जदारी का सवाल किस तरह हल करना चाहते हैं?" जबाब मिला, "अभी हमने अुसमें हाथ ही नहीं डाला है। अुसके लिअे तो राज की ओर से प्रयास होना जरूरी है। आज तो मैं अैसी बातों का अन्वेषण कर रहा हूं जिन्हें लोग राज की सहायता के बिना कर सकें। अिसका यह मतलब नहीं कि मैं राज की सहायता नहीं चाहता। लेकिन मैं जानता हूं कि मैं अुसे अपनी शर्तों पर नहीं प्राप्त कर सकता।" थोडे और अर्थपूर्ण शब्दों में यहां गान्धीजी के कार्यक्रम की आर्थिक भूमिका अभिव्यक्त हुअी है।" वे अेक समाजवादी से बात कर रहे थे। वह अुनकी नित्य की आध्यात्मिक भाषा या सादगी और स्वेच्छाप्रेरित गरीबी के विषय में अुनके विचार शायद नहीं समझ सकता। अिसलिअे अुन्होंने जिसे अेक विदेशी समझ सके अैसी सुस्पष्ट राजकीय और आर्थिक भाषा का प्रयोग किया। राष्ट्र के कचरे की सम्पत्ति बनाने के लिअे कोअी भी सच्चा अर्थशास्त्री

गान्धीजी को दोष नहीं दे सकता। अुसी मुलाकात में गान्धीजी ने यह भी कहा कि देश के सामने दूसरा कोअी रचनात्मक कार्यक्रम नहीं है।

समाजवादी और रचनात्मक कार्य

प्रचलित राजनैतिक व्यवस्था में मैं समझता हूं कि कोअी भी क्रान्तिकारी रचनात्मक कार्यक्रम शक्य नहीं है। वह तो सारा का सारा सुधार का ही कार्यक्रम होगा। कचरे का अुपयोग करना अुसका अुद्देश होगा। वह बहुत साधारण-सी बातें कर सकेगा। और सो भी बडी नम्रता से। अिसीलिअे तो समाजवादियों ने अपना कोअी रचनात्मक कार्यक्रम नहीं बतलाया। वे हमें अपने अुद्देश और अुसूल तो जरूर बतलाते हैं। समाजवादियों का अभीष्ट है अुत्पादन के समस्त अुपकरणों का राष्ट्रीकरण। अिसका मतलब यह है कि देश की सारी आर्थिक प्रवृत्तियां-चाहे फिर वे अुत्पादन-वितरण या, विनिमय और अुपयोग, से सम्बन्ध रखती हों--राजसत्ता के अधीन होंगी। अुस राज्य के सूत्र अुत्पादकों के, यानी श्रमिकों के, हाथ में होंगे और वे अुसका सूत्र-संचालन अपने हित में करेंगे। यह सब होने से पहले श्रमिकवर्ग या अुनके कोअी प्रतिनिधि या पक्ष को अुनके लिअे राजसत्ता हथियानी चाहिअे। वैज्ञानिक समाजवाद के ये ध्येय और अुद्देश हैं। अिसलिअे असली समाजवादी श्रमिक संघों (ट्रेडयूनियनों) का काम पसन्द नहीं करते। अुनके मत से ये सब सुधारवादी आन्दोलन हैं, जिनको श्रमिकों की कुछ छोटी मोटी शिकायतें दूर करने से ही मतलब है। कभी कभी वे मजदूर संघों (ट्रेडयूनियनों) को दरगुजर कर लेते हैं। क्यों कि वे अैसा समझते हैं कि अिनका काम अेक तरह से हडतालों की प्रस्तावना ही है। हडतालों के जरिये जनता को अन्तिम वर्गविग्रह की आवश्यक शिक्षा मिलती है। अक्सर वे मजदूर-संघों के अैसे कार्य का निषेध करते हैं जो मजदूरी को कुछ अधिक सुखकारक बना कर क्रान्ति और प्रतिशोध का दिन टालता है। अैसा सुधारवादी प्रयत्न जब सफल होता है तो असंतोष की धार कम पैनी हो जाती है। वैज्ञानिक समाजवादी होने के कारण वे जानते हैं कि व्यापार की मन्दी के दिनों में कोअी हडताल सफल नहीं हो सकती। कभी कभी तो पूंजीपति अैसी हडतालों से खुश भी होते हैं। यहां तक कि वे खुद ही हडताल कराते हैं। लेकिन फिर भी वैज्ञानिक समाजवादी अैसी हालत में जब कि व्यापार की स्थिति गिरी हुअी हो हडताल कराने से बाज नहीं आयेंगे। क्यों कि वे अच्छी तरह जानते हैं कि वह हडताल स ल नहीं होगी और अुसके कारण मजदूरों को अकथनीय दुःख और यन्त्रणा सहनी पडेगी। वे समझते हैं कि यह दुःख और यन्त्रणा टाली नहीं जा सकती। यह कीमत चुकानी ही होगी। व्यक्ति तो सामुदायिक अुन्नति के महज साधन ही हो सकते हैं। अुनकी अपनी कोअी निजी कीमत या अुपयोग नहीं है। साधारण लोग सदा से साम्राज्यवादी और पूंजिपतियों की तोपों का खाद्य ही होते आये हैं। आज अगर वे क्रान्ति के खाद्य होंगे तो अुनकी आगामी पीढियों को कुछ अधिक रोजी तो मिलेगी।

मजदूर संघ

अिसके विपरीत सच्चा मजदूरसंघवादी (ट्रेडयूनियनिस्ट) सफलता की शक्यता देखता है। वह गरीबों को सिर्फ अुपकरण नहीं बनाना चाहता।

अुसकी यह धारणा है कि प्रत्येक व्यक्ति के समष्टि से परे भी अेक जीवनी हुआ करती है। व्यक्ति की हैसियत से अुनके सुखदुःख वास्तविक हैं। अुसका जीवन कितना ही क्षुद्र क्यों न हो वह भी अेक स्वतन्त्र साध्य है। अगर सफलता मिलने का कोअी सम्भव न हो तो वह चुपचाप सहता चला जाता है। अुसके लिअे तो हडताल मज़दूरों की हालत सुधारने का अेक साधन है। वह हडतालों को अन्तिम संघर्ष की तय्यारी के लिअे कसरत या डंडबैठक की जगह नहीं मानता। अिसलिअे वह नाहक हडतालें नहीं करता। अुन्हें वह अुस आखरी लडाअी की तय्यारी नहीं मानता जिसमें वर्गों के बीच तलवार चलेगी और जिसके अन्त में वर्ग-विहीन समाज स्थापित होगा।

समाजवादी और ग्रामसेवा

अिसलिअे जबतक वैज्ञानिक समाजवादी व्यावहारिक कारणों के लिहाज से कुछ काल के लिअे अपने सिद्धान्तों की सख्ती कुछ कम नहीं करता या अुनमें कुछ लचीलापन नहीं लाता तब तक वह शहरी मज़दूरों में कोअी विधायक काम नहीं कर सकेगा। अगर वह शहरों में ही कोअी विधायक काम नहीं कर सकता तो देहातों में कैसे कर सकेगा? देहाती प्रश्नों में अुलझ कर वह गुमराह हो जायगा। वे अितने क्षुद्र होते हैं, अुनका क्षेत्र अितना छोटा होता है कि, अपने व्यापक दर्शन के कारण वह अुनको हल करना फिजूल नहीं तो मुश्किल जरूर समझेगा। अिस तरह के सुधारवादी आन्दोलन से अगर कभी क्रान्ति के लायक परिस्थिति अुत्पन्न हुअी तो वह प्रलयकाल में होगी अैसा वह महसूस करेगा। अिसलिअे तंग आकर हार मान लेगा। अुसका काम तो वहां भी लोकक्षोभ के प्रदर्शन का संगठन करना ही होगा। यह क्षोभ-प्रदर्शन सिर्फ समय समय पर ही हो सकता है। जब खेती का मौसम शुरू हो जायगा तो अुसका सारा क्रान्तिकारी जोश-ओ-फरोश, या आगे आनेवाले वर्गविहीन आदर्श समाज का दिव्य चित्र, देहातियों को अपने हल और हंसिये छोडने के लिअे प्रेरित नहीं कर सकेगा। अगर ये क्षोभ-प्रदर्शक जलसे बडे पैमाने पर होंगे— और अगर बडे पैमाने पर न होंगे तो अुनमें कोअी तथ्य नहीं रहेगा और न अुनका कोअी असर ही होगा— तो वे बहुत थोडे और बहुत दिनों बाद ही हो सकेंगे। देहाती श्रमिकों को अगर पचास हजार—या दस हजार की भी कह लीजिअे- सभा में आना हो तो दोपहर के तीन बजे से पहले सभा समाप्त होनी चाहिअे। वे सब पैदल आते हैं। सांझ से पहले घर पहुंचने के लिअे अुन्हें जल्दी ही रवाना होना चाहिअे। पचास हजार तो क्या, दस हजार की भीड के लिअे भी देहात में खानेपीने या रहने का अिन्तजाम करना नामुमकिन है। अिसलिअे यह भीड अस्थायी और चंचल ही होगी। अुनमें कोअी संगठन न रहेगा और न वे किसी रचनात्मक प्रयास के काम आ सकेंगे। प्रचार और प्रदर्शन की दृष्टि से अुनका कुछ परिमित अुपयोग भले ही हो।

सारांश क्या देहात में, क्या शहर में, वैधानिक समाजवादी का अेक मात्र कर्तव्य प्रचार, प्रदर्शन और समाजवादी सिद्धान्तों का प्रवचन ही है। अन्तिम चीज़—या प्रवचन—तो कुछ गिनेचुने मुट्ठीभर विद्वानों का ही काम है। अगर वह सब को सौंप दिया जाय,

यदि यह काम शहर और देहातों के स्वयं-सेवकों को सौंपा जाय, तो वे अेक भ्रम की जगह दूसरा भ्रम और अेक धर्मान्धता की जगह दूसरे तरह की धर्मान्धता सिखायेंगे। वैज्ञानिक समाजवाद की सारी बातें हवा हो जायेंगी। तो फिर मामूली समाजवादी क्या करें?

अपनी सेना के मामूली सिपाहियों का यह सवाल गान्धीजी ने हल कर दिया है। राज-नैतिक बेकारों को समय समय पर काम देने का अिन्तजाम अुन्होंने किया है। अुनके रचना-त्मक कार्यक्रम में सिर्फ नेताओं ही के लिअे जगह नहीं है बरन् अुनके छोटे से छोटे अनुयायी के लिअे भी है। हर अेक के लिअे दैनंदिन कार्य का प्रबन्ध है। अेक गरीब देश की जनता अपनी खुशी से जितना चन्दा देती है अुसमें अुन्हें जितना वेतन दिया जा सकता है अुतना दिया जाता है। अुनका जीवन साफ-सुथरा और सादा है। वे कभी बेकार नहीं हो सकते।

गांधीजी का प्रतिकारात्मक कार्यक्रम

सत्ता प्राप्त करने के लिअे गान्धीजी का भी अेक प्रखर और आत्यन्तिक कार्यक्रम है। वह अुतना ही अुग्र है जितना किसी लाल रंगवाले क्रान्तिकारी का। फर्क अितनाही है कि गान्धीजी का कार्यक्रम अहिंसक है। अहिंसा का तत्त्वज्ञान या हमारी मौजूदा हालत में अुसकी व्यावहारिक अुपयुक्तता के विषय में मैं यहां पर कुछ नहीं कहना चाहता। समाजवादियों के अेक दल ने अुसे मान लिया है। सवाल यह नहीं है कि कौनसा सिद्धान्त सही या गलत है। अिसका निर्णय तो भविष्य का अितिहासकार या वर्तमानकाल का भविष्यवक्ता ही कर सकता है। मैं अिन दोनों में से अेक भी होने का दावा नहीं कर सकता। सवाल अितना ही है कि असहयोग का यह नया तरीका प्रत्यक्ष प्रतिकार है या नहीं? प्रत्यक्ष प्रतिकार अत-अेव विधिवादी आन्दोलन से विलक्षण या क्रान्तिकारी है या नहीं? मेरी तो यह धारणा है कि वह प्रत्यक्ष प्रतिकार है और क्रान्ति-कारी कभी है। जैसा कि कुछ लोगों ने कहा है असहयोग अेक प्रकट षड्यंत्र है। मैं कहूंगा कि वह अहिंसक प्रकट षड्यंत्र है। सारांश सारी बातों का विश्लेषण करने के बाद नतीजा यह निकलता है कि गान्धीजी के पास अेक कार्यक्रम है जो राज्यसत्ता हस्तगत करने के लिअे क्रान्तिकारी और विधायक कार्यक्रम के लिअे सुधारवादी है।

दोहरा पहलू

गान्धीजी के आन्दोलन के अिस दोहरे पहलू के कारण पश्चिम की राजनैतिक भाषा में प्रचलित दांया दल और बांया दल, अिन संज्ञायों का और यहां की कॉंग्रेस की राज-नीति में करीब करीब कोअी अर्थ नहीं होता। रचनात्मक कार्यक्रम की स्थितिशील प्रवृत्तिओं की दृष्टि से जो राजनैतिक नेता दाहिने दल में शुमार किये जा सकते हैं वे ही जब प्रत्यक्ष प्रतिकार के आन्दोलन का समय आता है तो बांये दल में दिखाअी देते हैं। अिसके विपरीत जो अपनी नीति और अुसूलों से बायें दल में होते हैं वे लडाअी के मौके पर कभी कभी अपनी वामपक्षीय प्रवृत्तियां प्रकट करने में चूकते हैं। १९३३ की पूनावाली परिषद में यह स्पष्ट हो गया। गान्धीजी के अनुगामियों की राय १९३२ का आन्दोलन चालू रखने की थी तहां कअी समाजवादी अुसे

रोकने के पक्ष में थे। असी वजह से समाजवादी गान्धीजी के अनुयायियों को कॉंग्रेस के अधिकारपदों से और जनता के हृदय में प्रेम के स्थान से हटा नहीं सके हैं। अनमें अनुभवी और मंजे हुअे सिपाही हैं जिन्होंने रचनात्मक कार्य, बाढ, अकाल, ूकम्प और दूसरी आपत्तियों के समय जनता की सेवा की है। और मौका आने पर सरकार से भी दृढता के साथ मोर्चा लिया है। जब लडाअी छिड जाती है तो अनके नेता, गान्धीजी, सर्व श्रेष्ठ और सबसे कट्टर क्रान्तिकारी प्रतीत होते हैं। अपनी व्यक्तिगत सुरक्षितता की पर्वाह न करने में वे अेक ही हैं। दूसरे भी नाम लिअे जा सकते हैं लेकिन अनका जिक्र करने की जरूरत नहीं। बुद्धिमान पाठक खुद कल्पना कर सकते हैं।

संयुक्त मोर्चा

सब कोअी जानता है कि गान्धीजी दूसरे अैसे दलों से, जिनकी प्रत्यक्ष प्रतिकार की दृष्टि से कोअी हस्ती नहीं है, भी सम्पर्क तोडना नहीं चाहते। नरमदल वाले, पूंजीपति, किसी भी जाति या पक्ष के सुधारक—अिन सब से वे कहते हैं कि अस्पृश्यता–निवारण, हिन्दी-प्रचार, खादी, ग्राम अुद्योग और ग्राम-संगठन के आन्दोलन में हाथ बंटाअिये। दूसरी भी अेक दृष्टि है जिसके कारण कॉंग्रेस या गान्धीजी दूसरे राजनैतिक या अर्ध राजनैतिक दलों और वर्गों का सहयोग चाहते हैं। हिन्दुस्तान के सभी परस्पर विरोधी दलों और वर्गों के लिअे अेक बात सर्वसामान्य है। अेक विदेशी सरकार ने अुन सभी के विकास को कुण्ठित कर दिया है। यह बात नहीं कि केवल सर्वसाधारण जनता का ही विकास कुण्ठित होता हो। अगर अैसा होता तो राजनैतिक कार्यकर्ता केवल सामान्य जनता में से ही आते। आम लोगों को शारीरिक पीडा अधिक होती है यह सही है। लेकिन सब से अधिक यन्त्रणायें तो अुनके भाग में वदी होती हैं जो अत्यधिक नाजुक भावना-वाले तो या तुनकमिज़ाजी होते हैं। अैसे लोग तो सभी वर्गों और जमातों में पाये जाते हैं। अपना देश, अपनी संस्कृति और अपने अपने धर्मों के प्रति अुनके अभिमान को चोट पहुंचती है। राष्ट्रीय आन्दोलन को अिन सब शक्तियों से काम लेना चाहिअे और अुन्हें राष्ट्रीय राजनैतिक स्वाधीनता की प्राप्ति के अेक ही लक्ष्य पर केन्द्रित करना चाहिअे। भिन्न भिन्न लोगों की मनोवृत्ति में जो राष्ट्रीय भावना जमी हुअी है वह अभी अितनी कमजोर नहीं हुअी है कि अुसके आधार पर भिन्न भिन्न फिरकों के लोग अेकत्र आ ही न सकें। रूसी साम्यवादियों में भी अुसका अेकदम अभाव नहीं है। हमारे कुछ विकासोन्मुख समाजवादी अुसे कबूल करने में भले ही शरमाते हों।

दूसरे राष्ट्रों के दृष्टान्त

दूसरे देशों में राष्ट्र के अन्तर्गत भिन्न भिन्न शक्तियां अेक सामान्य लक्ष्य को लेकर कैसे अेकत्रित हुअीं असका पता दुनियाभर के राष्ट्रीय और प्रजाकीय आन्दोलनों से चलता है। हॉलैण्ड में, अिंग्लैंड में, अमेरिका में अिटाली में, फरान्स में, और यहांतक कि ह[illegible] में भी, देशी या विदेशी जुअे को फेंक देने के लिअे सारा राष्ट्र अेक व्यक्ति के समान अुठ[illegible] हुआ। अलबत्ता आम जनता का हिस्सा [illegible] अुसकी यन्त्रणायें और त्याग सब से अधिक

रहा; हालां कि अुन क्रान्तियों के द्वारा सत्ता हमेशा अुसके हाथ में नहीं आयी। पुरानी क्रान्तियों के बाद तो धनी और बलवान मध्यम श्रेणी के हाथ में सत्ता आयी। अुन दिनों वे ही समाज के स्वयंसिद्ध नेता समझे जाते थे। फरान्स में राजा और सामन्तों से छीनी हुअी सत्ता जनता के हाथों में देने की कोशिश हुअी। लेकिन वह असफल रही। क्यों कि मध्यम श्रेणी योग्यता, नेतृत्व और संगठन में श्रेष्ठ थी। रूस में भी झार के अुच्छेद के बाद सत्ता मध्यम श्रेणी के हाथ में ही आयी। परन्तु अुसमें अितनी शक्ति और संगठन न था कि वह सत्ता चिरकाल टिक सके। आव्‌श्यक नेत्वृत्व की भी कमी थी। बोल्शेव्हिकों का संगठन अधिक ठोस था, अुनमें अधिक हिम्मत और साहस था, अपने अभीष्ट का अधिक पूर्ण ज्ञान था और उन्हें अधिक से अधिक योग्य नेतृत्व प्राप्त था। अिसलिअे वे तुरन्त अेक दूसरी क्रान्ति कर सके, जिसके बाद वे साधारण जनता के अभिभावक बन गये। जिसने झार का निःपात किया अुस पहली क्रान्ति से बोल्शेव्हिक दल अलग नहीं रहा। पुरानी राज्यव्यवस्था नष्ट करने में अुन्होंने भी दूसरों का हाथ बंटाया। संकट के समय अिंग्लैंड में भी क्या होता है? जब कभी राष्ट्र संकटग्रस्त हो जाता है तो ब्रिटिश लोगों की राजनैतिक प्रतिभा झट अेक राष्ट्रीय सरकार बना लेती है। विभिन्न फिरकों के आपसी मत-भेद थोडी देर के लिअे भुला दिये जाते हैं। अिस तरह सभी क्रान्तियों में राष्ट्र की प्रगतिशील और कार्यक्षम शक्तियां अेक हो जाती हैं। विजय अुस दल की होती है जो सब से अधिक सुसंगठित और सुसज्ज हो, और—यह सब से महत्त्व की बात है—जिसने अुचित ढंग के नेतृत्व का विकास किया हो। क्यों कि संकटकाल में बहुतकुछ भरोसा नेतृत्व पर होता है।

अेकमात्र मार्ग

अब दूसरी स्थिति का विचार करें। अिसमें हर अेक दल दूसरे पर शक करता है और अपने आप को बिलकुल शुद्ध और अभ्रष्ट रखना चाहता है। समाजवादी दल को ही ले लीजिये। वह कहता है कि "जमींदार और पूंजीपति स्वराज्य की लडाअी में कभी नहीं शामिल होंगे। अन्त में ये लोग भाग खडे होंगे। क्यों कि वे सोचेंगे कि अुनके खास अधिकारों की रक्षा अेक विदेशी सरकार ही कर सकती है।" अगर अैसा है तो यही बात मध्यम श्रेणी के अुच्च प्रस्तर पर भी लागू होती है। वकील, अध्यापक, डॉक्टर, और अिसी तरह के दूसरे बुद्धिजीवी पेशेवरों पर यही नियम लागू होता है। मध्यम श्रेणी का निचला प्रस्तर कोअी भरोसे का द्रव्य नहीं है, यह बात अिटाली और जर्मनी में साबित हो चुकी है। अपनी जमीन के स्वामी किसानों पर यदि समाजवादियों के सारे कार्यक्रम का ध्वनित अर्थ पूरी तरह प्रकट हो जाय, यानी अगर अुन्हें यह पता लग जाय कि जमीन के और अन्य अुत्पादक साधनों के राष्ट्रीकरण का पूरा पूरा मतलब क्या होता है, तो वे हमारे मार्ग में विघ्नरूप हो जायंगे। जातिवादी—चाहे, हिन्दू हों, मुसलमान हों, या सिक्ख हों—तो पास नहीं फटकेंगे। अिस तरह अेक अेक के निकलने से हिन्दुस्तान की सारी जनता ही निकल जायगी। हां, अिसमें हमने यह मान लिया है कि ये सब फिरके अेक-रस, सुसंगठित और सुनियंत्रित हैं और अुनका अेक ही मकसद अपने अपने तंग दायरे में

अपने अपने स्वार्थों की अुन्नति ही है। अगर अैसा हो तो अेक अेक कर के कुल मिलाकर सारी जनता को ही छोड देना होगा। कुछ गिनेचुने लोग रह जायंगे जो हमारी फौज के सिपाही होंगे। अिनकी विजय अनिवार्य है। क्योंकि वे सत्य विचार के—अुस अेकमात्र सत्य विचार के जो निकट भविष्य में सारी दुनिया को फतह करनेवाला है--प्रतिनिधि हैं। अिस तरह की श्रद्धा और जोश—जो करीब करीब धार्मिक सरगर्मी और जजबे के बराबर होगा—की अुम्मीद केवल अीसा या मुहम्मद, और गान्धी के भी अनुगामियों से की जाती है। परन्तु वैज्ञानिक साम्यवाद का तो वास्तविकता से गँठजोडा बन्धा हुआ है। अगर अुसमें अिस तरह का धार्मिक पागलपन आ गया तो मतलब यही होगा कि समाजवाद बिना अीश्वर का अेक धर्म है। अुसमें अपना अेक निजी नया जोश, नया पागलपन और नयी धर्मान्धता तो रहेगी ही। मुझे मालूम है कि अितिहास, विज्ञान और वस्तुवाद के नाम पर अिस कथन का अिनकार किया जायगा। लेकिन दर असल वह पुराने किसी भी धर्ममत से किसी कदर बेहतर नहीं है। अुसमें भी संकीर्णता, पाखण्ड, हठधर्मी और चुने हुअे लोगों की मगरूरी के लिअे अुतनी ही ताकत रहेगी। ये चुने हुअे लोग आकाश के राज्य के अधिकारी नहीं होंगे बरन् जमीन के। और वे भी काफ़िरों को अेक गहरी खाअी में ढकेल देंगे जहां पर अुन्हें अज़ल से अबद तक सडना होगा। यह नया सम्प्रदाय भी ठीक पुराने सम्प्रदायों की तरह अत्याचार, दमन, और दलन करेगा। बल्कि वह मनुष्य के जीवन को कम पवित्र मानेगा और अुसके आयुध अधिक वैज्ञानिक अेवं संगठन अधिक बढिया होगा। मगर अुसमें गान्धीजी के सत्य और अहिंसा की संरक्षक खूबसूरती भी न रहेगी। अगर नये धार्मिक पागलपनों से छुटकारा ही न हो तो मानवता की कुशल अिसमें ही है कि वे कमसे कम अहिंसक तो हों।

मैंने संक्षेप में राजकीय और सामाजिक संगठन की गान्धीप्रणीत योजना की स्थिति और गुणों का वर्णन किया है। और समाजवाद से अुसकी भिन्नता बतलायी है। अहिंसा का तत्त्व और गान्धीजी के कार्यक्रम के अन्य दूरगामी नतीजों का विवेचन नहीं किया है। वैसा करना प्रस्तुत विवाद-क्षेत्र का अतिक्रमण करने के बराबर है।

(अगस्त १९३५ की 'विश्वभारती' से अनूदित)

अीश्वर जो कि मानवता के समाहार का परिणाम है, सुदूर स्वर्गीय प्रदेश का दुर्बोध देव नहीं है। वह मानवतासे पुकार कर कहता है—जो भी दे सकते हो सब मुझे दे दो। वह मानवता के दर दर मारा फिरनेवाला भिखारी है। मनुष्य का बड़प्पन अुसके नैतिक जीवन में है। हमें अेक महाशक्ति के समक्ष महती भेंट अुपस्थित करनी है। हमें अुस अीश्वर की आराधना करनी है जो निखिल मानवता में व्याप्त है। मैं अपने जीवन को सफल समझूंगा यदि मैं अिस जनता-जनार्दन को थोडीसी भेंट दे सका हूं।

('प्रताप' से) रवीन्द्रनाथ ठाकुर

देशधर्म

[काका कालेलकर]

देशधर्मान् जातिधर्मान् कुलधर्मांश्च शाश्वतान्।
पाषण्ड-गणधर्मांश्च शास्त्रेऽस्मिन् अुक्तवान्मनुः।

हिन्दूसमाज के प्राचीन व्यवस्थापक भगवान मनु अपनी स्मृति के प्रारम्भ में ही देशधर्म, जातिधर्म, कुलधर्म, पाषण्डधर्म, गणधर्म अित्यादि अनेक धर्मों का अुल्लेख करते हैं। मनुस्मृति में ये सब धर्म बतलाये गये हैं अैसा पहले अध्याय के अन्त में ही लिखा है। अगर हम सारी मनुस्मृति देख डालें तो भी आज ये विविध धर्म अुसमें नहीं मिलते। मनुस्मृति में तो केवल वर्णाश्रमधर्म और संकरजातियों के धर्म ही पाये जाते हैं।

हर अेक व्यक्ति का अपना अेक जीवनधर्म होता है। वह व्यक्तिगत होने से अुसका व्यवहार अुस व्यक्ति तक ही सीमित रहता है। अैसे कअी व्यक्तियों का कुटुम्ब बनता है। कुटुम्ब में कुलधर्म का प्राधान्य होता है। कुलधर्म व्यापक होने के कारण व्यक्तिधर्म को अुसके सामने अपना सिर झुकाना चाहिअे। कुलधर्म की रक्षा द्वारा ही व्यक्ति अपना विकास कर सकता है। व्यक्ति यदि मोहान्ध हो कर कुलधर्म को तोड दे तो अेक क्षण के लिअे अुस व्यक्ति को लगेगा कि मैं ज्यादा स्वतन्त्र हो गया, मेरा विकास होगा। परन्तु अन्त में व्यक्ति को अनुभव होता है कि अुसका विकास कुटुम्ब में रह कर ही हो सकता है, कुटुम्ब को मिटा कर नहीं। शरीरधर्म, बलसंवर्धन, ज्ञानप्राप्ति, कर्मकौशल, दीर्घायु और अिनके द्वारा प्राप्त होनेवाली तृप्ति— ये सब व्यक्तिधर्म कहे जा सकते हैं। जब तक वे किसी श्रेष्ठ धर्म के प्रतिकूल न हों तब तक अिन और अैसी दूसरी चीजों की प्राप्ति के लिअे सतत प्रयत्न करना व्यक्तिधर्म का फर्ज है। परन्तु कुलधर्म की बलि दे कर अिन चीजों के पीछे कतअी नहीं पडना चाहिअे। कुलधर्म के अविरुद्ध रह कर ही व्यक्तिधर्म का सेवन विहित है। कुलधर्म कहता है कि संतति के लिअे मांबाप को अपने सुख और अवकाश का त्याग करना चाहिअे। कुटुम्ब में जो छोटे, अपंग, असहाय, असमर्थ, हों अुनकी जरूरतों का खयाल करना चाहिअे। समर्थों को अपने अूपर अधिक नियन्त्रण रखना चाहिअे। अबल अथवा दुर्बलों की रक्षा के लिअे अपनी शक्ति काम में लानी चाहिअे। आम तौर पर हर अेक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से न्याय के बन्धन से बंधा हुआ माना जाता है। लेकिन कुटुम्ब में तो प्रेम, सहिष्णुता और क्षमा का ही नियम प्रवृत्त होता है। व्यक्तिधर्म केवल व्यक्ति का विकास चाहता है। कुलधर्म व्यक्ति की सुखसुविधा की बलि दे कर ही क्यों न हो, लेकिन कुल का विकास चाहता है। क्योंकि अुसे यह श्रद्धा है कि कुलबाह्य व्यक्ति–विकास की अपेक्षा कुल में रह कर, कुलधर्म का नियन्त्रण मान कर, व्यक्ति अपना जो विकास करता है वही विकास श्रेष्ठ और स्थायी होता है।

कुटुम्ब ही अेक अीश्वरकृत महान और सनातन संस्था है। अुसका कुलधर्म अत्यन्त गम्भीर वस्तु है। हम अुसका संस्करण कर सकते हैं, अुसका विकास कर सकते हैं; परन्तु अुसका अुच्छेद कदापि नहीं कर सकते। अर्जुन

ने भी परम्परा से सुना था कि कुलधर्म का जो अुच्छेद करता है अुसके लिअे नरकवास ही नियत है। अैसे कुलधर्म का, अथवा कुल-परम्परा का, तफसील शास्त्रग्रन्थों में नहीं दिया गया है। कुटुम्ब-संस्था लगभग अमर है। अतअेव कुछधर्म का स्मरण, पालन, और विकास कुटुम्बीय जनों के हाथ में सुरक्षित है।

लेकिन अिस तरह के कुटम्ब की महिमा कुटम्ब के भीतर ही समाप्त नहीं होती। अुसीमें समा कर नहीं रह जाती। स्वार्थ-त्याग के बिना कहीं भी कृतार्थता नहीं है। वर्णाश्रम धर्म का आदर्श जिसने स्वीकार किया है अुसके लिअे कुल के बाद जाति आती है। जाति वर्ण का अेक अुपविभाग माना जाता है। हमारे यहां वर्ण तो चार ही हैं। जातियां जाने कितनी होंगी। जब मनुष्य वर्णोचित विशालता का विकास नहीं करता तो अुसे जाति के अन्दर रहना पडता है। ज्यों ज्यों संस्कारों का विकास होता जावे त्यों त्यों जातियों की संख्या कम होनी चाहिअे। लेकिन हमारे यहां तो जातियां बढती ही जाती हैं। और क्यों न बढें? समाजधर्म जब ढीला पड जात है, जब संस्कारिता धुंधली हो जाती है, तब वर्ण और जाति छिन्नभिन्न न हों, फूट पैदा न हो, तो और क्या हो? वर्ण का अधार है समान आदर्श और समान रहन-सहन। जाति अपने धात्वर्थ के अनुसार ही कुल का सम्बन्ध दर्शाती है। जातिधर्म प्राकृतिक है। संस्कारों के प्रति कअी बार वह अुदासीन रहता है। अिसलिअे अुसमें संकुचितता बढने की बहुत बडी गुंजाअिश होती है। अनाडी मा जिस प्रकार अपने बच्चे के गुणदोष का विचार नहीं करती, वह अपना है अिसीलिअे रूपवान है, अपना है अिसीलिअे अच्छा है, अैसे मोह से चिपटी रहती है, अुसी तरह सजातीयों से जातिधर्म आत्मीयता की अपेक्षा करता है। 'अेक दूसरे को पहचानो, अेक दूसरे की मर्यादा रखो, अेक दूसरे को मदद करो, अितना बस है। आचरण के विषय में अिससे अधिक छानबीन हमें नहीं करनी चाहिअे'–यह हुआ जातिस्वभाव। जमातवाद भी जातिस्वभाव ही का अेक बडा संस्करण है।

अैसे जातिधर्म पर वास्तविक नियन्त्रण तो वर्णधर्म का होना चाहिअे। जाति के लिअे वर्ण आदर्श है। वर्ण के लिअे कर्म। वर्ण की टेक अथवा बिरद की अवहेलना से काम नहीं चलेगा। जाति अगर वर्ण-विमुख हो जाय तो वह निर्बल और निष्प्रभ अवश्य होगी।

जाति जन्म से निर्धारित होती है। अिस लिअे साधारणतः अुससे पतन नहीं होता। जो संघ के प्रति वफादार रहे वह जाति में सदा सुरक्षित है। लेकिन वर्णधर्म तो आचार-मूलक है। मनुष्य आचार संस्कार और टेक छोड दे तो वह अवश्य ही वर्ण–विच्युत होगा। अिसीलिअे वर्णों का आचार निश्चित करने की जरूरत है। अिसीमें से स्मृतियों की रचना होती है। जैसे जैसे जमाना बदलता जाता है वैसे वैसे स्मृतिकार यह आचारधर्म सख्त या मुलायम करते जाते हैं। हर अेक जमाने के शीलसम्पन्न जीवित समाज–पुरुष अपने जमाने के लिअे स्मृतिकार के समान होते हैं। वे अपने अधिकार का अुपयोग करें या न करें यह बात न्यारी है।

वर्णाश्रमधर्म के साथ पाषण्डधर्म और गणधर्म होने ही चाहिअे। हर अेक समाज में शास्त्रप्रामाण्य न माननेवाला अेक वर्ग होता ही है। वैसे वर्ग को पाषण्ड कहते हैं। मूल में पाषण्ड यह गाली न थी। बौद्धधर्मी

अशोक ने 'सर्वे पाषण्डा वसेयु:' अैसा कह कर सब को अभयदान दिया था ; हालांकि अुसके मत से तो धर्म का अर्थ बौद्धधर्म ही था। पाषण्ड किसी खास शास्त्र का प्रामाण्य भले ही न माने, लेकिन अुतने ही से वह धर्मबाह्य या धर्मशून्य नहीं हो जाता। अुसका भी अपना अेक धर्म तो होता ही है।

हिन्दूसमाज के वै व के अन्तिम दिनों में वर्णाश्रमधर्म ने राजशासन सर्वोत्कृष्ट और अनिवार्य माना। फिर भी हिन्दूसमाज ने प्रजातन्त्र का कुछ कम अनुभव नहीं लिया। जहां लोकसत्ता प्रचलित हो वहां राजधर्म किस काम का? अुसके लिअे तो गणधर्म ही चाहिअे।

अिस प्रकार व्यक्तिधर्म, कुलधर्म, जातिधर्म वर्णाश्रम, पाषण्डधर्म और गणधर्म के जोड से समाजधर्म सम्पूर्ण होता है। हर अेक धर्म अिस प्रकार अपने अपने स्थान पर सम्पूर्ण है। लेकिन जब हम विदेशों में जाते हैं या विदेशी लोग हमारे देश में आ कर बसते हैं, तो हिन्दू धर्म, पारसी धर्म, मुसलमान धर्म, अीसाअी धर्म आदि स्वतन्त्र महान धर्मों के अुपरान्त देशधर्म का भी खयाल करना पडता है।

देशधर्म की ओर मनुष्य–समाज ने, और खासकर हिन्दुस्थान ने, अुचित ध्यान नहीं दिया। जब अनेक धर्म अेकत्र बसना चाहते हैं तो, या तो अुन्हें पशुओं के समान परस्पर-विनाश के शिकारधर्म का आश्रय करना चाहिअे, अथवा हर अेक धर्म का महत्त्व पहचान कर जन्मस्थान और संस्कृति के अनुसार हर अेक धर्म की प्रतिष्ठा निर्धारित कर देशधर्म निश्चित करना चाहिअे। चाहे किसी प्रकार का क्यों न हो, लेकिन अरबस्तान ने अपना अेक देश-धर्म निश्चित करने का प्रयत्न किया है। जो अिस्लाम को नहीं मानता वह अरबस्तान में न रहे अैसा आग्रह वहां के लोगों ने आज तक रक्खा है। अमेरिका भी, अपने ढंग का ही क्यों न हो, अेक व्यवहारिक देश-धर्म निर्धारित कर रही है। आप चाहे जिस धर्म के क्यों न हों, सफेद खालवाले हों तभी आप को नागरिकता के अधिकार मिल सकते हैं। आप चाहे जिस धर्म के हों अमेरिका में बहु-पत्नीकत्व का रिवाज नहीं चला सकते। अैसे अैसे देशधर्म के नियम अमेरिकावालों ने नियत किये हैं और आअिंदा भी करेंगे। चाहे जैसा क्यों न हो, फिर भी, जो कानून की दफाओं के बल चल सके अैसा, अेक देशधर्म दक्षिण आफ्रिका के गोरे चलाना चाहते हैं। दक्षिण आफ्रिका में फलाने लोग ही आ सकते हैं, और खास शर्तों पर ही वहां बस सकते हैं, अैसे सख्त नियमों का पालन वहां के गोरे कराने की कोशश में हैं।

अुदाहरण की सुलभता के लिअे ये तीन दृष्टान्त पेश किये। परन्तु अिनके देशधर्म में सम्पूर्ण मानवजाति के विकास का विचार सम्यक् रूप से किया गया है अैसा तो नहीं कहा जा सकता। यूरोप और अमेरिका के लोग जब परदेश में जा कर रहते हैं तब वहां के मूल निवासियों के विकास का तो जानो विचार ही नहीं करते।

हमारे यहां अीश्वर के संकेत के अनुसार सभी धर्मों का अेक बडा कुटुम्ब बन रहा है। अर्थात हमारा देशधर्म विशाल, सर्वग्राही, सर्वसहिष्णु और सर्वोदयसाधक होना चाहिअे। जब भले पारसियों ने अिस देश में आ कर धर्म-स्वातन्त्र्य की मांग की, तो अुस जमाने के सत्ताधीशों ने अुनसे देशधर्म के पालन का वचन लिया। पारसियों ने यहां का देशधर्म

स्वीकृत किया और वे यहां सुख से रहे और यहीं के हो गये। यदि हिन्दूसमाज हमेशा समर्थ रहा होता, हिन्दूधर्म ने सदा अपने तेज की रक्षा की होती, तो आज तक अुसने दुनिया के सामने आदर्श देशधर्म पेश किया होता। कुलधर्म जितना सनातन है अुतना ही देशधर्म भी सनातन हो सकता है। क्यों कि अुसमें विस्तारभेद और विकास की पूरी पूरी आजादी रख कर भी प्रधान जीवन-तत्त्वों के विषय में भी आग्रह रखने की गुंजाअिश है। सत्य और अहिंसा ही अिस देशधर्म की बुनियाद हो सकती है।

सर्वेऽत्रसुखिन: सन्तु सर्वेऽसन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दु:ख-माप्नुयात्॥

अथवा

सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु।
सर्व:सद्बुद्धिमाप्नोतु सर्व: सर्वत्र नन्दतु॥

यह अुसका आशय होगा।

(गुजराती से अनूदित)

अेकता-"वादी" किन्तु विविधता-"परायण"

[काका कालेलकर]

स्वराज्य की यात्रा में जैसे जैसे हम आगे बढते जाते हैं वैसे वैसे हमारी कमजोरियां भी अधिकाधिक स्पष्टरूप से प्रतीत होने लगी हैं और हमारा राष्ट्रीय संगठन कितना कम जोर है अिसे भी हम दु:ख के साथ महसूस करने लगे हैं। धर्मभेद तो हमारे बीच है ही। अुसके साथ सडे हुअे जातिभेद ने जो दुर्गन्ध फैलाअी है अुससे तो तमाम राष्ट्रीय जीवन ही बिलकुल गन्दा हो गया है। अब, मानों अितना काफी नहीं है अिसलिअे, प्रान्तीय झगडे भी शुरू हो गये हैं, और भाषा के नाम पर भी नये नये कुरुक्षेत्र तय्यार होने लगे हैं। अपने देश के प्राकृतिक वैभव की विविधता हम हजम नहीं कर सके। विविधता में अेकता देखना भारतीय संस्कृति का परमोच्च आदर्श माना गया है। किन्तु अिस वक्त तो वह निरा आदर्श ही आदर्श है। विविधता को बढाने का हमारा चातुर्य अपूर्व है। हम विविधता अमर्याद बढाते जा रहे हैं। अेक अेक अवयव को स्वतंत्र शरीर मानने लगे हैं। अेक अेक प्रान्त को स्वतंत्र राष्ट्र बनाने की फिक्र में हैं। राष्ट्रीय अेकता को मजबूत करने की अपेक्षा अुसे तोड डालने में ही अपनी पूरी पूरी शक्ति लगा रहे हैं। विविधता में अेकता को देखने की अपेक्षा अेकता का गला घोंटने ही के लिअे मानों हम विविधता की अुपासना कर रहे हैं।

विविधता को अेकदम मिटाकर सारे संसार में अेकरूपता (युनिफॉर्मिटी) स्थापित करना हमारा अुद्देश कभी न होना चाहिअे। लेकिन साथ ही साथ बेमेल और अनावश्यक विविधता मिटाने के लिअे हमें हमेशा अुद्यत रहना चाहिअे।

सारे देश में अेक ही (स्टैंटर्ड टाअीम) 'सर्वमान्य समय' चले यह जरूरी है। जगह

जगह स्थानिक समय चलाने से राष्ट्र व्यवहार निष्कारण जटिल और अशक्यप्राय हो जायगा। तार विभाग का काम ही ठिठक जायगा। रेल के समय का कोअी ठिकाना नहीं रहेगा। अिसलिअे सारे देशके लिअे अेक या दो 'टाअीम' रहें यही अभीष्ट है। लॉर्ड कर्जन ने सारे भारत के लिअे अेक 'स्टँटर्ड टाअीम' चला कर जो भारतीय अेकता स्थापित की वह अुसने बडा अच्छा काम किया है। बम्बअी और कलकत्ता शहर में जो अलग समय पाला जाता है अुससे हम कोअी लाभ नहीं देखते। वह तो केवल अेक जिद्द का ही सन्तोष है। आसाम में स्थानिक काल चला कर वहां की सरकार ने अपने प्रान्त का पिछडा होना साबित किया है। 'स्टँटर्ड टाअीम' से आध घण्टे का अन्तर रख कर अगर सारे आसाम के लिअे अेक ही 'डुवरी-टाअीम' चलाया जाय तो बडी सहूलियत होगी। 'स्टँटर्ड टाअीम' के आन्तर-राष्ट्रीय नियम के अनुसार अगर बंगाल भी चाहे तो स्टँटर्ड टाअीम से आध घण्टे का अन्तर रखकर आसाम के समान सारे बंगाल में अेक बंगाल-टाअीम चला सकता है। केवल रेल्वे और तार-विभाग में बनारस स्टँटर्ड टाअीम चलाया तो काफी है।

स्थान स्थान पर माप और तौल अेक ही ढंग के हों तो अच्छा है। माप-तौल में सारी दुनिया चाहे तो अेकरूप हो सकती है। जहां भिन्न भिन्न राष्ट्र हैं और अुनका व्यवहार अलग अलग रखने में पिछडी हुअी जाति की रक्षा है वहां पर माप-तौल अलग होने से लाभ ही है अैसा कहा जाता है। कुछ हद तक यह बात सही भी है। किन्तु अिस भिन्नता की रक्षा प्राथमिक अवस्था में ही काम दे सकती है। हमेशा के लिअे तो अिस बात में सर्वत्र अेकता रहे यही अच्छा है।

हर प्रान्त में अगर रुपये पैसे अलग अलग चलाये जायँ तो हर व्यवहार में अलग अलग हिसाब करते नाको दम आ जायगा। तो भी हमारे देश में अंग्रेजों के आने तक अेक ही सिक्के का चलन नहीं था और सराफों को और गणकों के हाथ में भोली जनता को निरक्षर और निर्गणित किसानों तथा स्त्रियों को ठगाने का अेक अच्छा साधन था।

काल-गणना में आज भी विक्रम संवत्, और शालिवाहन शक, वंगाब्ध और सौरपंचाग के भेद मिटे नहीं है। बल्कि अुत्साही लोग दयानन्दाब्द और शिवाजी संवत भी चलाते हैं। शिवाजी के बारे में भी जन्मकाल और राज्याभिषेक काल का भेद है। जन्मकाल में भी अेकता नहीं है। अेकादशी का फाका रखने में भी स्मार्त और भागवत का भेद हमने छोडा नहीं है। जहां तनिक भी मतभेद हुआ हम लोगों ने अलग पंथ चलाया ही है।

अैसे देश में अगर अनेक लिपियों का प्रचलन रहे तो आश्चर्य ही क्या है? सारे यूरोप में जहां अठारह भाषाओं के लिअे करीब अेक ही लिपि है वहां हमारे देश में अकेली पाली भाषा के लिअे कमसे कम चार लिपियां हैं। हिन्दी के लिअे दो-नागरी और फारसी, तमिळ में भी दो; मराठी में भी कल तक छापने की बालबोध लिपि अलग और लिखने की मोडी अलग अैसी अवस्था थी। अद्वैत-वादी भारतवर्ष ने अेकता का जितना द्रोह किया है और भेद की जितनी अुपासना की है अुतनी शायद दूसरे किसी भी देश ने न की होगी। राष्ट्रीय जीवन में कानूनों का अेकरूप होना परम आवश्यक होते हुअे भी हमारी

स्मृतियों में हर अेक वर्ण के लिअे अलग अलग नियम हैं और आज भी स्मृतियों के अर्थ करने में भी भिन्न भिन्न टीकाकारों के भिन्न भिन्न मत का प्रचलन दीख पडता है।

अैसी हालत में हमारा राष्ट्रीय स्वभाव यह रहा है कि अगर कोअी जबर्दस्ती हम पर अेकता लाद देवे तो लाचारी से हम अुसे बरदाश्त कर सकते हैं और आगे चल कर अुसके अभिमानी भी बनते हैं। जबर्दस्ती के सामने सिर झुकाना और अुसीकी पूजा करने लगना यह गुलामी का अेक लक्षण हैं। कोअी अेकता हम पर लाद भले ही दे, हमारा वश चले तब तक तो हम अुससे दूर ही रहेंगे।

आज हम जो अेकता प्रस्थापित करना चाहते हैं वह सरकारी कानून के जरिये नहीं किन्तु लोगों की संकल्पशक्ति के जोर पर ही करना चाहते हैं।

अिस बात में गुजरात ने अेक स्पृहणीय अुदाहरण देश के सामने रख दिया है। गुजराती भाषा के लिअे शब्दों के 'वर्णन' या हज्जे करने का कोअी सर्वमान्य तरीका नहीं था। गांधीजी ने अेक समिति नियुक्त कर गुजराती का जोडणीकोष (हिज्जे कोष) तैयार करवाया और सारे गुजरात ने सरकारी मदद के बिना ही अुसीको मान्य किया। आज गुजराती भाषा की 'जोडणी' अनायास अेकधारा में बहने लगी है। जिन लोगों का अिस बात में मतभेद था अुन लोगों ने बडी अुदारता से अपना आग्रह छोड दिया और अपनी अैक्य-निष्ठा और संगठन का संकल्प सिद्ध कर दिखाया। गुजरात की यह स्वराज्य-सेवा हमारे देश के लिअे मामूली नहीं है।

जहां आवश्यकता नहीं है वहां भी जबरदस्ती अेकता लाने का आग्रह हम नहीं रखेंगे। पोषाक के अन्दर सब प्रान्तों में अगर अेकता आ जाय तो कोअी खराब बात नहीं है। किन्तु अुसका न होना कोअी राष्ट्रीय कठिनाअी पैदा नहीं करता। जिसका जी चाहे धोती पहने अथवा पायजामा या पतलून पहने। जी चाहे टोपी लगावे, जी चाहे सिरपर पगडी बांध लेवे। और अितना भी बोझ न लेना हो तो मनुष्य नंगे सिर भी घूम सकता है।

राष्ट्रव्यवहार की सहूलियत के लिअे खान-पान का समय तो सर्वत्र अेकसा हो यह बहुत जरूरी है। लेकिन अुसका संगठन करे कौन? भिन्न भिन्न जमातों के लोग अगर अिकट्ठा हो कर कुछ संकेत कर लें तो बात आसान है। किन्तु जिसकी राय पूछने जाअिये वह अपनी अेक अलग राय रखने में ही अपनी प्रतिष्ठा मान बैठता है और अुसमें अपनी संस्कृति की रक्षा भी देखने लगता है। अिस स्वभाव को क्या किया जाय? अगर मैं अपनी अलग राय न रखूं तो फिर मेरी प्रतिष्ठा ही क्या रही? हमारा सिद्धान्त है-नाऽसौ मुनिर्यस्य मतं न भिन्नं। अगर दो घडियों की राय अेक नहीं हो सकती तो दो नेताओं की राय अेक हो ही कैसे सकती है? नेता बनने के लिअे भी तो अपनी अलग राय रखनी पडती है।

हर अेक प्रान्त की अपनी अलग भाषा रहेगी ही चाहे फिर यह अिष्ट हो या अनिष्ट। आज हमारे यहां बारा पन्द्रह भाषायें मौजूद हैं और अुनका अपना अपना समृद्ध साहित्य भी है। प्रान्तीय भाषाओं को हटा कर किसी अेक भाषा को सबभर चलाना ना मुमकिन है। आज अुससे लाभ भी नहीं होगा। अनेक भाषाओं को बरदाश्त करना और अुनसे लाभ अुठाना हमारा राष्ट्रीय मिशन है। किन्तु लिपि के बारे में वह बात नहीं है। यूरोप की भिन्न

भिन्न अठारह भाषाओं के लिअे जैसी अेक रोमन लिपि है वैसे ही हमारे देश की बारह पन्द्रह भाषाओं के लिअे अेक लिपि हो जाय तो हम सब अेकदम अेकदूसरे के बहुत करीब आ जायेंगे। हमारी भाषाओं का परस्पर आदान प्रदान शुरू होगा और अेकदम जोरोंसे बढेगा। महाराष्ट्र में प्रचार वृत्ति बहुत है। असलिअे महाराष्ट्र ने राष्ट्र-भाषा के प्रश्न को बहुत आसानी और अुत्साह से अपनाया है। सारे देश में जब अेकता की चाह और लगन बढेगी तब अेक लिपि का सवाल भी लोग आसानी से समझ लेंगे। तब तक लोकमत तैयार करने के लिअे अब अिस प्रश्न को देश के सामने प्रधानतया रखना है। अेकता और विविधता के प्रति हमारी राष्ट्रीय मानसिक प्रतिक्रिया (रेस्पॉन्स) किस ढंग की है असका थोडा विहंगमावलोकन अिस लेख में किया।

अब स्टॅंडर्ड टाअीम, अेक लिपि, भोजन का समय, राष्ट्रीय रिवाज अित्यादि राष्ट्रीय अेकता के भिन्न भिन्न प्रतीकों का विचार यथासमय यथाक्रम आअिन्दा करते रहेंगे।

सांप का डर

[सतीशचन्द्र दासगुप्त]

सोदपूर आश्रम के चारों ओर जंगल है। किसी जमाने में आश्रम की सारी जमीन बहुत ही जंगलाकीर्ण थी। यहां बहुत से जहरीले सांप हैं। नाग, केवटे, चन्द्रबोला, कानड, (कोब्रा, रसेल्स व्हायपर, फूरसा ग्रीन स्नेक, कॉमन क्रेट, बॉण्डेड क्रेट, कोरल स्नेक) आदि कअी तरह के तेज जहरवाले सांप दीख पडते हैं।

सांप मारने की स्पृहा

आश्रम स्थापित होन के बाद सांप मारना मना रहा। कोअी नुकसान नहीं हुआ। सांप दिखाअी देते ही थोडी-सी खडबडाहट होती। और थोडी देर में शान्त हो जाती। किन्तु दृष्ट सांप से अदृष्ट सांप का भय ज्यादा होता है। असलिअे अेक सांप दीख पडते ही अनुमान होता है जाने और कितने होंगे और जाने और कितने न होंगे! जहरीले या निर्विष किसी भी प्रकार के सांप को देखते ही मनुष्य को अुसे मार डालने की अिच्छा होती है। आश्रम के लोग भी अिस विषय में अपवाद नहीं हैं। निर्बन्ध लगाकर अुनकी अिस स्पृहा पर रोक लगा दी गयी थी। बाद में हमने विचार कर देखा कि जब पांचछह साल तक सांप मारने का निषेध होते हुअे भी सांप का डर काफूर नहीं हुआ तो निषेध अुठाकर जो सांप दीख पडे अुसका भाग्य व्यक्तिगत अिच्छा पर ही छोड देना चाहिअे। सीधीसादी भाषा में असका मतलब यही था कि सांपों को मारना शुरू हो जायगा। लेकिन फिर भी सांप कम नहीं हुअे। असके बाद अत्यंत कडा प्रबन्ध किया गया और अिस हेतु सोचा गया कि चूहों का अुपद्रव कम करना चाहिअे। आश्रम में चूहों की आहार्य फसल की खेती बन्द की गयी। नेवले का और सांप का स्वाभाविक शत्रुत्व

जानकर कओी नेवले पाले गअे। और जो पाले नहीं जा सके अुनको जंगल में छोड दिया गया। अिससे सांप बहुत कुछ कम हो गये। तब भी धूपकाले में सबेरे रास्ते की धूल में सांप की गतिविधि के दाग बराबर दिखायी देते हैं। अैसा ही चल रहा है।

सांप का मनुष्य-भय

मैं रात को खुले में ही सोया करता हूं। मकान के सामने ही छोटी छोटी खुली जगहें हैं। छोटे छोटे दरख्त हैं। कुछ हाथ की दूरी पर परले जंगल से सटी हुअी अेक छोटीसी बगीची है। अिसलिअे विषतीश को सदा डर रहता था जाने कब सांप काट खाय। अुसकी शंका का निवारण करने की चेष्टा करता रहा। लेकिन देखा कि वह बहुत ही चंचल हो अुठा है। अिसलिअे बाहर सोना बन्द कर दिया। घर में या बरांडे में रात काटने लगा। पास ही थोडे से झाडझुरमुट हैं। अिनमें सांप को रहने का सुभीता है। परन्तु मैं अितने दिनों तक निःशंक भाव से रहा तो भी विषतीश को शंकित होने का कारण तो था। अेक दिन किसीने आकर कहा कि अुसी जगह सांप है। अुन्हें तो डर लगता ही था। अुसे खोजकर जंगल में छोड दो अितना कह-कर मैं अपने काम में लग गया। कुछ लोग साथ लेकर वे अुस ओर चले। अुन्हें अेक बिल में अेक सांप का सिर दिखाअी दिया। तुरन्त अेक आदमी ने अुसपर वार किया। फिर अुसे खींच कर बहार निकाला गया। देखने से मालूम हुआ कि वह साढेतीन हाथ लम्बा अेक गोखुरा (नाग) है। जब अुसे बाहर खींचा गया तब वह मर चुका था। कैसी विलक्षण काठी थी अुसकी। कैसा अद्भुत सुन्दर अुसका रूप।

वह सांप आज कितने दिनों से वहां रहता था। अुसके बिल के सामने से मैं दिन में और रात में कितनी ही बार आता जाता रहा। बेचारा कुछ भी नहीं बोलता था। रात को जब सब तरफ सन्नाटा रहता था तब चुपके से बाहर निकलता और खाद्यादि संग्रह करता। दिनभर अपने बिल में छिपा हुआ रहता। वह बिल में रहता है अिसका किसीको पता ही न चलने देता। अगर वह चाहता तो जबतब आक्रमण कर सकता था।

खल कौन है ?

वह आदमी से डरता है लेकिन हिंसा नहीं करता। अगर वह हिंसा करना चाहता तो अपने बिल में से सिर्फ मुह बाहर निकाल-कर दिन या रात को चाहे जिसको काट सकता था। और मैं तो कितना असावधान। मैं तो आसानी से अुसकी पहुंच में ही था। लेकिन वह कुछ भी नहीं करता था। मेरे सोने की जगह से अुसका बिल पांच हाथ की दूरी पर ही था। पडौसी के समान वह वहां रहता था। और सो भी डर डर कर रहता था। तिस पर भी अुसे मनुष्य के हाथों ही मरना पडा। मुझे छुटपन से सिखाया गया था कि सांप खल है। अगर मरते वक्त अिस सांप से पूछा जाता तो वह अुत्तर देता कि "कौन खल है ?" अब जब कभी अुस स्थान से होकर गुजरता हूं तो अेक पडौसी की अकारण हत्या का यह खयाल कितने ही दिनों तक चित्त को पीडा देता रहा। क्योंकि आम तौर पर सांप मारने की अिजाजत देने का दायित्व तो मेरा ही है। अगर हम निर्भय हो जायँ तो हमारा सांप के साथ दूसरा ही सम्बन्ध रहेगा।

(बंगला 'राष्ट्रवाणी' से)

भारतीय संस्कृति क्या है ?

(काका कालेलकर)

भारतीय संस्कृति केवल आर्य संस्कृति या केवल हिन्दू संस्कृति ही नहीं है। भारतीय संस्कृति केवल प्राचीन काल का खयाल नहीं करती। भारतीय संस्कृति का केन्द्र है हिन्दुस्तान किन्तु अुसका वर्तुल अथवा परिधि हिन्दुस्तान से सीमित नहीं है।

भारतीय संस्कृति हिन्दुस्तान के अितिहास से भी बडी है क्योंकि अितिहास केवल भूतकाल का ही खयाल रखता है। संस्कृति का सम्बन्ध भूत, वर्तमान और भविष्य से है। अितिहास अपना भविष्य नहीं जानता। संस्कृति अपने भविष्य के ध्रुवतारे पर निगाह रखकर चलती है।

हिन्दुस्तान में अनक धर्म हैं, अनेक भाषायें हैं, अनेक देशों से आकर बसे हुअे लोग हैं। सम्पत्ति, बुद्धिशक्ति, कौशल्य, अुदारता और शालीनता, हर अेक दृष्टि से भिन्न भिन्न कोटि के लोग यहां पर बसते हैं। तो भी हम कहते हैं, हिन्दुस्तान की संस्कृति अेक है, अखण्ड है और अविभाज्य है। बहुत-से लोग अिस चीज़ को नहीं समझ सकते कि भिन्न धर्मावलम्बी लोग भी अेक संस्कृति में कैसे आ सकते हैं।

अेक अुदाहरण लेकर अिस बात को स्पष्ट करेंगे। ओीसामसीह यहूदी था। अुसने यहूदी मत में कुछ दोष और अपूर्णता देखी। अुसे दूर करने के लिअे अुसने अपना अुपदेश अपने शिष्यों को दिया। ओीसा के शिष्य ओीसाओी हो गये पर अुनका यहूदीपन मिट नहीं गया। अुसके बाद सेण्ट पाल ओीसाओी हो गया। वह यहूदी न था, ग्रीक यवन था। अुसने ओीसा के अुपदेश का तो ग्रहण किया किन्तु अुसकी संस्कृति ग्रीक थी। अुसमें ओीसा का अुपदेश मिलाकर अुसने अपनी ग्रीक संस्कृति परिपुष्ट की। बाद में जो रोमन लोग ओीसाओी हुअे वे धर्म से तो ओीसाओी हो गये, रोमन धर्म तो अुन्होंने छोड दिया, किन्तु रोमन संस्कृति से वे परे न हो सके।

हिन्दुस्तान में चन्द शक, हूण आदि बाहर के लोग आ गये। अुन्होंने न केवल यहां का धर्म ही अपनाया किन्तु वे संस्कृति से भी अिसी देश के हो गये। हिन्दुस्तान के बाहर अुसके लिअे कोओी स्वदेश नहीं रहा। अगर वे वहां से कुछ संस्कृति ले आये तो अुसको सर्वतर यहां के लोगों ने अपनाया और यहां की भली बुरी सब चीजें अुन लोगों ने अपनायीं और वे पूरे पूरे यहां के हो गये।

जब मुसलमान अिस देश में आये तो यहां के लोगों से वे तुरन्त घुलमिल नहीं गये। अुनका गोमांसाहार यहां के लोग सहन न कर सके और यहां की मूर्तिपूजा वे भी सहन न कर सके। जब और प्राणियों का मांस खाया जाता है तब गाय का मांस खाने में क्या हर्ज हो सकता है यह अुनके ध्यान में नहीं आ सका। भारत की कृषि-प्रधान संस्कृति में गाय का क्या महत्त्व है यह किसीने भी अुन्हें नहीं बताया और न कलाप्रिय भारतवासी मुसलमानों का मूर्तिविरोध समझ सके। अन्य देश के जड़ लोगों ने मूर्ति के नाम पर क्या क्या अनाचार चलाये थे अुसका खयाल तक अुन्हें न था।

किन्तु भारतीय संस्कृति में अेक बहुत बडी चीज़ थी जो अन्य देशों में बहुत कम पायी

जाती है। भारत के लोग पहले से यह मानते आये हैं कि अीश्वर के पास पहुंचने के मार्ग अनेक हैं। मनुष्य अज्ञानी है यह कोअी अुसका गुनाह नहीं है। अीश्वर सर्वज्ञ है। हर मनुष्य के हृदय की बात जानता है। अगर मनुष्य में दुष्टता न हो तो अुसके अज्ञान की क्षमा तो अीश्वर पहले से ही कर चुका है। अीश्वर के सामने छोटे बडे, पण्डित और मुल्ला, विद्वान और जंगली—सब के सब अज्ञानी ही हैं। अेक का अज्ञान काजल के जैसा होगा तो दूसरे का अज्ञान कोयले के समान होगा। अिसमें किसे सजा करें और किसे बख्शिश देवें।

जो मुसलमान हिन्दुस्तान में आये अुन्होंने अिसी देश को अपना स्वदेश बनाया, अपनी स्वभाषा छोडकर यहां की भाषा को ही स्वभाषा बनाया। बुलबुलों के साथ कोयल का गाना सुनकर भी अुनका हृदय अुछलने लगा। तरबूज के प्रति जो भक्ति थी वह अुन्होंने यहां के आम को अर्पण की। और वे हिन्दुस्तानी बन गये। यह बात हुअी बाहर से आये हुअे मुसलमानों की। किन्तु आज हिन्दुस्तान में जो मुसलमान हैं अुनमें बाहर से आये हुअे कितने हैं? फीसदी बीस भी नहीं होंगे। बाकी के सब अनादि काल से अिसी देश के रहने वाले हैं। अुनके लिअे हिन्दुस्तानी बनने का सवाल ही नहीं था। वे कभी गैरहिन्दुस्तानी थे ही नहीं। वे तो व्यास, वाल्मीकि, बुद्ध और शंकराचार्य के ही वंशज हैं। जिन भारतवासियों ने किसी भी कारण अिस्लाम का स्वीकार किया अुन्होंने कालिदास और भवभूति, आर्यभट्ट और भास्कराचार्य, वाग्भट्ट और तानसेन की अपनी विरासत छोडी नहीं है। मुसलमान होने से अुन्होंने फारसी और अरबी को अपनाया सही किन्तु बंगाली और मराठी, तामिल और तेलगू, आदि अपनी मातृभाषा को अुन्होंने छोड नहीं दिया। मातृभाषा का द्रोह कर के किसीने अपना सामर्थ्य बढाया नहीं है, अपना अुद्धार नहीं किया है। संस्कृत भाषा जितनी ब्राह्मणों की है अुतनी ही दूसरे सब वर्णों की है। अितना ही नहीं संस्कृत भाषा जितनी हिन्दुओं की है अुतनी ही हिन्दुस्तान के मुसलमानों और अीसाअियों की है। संस्कृत में लिखे हुअे भव्य साहित्य का सत्कार हिन्दू, मुसलमान और अीसाअी तीनों समानभाव से कर सकते हैं। अगर कोअी अिस विरासत से मुंह मोडेंगे तो वे अपने को संस्कार की दृष्टि से दरिद्री ही बनायेंगे।

जिन लोगों ने अिस्लाम या अीसाअी धर्म का स्वीकार किया है वे हिन्दू धर्मग्रन्थों को हिन्दुओं की तरह प्रमाण नहीं मान सकते तो भी अुनके प्रति अुनके मन में आदरभाव तो अवश्य रहेगा। नया धर्म ग्रहण करने से वे अपनी विरासत को छोड नहीं देंगे। किन्तु अुसीको अपनी नअी दृष्टि से शुद्ध कर के अुसे अपने नये धर्म के द्वारा समृद्ध ही करेंगे।

और जो लोग हिन्दू हैं वे भी अीसाअी और अिस्लामी धर्मग्रन्थों का प्रामाण्य न स्वीकारते हुअे भी अुनकी अिज्जत तो अवश्य करेंगे और अुनसे अुतना ही लाभ अुठायेंगे जितना वे अपने धर्मग्रन्थों से अुठाते हैं।

हिन्दुस्तान में अितने धर्म हैं किन्तु अुन सब धर्मों का अेक विशाल धर्मकुटुम्ब बनाने की शक्ति भारतीय संस्कृति में है। भारतीय संस्कृति ने कब का कह दिया है कि मानवकुल में प्रचलित सब प्रधान धर्म सही हैं। सभी की प्रेरणा अीश्वर से है। और सब के सब मनुष्यों के बीच

प्रचलित होने के कारण मनुष्यों की अपूर्णता भी अुनमें आ गयी है। गंगा गंगोत्री से आयी है लेकिन वहीं ठहरी नहीं है। जब तक वह विशाल सागर में विलीन न हो जाय तब तक अुसे आगे बढना ही है। अुसमें यमुना आकर मिलेगी, चर्मण्वती और शोण आकर मिलेगी, शरयू और गंडकी भी आकर मिलेगी, और सागर में पहुंचते पहुंचते हिमालय के अुसपार से आनेवाली ब्रह्मपुत्रा के साथ भी अुसका संगम हो जायगा। भारतीय संस्कृति की भी असी ही बात है। वैदिक संस्कृति से अुसका अुद्गम होगा। अुसके पहले की बात हम नहीं जानते किन्तु अुसमें दुनिया भर की संस्कृतियों ने अपना अपना करभार डाल दिया है। भारतीय संस्कृति में अिस्लामी और अीसाअी संस्कृति मिल गयी है। अिसलिअे हिन्दुस्तान के अिस्लाम की खूबी अरबस्तान, अिरान, या मिसर के अिस्लाम से कुछ अलग होगी, कुछ अधिक होगी। भारत का अीसाअी धर्म अिटाली, फरान्स, जर्मनी, अिंग्लैंड और रूस के अीसाअी धर्म से कुछ अधिक सुगंध बतायेगा। अीसाअी धर्म की खूबी जब हिन्दुस्तान के अीसाअी लोग बताने लगेंगे तो अीसाअी धर्म में अेक नयी ही समृद्धि आ जायगी।

और अिस्लाम और अीसाअी धर्म के हिन्दुस्तान में आने से हिन्दू धर्म की खूबी भी अधिक अच्छी तरह से स्पष्ट होने लगी है। सूफी मत और कबीर मत, ब्राह्मो समाज और आगाखानी सम्प्रदाय, सब में हम भारतीय संस्कृति की समन्वयकारी शक्ति देख सकते हैं।

और जो लोग अीश्वर को नहीं मानते, किसीभी धर्म के प्रति आदर रखना पसन्द नहीं करते, किसी शास्त्र को नहीं मानते, बुद्धि से श्रेष्ठ किसी भी चीज़ को स्वीकार नहीं करते वे भी भारतीय संस्कृति से बहिष्कृत नहीं हैं। अुनकी भी परम्परा अिस देश में प्राचीन काल से चली आयी है।

नदी में रोज़ नया पानी आता रहता है। अेक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में वह बहती है तो भी अुसका रंग, रूप, व्यक्तित्व, और सौन्दर्य अक्षुण्ण ही रहता है। अिसी तरह संस्कृति की भी बात है। भारतीय संस्कृति में दुनिया भर की सब संस्कृतियों का असर दीख पडता है लेकिन वह भारतीय ही रही है। भारतीय शब्द में आर्य प्रारम्भ का सूचन अवश्य है किन्तु वैदिक या महाभारत काल से वह सीमित नहीं हो सकती। कअी लोग भारतीय शब्द पर आपत्ति अुठाते हैं। वे भारतीय संस्कृति का स्वभाव ही नहीं जानते। अुनके लिअे नाम बदल देने की कोअी जरूरत नहीं है। वे अुसे कोअी नया नाम देवें तो अुसे लेने में भी कोअी आपत्ति नहीं है। नया नाम लेने में कोअी आपत्ति नहीं है किन्तु पुराना नाम छोडने में अवश्य संकुचितता का दोष आ जाता है। भारतीय संस्कृति अेक जीवित चैतन्यमय और वर्द्धमान चीज़ है। मानवता का अन्तिम कल्याण ही अुसका आदर्श है। भारतवर्ष अुसका केन्द्र है, मध्यबिन्दु है और अुसका कार्यक्षेत्र अखिल विश्व है।

साहित्य संगठन

[काका कालेलकर]

क्या साहित्यकारों का भी कभी संगठन हो सकता है ?

भाषासेवियों का संगठन अवश्य हो सकता है।

लोकव्यवहार में स्वभाषा की प्रतिष्ठा बढाने के लिअे, परभाषा के आक्रमण से स्वभाषा को बचाने के लिअे, अुसका शद्बकोश निश्चित और समृद्ध करने के लिअे, नयी नयी पारिभाषिक संज्ञायें बनाने के लिअे, विभिन्न भाषाओं के अच्छेअच्छे ग्रन्थों का स्वभाषा में अुलथा करने के लिअे, शद्बों के बर्णन (हिज्जे) और शुद्ध-लेखन निश्चित करने के लिअे, व्याकरण और लिपि सुधार के लिअे, स्वभाषा के साहित्य की परीक्षायें लेने के लिअे और शास्त्रीय ग्रन्थ तथा पाठ्यपुस्तकें लिखाने के लिअे भाषासेवियों और भाषाप्रेमियों का संगठन हो सकता है।

किन्तु आजकल जिसे विशेष अर्थ में साहित्य कहते हैं वह तो अेक स्वच्छन्दी चीज़ है। हर अेक लेखक अपने लिअे अपना अलग कानून बना लेता है। हर अेक का जीवनोद्देश स्वतन्त्र और अद्वितीय होता है। भाषा, शैली और मिशन तीनों में वह किसी के साथ नहीं चल सकता। साहित्यकार अेक दूसरे के प्रश्नों से परिचित हो सकते हैं, अेक दूसरे के टीकाकार भी हो सकते हैं किन्तु अुनके संगठन से प्रयोजन ही क्या है ?

साहित्यकार का पेशा करनेवाले लोगों को आज़ीविका का सवाल हमेशा सताता है। अुसे हल करने के लिअे कभी कभी संगठन करना पडता है। लेकिन वह तो मज़दूर संघ के जैसा व्यावसायिक संगठन हुआ। साहित्यकार जीवन के अनुभव से जितना पोषण पाते हैं अुससे अधिक दूसरों के लिखे हुअे ग्रन्थों से और देश-विदेश की साहित्य समृद्धि से पाते हैं। अैसे लोगों को हर जगह पुस्तकालय और साधन ग्रन्थ मिलना मुश्किल है। बहुत से होनहार साहित्य सेवकों की प्रतिभा साधनों के अभाव के कारण कुण्ठित हो जाती है। अैसे लेखकों को साहित्यिक मदद पहुंचाने का प्रबन्ध होना चाहिअे। हर अेक समाज का हित अिसमें है कि अुसके प्रभावशाली लेखक कमसे कम अपने भिन्न भिन्न प्रान्तों में प्रवास कर के लोकस्थिति से परिचय प्राप्त करें। समाजनायकों से और प्रयोगवीरों से वार्तालाप करें। भिन्न भिन्न संस्थाओं का संचालन देखें और समानशीलों के साथ विचार विनिमय करें। अिस अुद्देश की पूर्ति के लिअे जिनकी प्रतिभा सन्मान्य हो चुकी है और जिनकी सामाजिक दृष्टि हितकर है अैसे साहित्य-सेवियों को "प्रवास वृत्ति" (ट्रेवलिंग फेलो-शिप) देने का प्रबन्ध होना जरूरी है। अिसके लिअे जो संगठन होगा वह साहित्यसेवियों का नहीं किन्तु साहित्य की कद्र करनेवाले दाताओं का और समाजसेवकों का होगा। अगर यह बात साहित्यसेवियों को ही सौंपी जाय तो पता नहीं कैसा प्रबन्ध होगा। अगर अैसा संगठन हुआ भी तो अुसे दक्षिणा का प्रबन्ध कहना चाहिअे।

साहित्यसेवियों के संगठन के प्रधान अुद्देश कुछ और भी हो सकते हैं। वे साथ बैठ कर साहित्य के आदर्शों की चर्चा करें, अुसका अितिहास लिखें अथवा साहित्य के द्वारा लोगों के सामने जो चीजें परोसी जाती

हैं अुनकी योग्यता अयोग्यता की चर्चा करें। असके लिअे समय समय पर व्यापक अथवा परिमित किन्तु निश्चित अुद्देश से बुलायी हुअी परिषदें और सम्मेलन काफी हैं। स्थायी संगठन से साहित्यसेवी क्या लाभ अुठा सकते हैं?

अेक बात है। जब कभी सरकार अथवा विद्यापीठों की ओर से साहित्यसेवियों की सम्मिलित राय पूछी जाती है तब साहित्य-सेवियों के संगठन की बडी जरूरत मालूम होती है। लेकिन अक्सर अैसा देखा गया है कि साहित्यसेवी सम्मिलित राय देने में बडी हिचकिचाहट बताते हैं। असलिअे अिस परिमित अुद्देश से ही किया गया साहित्यकारों का संगठन शायद ही लाभदायी हो।

यद्यपि ये सब बातें सही हैं तथापि जब कि दुनिया भर के सब वर्ग अपना अपना संगठन कर रहे हैं तब साहित्यकारों का संगठित होना अुचित है। साहित्यकारों का स्वभाव संगठन के अनुकूल नहीं होता। महज अुनके अिस स्वभाव में परिवर्तन करने के अुद्देश से ही साहित्यकारों का संगठन करना अिष्ट है।

—२—

अगर साहित्यसेवी आपस में कोअी संगठन करने जावें तो अुसका कुछ निश्चित अुद्देश होना चाहिअे। कुछ दृष्टिसाम्य भी होना चाहिअे। पसन्दगी-नापसन्दगी की कुछ कसौटी भी होनी चाहिअे। साहित्य तो केवल विचारों का वाहन है। आकृति मात्र है। अुसके अन्दर हम कैसा द्रव्य भरना चाहते हैं अिसीपर अुसकी योग्यता निर्भर है। भोजन के बर्तन जब साफ होते हैं, चमकीले होते हैं, अनुकूल और सुडौल होते हैं तब भोजन करने में आनन्द आता है। किन्तु केवल खाली बरतनों से भोजन नहीं हो सकता। केवल बरतन देख-कर कुछ प्रसन्नता तो हो सकती है। किन्तु विचारशून्य साहित्य से वह भी नहीं हो सकती। साहित्यरूपी भाजन (बरतन) में भोजन किस किस्म का होता है? मनुष्य अपने विचार, अनुभव, कल्पनायें, शंकायें, आकांक्षायें और आदर्श सब कुछ आदर्शबद्ध कर डालता है। हमेशा अपेक्षा यह रहती है कि साहित्य रोचक हो, निर्दोष हो और पौष्टिक हो, ज्ञानप्रद हो और प्रेरक भी हो। साहित्य के द्वारा हम अपनी जानकारी भी बताना चाहते हैं। विचारशक्ति पैनी करना चाहते हैं। चित्तवृत्ति कोमल, ललित, और संस्कारी बनाना चाहते हैं। और संकल्पशक्ति मजबूत करना चाहते हैं। जो साहित्य केवल रोचक है किन्तु हानिकर है वह तो जहर के समान है। अुसे तजना ही चाहिये। जो साहित्य केवल आकर्षक है, किन्तु अूपर बतलाये हुअे किसी भी काम का नहीं है वह व्यर्थ है। अुससे डरना चाहिअे। वह जीवनसत्त्व नष्ट कर देगा। अभिरुचि नष्ट कर देगा। जो साहित्य समाजहित के लिअे बाधक नहीं है, सुरुचि का भंग नहीं करता, सदाचार को परिपुष्ट और अुत्तरोत्तर अुन्नत करता है, कृत्रिमता को अप्रतिष्ठित करता है वही साहित्य अच्छा है। साहित्य केवल अेक शक्ति है। अुसका हम जैसा अुपयोग करेंगे वैसा ही अुससे लाभहानि होगी। अग्नि का अुपयोग जंगल और गांव जलाने के लिअे भी हो सकता है। और षड्रसअन्न पकाने और भट्टियां जलाने के काम भी वह आ सकता है। मनुष्य समाज के भिन्न भिन्न अंशों में, भिन्न भिन्न वर्णों में और भिन्न भिन्न वर्गों में स्वार्थ, अीर्षा और द्वेषमूलक विद्रोह

भी साहित्य बढ़ा सकता है। अथवा परस्पर विरोधी तत्त्वों को अेक दूसरे के निकट लाकर अुनकी अच्छाअियों का संगठन कर वह मानवता का विकास भी कर सकता है। जो अिष्ट हो अुसीका अंगीकार करना चाहिअे। जो अनिष्ट हो अुसका तिरस्कार करना चाहिअे। तिरस्कार नहीं तो बहिष्कार ही सही।

अिस बात पर जिनका अेकमत है अुनका संगठन न केवल हो सकता है किन्तु समाज की बहुत ही बडी सेवा भी कर सकता है।

अगर अुद्देश स्पष्ट न हो तो परस्पर विरोधी और मारक वस्तुओं के संगठन का प्रयास किया जायगा और अुसका फल क्लेश के सिवा और कुछ नहीं आयगा।

सर्वोदय की दृष्टि

अमर राष्ट्रभक्त लाला हरदयाल

हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता के पीछे पागल बन कर जो लोग देश छोड कर गये अुनमें राजा महेन्द्रप्रताप और लाला हरदयाल के नाम विशेष रूप से याद आते हैं। दोनों ने अिस देश में काफी काम करने के बाद विदेश का रास्ता पकडा। लाला लाजपतराय को भी अिसी तरह कुछ दिन विदेश में रहना पडा था किन्तु वे यथासमय स्वदेश को लौट सके। लाला लाजपतराय का रास्ता अूपर बतलाअे हुअे दोनों देशभक्तों से भिन्न था। लालाजी ने अमेरिका में लिखी हुअी अपनी 'यंग अिण्डिया' नामक किताब में अिन दोनों के बारे में काफी लिखा है।

सारा देश चाहता है कि राजा महेन्द्र-प्रताप को स्वदेश आने की अिजाजत मिले। लाला हरदयाल भी अगर स्वदेश वापस आ सकते तो हर अेक हिन्दुस्तानी को अत्यंत आनन्द होता। किन्तु अुन्हें हम अिस देश में वापस ला सकें अिसके पहले ही गत मार्च में अमेरिका में अुनका देहान्त हुआ। स्वातन्त्र्य-प्राप्ति के लिअे जो अकाग्रता चाहिअे, जो स्वार्थत्याग चाहिअे, जो अुदारता और अुससे आनेवाली दीर्घदृष्टि चाहिअे अुसकी अिस देश में कमी है। अिसीलिअे हम अभी तक स्वतन्त्र नहीं हो पाये हैं।

हमारे देशभक्त पूर्ण स्वतन्त्रता की बातें तो अवश्य करते हैं। किसी को छह महीने में स्वतन्त्रता चाहिअे तो कोअी सूरज डूबने तक ठहरने को तय्यार नहीं है। किन्तु वे अितना नहीं समझते कि स्वतन्त्रता के बन्दरगाह तक पहुंचना हो तो राष्ट्र की नैया अेक ही दिशा में खेनी चाहिअे। किन्तु हमारे यहां तो यह हाल है कि जितने देशभक्त हैं अुनसे अधिक स्वातन्त्र्यप्राप्ति के मार्ग हैं। जिसकी राय अलग न हो, भला वह भी कभी देशनेता बन सकता है?

हजारों वर्षों के कटु अनुभव से किसीने कहा था

सर्वे महत्त्वमिच्छन्ति कुलं तदवसीदति।
सर्वे यत्र विनेतारः राष्ट्रं तन्नश्यति ध्रुवम्॥

खैर, हम जैसे हैं वैसे ही रहेंगे और अुस हालत में भी अगर हमें स्वतंत्रता मिले तो अुसके अहोभाग्य!

लाला हरदयाल भारतीय स्वतन्त्रता के अनन्य अुपासक थे। अुनके जीवन और विचारों में आश्चर्यजनक परिवर्तन हुअे। किन्तु अुनकी भारत-भक्ति और आजादी की अुपासना अखण्ड ही रही।

लाला हरदयाल के देहान्त का करुणाजनक समाचार जब अखबारों में पढा अुसी समय मेरे अेक मित्र ने मेरी गुजराती में लिखी हुअी कुछ पंक्तियां मेरे पास भेज दीं। वर्षों पहले लिखी हुअी पंक्तियां हैं वे। मैं अुन्हें भूल भी गया था। आज अुन्हें पढने से अनेक मिश्र भाव मन में जाग अुठते हैं। अगर मैं आज लिखता तो अिस आधुनिक भक्त के बारे में अिससे अधिक गौरवान्वित भाषा में लिखता। परन्तु फिर भी अुन पुरानी पंक्तिओं को हिन्दी में यहां दे देना पसन्द करता हूं।

"लाला हरदयाल याने प्रचण्ड झंझावात। जहां से वह निकलेगा वहां के बडे बडे पेडों को अुखाड देगा। किन्तु अगर हवा के बहने की दिशा में स्थिरता आ सके तो हरदयालजी के विचारों में भी स्थिरता आने की आप आशा करें। अुनमें स्थिरता भले ही न हों किन्तु पारमार्थिकता (अर्नेस्टनेस अॅण्ड सिन्सिरिटी) भरपूर थी। अुनके विचार चाहे कुछ भी हों, हरदयाल की वृत्ति ब्राह्मण की थी। वे हमें कोअी निश्चित रास्ता भले ही न दिखा सकें किन्तु गम्भीर विचार में अवश्य डाल सकते हैं। वे कभी आर्यसमाजी बनते हैं तो कभी हिन्दू-संगठनवादी। घडी में राष्ट्रधर्मी और घडी में विश्वकुटुम्बी। आज तुर्कस्थान की सुध लेंगे तो कल यहूदियों को आस्मान तक चढावेंगे। अेक बार कहेंगे कि अंग्रेजों को अिस देश से निकालने के लिअे गदर का ही रास्ता लेना चाहिअे तो और किसी मौके पर कहेंगे कि हिन्दुस्तान का सफेदपोश मध्यम् वर्ग हमेशा के लिअे नामर्द हो गया है। अुसकी आशा छोडकर अंग्रेजों की मदद से ही देश की जनता का अुद्धार करना चाहिअे। अेक दिन भगवद्गीता में वे धर्मसर्वस्व देखेंगे तो थोडे ही दिनों के बाद प्रचार करेंगे कि तमाम पुरानी किताबें समुद्रों में डुबा कर अुनका स्थान फलाने फरासीसी या अमेरिकन लेखक के ग्रन्थों को देना चाहिअे। अिस तरह वे आन्धी की नाअीं चाहे जैसे बहते रहें फिरभी अुनकी चंचलता के पीछे राष्ट्रीय वृत्ति की तमन्ना दीख पडती है।

"आज कल वे कहां हैं? अुनके क्या विचार हैं? वे हमारी मदद करेंगे या हमारी कार्य-पद्धति में विघ्न डालेंगे यह हम नहीं जानते। किन्तु अुनकी देशभक्ति से और त्याग से जवान और बूढे सब देशभक्त देशवासियों को प्रेरणा अवश्य मिल सकती है। जब वे अमेरिका में कहीं प्रोफेसर थे तो जो तनख्वाह पाते, वहां के मजदूरों में बांट देते। जीवन की सादगी और त्याग का भारतीय आदर्श अुनके रोम रोम में भरा हुआ है।"

करीब तीस वर्ष पहले लाला हरदयाल का लिखा हुआ 'सोशल क्वांक्वेस्ट ऑफ द हिन्दू रेस' शिर्षक अेक लेख मॉडर्न रिव्हयू में पढा था। तब अुसका चित्त पर गहरा असर हुआ था। आज अुसे पढने पर अुस में संकुचितता अवश्य दीख पडेगी किन्तु अुसमें जो दृष्टि है वह अवश्य सजीव है। क्या ही अच्छा हो अगर हिन्दी का प्रचारक लाला हरदयाल के सभी लेखों का हिन्दी में संग्रह करे।

अंग्रेजी ढंग के अनुसार मृतात्मा की शान्ति के लिअे प्रार्थना करने का रिवाज अखबारी दुनिया में चल पडा है। पुनर्जन्म में

विश्वास करनेवाले हम लोग यही प्रार्थना कर सकते हैं कि लाला हरदयाल जैसे भारतीय स्वतंत्रता के अुपासक अिसी देश में फिरसे जन्म लें। जबतक हम स्वतन्त्र नहीं हुअे हैं तब तक स्वतन्त्रता का यह अुग्र अुपासक शायद हमारे हाथों श्रद्धांजलि के जल का भी स्वीकार नहीं करेगा। शायद हमें अुसे अपने गरम गरम खून की ही श्रद्धांजलि अर्पण करनी होगी। शायद मामूली जल से राष्ट्रीय तर्पण नहीं हो सकेगा। निरतिशय सेवा से निकला हुआ पसीना और आत्मबलिदान में बहाया हुआ अपना खुद का खून—ये दोनों राष्ट्रीय श्राद्ध के लिअे अुपयुक्त जल हैं।

का० का०

लोक-जीवन की गंगोत्री

कॉंग्रेस के शुद्धीकरण का प्रश्न अेक विकट समस्या के रूप में प्रस्तुत है। यह अिस बात का सबूत है कि राष्ट्र में अभी सार्वजनिक चरित्र (पब्लिक मोरेलिटी) की कमी है। सत्ता हजम करने की ताकत अभी हमारे औसत नेताओं में नहीं आयी है। यह परिस्थिति बहुत ही भयंकर है। अिसीलिअे हमारे बडे से बडे नेता अुसका अिलाज ढूंढने में व्यग्र हैं। संस्था में मतभेदों का होना कोअी खतरनाक चीज़ नहीं है। बल्कि नीरोगी मतभेदों से तो संस्था की प्रगति ही होती है। परन्तु मतभेदों की आड में जब स्वार्थ और व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा किसी संस्था में दाखिल हो जाती है तो फिर अुसे ब्रह्मदेव भी नहीं बचा सकता। कॉंग्रेस से बुराअियाँ दूर करने के लिअे हमारे मान्य नेता अुसके विधान में आवश्यक सुधार करेंगे और अपनी सूझ के अनुसार अन्य अुपाय भी खोजेंगे। लेकिन ये सब बाह्य अुपचार हैं। अगर हम अिरादा कर लें तो अुनके सारे अुपचारों को अेक क्षण में निकम्मे ठहरा सकते हैं। अगर जनता सच्चे दिल से यह चाहती है कि हमारा सार्वजनिक जीवन पवित्र और अुदात्त हो तो वह अुसके हाथ की बात है। जनता के सहयोग के बिना हमारा कोअी नेता चाहे वह अेक विश्ववंद्य महापुरुष ही क्यों न हो—कॉंग्रेस को शुद्ध नहीं कर सकता। सार्वजनिक संस्थाओं की, और खासकर प्रातिनिधिक संस्थाओं की, शुद्धता का आधारभूत तत्त्व यह है कि जनता योग्य व्यक्तियों को पहचानने की शक्ति बढ़ावे। हिन्दुस्तान में यह शक्ति तभी बढेगी जब हम अपने व्यक्तिगत, कौटुम्बिक, जातीय या वर्गीय स्वार्थ के लिअे राष्ट्रहित की बलि देने से बाज आयेंगे। जब अैसा होगा तब वह अुलटे-हाथवाला (रॉंगिस्ट) पक्ष कॉंग्रेस में कहीं का न रहेगा। तब बायें-दायें का झगड़ा भी कम तीव्र और राष्ट्र की प्रगति में कम बाधक होगा। आज की सारी प्रगतिशील राष्ट्रीय संस्थायें जनता का राज्य चाहती हैं। 'स्वराज्य' में जो 'स्व' है वह 'जनता' का पर्यायवाची है। जनता की स्वत्वरक्षा का नाम ही स्वराज्य है। लेकिन जब जनता ही अपना स्वत्व लाठीवाले, थैलीवाले और पोथीवालों के हाथ, डर से, लोभ से या बेवकूफी से बेचने के लिअे तैयार हो तो अुसे बचाने की किसकी सामर्थ्य है। कॉंग्रेस की गंगोत्री को शुद्ध और निर्मल रखने की जिम्मेवारी जनता पर—अुसके प्राथमिक सदस्यों पर— है यह अुन्हें न भूलना चाहिअे। कॉंग्रेस में जो बुराअियां घर करना चाहती हैं अुनकी जड़ है हमारी—आम जनता की—कमजोरियां। अनुशासन के नियमों की कड़ाअी

या काँग्रेस के विधान में सुधार जैसे बाहरी अिलाज अुन्हें दूर करने में हमारी मदद कर सकते हैं, लेकिन ये अुपाय तभी कारगर होंगे जब जनता खुद अुनका निर्मूलन करने का प्रण कर लेगी। तब दायां और बायां हाथ अेक दूसरे के सहायक और पूरक होंगे और भारत की सव्यसाची जनता अजेय हो जायगी।

निन्दाजीवियों का प्रतिकार

१९१९ वाली अमृतसर काँग्रेस पहली गांधी-काँग्रेस कहलायी। अुसपर गांधीजी की गहरी छाप थी। जिन बातों पर गांधीजी की छाप साफ साफ नजर आती थी अुनमें से अेक चीज थी जलियानवाला-बाग विषयक प्रस्ताव। दुनिया की किसी राजनैतिक या व्यवहारचतुर सभा ने असिसे पहले अैसा प्रस्ताव कभी नहीं किया था। यह प्रस्ताव भारत में ही नहीं, दुनिया के राजनैतिक विकास के अितिहास में अभूतपूर्व है। पंजाब हत्याकाण्ड के विषय में सरकार की संयत शब्दों में निन्दा अिस प्रस्ताव में की गअी है। परन्तु अुसके साथ ही साथ 'जन-समूह के लोग क्रोध से बावले हुअे थे' अिस कारण अुनकी ओरसे जो "ज्याद-तियां हुअीं और अुनके कारण जानमाल का जो नुकसान हुआ अुसपर" "दुःख प्रकट" करते हुअे काँग्रेस ने "अुन कृत्यों की निन्दा की थी"। प्रस्ताव के अिस हिस्से पर विषय-निर्धारिणी में काफी बहस हुअी। सरकार के अत्याचार और व्यवस्थित तथा अमानुष हिंसा के मुकाबले में जनता की यह अुच्छृंखलता कुछ भी नहीं थी। अिसलिअे देश के बडे बडे प्रतिष्ठित नेताओं की यह दलील थी कि अुसपर शोक प्रकट करने की तनिक भी जरूरत नहीं। परन्तु गांधीजी अिस देश के और संसार के राजनैतिक व्यवहार में अेक अभिनव सिद्धान्त दाखिल करना चाहते थे। वे तो हमारे सार्व-जनिक जीवन की कायापलट करने की साध लेकर आये थे। हम दूसरों के दोषों को अपने दोषों के समान देखें यह तो अहिंसा का तकाजा है ही। परन्तु यह तो अहिंसक सभ्य-व्यवहार का आरंभ है। अहिंसा तो यह सिखाती है कि "दूसरों की आंख में जो मूसल है अुसे देखने से पहले अपनी आंख में पडा हुआ तिनका बाहर करो"। अहिंसक शुभ व्यवहार की यह सुन्दरता अिस प्रस्ताव ने राज-नीति में दाखिल की। अुसे 'वारांगना' की हालत से अुबार कर लोकधर्म की अधिष्ठात्री के पद तक चढ़ाया।

अहिंसक राजनीति के अिस मर्म को यदि हम भलीभांति समझ लें तो हमारी दृष्टि अन्तर्मुख हो जायेगी। आज, खास कर दो प्रान्तों में, गांधीजी और अुनके साथियों के विषय में जहर अुगला जा रहा है। अिन प्रान्तों के कुछ व्यक्तियों और सम्पादकों की राय में अैसा कोअी घृणित काम नहीं जिसे गांधीजी और अुनके साथी सत्ता और सम्मान के लिअे करने में हिचकेंगे। अिसपर से अिन आलोचकों की संस्कृति और शील का पता तो अवश्य चलता है। लेकिन यहां अुससे हमें मतलब नहीं है। हमें तो यह देखना है कि हम अिसके लिअे कहां तक जिम्मेवार हैं। मेरी तुच्छ राय में हमारी अिसमें काफी जिम्मेवारी है। गांधीजी की नीति और कार्य-प्रणाली में शाब्दिक श्रद्धा जता कर जो अपने सार्वजनिक तथा निजी व्यवहार में अुसके प्रतिकूल आचरण करते हैं वे गांधी-नीति के सब से भयानक प्रच्छन्न शत्रु हैं। हमारे सार्व-जनिक जीवन में सत्य और अहिंसा की प्रतिष्ठा

कुत्सित आरोप या असभ्य निन्दा से नहीं घटेगी। अुसे सब से जबरदस्त क्षति वे पहुँचाते हैं जो अुसके नाम पर स्वार्थ और व्यक्तिगत राग-द्वेष सिद्ध करने की फ़िराक़ में हैं। गांधी-नीति में माननेवाले नित्य जागरूक रह कर अपनी आंख का तिनका निकालने के अुद्योग में जी-जान से जुट जायेंगे तो निन्दकों का आधार ही टूट जायेगा। बिना बात के बतंगड और राअी के बिना पर्वत बनाने की कला में कअी निन्दापटु व्यक्ति सिद्धहस्त हैं। वे कुछ दिनों के लिअे जनता को भले ही भुलावा दे दें, लेकिन कोअी भी निन्दा-जीवी चाहे जितना धूर्त क्यों न हो, सारी जनता को हमेशा नहीं बना सकता। जनता केवल हलके कानों की नहीं है, अुसमें विलक्षण गुणग्राहकता भी है। वह हमारी कमजोरियों को सहन कर लेगी। लेकिन अपने तत्त्व और व्यवहार का अन्तर कम करने की हमारी कोशिश सच्ची होनी चाहिअे। अुदात्त विचारों की ओट में निकृष्ट जीवन छिपाकर अगर हम सत्ता और सम्मान के पीछे पडेंगे तो विरोधियों की निन्दा हमें पदभ्रष्ट करने में सफल होगी। पथभ्रष्ट तो हम हैं ही। अमृतसर में गांधीजी ने कॉंग्रेस की नीति में जो तत्त्व दाखिल किया अुसको हर अेक गांधी-नीति माननेवाले व्यक्ति को अपने जीवन में चरितार्थ करने की प्रामाणिक चेष्टा करनी चाहिअे। निन्दा-जीवियों की निन्दा का यही माकूल जवाब है। प्रति-निन्दा या तीव्र धिःकार से हम अुन्हें परास्त नहीं कर सकेंगे। अुनके कठोर और कुटिल शब्दों का अुत्तर हमें अुत्कट और शुद्ध आचार के प्रयत्न से देना होगा।

"नान्यः पन्था विद्यते"

अविश्वास का शाप

गान्धी सेवा संघ के अध्यक्ष श्री किशोरलाल भाअी ने ता. २६।२।१९३९ को जो परिपत्र संघ के सदस्यों के पास भेजा अुसकी कअी अखबारों ने बडी कडी आलोचना की है। अिसमें से बहुतसी तो अज्ञान-मूलक और भ्रान्ति-जनक है। अुससे यह अनुमान निकालना कि संघ में विचार-स्वातंत्र्य और प्रामाणिक मतभेद के लिअे कोअी गुंजाअिश नहीं है, संघ के ति घोर अन्याय करना है। हां, यह बात सही है कि संघ का अुद्देश्य 'गान्धीजी के सिखाये हुअे सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों के अनुसार' काम करना है। संघ सत्य और अहिंसा के सार्वभौम सिद्धान्तों को मानता है और अुन सिद्धान्तों की गांधीजी ने जो व्याख्या की है अुसे भी मानता है। गांधी-सिद्धान्त और गांधी-नीति के सबसे बडे और प्रामाणिक भाष्यकार तो गांधीजी ही हो सकते हैं। अिसलिअे प्रायः हरेक विवादास्पद मामले में अुनकी राय अन्तिम मान ली जाती है। लेकिन बाज़ वक्त यह भी हो सकता है कि किसी सदस्य को गांधीजी की कोअी खास राय या कृति अुन्हींके अंगीकृत सिद्धान्तों के प्रतिकूल प्रतीत होती हो। फिर भी वह अपना मतभेद प्रकट करके सन्तोष मान लेता है क्योंकि गांधीजी की प्रामाणिकता पर अुसे अटल विश्वास है। अधिक से अधिक वह अितना ही मानता है कि गांधीजी गलती कर रहे हैं। मगर वह यह कभी नहीं समझता कि वे जानबूझ कर अप्रशस्त मार्ग ले रहे हैं। वह यह भी जानता है कि जिस क्षण गांधीजी अपनी भूल महसूस करेंगे, अुसी क्षण वे अुसे दुरुस्त कर लेंगे। यह नैतिक धैर्य वह गांधीजी में दूसरों की अपेक्षा और

खुद अपनी अपेक्षा भी कहीं अधिक मात्रा में देखता है, असलिअे जब अुनसे मतभेद हो जाये, तो वह बहुत ही नम्र और सावधान हो जाता है। अपने निर्णय की सम्यक्ता पर बार बार विचार करता है। वह बौद्धिक अहंकार और मत-स्वातंत्र्य का अन्तर जानता है। गांधी सेवा संघ में बुद्धि-स्वातंत्र्य भरपूर है, लेकिन बौद्धिक अराजकता नहीं है।

मेरी समझ में संघ के अध्यक्ष ने जिस बात की ओर संकेत किया है वह यह है कि संघ में अेक भ्रातृभाव (अेस्प्रिडडिकोर) और संघ-नीति (कारपोरेट मोरोलिट) हो। संस्था के जीवन की यह प्राणवायु है। वे संघ को अेक विशिष्ट सम्प्रदाय या राजकीय दल हरगिज नहीं बनाना चाहते। लेकिन असका यह मतलब तो नहीं है कि अुसके सदस्यों में कोअी परस्पर सहयोग और नीति की अेकता ही न हो। अगर संघ का कोअी सदस्य यह समझे कि दूसरा सदस्य गलती कर रहा है तो अुसका यह कर्तव्य है कि वह अुसे समझावे या अध्यक्ष से अुसके विषय में पूछे। अगर अुसे यह शक हो कि वह सदस्य जानबूझ कर नाजायज़ तरीकों से काम ले रहा है तब तो अुसका यह कर्तव्य और भी आवश्यक हो अुठता है। यदि सदस्यों को अेक दूसरे के हेतु की शुद्धता के विषय में ही सन्देह हो तो गांधी सेवा संघ टिक ही नहीं सकता। हम सरदार वल्लभभाअी से भिन्न राय रख सकते हैं और अुसे स्पष्ट शब्दों में प्रकट भी कर सकते हैं। यह सब संघ-वृत्ति के प्रतिकूल नहीं है। लेकिन यदि हम यह ख़याल करने लगें कि सरदार वल्लभभाअी कॉंग्रेस में अपना आसन स्थिर रखने के लिअे दूसरे प्रामाणिक विरोधियों को भले या बुरे अुपायों से गिराना चाहते हैं, वे प्रत्याघात और प्रतिशोध को देशहित से श्रेष्ठ मानते हैं, वैयक्तिक बड़प्पन और प्रान्तीय दुरभिमान से प्रेरित होकर वे अपने प्रतिपक्षियों का अुच्छेद करना चाहते हैं, तब तो अुनका और हमारा स्थान अेक ही संस्था में कैसे हो सकता है? मतभेद अेक चीज़ है। अविश्वास बिलकुल दूसरी। अगर हमारा अेक दूसरे की नीयत और सचाअी पर विश्वास हो तो हम यही समझेंगे कि सरदार वल्लभभाअी जो कुछ कर रहे हैं वह केवल देशहित के ख़याल से कर रहे हैं। हम अुनका कृत्य अुपयुक्त या अिष्ट भले ही न समझते हों। परन्तु फ़िर भी हम यह मानने से तो अिनकार करेंगे कि अुनका कोअी गुप्त या अवांतर हेतु हो सकता है। अेक ही संस्था में रहकर अगर हम अेक दूसरे पर विश्वास करते हों तो मतभेद होने पर हम अेक दूसरे का दृष्टिकोण समझ लेने की पूरी पूरी कोशिश अवश्य करते रहेंगे। अेक ही संस्था के सदस्यों में विचारभेद और अेक हद तक आचार-भेद भी हो सकता है। कभी कभी नीति-भेद हो सकता है। परन्तु परस्पर अविश्वास तो किसी हालत में नहीं रह सकता। सामुदायिक जीवन के लिअे अविश्वास अेक भयंकर अभिशाप है।

गांधी सेवा संघ जैसी संस्था में अगर यह पिशाच घुस जाये तो वह संस्था शापित हो जायेगी। अध्यक्ष के परिपत्र का विचार यदि अिस दृष्टि से किया जाय तो वह अितना नहीं खटकेगा। विचार-स्वातंत्र्य और संघवृत्ति का मेल कैसे बैठाया जाय यह सवाल मनीषियों के विचार के लिअे है। आगामी सम्मेलन में विचार-विनिमय के लिअे

सामग्री अुपस्थित करने के अभिप्राय ही से ये पंक्तियां लिखी हैं। परिपक्व निश्चय के रूप में नहीं।

२१:४:३९ दा० ध०

राजकारण या सद्गुण-संवर्धन ?

महाराष्ट्र के अेक प्रसिद्ध नेता ने गांधीजी की नीति की बड़े कठोर शब्दों में आलोचना करते हुअे कहा था कि जबसे गांधीजी काँग्रेस में आये हैं तबसे वह अपने मूल अुद्देश को भूल गयी है। अब वह कोअी राजकीय संस्था नहीं रही। लोगों में सद्गुण-विकास करने का काम स्वीकार कर अुसने अपने आपको अेक 'अनु-शीलन समिति' में बदल दिया है। लेकिन आज चारों ओर से काँग्रेस के शुद्धी-करण की पुकार सुनकर शायद वे भी गांधी-नीति की दूरदर्शिता और अुपयुक्तता को स्वीकार करेंगे। राजकीय नीतिज्ञता के अभाव के कारण हमारा देश गुलाम नहीं हुआ। हमारा असली मर्ज है सार्वजनिक चरित्र का अभाव, सामु-दायिक नीतिमत्ता की कमी। जबतक सामु-दायिक जीवन परिशुद्ध और समर्थ नहीं होगा तब तक राजनीतिज्ञों की सारी चतुराअी किसी काम की नहीं। जो लोग सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों का मज़ाक अुड़ाते हैं और अुन्हें लौकिक व्यवहार के लिअे निरुपयोगी बताते हैं; वही आज काँग्रेस में शुद्धीकरण चाहते हैं। अुसे अधिकारवादी, अवसरवादी और आतं-कवादियों की साजिशों से बचाना चाहते हैं। चाहे देर से ही क्यों न हो, व्यवहारनिष्ठ लोग भी सार्वजनिक जीवन में सद्गुण-संवर्धन का महत्त्व समझने लगे हैं।

२१।४।३९ दा० ध०

'केवल'-वादी और 'समुच्चय' वादी

यह युग भेदभाव और 'केवल'-वाद का है। 'केवल शिक्षा', 'केवल कला', 'केवल साहित्य', 'केवल धर्म', 'केवल नीति', 'केवल समाजसुधार' 'केवल राजकारण'– अैसे अैसे कअी 'केवलवाद' प्रचलित हैं। ग़नीमत अितनी ही है कि अभी तक कोअी 'केवल–जीवनवादी' और 'केवल मृत्युवादी' अपना सम्प्रदाय बनाने की चेष्टा नहीं कर रहे हैं। काँग्रेस में भी कुछ लोग केवल "राजकारणवादी" हैं और कुछ "केवल पावित्र्यवादी"। दोनों के मत में काँग्रेस में नैतिकता और धार्मिकता के लिये कोअी अवकाश नहीं। राजकारणवादी कहते हैं कि राजनीति में बरबस नीति और धर्म को मिला देने से व्यर्थ के पचड़े पैदा हो जाते हैं और हमारा अुलझा हुआ सार्वजनिक जीवन और भी अुलझ जाता है। पावित्र्यवादियों का कहना है कि राजनीति के हीन क्षेत्र में आते ही धर्म और नीति की शुद्धता नष्ट हो जाती है। यह शबल और नकली धर्म मनुष्य की आत्मोन्नति का पोषक नहीं हो सकता। अिसलिअे धर्म की शुद्धता की रक्षा के लिअे अुसे अपने ही अलग क्षेत्र में रहने देना चाहिअे। दोनों को विभक्त रखने में ही दोनों का विकास है। गांधीजी मानते हैं कि जो राजकारण सार्वभौम नैतिकता और धार्मिकता से परहेज करता है वह सामाजिक जीवन की अुन्नति में बाधक सिद्ध होगा और जो धर्म या नीति व्यवहार में नहीं चल सकती वह किसी काम की नहीं। वे सिर्फ अिन दोनों का सामंजस्य ही नहीं बल्कि समुच्चय सिद्ध करना चाहते हैं। अिसीलिअे गांधीजी की राजनीति और अर्थनीति अपूर्व है।

हथियारबन्द कायरता

अूपर कुछ केवलवादियों का अुल्लेख किया है। पुराने ज़माने में कुछ केवल युद्धवादी भी थे। जैसे आजकल कुछ लोग 'कला के लिअे कला' और 'साहित्य के लिअे साहित्य,' का प्रतिपादन करते हैं अुसी तरह पुराने ज़माने में कुछ लोग 'युद्ध के लिअे युद्ध' या केवल 'कीर्ति के लिअे युद्ध' के सिद्धान्त पर चलनेवाले थे। वे युद्ध के लिअे और युद्ध के भरोसे जीते थे। यह क्षात्रधर्म का विकृत स्वरूप था। लेकिन फ़िरभी वह आज की निकृष्ट लडाअीखोरी से कहीं बेहतर था। आज के युद्ध में न शौर्य है और न कला। "भोगैश्वर्य प्रसक्त" समाज का सिद्धान्त "आत्मानं सततं रक्षेत् दारैरपिधनैरपि," के सिवा और क्या हो सकता है? यही भीरुता की चरम सीमा है। समाज में जब मानवता के आदर्शभूत सिद्धान्त की अपेक्षा प्राणों का मूल्य बढ़ जाता है तब वीरता नाम को भी नहीं रह सकती। सिद्धान्त के लिअे जान पर खेल जाने का ही नाम तो वीरता है। दुर्बलों की रक्षा के लिअे अपने सर्वस्व की बाजी लगाने का नाम ही तो क्षात्रधर्म है। लेकिन आज हम यूरोप में क्या देखते हैं? क्रूरता और भीरुता का बीभत्स तांडव। हिटलर और मुसोलिनी बडे व्यवस्थित ढंग से अेक के बाद अेक छोटे छोटे राष्ट्रों को गले के नीचे अुतार रहे हैं, और नखशिख शस्त्रास्त्रों से सजे हुअे बडेबडे राष्ट्र हक्के-बक्के हो कर चुपचाप तमाशा देख रहे हैं। छोटे राष्ट्रों की अिज्जत से अुन्हें क्या वास्ता? हरेक को अपनी जान बचानें की पडी है। पहले मानवता की और लोकश्री की रक्षा के नाम पर नरमेध होता था। आज शान्ति के भेष में क्षुद्र प्राण-रक्षण-परायणता अिठला रही है। आज जान और माल की कीमत सिद्धान्त से अधिक है। हरेक राष्ट्र लडाअी टालना चाहता है। अिसलिअे नहीं कि अुसे शान्ति से प्रेम है, बरन अिसलिअे कि वह युद्ध से घबडाता है। सारे सभ्य संसार में 'जंगल का कानून' चल रहा है। जहां भीरुता और क्रूरता का बोलबाला है वहां शान्ति कैसे स्थापित हो सकती है? शरीर 'आद्य धर्म-साधन' भले ही हो, लेकिन है आखिर साधन ही। 'अन्नब्रह्म' भी 'तपोब्रह्म' की अपेक्षा गौण है। ये सिद्धान्त मानवता के विकास के लिअे परम आवश्यक हैं। गांधीनीति और अन्य 'केवल' अर्थवादी, रोटीवादी और देहवादी नीतियों में यह मौलिक भेद है। यह पारमार्थिक नीति भूल जाने के कारण ही आज यूरोप में युद्ध का डर युद्ध की अपेक्षा अधिक कार्यक्षम हो रहा है। हिटलर तो करीब करीब रक्तपात-हीन विजय की अेक नयी सिफ़त दिखा रहा है। अुसका आतंकवाद तहलका मचा रहा है। शान्तिप्रेम का मतलब समरभीरुता या सुरक्षावाद नहीं है।

अैसी परिस्थिति में युद्ध कुछ दिन के लिअे टल भले ही जाय, लेकिन अुसका अन्त नहीं आ सकता। आज की असाध्य परिस्थिति पर अेकदम नये किसम के अिलाज की ज़रूरत है। नहीं तो ये सारे राष्ट्र अेक न अेक दिन डरते डरते जूझ पडेंगे। डरपोकों की खूनरेजी की कोअी हद नहीं होती। सयाने का दावा करनेवाले यूरोपीय राष्ट्र यदि दर असल लड़ाअीखोर तानाशाहों के दांत खट्टे करना चाहते हों, अुनकी राज्यतृष्णा का प्रतिकार करना चाहते हों तो अुसका

अेक ही अिलाज है। वह अिलाज है गांधी-नीति का अनुसरण। अगर अेक भी पहली श्रेणी का राष्ट्र हथियारों को फेंक देने का नैतिक धैर्य बतावे तो दुनिया में चमत्कार हो जायगा, यह कोअी हवाअी कल्पना नहीं है। वरना आज की परिस्थिति में मर्ज लाअिलाज है।

२२:४:३९ दा० ध०

ब्राह्मणाः सन्तु निर्भयाः

कुछ बरस के पहिले जब रूस के प्रोफेसरों की और विद्वानों की दुर्दशा हुअी थी अुस वक्त अेशिया-भूषण कविवर रवींद्रनाथ ने अेक अपील निकाली थी और रूस के पीडित ब्राह्मणों की कुछ सहायता की थी।

अब की बार अिंग्लैंड के कवि, नाटककार, निबंध-लेखक, संपादक और नवलकथाकारों की मंडली के ओर से अेक अपील आयी है कि यूरोप के अन्यान्य देशों से शासन-पीडित, मान्य लेखक हिजरत करके अिंग्लैंड में जा बसे हैं अुनकी रक्षा के लिये कुछ सहायता भेजी जाय। इंग्लंड के अुक्त 'पी. अी. अेन्.' क्लब की ओर से अिन शासन-पीडित हिजरिती लेखकों को आजतक अेक हजार मुहरें दी गयी लेकिन अितने से क्या हो सकता है? अिसलिये कुमारी स्टॉर्म जेमिसन ने अपील की है कि भारत की ओर से भी कुछ सहायता भेजी जाय।

हमारी राय है कि अिन युरोपीय ब्राह्मणों को मदद तो अवश्य पहुंचानी चाहिये। हिंदुस्तान चाहे जितना गरीब देश क्यों न हो आर्तत्राण में और आतिथ्य में अुसने कभी अपने दारिद्र्य का विचार नहीं किया है। कर्ण और चारुदत्त ही तो भारत के प्रतिनिधि ठहरे।

किन्तु अिसके बारे में हमारी अेक नम्र सूचना यह है कि विलायत का रहन सहन अितना महंगा है कि भारत का पैसा विलायत में बिलकुल दुबला बन जाता है। यूरप के अेक आदमी को कुशलता से रखने के लिअे जहां हमारे देश में तीस चालीस रुपये पर्याप्त होंगे वहां अुसे अुसी ढंग से विलायत में रखने के लिये कमसे कम मासिक दो सौ रुपये देने पड़ेंगे। विलायत के ब्राह्मणों को हमारे देश में बुलाने से हमें अुनके परिचय का लाभ मिलेगा, वे भी हमारे देश को पहचान लेंगे। सारा पैसा अिसी देश में खर्च किया जायगा और हमारे देश के नवयुवक अिन युरोपीय ब्राह्मणों से तेजस्वी विद्वत्ता की दीक्षा भी लेंगे। युरोपीय हिजरती लेखकों को अगर हमारे कॉलेजों में और हाअी-स्कूलों में बांटा जाय तो कितना अच्छा होगा?

स्वदेशी लोगों को छोड कर अिनको हम नौकरी तो नहीं दे सकेंगे किन्तु भारत के आतिथ्य के वे हकदार अवश्य हैं।

का० का०

छंद-पिंगलशास्त्र की आवश्यकता

हमारी साहित्यिक अुच्च परीक्षाओं का प्रचार बहुत लोकप्रिय होता जा रहा है। प्रश्न यह है कि अिन परीक्षाओं में 'छंद-शास्त्र' अथवा 'पिंगल-ज्ञान' को कौन सा व कितना स्थान दिया जाय और अिस विषय पर कितना ध्यान दिया जाय। अब यह हमें फिर नये सिरे से सोचना होगा।

असल में देखें, तो छंद-पिंगल अेक प्रकार से गणित ही जैसा है। लघु-गुरु, ह्रस्व-दीर्घ अक्षरों और मात्राओं के हिसाब से अुन अुन गणों व मात्राओं की आकृतियां बनाकर अुनमें से जितने भी कर्ण-मधुर हैं या गेय हैं अुन्हीं का प्रचार बढाया जाय। लेखन-शुद्धि, व्याकरण-शुद्धि, छंद-शुद्धि, रस के अनुकूल छंद का चुनाव,

शब्दालंकार, ये सभी भाषा के बाह्यरूप हैं। काव्य का आस्वाद लेने के लिये, शब्द-समृद्धि को याद रखने के लिअे और ऱ्हस्व-दीर्घ आदि भेद पहचानने की कानों की ताकत बढ़ाने के लिअे छंद-पिंगल की कसरत बहुत आवश्यक है।

लेकिन अेक बात; अब साहित्य के अध्ययन में छंद-पिंगल के अध्ययन की आवश्यकता को प्रमाण से अधिक महत्त्व न दिया जाय। परीक्षा में साहित्य का पर्चा अगर २०० अंकों का हो तो छंद-पिंगल के लिअे १०-२० अंक ही रखना पर्याप्त होगा। अुत्तमा-परीक्षा में अगर अिस विषय का प्रश्नपत्र स्वतंत्ररूप से ही रखना हो तो अुसके लिअे १०० अंक न रखकर वह ४०-५० ही का बनाया जाय।

छंद-पिंगल की वैज्ञानिक व्याख्या करनेवाले एक सर्व-सुलभ सर्वांगपूर्ण ग्रन्थ की आज बडी ज़रूरत आ पडी है। अुसमें संस्कृत के वर्ण और मात्रावृत्त, जाति-वृत्त, हिन्दी के सोरठा, सवैया, छपाय, बरवै-गीतिका, हरिगीतिका, ललित आदि (प्राचीन और खडी बोली में प्रचलित), उर्दू के ग़ज़ल-शेर आदि, गुजराती, बँगला, मराठी आदि प्रांतीय भाषाओं में अिस्तेमाल होनेवाले छंदों को भी जगह मिलनी चाहिअे। आजकल अँगरेजी का 'सॉनेट' नामक चौदह पंक्ति का छंद भी हमारी देशी भाषाओं में चल पड़ा है। अुसका लक्षण और मीमांसा भी अिस नवीन ग्रन्थ में आ जानी चाहिअे।

छंद-पिंगल के ग्रंथ को पाठ्य-पुस्तक के रूप में न समझकर अुसे अधिकृत संदर्भ ग्रंथ (स्टैंडर्ड वर्क ऑव्ह रेफरैन्स) के तौर पर रखना ठीक होगा। और यह भी साफ साफ सूचित कर दिया जाय कि छंद-पिंगल के किस खास अंश पर विशेष ध्यान देना होगा। प्राचीन और आधुनिक कवियों ने जिन जिन छंदों का आश्रय लिया है, हमें अुनपर ही ज्यादा जोर देना चाहिअे।

अिस शास्त्र का विकास भाषा की समृद्धि के लिअे बहुत आवश्यक है। किन्तु छोटी-मोटी परीक्षाओं में अिसके महत्त्व को बढ़ाना अुचित नहीं। अूंची से अूंची परीक्षा के लिअे छंद-पिंगल–शास्त्र सम्बन्धी गवेषणापूर्ण लिखने वाले व्यक्ति को विशेष अुपाधि-पत्र और पुरस्कार दे कर सम्मानित किया जा सकता है।

छंदशास्त्र में से भिन्न भिन्न छंदों के अुदाहरण जहां तक हो सके अच्छे अच्छे चुने हुअे कवियों की निर्दोष तथा भावपूर्ण सुन्दर और अुत्कृष्ट कविताओं के ही देने चाहिअे। अेक अेक छंद के अनेक अुदाहरण देते वक्त अगर रचना का काल–क्रम सम्हाला जाय तो अध्ययनशील विद्यार्थी रचना–कौशल का विकास आसानी से समझ सकता है।

अक्सर गेय-पद्यों के लक्षण छंदशास्त्र की किताबों में दिये नहीं जाते। संगीत–शास्त्र में भिन्न भिन्न अलंकार, राग-मूर्छना, ताल आदि दिये जाते हैं, किन्तु पद्यों में भी तो मात्राओं का सवाल रहता ही है। केवल लय-ताल के अभ्यास से जो बात हमारी समझ में न आवे अुसका 'छंद शास्त्र' में अुल्लेख करना अच्छा होगा।

का० का०

गांधी–साहित्य

दो तीन साल हुअे अनेक स्थानों से यह सूचना आती ही रहती है कि गान्धी साहित्य के अध्ययन का स्थान स्थान पर निश्चित प्रबन्ध किया जावे। गान्धी सहित्य की सूची भी बार बार हमसे मांगी जाती है। हिन्दुस्तान की तथा यूरोप की अनेक भाषाओं में गान्धी साहित्य

के अनुवाद हो चुके हैं। अिन सबों की अेक सूची तो तय्यार करनी ही चाहिअे। हर प्रान्त में अपने अपने प्रधान स्थान पर गान्धी साहित्य के पुस्तकालय कायम किये जायँ यह भी जरूरी है।

अगर संघ के सदस्यों की तरफ से और पाठकों की ओर से भी सहायता मिल जाय तो गान्धीमत समझने के लिअे अुपयोगी साहित्य की सूचियां समय समय पर प्रकाशित की जायेंगी और अिन सब पुस्तकों के मिलने का प्रबन्ध भी स्थानीय सुरुचि साहित्य भण्डार में किया जा सकता है।

गान्धी अध्ययन मंडलों के स्थानिक संगठन हो जाने के बाद भिन्न भिन्न विषयों पर क्या क्या पढ़ना चाहिये और अुन विषयों का विवरण कहां कहां पाया जा सकता है अुसकी चर्चा भी 'सर्वोदय' के द्वारा की जा सकेगी।

सम्पादक

सवाल यह है कि आपकी अहिंसा वीर पुरुष की है या भीरु की? क्या वह अशक्ति में से पैदा हुअी है? अगर वह हमारी अशक्ति में से पैदा हुअी हो तो मेरा आग्रह है कि आप अैसी चीज़ को फेंक दें। वह हमें अपंग और दुर्बल बनाने वाली है। यह तो अुसका हरगिज ध्येय नहीं है। अिसका मतलब यह नहीं है कि मैं आपको अभी से तलवार लेने के लिअे कहता हूं। दुर्बलों की युद्धकला में भी अहिंसा के लिअे स्थान है। लेकिन वह निःशस्त्र प्रतिकार मेरी अहिंसा नहीं है। आप अुसे भी अपना सकते हैं। लेकिन अुससे पहले जिस अहिंसा को मैं मानता हूं अुसका त्याग करना होगा। आज तो अुस अहिंसा का बोझ मुझ पर और आप पर है। खुल्लम खुल्ला अुसे छोड देने से वह बोझ हट जायगा।

*   *   *

हमने जिस अहिंसा का सिद्धान्तरूप से स्वीकार किया है, अुसका कारण यह नहीं कि हम निहत्थे हैं। वह तो वीर पुरुषों की अहिंसा है। मैं पचास साल से अिसका प्रयोग कर रहा हूं, तब भी आज मेरे पास सारे प्रश्नों के लिअे बने बनाये जवाब नहीं है।

२७–३–३८

—गान्धीजी

पाठकों से—

कअी अपरिहार्य कारणों से यह अंक कुछ छोटा निकाला जा रहा है। आशा है, पाठक हमें अपनी मजबूरी के लिअे क्षमा करेंगे। हम अुन्हें विश्वास दिलाना चाहते हैं कि अिस कमी की पूर्ति आगामी अंक में कर दी जायगी।

सम्पादक

सूचना—

'सर्वोदय' में आम तौर पर अिश्तिहार नहीं लिये जायेंगे। अपवाद केवल वाचनीय ग्रन्थ और देशसेवा करनेवाली संस्थाओं के लिये रहेगा। अिनके अिश्तहारों के दाम नहीं लिये जायेंगे। केवल कागज, छपाई और डाकखर्च लेकर अिश्तिहार छापे जायेंगे। जो साहित्य या संस्था निर्विवादरूप से लोकोपयोगी है, अुसीको स्थान दिया जायगा। यह व्यवस्था केवल समाज-सेवा और ग्राहकों के हित की दृष्टि से चलायी जायगी।

व्यवस्थापक, 'सर्वोदय', वर्धा।

क्रान्ति अहिंसक ही क्यों ?

मैं मानता हूं कि दुनिया सशस्त्र विद्रोह से अुकता गयी है। मैं यह भी मानता हूं कि दूसरे देशों की बात चाहे जो हो, मगर हिन्दुस्तान में तो रक्तपात की क्रान्ति सफल होगी ही नहीं। लोग अुसका साथ नहीं देंगे। जिस आन्दोलन में जनता का सक्रिय हिस्सा न हो अुससे अुसकी कुछ भलाअी नहीं हो सकती। रक्तपातमय सफल क्रान्ति से तो जनता का दुःख और भी बढ़ेगा। क्योंकि जनता के लिअे तो तब भी विजातीय शासन ही रहेगा। मैं जो अहिंसा सिखाता हूं, वह बलिष्ठों की सक्रिय अहिंसा है। लेकिन निर्बल लोग भी अुसमें हिस्सा ले सकते हैं। अुससे वे अधिक निर्बल होने के बदले कुछ बलवान् ही होंगे। पहले के किसी ज़माने की अपेक्षा जनता आज अधिक निडर है। अहिंसक लड़ाअी के लिअे जनताव्यापी रचना की आवश्यकता है। अिसलिअे अुससे तामस या अँधेरा, या निष्क्रियता कभी पैदा नहीं हो सकती। वह तो राष्ट्रजीवन को और भी सचेतन बना देती है। वह आन्दोलन आज भी जारी है। खामोशी से, या करीब करीब नामाऌम तौर से भले ही हो, मगर ज़ारी है जरूर।

१२।२।१९२५ —गांधीजी

प्रकाशकः—दादा धर्माधिकारी, बजाजवाडी, वर्धा (मध्यप्रांत)।
मुद्रकः—वल्लभदास जाजू, श्रीकृष्ण छापखाना लिमिटेड, बच्छराज रोड, वर्धा।

सर्वोदय

अेष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके

सम्पादक—काका कालेलकर, दादा धर्माधिकारी

वर्धा, जून १९३९ अंक ११

अेक मार्मिक समस्या

यह तो में पहले से ही कहता चला आ रहा हूं कि आप अपने खुद के बल पर ही लड़ें। पर अब अेक भिन्न प्रकार की शक्ति मैं आप लोगों में देखना चाहता हूं। तमाम बातों में आपके लिअे मुझे विचार करना पडे यह मुझे तथा आपको दोनों को ही असह्य हो जाना चाहिअे। अिसलिअे मैं अिस बार सारा भार आपके अूपर डाल जाना चाहता हूं। अहिंसा और हिंसा के बीच आपको अपना अंतिम चुनाव कर लेना है। आप किसी दिन कायर न बन जायें यह मैं चाहता हूं। हो सकता है कि मर्यादापूर्वक हिंसा में से आप किसी दिन अहिंसा सीख लें। पर त्रिशंकु की तरह हिंसा और अहिंसा के बीच आपका अधर लटकते रहना तो अेक भयंकर स्थिति है। यह मार्मिक समस्या आज जिस तरह आप के सामने है अुसी तरह सारे देश के समक्ष है। अिसका निर्णय आपको तुरंत कर लेना चाहिअे। यदि आप अहिंसा को ही पकडे रहना चाहते हैं, तो आपकी यह अहिंसा मेरी दी हुअी नहीं, किन्तु बतौर अेक स्वतंत्र प्रेरणा के आप लोगों में आनी चाहिअे।

—गांधीजी

'हरिजन-सेवक' से २३।४।'३९

अेक अंक... ... रु० ०—६—०
वार्षिक ... ... रु० ३—०—०
बर्मा में ... ... रु० ३—८—०
विदेश में... ... ६ शिलिंग
१.५० डॉलर.
(सब डाक सहित)

अनुक्रमणिका

(१) अध्यक्षीय भाषण (श्री कि. घ. मशरूवाला) १
(२) गान्धीजी का अभिभाषण ... १३
(३) श्रद्धा की परीक्षा (श्री सतीशचन्द्र दासगुप्त) ... २२
(४) गान्धीजी से परिप्रश्न २४
(५) सम्मेलन-वृत्त ४१
(६) अुपसंहार (गांधीजी का अन्तिम भाषण) ... ४८
(७) कौअे की नजर से ("आश्रमवासी अुल्लू") ... ५०
(८) गान्धीजी दस्तंदाजी क्यों करते हैं ?
(श्री सतीशचन्द्र दासगुप्त) ... ५२
(९) सर्वोदय की दृष्टि ५४
गान्धी-पक्ष का वर्तमान; सभा-विक्षेप; तब क्या करें? सुभास बसु-गान्धी पत्रव्यवहार; विचार-भेद और मैत्री; 'तेज-कदम' संघ; गान्धी का तेज़ कार्यक्रम; मज़दूर-हड़तालें और कॉंग्रेस; अहिंसक देश-रक्षा.

सर्वोदय

अेष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके

संपादकः—काका कालेलकर
दादा धर्माधिकारी

जून १९३९
वर्धा

अध्यक्षीय भाषण

(ता. ३ मई १९३९, को वृंदावन, जि. चम्पारन में गान्धी सेवा संघ के पांचवें सम्मेलन में संघ के अध्यक्ष श्री **किशोरलाल मशरूवाला** ने दिया हुआ भाषण)

भाइयो और बहनो,

प्रारंभिक

हिन्दुस्तान में पू० बापूजी को चम्पारन ने पहले पाया, और मैंने उन्हें चम्पारन में—यहीं बेतिया में—पहले पाया। लेकिन उस वक्त बापू ने मुझे अेक रात से ज्यादा यहां ठहरने न दिया। चम्पारन की सेवा करने के लिअे मैं योग्य नहीं हूं अैसा ठहरा कर सत्याग्रहाश्रम (कोचरब, अहमदाबाद) में जा कर बसने की सलाह दी। ठक्करबापा की बदौलत मैं यहां आया था, और उन्हींकी बदौलत मैंने अेक बार बापू का दर्शन बम्बई में पाया था। बापू के पुत्र हरिलालभाई कुछ दिन मेरे साथ स्कूल में थे, इसलिअे बापू का नाम तो मैंने १९०३ से ही सुना था, और बाद को १९१३ के दक्षिण आफ्रिका के सत्याग्रह के वक्त। उस वक्त से उनके विषय में कुछ कल्पनायें भी कर रक्खी थीं। लेकिन, यहां पहुंचने पर कृपलानीजी ने चांवल, दही, और बहुत संकोच के साथ मैंने मांगे हुअे, नमक का भोजन करा कर बापू के सामने मुझे पेश किया, और पहले पन्द्रह मिनिटों में अुन्होंने मेरी जो पूछपरछ की, उसपर से मेरी कल्पनायें कुछ अंश में अधूरी या गलत मालूम हुई। मैंने कुछ अैसा ही मान लिया था कि बापू में मैं संसार से दूर भागनेवाले अेक साधु का दर्शन करूंगा। लेकिन अपने पहले ही अनुभव में मैंने उन्हें संसार को दक्षता के साथ चलानेवाले अेक बडे परिवार के पिता के रूप में देखा। यह मेरे लिअे अेक संतोष की चीज़ भी साबित हुई। क्योंकि उसी साल मैंने पिताजी को खोया था, और उनके लिअे मेरे मन में कुछ अैसा भाव था कि बगैर उनके, घर के लिअे मुझे बहुत कम आकर्षण लगता था। अगर मेरे पिताजी जिन्दा होते तो मैं निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता कि मैं उन्हें छोड़ कर चम्पारन आ सकता। संसार से दूर रहनेवाले साधुओं के लिअे भी मेरे मन में हमेशा आदर रहा है। लेकिन उस वक्त मेरे धार्मिक विश्वास इस तरह के थे कि उनके कारण मैं बापू के पीछे पागल होता यह

मुमकिन नहीं था। इसलिअे बापू में जब मैंने धर्मगुरू की जगह अेक पुत्रवत्सल पिता को देखा, तब मुझे अपने पिता को फिर पाने का सन्तोष हुआ। लेकिन जब छत्तीस घंटों में ही उन्होंने मेरी यहां से रवानगी कर दी, तब मु े बहुत रंज हुआ और शर्म भी आयी। बहुत दुःख के साथ में यहां से वापस हुआ। अब बाईस साल के बाद फिर बेतिया के पडोस में ही उनके पास अेक सप्ताह तक रहने की इजाजत मिलने पायी है।

बापू और चम्पारन

इन बाईस वर्षों में देश में बापू ने कितना बदल कर दिया है। उस वक्त चंपारन के किसान को बापूजी ने अेक बहुत ही डरपोक, गरीबमिजाज़ और पीडित आदमी जाहिर किया था। अब भी वह पीड़ा से मुक्त तो नहीं है। लेकिन अब उसमें आत्मविश्वास का अेक तेज आ गया है। अब वह डरनेवाला आदमी नहीं है। बापू ने उन्हें नीलवरों से जो रियायतें दिलवाई और निर्भयता का जो सबक सिखाया उससे चंपारन के ही नहीं, सारे देश के किसानों का रूप ही बदल गया।

"चंपारन में आपका प्रवेश खतरनाक है। उससे हट जाइये।" अैसा हुक्म यहां के डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट ने अेक दिन बापू के पास भेजा। इतने बडे हाकिम के हुक्म की अदब तब तक किसीने नहीं तोडी थी। बापू ने जब कहा कि वे उसका पालन न कर सकेंगे तो सारा देश चौंक अुठा। वाइसरॉय के हुक्म से मैजिस्ट्रेट को अपना हुक्म वापस लेना पड़ा। उसी समय बापूजी ने विधायक कार्यक्रम की यहां नींव डाली। छः महीने चम्पारन की सेवा करने के लिअे देश के भिन्न भिन्न प्रान्तों से स्वयंसेवक मांगे। मैं कैसे पहले आया और पहले ही लौट गया इसका हाल मैंने पहले ही सुना दिया है। लेकिन मेरे बाद अनेक भाई-बहन आये और सफ़ाई और शिक्षा द्वारा यहां के देहातियों की सेवा में लग गये। शायद उनमें से कितनेक आज हाजिर होंगे। यह भी अेक ईश्वर की करनी है कि जो लोग यहां की सेवा करने के लिअे लायक साबित हुअे, उनके सामने में–जो नालायक ठहराया गया था–अध्यक्ष के रुप में बैठाया गया हूं। खैर।

आपसे मिलने से आनन्द होता है।

जमनालालजी

जमनालालजी आज यहां नहीं हैं। हम उनकी कमी को तो महसूस करते हैं। वे अपने कर्तव्य के लिअे गैरहाजिर हैं। इसलिअे यह शोक का विषय नहीं है। लेकिन फिर भी उनकी गैरहाजिरी के कारण हमारे सम्मेलन में त्रुटि तो रहेगी ही। उनका विनोद हमें बारबार याद आयेगा। वे संघ के संस्थापक हैं और कई सदस्य उन्हींके कारण संघ में आये हैं। इसलिअे उनकी गैरहाजिरी अेक विशेषरूप से हमें अभाव का भान कराती है।

डॉ. रज्जबअली

इस साल में डा. रज्जबअली पटेल को हमने खोया है। वे संघ के अेक बडे दाता रहे। हमारा औषधिफंड उन्हींकी देन है। यह दान पचास हजार रुपये का है। लेकिन,

केवल इस दान के लिअे हम उन्हें याद नहीं करते। उनके लिअे उनका दान तो अेक छोटी चीज़ है। उनका हृदय, बापू के प्रति उनकी निष्ठा और खादी तथा खादी-सेवकों के प्रति उनकी भक्ति बडी चीजें थीं। छोटे-बडे, गरीब-धनी, हिंदू-मुसलमान-ईसाई, सबके प्रति उनकी समानता और इज्जत की दृष्टि थी। इन गुणों के कारण हमारे लिअे वे आदर से याद करने योग्य हैं।

दक्षिण भारत का कार्य

स्वास्थ्य की दृष्टि से यह साल मेरे लिअे साधारण ठीक गया। इसलिअे कुछ ज्यादा घूम सका। मेरे दिल पर यह छाप पडी है कि भिन्न भिन्न रुचि और मत के कार्यकर्ता जिस तरह दक्षिण भारत में अपने कामों को बुद्धि और अध्ययन के साथ करते हैं, वह सराहने योग्य है। पिछले साल कोयम्बतूर के पास पेरियनायकंन्पाळयं में दक्षिण भारत के विधायक कार्यकर्ताओं के अेक संमेलन में शरीक होने का मुझे मौका मिला था। इतर प्रान्तों में जहां कार्यकर्ता संमेलन करते हैं, ज्यादाकरके गांधीवादी कार्यकर्ता ही इकट्ठे होते हैं। इस संमेलन में गांधी आश्रम, रामकृष्ण मिशन, ईसाई मिशन, भारत सेवक समाज, सनातनी, सहकारीमंडलवाले, समाजवादी, विदेशी, अैसे अलग अलग फिरकों के कार्यकर्ता इकट्ठे हुअे थे। उनमें से बहुतसे छोटे शहरों और देहातों में काम करनवाले ही थे। सभी का ध्येय देहातों की हित-साधना ही होनेसे, अलग अलग दृष्टि रखते हुअे भी, महत्त्व की बातों पर सब को अेकसी राय पर आना पडता था। हमारे कार्यकर्ता अपने अपने प्रांतों में अेकाध संमेलन कर ही लेते हैं। उनमें केवल किसी अेक ही फिरके के लोग आवें या दूसरी तरह से काम करनेवालों को भी बुलाना चाहिअे, अिस पर आप विचार करें इसलिअे यह बात आपके सामने रखता हूं।

गुला महाराज का मेला

दूसरी अेक यात्रा का भी मेरे दिल पर बडा असर हुआ। वह पूर्व खानदेश में गुला महाराज की यात्रा है। करीब अेक साल पहले अिस भील साधु का देहान्त हुआ। उम्र ४० के अंदर थी। उनके सादे उपदेश और उपासना ने हजारों भीलों के जीवन में नवजीवन पैदा किया है। हर सोमवार को उनके गांव में जो मेला लगता है, वह अेक अैसा दृश्य होता है, जिसका हमारे मन पर गहरा परिणाम होता है। इस जमाने में हम "क्रान्ति" का नाम बहुत सुनते हैं और देहातियों की तरफ से हमारी सेवा की कद्र अच्छी नहीं होती और हमारे कामों में वे साथ नहीं देते, इस बात पर कभी कभी अफ़सोस भी करते हैं। खानदेश के भीलों में अेक नई ज्योति कैसे पैदा हुई और गुला महाराज और उनके बाद अब उनके भाई को क्यों इतना साथ मिला इसका यहां पता चलता है। जिस पुरुष के विषय में अेक छोटे या बडे समाज का यह यकीन हो जाता है कि वह उनके आत्मा का आत्मा है, उनके हृदय की सच्ची तसवीर है, उनके सप्नों का साक्षात्कार है, उनके जीवन का 'भूमिया' है, वह उसके प्राणों को इस तरह हिला सकता है कि उसके पीछे वह समाज स्वयंस्फूर्ति से चला जाता

है, और असंभवनीय मानी हुआी बातों को कर दिखाता है। पूज्य बापू ने हममें पिछले २५ साल में जो नवजीवन पैदा किया, उसका मर्म और स्वतंत्र सबूत हम गुला महाराज से समझ सकते हैं। जब किसी पुरुष का आत्मा अैसा विराट बन जाता है कि, जिस तरह हम अपने शरीर और इन्द्रियों से अेकरूपता अनुभव करते हैं, वैसी वह अपने सारे समाज के साथ अनुभव करता है, तब उसमें उस समाज को हिला देने की अैसी शक्ति आ जाती है, जैसी हममें अपने हाथपाँव को हिलाने की होती है। समाज का श्रद्धावान हिस्सा थोडे ही समय में उसमें अपना प्राण और प्रतिनिधि पहचान लेता है, और उसका हिलाया हिलने लगता है।

सच्ची लोकशाही

हम सब लोकशाही की पूजा करते हैं। लेकिन समझते हैं कि अुसकी तसबीर अेक विशाल प्रतिनिधि सभा है। बहुत बडा मतदारसंघ हो, और उसने बडी संख्या में तथा हिसाबी चुनाव (प्रोपोरशनल रिप्रेज़ेन्टेशन) से चुने हुअे सब फिरकों के लोग जहां अिकट्ठे किये हों, अुसे हम लोकशाही का स्वरूप मानते हैं। लेकिन विचार करने से पता चलता है कि अैसी विशाल प्रतिनिधिसभा के चुनाव में शुद्धि रखना कितना मुश्किल है। और किसी तरीके से अेक शुद्ध दीवानेआम बन भी जाय, तो भी उसमें जो प्रतिनिधि आवेंगे वे अपने अपने फिरकों के स्वार्थ या आदर्शों को सफल करने के लिअे ही आवेंगे। उसी मकसद से अपने अपने फिरकों द्वारा वे भेजे जायेंगे। इसमें से सर्वोदयसिद्धि नहीं हो सकती। क्योंकि सर्वोदय के लिअे यह जरूरी है कि हर अेक आदमी या जमात अपने स्वार्थ या महत्वाकांक्षा की अपेक्षा दूसरों के हित का ज्यादा खयाल करे। अनेक अपूर्णांकों के गुणाकार से संख्या घटती ही जाती है, बढती नहीं। लेकिन अेक ही पूरी संख्या रहे और अपूर्णांक सारे हट जायँ तो वह अकेली भी बच जायगी। अगर अपूर्णांकों को साथ बैठना हो तो उस पूर्णांक में जोडे जाने के लिअे बैठना चाहिअे। मोरगांव में जब पांच हजार से ज्यादा स्त्रीपुरुषों को अेक साथ अपने गुरू के इशारे पर आरती करते हुअे मैंने देखा, तब मेरे दिल में जो प्रकाश पडा, उसे मैंने आपके सामने रक्खा है।

लोगों का सहयोग

हम छोटे कार्यकर्ताओं के लिअे भी यह उदाहरण सोचने योग्य है। आज कई देहाती-सेवक निराशा महसूस करते हैं। लोगों का साथ अुन्हें नहीं मिलता। क्या कारण है ? कुछ अैसी कमी जरूर है, जिसकी वजह से हम यह अनुभव नहीं कर सकते कि जिन लोगों की सेवा हम करना चाहते हैं, वे हमारे शरीर, इन्द्रियां, हाथपांव, हैं, अुनका दर्द हमारा दर्द है और वे भी हममें अपना प्राण और जीवन अनुभव नहीं कर सकते।

खासकर के महाराष्ट्रीय प्रान्तों में हमारे और जनता के जीवन में अेक बडा अन्तर और विरोध पडता हुआ दीख पडता है। काँग्रेसविरोधी दलों का प्रचार इसका अेक कारण जरूर है। लेकिन हमारी भी कुछ कमियां हो सकती हैं। प्रचार-काम तो बहुतसा पढेलिखे लोगों में और शहरों के नजदीक के गांवों में होता है। और यह

कहने में कोई आत्मश्लाघा नहीं कि विरोधकों से हमारे कार्यकर्ता चरित्र और त्याग में श्रेष्ठ हैं। अपने आजूबाजू के लोगों में उनका असर विरोधी प्रचार के होते हुअे भी होना चाहिअे। फिर भी वह नहीं होता। बल्कि लोग हमसे नाराज होते जाते हैं। हमें इसका अच्छी तरह से विचार करना चाहिअे।

अेक संभवनीय कारण

अेक सम्भवनीय कारण आपके सामने रखता हूं। मैं निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता कि वह सही ही है। जब चारित्र्य, त्याग और सादगी अेक अलग जाति या मठ का स्वरूप प्राप्त कर लें और आश्रमवृत्ति (प्युरिटानिज़म्) का अेक अभिमान नजर आने लगे तो जनता उसके साथ अपनापन अनुभव नहीं कर सकती और कभी कभी उससे ऊब भी जाती है। उच्च चारित्र्य, त्याग और सादगी रखते हुअे हमें जनता की ही जमीन पर चलना सीखना चाहिये।

विनयाश्रम

यह चीज़ मैंने आन्ध्र में श्री सीताराम शास्त्री के विनयाश्रम में देखी। लोगों में जो जन्म, मरण, विवाह तथा पूजा, उत्सव आदि मनाये जाते हैं उन सब से सीताराम शास्त्री दूर नहीं रहते। उनमें अपनी हाज़िरी ही नहीं देते बरन उत्साह से उन्हें पूरा करा देते हैं। और वे स्वयं अगुआ होते हैं इसलिअे उसमें सुधार भी करवा देते हैं। इसलिअे उनके कामों की व्याप्ति केवल अपने आश्रम तक सीमित नहीं है। और विनयाश्रम देहात का अेक अलग पड़ा हुआ मुहल्ला नहीं है, जहां दूसरे लोग नहीं के बराबर जाते-आते हों। "जोषयेत् सर्व कर्माणि विद्वान् युक्त: समाचरन्", इसकी शायद यह अेक मिसाल है।

विनयाश्रम में कुछ खेती भी होती है। उसका हिसाब उन्होंने मुझे बताया। आकाश-पानी पर ही वह खेती चलती है। हिसाबों का सार यह है कि सब खर्च निकालने पर खेती पर काम करनेवाले मुस्तकिल नौकर तथा बैल का खर्च बड़ी मुश्किल से निक-लता है। फायदे के तौर पर कुछ आमदनी नहीं होती। नुकसान नहीं होता इसके दो सबब हैं। अगर पेटभर मज़दूरी के सिद्धांत पर नौकर-मज़दूरों को वेतन दिया जाय तब तो नुकसान ही होगा। हाल में तो आसपास जो रिवाज है उतनी ही मज़दूरी दी जाती है। फिर, विनयाश्रम को अपने तालवृक्षों से अच्छी आमदनी होती है। उनके ऊपर तो आश्रम को कुछ भी खर्च नहीं करना पड़ता। इसपर से हम साधारण किसान की स्थिति समझ सकते हैं। इस नतीजे पर पहुंचना पड़ता है कि जब तक किसान यह न समझ जाय कि केवल आकाशपानी की खेती पर गुजर करना असम्भव है और उसकी पूर्ति के लिअे हर अेक किसान को अेक दूसरा आमदनी देनेवाला धन्धा करना जरूरी है तब तक केवल ऋणमुक्ति और लगानमाफी से उसका भाग्य खुलनेवाला नहीं है। इस नतीजे पर भी आना पड़ता है कि आकाशपानी की खेती में बीच के मालिकों के लिअे जगह नहीं है। जो स्वयं मज़दूरी नहीं कर सकता वह जमीन का मालिक नहीं बन सकता।

लोगों का खास कष्ट

जहां पर कार्यकर्ताओं को यह असंतोष है कि लोग ठीक ठीक साथ नहीं देते, वहां पर भी अेक बात यह देखने में आती है कि लोग दवाई लेने बहुत खुशी से आते हैं। अेक या दूसरा बहाना बता कर वे कार्यकर्ता की उपेक्षा या बहिष्कार भी करते हैं, उसकी शाला से बच्चों को निकाल लेते हैं, उसके सफाईकाम की हंसी करते हैं; या उसे बिगाड़ भी देते हैं, लेकिन उसके औषधालय का पूरा उपयोग करते हैं। लोगों को किस बात का कष्ट बहुत है, इसका इस पर से पता चलता है। औषधि के लिअे कर्मियों को सहायता भी मिल जाती है। जिन कार्यकर्ताओं को अपने गांव मे दूसरी बाबतों में निराशाजनक परिस्थिति मालूम होती है, वे दवाई और शुश्रूषा द्वारा लोकसेवा और लोक-शिक्षा का काम करने का विचार रख सकते हैं। जब अेक देहाती कार्यकर्ता को लोगों में से अेक भी सहायक न मिले तब उसके लिअे सफाईकाम चलाये रखना मुश्किल है। अैसी अवस्था में वह अपने निवासस्थान को अच्छी तरह साफ रखने का और अपने दवाखाने के साथ अेकाध-दो मरीजों के लिअे शुश्रूषालय चलाने का काम करे तो संभव है कि उसका असर अच्छा हो।

परिश्रमालय

परिश्रमालय का मैं इसके साथ जिक्र कर सकता। जहां बहुत बेकारी है, वहां उसके लिअे बहुत स्थान है और दूसरी तरह से उपेक्षा करनेवाले परिश्रमालय की कद्र करते हैं। फिर भी मैंने इसका जिक्र नहीं किया, क्यों कि जहां अेकही कार्यकर्ता हो, पूरी जगह भी न हो, पूंजी भी न हो और कोई सहायक भी न हो, वहां ठीक पैमाने पर परिश्रमालय चल नहीं सकता। लेकिन, जहां ५।७ कर्मियों का समूह हो और दूसरी अनुकूलतायें भी हों, वहां परिश्रमालय के लिअ बहुत क्षेत्र है।

बहुरूपी गुंडापन

आपको याद होगा कि डेलांग में हमारा अधिक समय कौमी झगडों का अहिंसात्मक इलाज ढूंढने में गया था। गुंडापन के खिलाफ अहिंसा से किस तरह काम लें, यह हमारी खोज का विषय था। पूज्य बापूजी ने अहिंसक सेना की कल्पना हमारे सामने रक्खी थी। हमने कोई निर्णय नहीं किया। अब भी यह प्रश्न खडा है। अब तो गुंडापन बहुरूपी बना है। कौमी झगडे, रियासती झगडे, और कॉंग्रेसी झगडे, तीनों में वह दिखाई देता है। यह भी नहीं कह सकते कि जो चोर, डाकू आदि जो आदतन गुनाह करनेवाले लोग हैं, उन्हींका गुंडादल बनता है। पढेलिखे, अच्छे घर के लोग भी इसमें भरती होते हैं। आदतन गुनाह करनेवाले तो बेचारे आखिर पेट के लिअे काम करते हैं। वे जड हैं और उन्हें क्रूर काम करने की आदत है, इसलिअे अगर कोई सरकार या कोई नेता उन्हें कुछ पैसा दे देता है, तो वे चाहे जैसा खराब काम कर देते हैं। जिसके ऊपर वे जबरदस्ती करते हैं उसके लिअे उन्हें कोई द्वेष नहीं होता। पर जो गुंडापन पढे-लिखे लोगों में पैदा हो रहा है, वह आदत से नहीं, इरादे से है और द्वेषपूर्वक होता है; और वह झूठे और जहरी प्रचार का परिणाम है।

पढ़ेलिखों का गुंडापन

हमारे स्कूल और कॉलेजों में राष्ट्रीय भावना का पोषण नहीं होता असी हमारे जमाने में आम तौर पर शिकायत हुआ करती थी। फिर भी वहीं से हमने राष्ट्रीयता के पाठ लिये। मगर आज स्कूल और कॉलेजों में वर्गद्वेष और जातीय द्वेष व्यवस्थापूर्वक सिखाया जाता है। कई वर्तमानपत्र भी यही काम करते हैं। पिछली पच्चीसी का साधारण युवक आचार में पुराना हिंदू या पुराना मुसलमान होते हुअे भी विचार में राष्ट्रीय वृत्ति रखता था। याने, अेक दूसरे के मजहबों का द्वेष नहीं था। पर आज का साधारण युवक अपने आचार में न हिंदू होता है, न मुसलमान और न वर्गहीन ही होता है, तिसपर भी विचार में राष्ट्रीय नहीं होता, बल्कि वर्गद्वेषी और जातिद्वेषी बन रहा है। जहां द्वेष का पोषण होता है, वहीं गुंडापन का जन्म होता है। बडौदा में सरदार वल्लभाई के विरुद्ध जो दंगा किया गया, उसे करनेवाले आदतन गुंडे नहीं थे। फिर, आजकल हमारे विद्यालयों में अेक नयी सभ्यता का जन्म हो रहा है। वह पुराने वाममार्गी का नया संस्करण है। उसमें संयम और सदाचार की हँसी और स्वैराचार और अनादर की इज्जत की जाती है। सैकडों वर्षों की पराधीनता के बाद हाल ही में हम स्वाधीनता की तरफ चलने का आरंभ कर रहे हैं, उसमें यह नयी संस्कृति हमें फिर सर्वनाश की तरफ ले जायगी। ये सब विचार करने योग्य बातें हैं।

कानूनभंग की नीति का पुनःपरीक्षण

मगर, यह विषयांतर हुआ। गुंडापन का हम विचार कर रहे थे। जब से कानूनभंग के रूप में हमारे देश में सत्याग्रह आया, तब से देश में आर्डिनन्सराज पैदा हुआ और उसके पीछे पुलीस–गुंडापन दाखिल हुआ। बारडोली, बोरसद में वह पहले हुआ। फिर १९३० से १९३३ तक ब्रिटिश हिंदुस्तान में फैला, और अब सब देशी राज्यों में वह फैल गया है। मैं महसूस करता हूं कि हमें कानूनभंग की नीति का परीक्षण करना होगा। अेक मिसाल विचार करने के लिअे आप के सामने रखता हूं। हम सब जानते हैं कि जब खेत खाली पडे रहते हैं, तब लोग उनमें से जानेआने के रास्ते निकालते हैं। खेत के मालिक इसमें आपत्ति नहीं करते। जब खेत बोया जाता है, तब उतने दिन के लिअे वह रास्ता बंद हो जाता है। लोग इसमें आपत्ति नहीं करते। दोनों में समझदारी होती है, तब तक झगडा पैदा नहीं होता। इतने में अेक मालिक के दिल पर शैतान सवार होता है। वह हमेशा के लिअे रास्ता बंद करना चाहता है। अथवा अेक दो राहगीरों पर शैतान सवार हो जाता है। वे बोये हुअे खेत में से भी रास्ता निकालना चाहते हैं। वहीं से झगडे पैदा होते हैं। अगर मालिक ने रास्ता बंद कर दिया हो तो लोग––अुन्हें वहां से गुजरने की जरूरत हो या न हो––अपना हक साबित करने के लिअे वहां से जाने का कार्यक्रम बनाते हैं। फिर मालिक वहां चौकीदार, गुंडा वगैरा रखता है। अगर राहगीर जबरदस्ती से जाना तय करते हैं, तो वे भी अपने गुंडों को भेजते हैं। आखिर जब दोनों में से शैतान निकल जाता है, तब इस तरह का समझौता होता है कि लोग बेमौसम वहां से भले ही गुजरें, मगर अपना हक न बतावें, और

इसके लिअे मालिक साल में अेकाध दिन रास्ता बंद कर दे, तो लोग उस पर आपत्ति न करें। मौसम के दिनों में वहां से कोई न गुजरे।

बरबस कानूनभंग

अिस पर से मैं यह सार निकालता हूं:—

सरकार सभा, जुलूस आदि की बंदी के हुक्म निकालती है। हम महसूस करते हैं कि वे अन्याय्य हैं। और फिर सभा या जुलूस की जरूरत हो या न हो, हम उनके कार्यक्रम बनाते हैं। यानी, सरकार हमें गरम करने और हम उसे गरम करने की परस्पर चेष्टा करते हैं। मुझे शक उत्पन्न होता है कि क्या इसे अहिंसात्मक सविनयभंग कह सकते हैं? मेरा खयाल यह है कि हमें उसी दिन अैसे अन्यायी हुक्म की उपेक्षा करनी चाहिअे, जब वह हमारे स्वाभाविक कार्यक्रम में बाधक होता हो। जब कि वैसे हुक्म निकालने का अेक सरकार का अधिकार आम तौर पर हम मान्य रखते हों, सिर्फ किसी हुक्म को तोडने के हेतु से खास कार्यक्रम बनाने में से ही हिंसा पैदा होती है। और फिर, मेरी राय है कि हमारे सत्याग्रहों में वाचिक हिंसा काफी परिमाण में होती है। अक्सर, जनता में जोश पैदा करने के लिअे हम उसे जरूरी समझते हैं। अधिकारी की तलवार को निकम्मी करने के बदले हम अुसे पैनी कर देते हैं। ये खयाल कहां तक ठीक हैं, इसे आप सोचें।

स्थूल अहिंसा

इसके अलावा १९३० से मेरी यह राय रही है कि सार्वजनिक कानूनभंग के आन्दोलनों में स्थूल अहिंसा का पालन हमने कर लिया है। लेकिन असत्य और चोरी से हम मुक्त नहीं रहे, बल्कि हमने उन्हें व्यवस्थापूर्वक भी किया है। गुप्त समितियां बनाना, गुप्तवेश में पुलीस से छिपे रहना, अतिशयोक्त खबरें फैलाना, व्याख्यानों में जीभ पर से लगाम हटा लेना, किराये के सत्याग्रही रखना, सरकारी नौकरों के घरों के पास जा कर छाती पीटना, उन्हें कोसना, जेलों में अेक तरह की 'तिकडं' चलाना—आदि असत्य और चोरी के काम किये जाते हैं। सत्य और अहिंसा का अटूट सम्बन्ध है यह अब तक हमारी समझ में ठीकसे नहीं आया है। अगर जयपुर के दीवान ने यह कहा हो कि वे हिंसा से अहिंसा को दबा देंगे तो मैं उसे अशक्य नहीं मानता अगर हम सत्य और अस्तेय का भंग करने में हर्ज न समझते हों।

हृदय-परिवर्तन

मेरी तो यह कल्पना है कि अेक सत्याग्रही आन्दोलन का जैसा जैसा विकास होता जावे वैसे वैसे विरोधी की दमन करने की इच्छा भी कम होती जानी चाहिअे और सत्याग्रही के प्रति उसका आदर बढते जाना चाहिअे। उसके मन में यह भाव पैदा होना चाहिअे कि वह हमसे कहे कि 'भाई माफ करो, मैंने आपको बहुत कष्ट दिया।' कुछ व्यक्तियों के साथ अैसा होता हुआ मैंने देखा भी है। लेकिन आम तौर पर यह देखा गया है कि १९३० में अफसरों के दिल में सत्याग्रहियों के लिअे जो आदर था वह १९३४ तक केवल नष्ट ही नहीं हुआ बल्कि

उसके बदले अनादर पैदा हो गया। हमारे कुछ सत्याग्रही निडरता और उद्धताई का भेद नहीं समझते। जब किसी जगह सत्याग्रह चलता हो तब इन बातों का विचार करना और उनकी आलोचना करना मुश्किल होता है। लेकिन शान्ति के समय में यह खयाल कहां तक ठीक है यह आप सोचें।

वह परिपत्र

त्रिपुरी कॉंग्रेस के कुछ दिन पहले मैंने जो परिपत्र आप लोगों को भेजा था, उसके उत्तर में मिली हुई जानकारी का सार मंत्रीजी के विवरण से मिलेगा। बहुतसे सदस्यों ने उसे निर्दोष समझा। दो चार ने अैसा परिपत्र निकालने के लिअे मेरा अभिनंदन किया। उनकी राय थी कि मुझे उसे बहुत पहले ही निकालना चाहिअे था। जब कि गांधी सेवा संघ के कई सदस्य कॉंग्रेस और कानूनी संस्थाओं में काम करते हैं, तब उनकी दृष्टि से मेरा कर्तव्य हो जाता है कि अैसे परिपत्रों द्वारा में उन्हें सूचनायें देता रहूं। इससे उलटा मेरा यह काम कुछ सदस्यों को थोडा सदोष मालूम होता है। इस परिपत्र के विषय में आप निःसंकोच बहस करलें, और जैसी योग्य मालूम हो नीति तय करें।

राजनैतिक क्षेत्र

हुदली में धारासभा के विषय में हमने जो ठहराव किया और डेलांग में कॉंग्रेस के कामों में दिलचस्पी लेने के लिअे सदस्यों को जो थोडा प्रोत्साहन दिया, उसपर अधिक विचार करने की जरूरत कुछ सदस्य महसूस करते हैं। इनमें भी दो तरह के लोग हैं। अेक मानते हैं कि हमें अब संकोच छोड कर अेक गांधीपार्टी कायम करनी चाहिअे। पिछले साल युक्तप्रांत में शाखा बनाने की इजाजत देते समय हमने यह शर्त लगाई थी कि वह शाखा विधायक काम तो संघ के नाम से कर सकती है, लेकिन राजकीय काम में संघ के नाम का उपयोग न करे। इन भाइयों का मानना है कि अैसी शर्त लगाने में हमने कमजोरी बताई। दूसरी तरफ से कुछ सदस्य महसूस करते हैं कि हुदली और डेलांग के प्रस्तावों को हमें वापिस खींच लेना चाहिअे। इनके कारण संघ के लिअे लोगों में पहले जो आदर था वह कम हो गया है। अखबारों में संघ के विरुद्ध प्रचार शुरू हुआ है। बंबई की धारासभा में अेक सदस्य ने कहा कि मजदूरों का कायदा हमारे संघ को मजबूत बनाने के लिअे है। बंगाल में भी मैंने सुना है कि कुछ पत्रों में संघ के विरुद्ध लेख आते हैं। कर्नाटक में भी संघ के विरुद्ध कुछ अैसी ही हवा फैली है। बाहर के विरोध के अलावा इस कॉंग्रेसी काम ने सदस्यों में भीतरी कलह भी पैदा कर दिया है। इसलिअे इन सदस्यों की राय है कि हम संघ को इस खतरे से बचा लें। इस पर भी आप पूरी चर्चा कर लेंगे तो अच्छा होगा।

भीतरी कलह

विरोधियों की टीकाओं से तो मेरे मन में रंज नहीं होता। सार्वजनिक संस्थाओं और कार्यकर्ताओं के लिअे यह कोई आश्चर्य या घबडाने की चीज़ नहीं है। लेकिन इन दो तीन सालों में हम लोगों में भीतरी कलह पैदा हो रहा है इससे मुझे बहुत रंज जरूर होता है। अगर हम आपस में अेक दूसरे के लिअे सद्भावपूर्वक मित्रता न रख सकें तो

मुझे कोई आशा नहीं कि इस संघ के जरिये भिन्न भिन्न जाति या प्रान्तों के लोगों में सद्भाव बढाना संभव है। जब से मैं संघ में इस मनोमालिन्य को देख रहा हूं किसीको सदस्य बनाने का उत्साह अपने दिल में नहीं पाता। सावली के सम्मेलन में श्री जाजूजी ने कहा था कि पैसे के लेनदेन का सम्बन्ध जहां आता है वहां अविश्वास, कलह आदि पैदा हो जाते हैं। इसलिअे बुनकरों की सेवा में विघ्न आता है। श्री छगनलाल जोशी का हरिजनों की अृणमुक्ति के प्रयत्न का भी अैसा ही अनुभव है। और वे समझते हैं कि अृणमुक्ति का काम सेवक न करें। हुदली में श्री जमनालालजी का कहना था कि राजकीय कामों में अविश्वास, कलह वगैरा पैदा हुअे बिना न रहेंगे और ये काम अहिंसा से नहीं चलाये जा सकते। अधिकार चीज़ ही अैसी है। इसलिअे उनकी राय थी कि राजकीय कामों में सेवकों को न पडना चाहिअे। बापूजी का कहना था कि अगर अहिंसा इन कामों के लिअे सफल साधन न हो तो उस अहिंसा की कोई कीमत नहीं है। "अगर वह सामुदायिक धर्म नहीं बन सकता है तो वह मिथ्या है। जो बात मैं करना चाहता हूं वह यह है कि मैं अहिंसा को संगठित करूं। अगर सब क्षेत्रों के लिअे वह उपयुक्त नहीं है तो वह झूठी है।... याद रहे कि सत्य और अहिंसा मठवासी संन्यासियों के लिअे ही नहीं हैं। अदालतें, धारासभायें, और इतर व्यवहारों में भी ये सनातन सिद्धान्त लागू होते हैं। आपकी श्रद्धा की बहुत सख्त परीक्षा होने वाली है। आप उससे डर कर जान न बचावें।" और हुदली में बापूजी ने मुझे आदेश दिया था कि "यदि (तुम्हें) यह पता चले कि संघ के सदस्य व्यवहार में उनका त्याग कर रहे हैं,......तो संघ को तुम्हें तोड देना होगा। तुम्हें कहना होगा कि इसे मैं नहीं चला सकता और न कोई दूसरा ही चला सकता है।"

मेरी कठिनाई

हुदली में मेरी जो समस्या थी और जो आज भी है वह यह है कि जो अनेक तरह के राजकीय काम संघ के सदस्य कर रहे हैं उनमें से किसी में मैं भाग नहीं ले सकता। इसका मेरे पास कोई साधन ही नहीं है जिससे मैं जान सकूं कि वे अपने कामों में सत्य और अहिंसा का पालन किस हद तक करते हैं। इसलिअे जबतक मेरे पास कोई शिकायत न करे तबतक सब सदस्य सिद्धान्त से काम करते हैं अैसा मान कर चलता हूं। उसमें किसी तरह दखल देने की अपनी जिम्मेवारी नहीं मानता। लेकिन जब मैं देखता हूं कि इन राजकीय कामों के बहाने सदस्यों में आपसी मनमुटाव बढ रहा है तब मेरी समस्या और भी कठिन हो जाती है। सिद्धान्त-भंग की परिस्थिति में संघ को तोड देने का आदेश मैं तभी उपयोग में ला सकता हूं जब सदस्य दंभी हों, जानबूझ कर सिद्धान्त का भंग करते हों और मेरे प्रयत्न करने पर भी ठीक रास्ते पर न रहते हों। सदस्यों के बारे में मेरा अैसा अविश्वास नहीं है। मैं मानता हूं कि अगर उन्हें अच्छा मार्गदर्शन मिलता रहे तो वे इच्छा तो सिद्धान्त पर चलने की ही रखते हैं। वैसा मार्गदर्शन कराने और निगाह रखने का न मेरे पास साधन है न परिस्थिति है, न शक्ति है। इसलिअे न तो मुझे संघ को तोडने का अधिकार है न वर्तमान अवस्था में संतोष है। इसपर आप विचार कर लेंगे तो अच्छा होगा।

बुजुर्गशाहीका इलजाम

कई प्रांतों में पूज्य बापूजी और सरदार के विरुद्ध बहुत गंदा, झूठा और जहरीला प्रचार व्यवस्थापूर्वक चल रहा है। इससे हमारे कार्यकर्ताओं का काम भी मुश्किल होता जाता है। अैसी बातें सुन कर उन्हें रंज होता है। फिर भी वे नहीं जानते कि उन्हें क्या करना चाहिअे। जिस तरह कोई स्त्री अपने पति को अपनी सास या जेठानी-देवरानी की शिकायतें रोज रात को सुनाती रहे तो उसका परिणाम कुछ दिनों में पति के मन पर होने लगता है, इसी तरह जब लोगों के सामने दिनरात अेक ही बात का प्रचार होता है तब अच्छे लोगों के मन में भी शक पैदा होता है कि शायद इन प्रचारकों की बातें सही हों। फिर, सब कार्यकर्ताओं को भी हर अेक मामले में सच्ची बात क्या है, उसके पीछे क्या दृष्टि है, आदि मालूम नहीं रहता। इसलिअे कुछ सदस्यों के दिल में यह असंतोष है कि नेता लोग हमें अपने विश्वास में नहीं लेते।

बुजुर्गशाही (ऑथारिटेरियनिज़म) का इलजाम हमारे नेताओं पर लगाया जा रहा है। हमारे सदस्यों में--खासकर राजकीय काम में पड़े हुअे सदस्यों में--भी हमारे नेताओं के बारे में यह असंतोष मैंने पाया है। अेकत्र-परिवार की परम्परा में यह दोष अक्सर पाया जाता है। और परिवारों में कई बार कलह और विभक्त होने की इच्छा इसी कारण से होती है कि परिवार के छोटे सदस्यों को यह अनुभव होता है कि बुजुर्गवर्ग उन्हें अपने विश्वास में नहीं लेता, या उनकी सूचनाओं का निरादर करता है, या उनके विकास को रोकता है; और केवल फर्माबरदारी चाहता है। संस्थाओं में अैसी वृत्ति का असर यह होता है कि अपनी कुछ स्वतंत्र राय रखनेवाला हर अेक सदस्य अपनी अेक अलग संस्था, अपना अेक छोटासा अलग राज बनाने की प्रवृत्ति में पड़ता है। क्योंकि वह यह महसूस करता है कि दूसरे की बनायी हुअी संस्था में वह केवल शिष्य बन कर ही रह सकता है। साथी या भागीदार नहीं बन सकता। इस कारण से अनेक वर्षों तक जिनकी अेकसी विकासमान परम्परा चली आयी हो अैसी संस्थायें विरली ही देखने में आती हैं। आज अगर हम अपने अनेक कामों को देखें तो मालूम होगा कि कितने ही काम अैसे हैं कि अगर उनमें से किसी अेक का वर्तमान संचालक मर जाय तो उसके बराबरी का वारिस नहीं दीख पड़ेगा। उसके अेक तीसरे या चौथे दर्जे के शिष्य के द्वारा काम कराना होगा। क्योंकि बराबरी की शक्ति रखनेवाले जो सहयोगी अेक जमाने में रहे होंगे उन्होंने अपनी अपनी अलग अलग संस्थायें बना ली होंगी, या वे उनके प्रतिपक्षी बन गये होंगे। संयुक्त परिवार की संस्था में मेरा बहुत विश्वास है। इसलिअे अनेक प्रकार की 'शाहियों' के मुकाबले में बुजुर्गशाही मुझे त्याज्य नहीं मालूम होती। लेकिन उसमें बहुत संशोधन की जरूरत है। अगर किसी संस्था में अेक के पीछे अेक समान कोटि के नेता या संचालक पैदा न हो सकें तो हमारी बड़ी से बड़ी संस्था भी तेजस्वी नहीं रह सकती। मुझे नहीं मालूम हम इस बात का कहां तक खयाल करते हैं।

लगान-जाँच समिति

पारसाल हमने अेक लगान-जाँच-समिति बनाई थी। आप जानते हैं कि उसने अेक प्रश्नमाला प्रकाशित की थी। कई जगह से उसके जबाब आये हैं। बहुत से आंध्र और बिहार से हैं। लेकिन मुझे खेद है कि मैं अब तक समिति के सदस्यों के पास उन्हें पेश नहीं कर सका। इसलिअे हम इस पर कुछ विचार नहीं करने पाये हैं। हमारी प्रश्नमाला देख कर बिहार के कुछ उत्तरदाता घबडाये कि संघ धान्य के रूप में लगान-पद्धति प्रांतों में दाखिल कराने का निश्चय कर चुका है, और यह समिति आनेवाली नीति की अेक पूर्वसूचना मात्र है। मैं उन्हें विश्वास दिलाना चाहता हूं कि संघ का इस प्रश्न पर किसी प्रकार का निश्चित मत नहीं है। मत बनाने के लिअे पूरा मसाला भी नहीं है। आशा करता हूं कि सम्मेलन के बाद आये हुअे जवाबों का अध्ययन करने को समय पा सकूंगा।

अधिक कहने के लिअे मेरे मन में इस वक्त उत्साह नहीं है।

" कामये दुःखतप्तानां प्रणिनामार्तिनाशनम् "।

यह हमारी प्रार्थना होती है। यही संघ का उद्देश हो सकता है। उसे याद कर समाप्त करता हूं।

सारे संसार में आजकल मजदूरों की हड़तालों की हवा फैली है। ज़रा ज़रासी बात के लिअे मज़दूर लोग हड़ताल कर देते हैं। पिछले छः महीनों का मेरा अनुभव तो यही रहा है कि अिन हड़तालों से मज़दूरों का फायदा नहीं हुआ, बल्कि नुकसान हुआ। सब हड़तालें असफल रहीं। मज़दूर जो बातें चाहते थे वे सब अुन्हें नहीं मिलीं। अिसका क्या सबब है? मजदूरों को गलत रास्ता दिखाया गया। मैं चाहता हूं कि तुम दो तरह के नेताओं में जो भेद है अुसे समझ लो। तुम्हारे कुछ नेता तो तुम्हारे ही वर्ग के होते हैं। लेकिन अुनके जो नेता होते हैं वे खुद मज़दूर नहीं होते, परन्तु मज़दूरों से सहानुभूति रखते हैं, या यों कहिये कि, अुनसे सहानुभूति की आशा की जाती है। जबतक अिन तीनों में अेकता नहीं होगी तब तक हड़ताल अफसल होने ही वाली है। मैंने दूसरा भी अेक महत्त्वपूर्ण कारण पाया। मज़दूरलोग अपने यूनियनों से यह अुम्मीद करते हैं कि वे अुन्हें गुजरबसर के लायक पैसे की मदद दें। जब तक मज़दूर अपने यूनियनों की मदद पर भरोसा करेंगे तब तक कोअी भी हड़ताल अनिश्चित काल तक नहीं चल सकती। और जो हड़ताल अनिश्चित काल तक न चलायी जा सके वह पूरी तरह से कामयाब नहीं हो सकती। मैंने जितनी हड़तालें चलायीं अुनमें यह ज़रूरी शर्त थी कि मज़दूर अपनी गुज़र का सवाल आप हल कर लें। अिसी में सफलता का रहस्य है। अिसीमें तुम्हारी असली शिक्षा है।

'यंगइंडिया,' १९२१

मो० क० गांधी

गांधीजी का अभिभाषण

(ता० ३ मअी १९३९ को गान्धी सेवा संघ के पांचवें अधिवेशन में गान्धीजी ने दिया हुआ प्रारंभिक भाषण)

भाअियो और बहनो,

मेरी भूमिका

आपने किशोरलालभाअी का व्याख्यान सुना। अुस व्याख्यान में जो विषय आये हैं अुनपर आज मैं कुछ नहीं कहना चाहता। और न आज के बाद भी। कल रात को मेरे सामने जो चार पांच प्रश्न रक्खे गये हैं अुनके विषय में संक्षेप में कुछ कहना चाहता हूं। लेकिन अुससे भी पहले मैंने राजकोट के बारे में जो कुछ लिखा है अुसे अगर यहां दुहरा दूं तो आपको पता चल जायगा कि मेरी आज की भूमिका क्या है। किशोरलाल ने अपने व्याख्यान में जो अेक बात लिखी है अुसकी ओर मैं आपका ध्यान दिलाता हूं। अुन्होंने कहा है कि अगर हम सच्चे अहिंसक हैं तो जो अपने को हमारा शत्रु मानता है अुसका दिल हमारी अहिंसा के सामने प्रति दिन पिघलना चाहिअे। अहिंसा का यह स्वभाव ही है कि वह दौड दौड कर हिंसा के मुख में चली जाय। और हिंसा का स्वभाव यह है कि दौड दौड कर जो जहां मिले अुसको खा जाय। अहिंसक प्राणी आपस आपस में अपनी अहिंसा का प्रयोग नहीं कर सकते। क्योंकि वे सभी अहिंसक होते हैं। लेकिन जब अहिंसक प्राणी हिंसक प्राणी के सामने खडा हो जाता है तब अुसकी अहिंसा की परीक्षा होती है। मैं यह सब शुरू से ही मानता आया हूं और अपने जीवन में अहिंसा के अनेक प्रयोग भी करता आया हूं। लेकिन मैं यह नहीं कह सकता कि मुझे हमेशा सफलता मिली। सफलता अिस अर्थ में कि प्रतिपक्षी का हृदय पिघल जाय। मैं जिस तरह से अिस चीज़ को मानता था अुसी तरह से हमेशा प्रयोग कर सका या नहीं, अिसके विषय में भी मेरे मन में शंका है। मैं जिस हद तक पहुंचना चाहता था वहां तक नहीं पहुंच सका। ये सब खयाल राजकोट में मेरे दिल में अधिक जोरों से पैदा हुअे।

वाचिक हिंसा

मैं बार बार अपने दिल से पूछता था कि दरबार वीरावाला के दिल को पिघलाने में हम अयशस्वी क्यों हुअे। मुझे सीधा अुत्तर मिला कि हमने अुसके साथ शुद्ध अहिंसा का व्यवहार नहीं किया। जो अपने आपको सत्याग्रही कहते हैं वे भी वीरावाला को गालियां दे लेते थे। मैं खुद भी अैसी चीजों को कहता आया हूं। मैंने सब की जिव्हा पर काबू नहीं रक्खा। अपनी जबान सम्हालने की कोशिश अवश्य करता रहा हूं। लेकिन अपने साथियों की जीभ पर काबू नहीं रक्खा। अिस तरह की बातें जबान से निकालने में हम अहिंसा का भंग कर रहे हैं अैसा भी कभी सत्याग्रही नहीं मानते। मैंने अिन बातों की अुपेक्षा की यह मेरी शिथिलता है। अलीबन्धुओं का ही दृष्टान्त लीजिये। अुनकी जबान में काफी अुग्रता भरी थी। अुनके साथ मेरा गाढ परिचय था। अेक जमाने में वे मुझसे कुछ भी छिपाते नहीं थे अैसा प्रमाणपत्र मैं आज भी दे सकता हूं। हम जब खिलाफत के बारे में दौरा करते थे तो वे सरल चित्त से जो कुछ अुनके मन में चलता रहता था, कह डालते थे। अगर अुनके मन में

कोअी घोर विचार आवे तो अुसे भी सुना देते थे। अिस तरह के कुछ मीठे मीठे स्मरण आज भी मेरे पास पडे हैं। बाद में मेरी अहिंसा और सत्य के बारे में, और मुसलमानों के प्रति मेरे प्रेम के बारे में अुनके विचारों में काफी परिवर्तन हो गया। बाद में जो बहुतसे कटु अनुभव आये अुनसे हमारे सम्बन्ध का माधुर्य कम नहीं हुआ। अुन्होंने मेरे सत्य और अहिंसा के बारे में मुसलमानों में काफी कटुता पैदा की। वह सब मैं भूल गया हूं। अिसी तरह कअी दूसरे साथी भी काफी कठोर भाषा का प्रयोग करते थे। प्रतिपक्षी को चाहे जो कह डालते थे।

मतलब यह है कि मुझको अिस बारे में जैसा सख्त होना चाहिअे था वैसा मैं नहीं रहा। हमारे लोग जबान के बाहर जब तक नहीं जाते थे तब तक मैंने अुनके बोलने पर ध्यान नहीं दिया। वाचिक हिंसा के बारे में मैं अुदासीन ही रहा। पीछे वही आदत हो गयी। अिसलिअे अुस तरफ ध्यान देना भी छोड दिया।

नयी रोशनी

जब मैंने राजकोट में गिब्सन साहब के सामने यह बात रक्खी कि ठाकुर साहब अपनी मर्जी की कमिटी बना लें, तब अेका अेक मुझे नयी रोशनी मिली। गिब्सन साहब ने भी स्वीकार किया कि मेरी तजवीज अेक खिलाडी की दरखास्त (स्पोर्टिंग ऑफर) थी। अुससे पहले मैं जो कुछ कर रहा था वह बात मेरे जीवन में स्वयंसिद्ध है। याने अपना काम बनाने के लिअे ब्रिटिश सल्तनत को भी मैंने अुसका धर्म बतलाया। प्रजा की रक्षा करना अुसका धर्म है। अिसीलिअे व्हाईसराय को तार दिया। ब्रिटिश सरकार से मैंने कोअी भीक नहीं मांगी। अुनके कर्तव्य का अुनसे पालन कराया। लेकिन अुनकी मदद से ठाकुर साहब पर, या यों कहिये कि दरबार वीरावाला पर दबाव डाला यह अुसमें बडा दोष रह गया। मुझे बार बार लगता था कि यह जो प्रयोग मैं कर रहा हूं वह खतरनाक है। अिसलिअे गिब्सन साहब के पास गया और अुनसे कहा, ठाकुर साहब अपनी कमिटी बना लें। यह अेक नयी बात मेरे दिल में और देश के जीवन में आयी। मुझे अेक नया साधन और नया तरीका मिला। मैंने अपने सुकान को बदल दिया।

मेरा हृदय-दौर्बल्य

लेकिन आज भी मैं ग्वायर-निर्णय को फाड कर फेंक देने को तय्यार नहीं हूं। अुससे लाभ अुठाना चाहता हूं। अितना तो हृदय दौर्बल्य मुझमें है। लेकिन मैं क्या करूं ? मैं तो अपने हृदय का ही पालन कर सकता हूं। लेकिन अगर मुझमें अहिंसा के आदेश का पालन करने की हिम्मत आ जावे तो मैं ग्वायर साहब से जो निर्णय लाया हूं अुसे फाड दूं या अंगार लगा दूं। मुझे वीरावाला को अभयदान देना चाहिअे था। अुससे कह देना चाहिअे था कि "यह लो, ग्वायर-निर्णय को फाड दिया। अब मुझे ब्रिटिश सल्तनत से कोअी मतलब नहीं। अब अगर सत्याग्रह भी करना पडे तो आपके सामने करूंगा"। वह मेरा दिली प्रयोग होता। राजकोट के राज्याधिकारियों के हृदय-परिवर्तन की कोशिश में मैं मर भी जाअूं तो क्या हानि है ? मैं अबतक अपने दिल को अिसके लिअे तैयार नहीं कर सका हूं कि राजकोट के मामले

में मैं ब्रिटिश सरकार की मदद नहीं चाहता। लेकिन मेरे दिल में यह बात अुबल रही है।

अपूर्व प्रयोग-शाला

अब मेरे लिअे राजकोट ही शुद्ध अहिंसा की अपूर्व प्रयोगशाला है। मेरी बुद्धि कहती है कि मैं वहीं पर पूर्ण अहिंसा के प्रयोग करूं। दुनिया मुझे पागल भले ही कहे। लोग भले ही मेरा मजाक करें कि अितनी मिहनत से जो चीज़ लाया था अुसे फेंक रहा है। मेरी बुद्धि तो कहती है कि मुझे अैसा ही करना चाहिअे। लेकिन अबतक हृदय नहीं तय्यार होता। यह मेरे हृदय की कमजोरी है। अिसका मतलब यह है कि हमारी अहिंसा में कुछ न कुछ कमी जरूर रह गयी है। अिसीलिअे राजकोट में हमारा प्रयोग शुद्ध नहीं रहा और यशस्वी नहीं हुआ। सारा दोष वीरावाला का ही नहीं है। अगर हम शुद्ध अहिंसा का प्रयोग करें तब देखें वह क्या करता है? अैसा शुद्ध प्रयोग में यहां चम्पारन में बैठे बैठे नहीं कर सकता। राजकोट को ही मुझे अपनी प्रयोगशाला बनाना होगा। लेकिन आज मेरा हृदय नहीं बताता कि मैं यह सब करूं। यह हृदय-दौर्बल्य की निशानी है। अिसमें शक नहीं कि राजकोट के मामले में हमने कहीं न कहीं भूल की है। अुसे सुधारने की हिम्मत हमें दिखानी चाहिअे।

काँग्रेस में बुराअी

जो बात राजकोट को लागू है वही काँग्रेस के क्षेत्र में लागू करनी चाहिअे। काँग्रेस में भी विखवाद (विषालू अदावत) पैदा हो गया है। अुसके लिअे भी हम सब जिम्मेदार हैं। जो अपने को गान्धीवादी कहते हैं अुनकी जवाबदारी अिसमें कम नहीं है।

'गांधीवादी' नहीं 'अहिंसा वादी'

मै आपसे फिर कहता हूं कि आप 'गान्धीवादी' नाम छोड दें। गान्धीवादी नाम निकम्मा है, आप अहिंसावादी कहलाअिये। गान्धी तो निकम्मा है। मैं अपूर्ण हूं। भले-बुरे का, शक्ति और दुर्बलता का, जोर और कमजोरी का, सबका मिश्रण हूं। अिसलिअे आपका दावा यह हो कि आप सत्यार्थी हैं, सत्यवादी हैं। अहिंसार्थी हैं, अहिंसावादी हैं। यह दावा काफी हो जाता है। गान्धीवादी निरर्थक शब्द है। अहिंसा में अैसा कोअी मिश्रण नहीं होता। आप अहिंसा की दृष्टि से अपना आत्मपरीक्षण करें तो आपको मालूम होगा कि आज काँग्रेस में जो तिरस्कार पैदा हुआ है अुसके लिअे हम ही जवाबदार हैं, दूसरे नहीं। क्या आप सचाअी से कह सकते हैं कि काँग्रेस में आपने अहिंसा का प्रयोग किया? दूसरों के जो तीर आये अुनके सामने क्या आप सीधे छाती खोल कर खडे रहे? क्या अिधर अुधर मुड कर अुन तीरों को टालने की कोशिश नहीं की? क्या हमने दूसरों की टीकाटिप्पणी का स्वागत किया?—नहीं। हमने अपनी जिव्हा से अुनका मुकाबला किया। अगर किसी तीसरे ने अुनकी टीका की तो हमें अच्छा लगा। यह सब हिंसा की निशानी है।

हमारा धर्म

आप कह सकते हैं कि अबतक तो मैंने अैसी कोअी कठिन परीक्षा नहीं रक्खी थी। मेरी भाषा में भी कठोरता कभी कभी आ ही

जाती है। लेकिन वह मेरा दोष है। अहिंसा का नहीं। आप यह भी कह सकते हैं कि हमने तो अहिंसा का पालन अिस मर्यादा तक करने का दावा कभी नहीं किया था। लेकिन यह भी मेरी कार्यपद्धति का दोष है। अिस विषय में मैं कुछ ढीला रहा। हम अपने दोषों को देखें। अुन्हें अहिंसातत्त्व के दोष न समझें। अपने दोषों के कारण हम जगत में अहिंसा की निन्दा न करायें। कॉंग्रेस में हमारे जो दूसरे भाअी हैं अुनके दोष को तिनका या रज:कण समझ कर दरगुजर करें। अपने दोष को पहाड के समान समझें। दूसरे हमको अपना प्रतिपक्षी मानें तो भी हम अुन्हें अपना प्रतिपक्षी न समझें। हिंसा तो जैसी अुनके अन्दर है वैसी हमारे स्वभाव में भी भरी पडी है। सांप का फुंकारना ही स्वभाव है। लेकिन हमने तो अहिंसा की शपथ ली है। हम अुस स्वभाव को जीतना चाहते हैं। हमारा तो यह दावा है कि हम राजाओं का रक्षण करेंगे, भक्षण नहीं करेंगे। हम तो अुनके भी हृदय-परिवर्तन की बातें करते हैं। लेकिन मुझे डर है कि हम हृदय-परिवर्तन की बात केवल अिसलिअे करते हैं कि वह अेक रिवाज हो गया है। अपने दिल में अुसे नहीं मानते। यह हमारी हिंसा की निशानी है। सचमुच तो हम अपने दिल से यह आशा भी नहीं करते कि अिन राजाओं का दिल कभी बदलेगा। कॉंग्रेस में जो हमारे दूसरे भाअी हैं अुनके लिअे भी हमारा यही खयाल है। मैं आपसे साफ़ कहना चाहता हूं कि यह सब हिंसा की निशानी है। और अिसीलिअे कॉंग्रेस में अितना तिरस्कार पैदा हो रहा है।

अेक नयी कला

मैं प्रतिदिन यही सोच रहा हूं और अिसीलिअे अेक नयी कला का प्रयोग दरबार वीरावाला के साथ कर रहा हूं। आप विश्वास रखिये कि मैं डरपोक बन कर राजकोट-प्रकरण से भगनेवाला नहीं हूं। अपने साथियों को अिस तरह से दगा देनेवाला नहीं हूं। अैसी विपरीत बात नहीं होगी। यदि मैं अैसी कुछ बात करूं तो आप यह निश्चित समझ लीजिअे कि मुझे बुद्धिभ्रंश हो गया है। मुझे बुढापा तो आया ही है। लेकिन बुद्धि का भी विनाश हो रहा हो अैसी प्रतीति बिलकुल नहीं है। मैं बडी सावधानी से अपना काम कर रहा हूं। आखिर अंजाम में हम लडनेवाले तो हैं। लेकिन हमें अपनी युद्धनीति बदलनी होगी। दुबारा नये सिरे से व्यूह-रचना करनी होगी। अिसलिअे राजकोट में जो साथी हैं अुनको बल मिले अैसा मैं कर रहा हूं। यह बात आप समझ लें अिसलिअे कुछ विस्तार के साथ कह दी है।

संघ में बुराई

अिस भूमिका के बाद अब संघ के बारे में कुछ कहूंगा। अिस भूमिका पर से आपको पता चलेगा कि मैं आज क्या सोच रहा हूं। मुझे अैसा लगता है, हमें कुछ हटना होगा। हुदली में तो मैंने कह दिया था कि हमें क्षेत्र का कुछ विस्तार करना चाहिअे। राज्यप्रकरण में भी दखल देना चाहिअे। लेकिन यदि हम राज्यप्रकरणी क्षेत्र में कूद पडे हैं तो वहां भी हमें अपनी अहिंसा का ही प्रयोग करना चाहिअे। अिस विषय में हमें बडी सख्ती से काम लेना

चाहिअे। अिसके कारण आज दो सौ सदस्यों में से बीस ही रह जायें तो भी कोअी पर्वाह नहीं। फिर बीस के दो सौ सच्चे सदस्य होना होगा तो हो जायेंगे। नहीं तो बीस ही सही। मैं यह भी पाता हूं कि जो बुराअी हम कॉंग्रेस में देखते हैं वह संघ में भी है। कॉंग्रेस बडी संस्था है संघ छोटा है। कॉंग्रेस में जो बुराअियां बडे प्रमाण (परिमाण) में हैं, संघ में अल्प प्रमाण में हैं। आपस में द्वेष है। झगडा भी है, और दंभ भी है। सब अेक दिल, अेक प्राण, बन कर काम करते हैं अैसा मैं नहीं देखता। मैं अपने व्यक्तिगत अनुभव से यह नहीं कर रहा हूं। मैं तो सारे सदस्यों को जानता भी नहीं। सब के चेहरे नहीं पहचानता। बहुतसों के नाम भी नहीं जानता। वे कहां के हैं, क्या काम करते हैं, वह भी नहीं जानता। फिर भी मेरे पास जो सामान आ गया है अुस पर से मैं कह रहा हूं। जमनालालजी आज यहां नहीं हैं यह दुःख की बात है। अुनका कअी संस्थाओं से सम्बन्ध है। वे अपनी मुसीबतें मुझे सुनाते रहते हैं। हमें संस्थायें चलाने में ये सब कष्ट क्यों होते हैं? ये सब दोष क्यों आते हैं? अगर दो सौ आदमी अेक दिल, अेक प्राण, हो जायें तो हम किसी खास कार्यकर्ता का नाम न लेते हुअे भी हर किसी से यह कह सकेंगे कि जाओ त्रावणकोर में काम करो और वहां सफलता हासिल करो। लेकिन किशोरलाल की आज यह कहने की हिम्मत नहीं है। अुसे हर अेक कार्यकर्ता की योग्यता, स्वभाव और मनोवृत्ति का खयाल करना पडता है।

मैं यह सब आप के दोष निकालने के लिअे नहीं कह रहा हूं। ये तो हम सब के दोष बतलानेवाली चीजें हैं। मुझे अैसा लगता है, हमें अिस बात में सोचना होगा। अपनी संस्था के सिद्धान्तों और नियमों के पालन में ज्यादा सख्त होना होगा। अिससे हमारे सदस्य कम हो जायँ तो भले ही हो जायँ।

अीश्वर में जीवित श्रद्धा

मैं तो पहले ही कह चुका हूं कि सत्याग्रही का बल संख्या में नहीं, आत्मा में है। दूसरे शब्दों में अीश्वर में है। अिसीलिअे मैं हर अेक सत्याग्रही से यह आशा करता हूं कि अुसकी अीश्वर में जिन्दा श्रद्धा होनी चाहिअे। सत्याग्रही को दूसरा कोअी बल नहीं है। अीश्वर का बल तभी आता है जब अुसमें अनन्त श्रद्धा हो। जब अीश्वर में अैसी श्रद्धा न हो तो कोअी सत्याग्रह कैसे कर सकता है? जो यह कहे कि मुझे अीश्वर में अैसी श्रद्धा नहीं है, अुसे संघ को छोड देना चाहिअे और सत्याग्रह को भूल जाना चाहिअे।

अहिंसा का निर्दोष प्रतीक

मैं पूछता हूं कि चरखे में जिन्दा श्रद्धा आपमें से कितनों की है? चरखे के बारे में तो निडरता से और बेशरम हो कर मैंने कहा है कि वह स्वराज्य का प्रत्यक्ष साधन है। अहिंसा का असाधारण प्रतीक है। अगर आप चरखे के विशारद भी बनें, परंतु अुसे अहिंसा का प्रतीक न मानें, तो आपका चरखा चलाना व्यर्थ है। अगर चरखे में हमारी जीवित श्रद्धा हो तो हम अुसमें अद्‌भुत शक्ति देखेंगे। मैं तो चरखे को सविनयभंग की अपेक्षा अहिंसा का श्रेष्ठतर प्रतीक मानता हूं। सविनयभंग में

द्वेष या हिंसा पैदा होने का खतरा रहता है। लेकिन चरखा निर्दोष है। कुछ लोग अुसकी हंसी भले ही अुडावें। अुससे हंसी तो पैदा हो सकती है। लेकिन हिंसा कभी भी पैदा नहीं हो सकती। जो लोग आज चरखा चलाते हैं, नियमपूर्वक और आस्था से चलाते हैं, वे भी अुसे अहिंसा का प्रतीक नहीं मानते। जो लोग राज्यक्षेत्र में पडे हैं वे अुसे अहिंसा का प्रतीक नहीं मानते। केवल नियम-पालन के लिअे चला लेते हैं। मैं अिस विषय में भी अुदासीन रहा। अुसका दाम आज मुझे देना पडता है। चरखे में मैंने अपनी श्रद्धा १९२० में ही प्रकट की थी। अब १९४० पास आ रहा है। बीस साल के बाद अनुभव के जोर पर मैं फिर कहता हूं, "अहिंसा का प्रदर्शन करने की और स्वराज्य हासिल करने की जो शक्ति चरखे में है वह दूसरी किसी चीज़ में नहीं है।" आज मुझे श्रद्धा के साथ ज्ञान भी मिला है। श्रद्धा और बुद्धि के सम्मेलन से मेरा विश्वास और भी तेजस्वी हो अुठा है। मैंने चरखे के विषय में तब से अब तक जो कुछ लिखा है अुसपर मैं कायम हूं। जो लोग सत्याग्रही होना चाहते हैं लेकिन चरखे में विश्वास नहीं रखते, अुनसे मैं फिर कहूंगा कि वे सत्याग्रह को भूल जायँ।

चरखे का प्रभाव

प्रजापति मिश्र ने जो सुनाया कि पांच गांवों में चरखा चल रहा है वह तो मजाक है। चम्पारन के घर घर में चरखा क्यों नहीं चलता? पांच गांवों में चरखा चलने की बात को लेकर मैं अुसकी हंसी भी अुडा दूंगा; और चाहूं तो रुला भी सकता हूं। यहां के प्रदर्शन में भी कोअी अुत्साह देनेवाली चीज़ नहीं है। वह बेचारा लक्ष्मी-बाबू, मथुरादास, ध्वजा, काम करता है। पर अुससे मुझे संतोष थोडे ही होता है? बिहार में अितने अच्छे अच्छे कार्यकर्ता पडे हैं। यहां चम्पारन के घर घर में चरखा क्यों नहीं चलता? जब वे यह मानेंगे कि चरखा अेक अनोखी शक्ति देनेवाली चीज है तो बिहार की मुखाकृति ही बदल जायगी। अैसे चन्द कार्यकर्ता हैं अुससे थोडे ही पेट भरनेवाला है? आज जो हजारों बहनें चरखा चलाती हैं, और जिन्हें मैं आठ आने रोजी नहीं दे सकता, अुनकी बात नहीं कह रहा हूं। वे तो रोटी के लिअे चरखा चलाती हैं। मैं अुनकी बात कह रहा हूं जो अुसे अहिंसा का प्रतीक समझ कर चलायेंगे। जो अहिंसक और सत्यवादी बनेगा, चरखा अुसके जीवन में परिवर्तन कर देगा। वह अपने प्रत्येक मिनिट का हिसाब देगा। वक्त नाहक बरबाद करना वह पाप समझेगा। विचार का साक्षी तो अीश्वर ही है। लेकिन अैसा मनुष्य निकम्मा विचार अेक भी नहीं करेगा। अुसकी भाषा मे विलक्षणता रहेगी। हर अेक बात में अलौकिकता देखने में आयगी।

संकल्प की शक्ति

यह सब शक्ति चरखे में है। लेकिन वह स्वयंसिद्ध नहीं है। यों तो चरखा जड़ वस्तु है। अुसमें शक्ति संकल्प से आती है। हम अुसकी साधना करें। मिट्टी में क्या पडा है? पर कोअी भक्त मिट्टी की अेक गोली बनाता है और संकल्प करता है कि अिसमें भगवान शंकर बैठा है। तो वही मिट्टी कामधेनु बन जाती है। निरी मिट्टी में क्या पडा है? दूसरा आदमी अुसे अुठा कर फेंक देगा। मिट्टी में शंकर नहीं है। श्रद्धा ही शंकर है। रामनाम में क्या भरा है?

अुसमें आज जो शक्ति है अुसका क्या मतलब है? करोड़ों लोगों ने श्रद्धा से रामनाम लिया है। अुनके संकल्प की वह शक्ति है। हजारों लोग यों भी रामनाम रटते हैं। अुन्हें कुछ नहीं मिलता। क्यों कि हृदय में संकल्प की शक्ति नहीं है। कलियुग में रामनाम तो धोखा भी दे सकता है। लेकिन चरखा धोका नहीं दे सकता। वह कम से कम सूत तो निकालेगा। मेरे पास सैकड़ों आदमियों की गवाही है कि अगर संकल्प ले कर चरखा चलाने बैठ जायँ तो विषयवासना भी कम हो जाती है। प्रभाशंकर पट्टणी तो मर गये। वे मुझे कभी धोखा देनेवाले नहीं थे। अुन्होंने मुझे लिखा था कि जब रात को चरखा ले कर बैठ जाता हूं तो सारा प्रपंच भूल जाता हूं। अुन्हें चरखे का चमत्कार मिल गया। वे हमेशा के लिअे अुसे कायम नहीं रख सके यह बात दूसरी है।

श्रेष्ठतम हथियार

अितनी स्तुति करना आवश्यक था क्यों कि हमारे जितने हथियार हैं अुनमें चरखे को अग्रस्थान है। आप सब संकल्प करें और अिस सब शक्ति का अुसमें आरोपण करें। मेरा यह कोअी दावा नहीं कि अुसमें स्वतंत्र शक्ति है। मैंने अपने संकल्प से अुस शक्ति का चरखे में आरोप किया है। अिसलिअे मेरी कल्पना के सत्याग्रह के लिअे वह परम आवश्यक हो गया है। मैंने १९०८ में 'हिन्द स्वराज्य' लिखा। अुसकी भाषा अनघड (अमार्जित) भले ही हो। लेकिन अुसमें मेरी कलम आज भी दुरुस्ती करने के लिअे तय्यार नहीं है। अुस वक्त मैंने अेक भी चरखा नहीं देखा था। बल्कि यहां तक कि मैंने करघे को ही चरखा समझ लिया था। अिसलिअे अुसमें करघे की बात मैंने लिखी थी। चरखे की बात नहीं लिखी। लेकिन तभी से मेरे दिल में चरखे के प्रति श्रद्धा है। तभी से मेरे लिअे वह अहिंसा का प्रतीक बना। आज मुझमें अितनी शक्ति आ गयी है कि जो लोग अैसा नहीं मानते अुनसे मैं कहूंगा कि तुम चले जाओ। अगर वे त्रावणकोरवाले, मैसूरवाले या जयपुरवाले मुझसे कहें कि हम तो अैसा नहीं मानते तो, मैं कहूंगा कि तुम्हारी मार्फत मैं सत्याग्रह नहीं चला सकता। वे चाहें तो अपनी जिम्मेवारी पर सत्याग्रह करें। पर मैं अुनकी कोअी मदद नहीं कर सकता।

आत्मपरीक्षण करो

तो मैंने यह चीज अेक नयी तरह से आपके सामने रक्खी है। यह पांच छह दिन का यज्ञ करने के लिअे हम यहां आये हुअे हैं। हममें से प्रत्येक मनुष्य अिस सप्ताह में अपने मन और विचार की शुद्धि करने की चेष्टा करेगा। वह अपने आपका कड़ा आत्मपरीक्षण करेगा। वह अपने आपसे कहेगा कि 'जब मैं अिस भाषा की दृष्टि से देखता हूं तो मैंने अितना अितना क्रोध किया। अमुक आदमी का द्वेष किया। संघ को धोखा दिया है।' जो अिन दोषों को समझेंगे अुनमें से कअी तो अपने आप हट जायेंगे। और बाहर रह कर संघ की सेवा करेंगे। जैसे कि कॉंग्रेस की सेवा मैं कर रहा हूं। मेरा यह दावा है कि जब मैं चार आना मेम्बर था तब से आज कॉंग्रेस की ज्यादा सेवा करता हूं। अिसके विषय में मेरे मन में सन्देह नहीं। अिस तरह कुछ लोग बाहर

रह कर संघ की सेवा करें। जो लोग अन्दर रहें वे अपने विचारों के परीक्षक बन कर रहें। शायद हम सब जानते हैं, संघ में अैसे आदमी भी आ गये हैं जो दंभी प्रसिद्ध हुअे और व्यभिचारी सिद्ध हुअे हैं। हम यह दावा तो हरगिज नहीं कर सकते कि जो संघ में आ गया अुसपर मानों 'द्वारका की छाप' ही लग गयी। मैं आशा करता हूं कि अैसे कुछ सदस्य तो अपने आप निकल जायेंगे। वे बाहर से अधिक सेवा कर सकेंगे।

संघ और राजकीय क्षेत्र

अब अुस परिपत्र पर आ जाता हूं। मैं अुसके दोष नहीं निकालना चाहता। जो बात हो गयी सो हो गयी। गांधी सेवा संघ के सदस्य भले ही कॉंग्रेस में रहें। सरदार, राजेन्द्र बाबू आदि अुसमें भले ही रहें। दूसरे सदस्य अुन्हें भले ही बल दें। वह अुनका व्यक्तिगत सवाल है। लेकिन गांधी सेवा संघ को, संघ की हैसियत से, अुस झंझट में नहीं पडना चाहिअे। वह गांधी सेवा संघ के क्षेत्र में नहीं आता। गांधी सेवा संघ के सदस्यों को राज्यप्रकरण में दखल देने की जरूरत मालूम पडे तो वे अपनी जबाबदारी पर दें। लेकिन वहां भी दखल देने का मतलब सत्य और अहिंसा की मर्यादा का पालन ही हो सकता है। हम सत्य और अहिंसा की मर्यादा नहीं पालेंगे तो अुसमें हारेंगे ही, अुसमें अुत्तीर्ण नहीं होंगे। राज्यप्रकरण में भी हम सत्य और अहिंसा का तराजू लेकर ही जायें। दूसरे जो कर सकते हैं वह हम नहीं कर सकते। क्यों कि संघ के सदस्य होने के कारण हम तो सत्य और अहिंसा के ट्रस्टी बन जाते हैं। जो सदस्य सत्य और अहिंसा के गज को ले कर राज्यप्रकरण में जावें अुनका काम हम भले ही चलने दें। लेकिन गांधी सेवा संघ का काम दूसरा है। 'त्रिपुरी में क्या हुआ? किसने किस पक्ष में मतदिया', यह काम संघ का नहीं है। यह हमारा क्षेत्र नहीं है। वह सरदार का काम है, या जो त्रिपुरी में जाते हैं अुनका काम है।

कॉंग्रेस में अशुद्धि

यह हुआ अुस परिपत्र के विषय में। अब कॉंग्रेस की अशुद्धि पर आता हूं। अिसका सब से अच्छा अिलाज यह है कि पहले हम खुद शुद्ध बनें। हम अपने सम्पर्क से जितनी शुद्धि करा सकते हैं, करायें। क्योंकि कॉंग्रेस भी स्वराज्य हासिल करना चाहती है सत्य और अहिंसा से ही। वह भी अेक अहिंसक दल ही है। अगर वहां भी मेरी चल सके तो वहां भी मेरी बडी सख्त शर्तें रहेंगी। लेकिन कॉंग्रेस की शुद्धि का काम गांधी सेवा संघ का नहीं है। अिस तरह अेक दृष्टि से हमारे सिर पर बोझ कम भी है और ज्यादा भी है। हमारे में से कॉंग्रेस की शुद्धि के बोझ को जो अुठाना चाहें वे अुठावें। सब पर अुसका भार नहीं है। लेकिन दूसरी तरफ से हमारी जबाबदारी बहुत बडी है। क्योंकि हम अहिंसा के स्वयंनिर्णीत प्रतिनिधि बन बैठे हैं। कॉंग्रेस की वर्किंग कमिटी में हमारे तेरह लोग हैं। कॉंग्रेस के शुद्धीकरण का काम वे देख लेंगे। नहीं तो वे निकम्मे साबित होंगे।

गांधीमत-प्रचार

अब मैं गान्धी-मत प्रचार के सवाल को लेता हूं। गान्धी-मत प्रचार पुस्तकों द्वारा बहुत कम होगा। पर जीवन के द्वारा बहुत

आला दर्जे का होगा। सत्य और अहिंसा का प्रचार अिसी तरह होता है। अेक तरफ करोडों पुस्तकें रक्खें और दूसरी तरफ अेक जीवित दृष्टान्त, तो अुस दृष्टान्त की कीमत अधिक है। पुस्तकें तो जड हैं। मेरा मतलब यह नहीं है कि हम पुस्तकें बिलकुल न लिखें। पुस्तकें भले ही लिखें, अखबार भी चलाना है तो चलावें। मैं अितना ही कहना चाहता हूं कि वे हमारे लिअे आवश्यक साधन नहीं हैं। सत्याग्रही की बुद्धि का विकास सिद्धान्तों पर चलने से होता है। हम मुंह से 'अहिंसा, अहिंसा' कहते है लेकिन अपनी बुद्धि की तीव्रता नहीं बढाते। कुछ आलसी बन गये हैं। गीता में लिखा है कि बुद्धि और हृदय में अैक्य होना चाहिअे। जब बुद्धि और हृदय का युगल बन जाता है तब हम अजेय बन जाते हैं। हमारी बुद्धि में सारे प्रश्नों को हल करने की शक्ति आ जाती है।

बुद्धि की उदारता

हम किसी को थप्पड नहीं मारते अिसीसे हम दर असल अहिंसक नहीं बनते। अपने विचार और बुद्धि से हिंसा कर लेते हैं। यह तेजस्वी बुद्धि का लक्षण नहीं है। तेजस्वी बुद्धि का लक्षण यह है कि हम अपने कानों को खुला रक्खें। जब प्रतिपक्षी हमारे सामने आ जाता है तब हमें अुसकी दृष्टि को समझ लेना चाहिअे। देखें वह जयप्रकाश क्या कह रहा है। अुसके और मेरे बीच में तो अेक महासमुद्र पडा है। लेकिन अहिंसा कहती है कि हम हमारा प्रतिपक्षी क्या कह रहा है यह समझने का धीरज रक्खें। यही अहिंसा का लक्षण है। अिसीका नाम है शत्रु के मुंह में दौड दौड कर जाना। अहिंसक अपने प्रतिपक्षी से कहता है तुम क्यों अितनी तसदी लेते हो? मैं खुद तुम्हारे पास आ रहा हूं। अिसका मतलब यह नहीं है कि हम भोले बनें। हम तीव्र-बुद्धि रहें। अगर हमारे पास जवाब है तो प्रतिप्रक्षी की बातों का जवाब दें। अुनकी दृष्टि से अुनकी बात को समझने की कोशिश करें। अुनमें से जो मानने लायक हो वह मानें। मैंने अपने प्रति-पक्षियों का दृष्टिकोण समझने की कोशिश की अिसका यह मतलब नहीं कि अुनकी हर अेक बात को कबूल किया, या अुनकी खुशामद की। अगर हम अपनी बुद्धि को अिस तरह बनावें तो सत्य और अहिंसा का प्रचार अपने जीवन से कर सकते हैं। अिसके बिना किसी मासिक, द्विमासिक या त्रैमासिक से नहीं होगा। 'यंगअिण्डिया' में कितनी बेद-रकारी से चला रहा था वह मेरे साथी आपको बतलायेंगे। 'यंगअिण्डिया' ने काम तो काफी किया। आखिर वह मर गया। पर सत्याग्रह नहीं मरा। 'यंगअिण्डिया' बन्द होने से मेरा काम तो नहीं रुका। सत्या-ग्रही जानता है कि वह बाहय साधन पर निर्भर नहीं कर सकता। वह अन्तःसाधन पर ही निर्भर रहता है। जिसकी अीश्वर पर अनन्य श्रद्धा है वह अपने पर श्रद्धा रख कर चलेगा।

और अेक सवाल यह भी पूछा गया है कि गांधीमत का काफी विरोध हो रहा है और महाराष्ट्र में नाहक जहर फैलाया जा रहा है, अुसका क्या अिलाज करें? अिसका जवाब मैं दे चुका हूं। हम अपने आपको शुद्ध करें।

श्रद्धा की परीक्षा

[सतीशचन्द्र दासगुप्त]

कुछ दिनों से बंगाल के शिक्षित हिन्दू सम्प्रदाय में गान्धीजी के प्रति असंतोष प्रकाशित होता आया है। पूना-पैक्ट, साम्प्रदायिक बँटवारा, राष्ट्रभाषा, चरखा-प्रचलन, अिनमें से अेक अेक चीज़ भिन्न भिन्न समय पर बिरुद्ध अुत्तेजना का कारण होती आयी है। किन्तु अुत्तेजना के कारण भिन्न भिन्न होते हुअे भी असन्तोष अिस हद तक बढ गया है कि गान्धीजी को बंगाली-विद्वेषी कह कर पुकारने में भी कुछ लोग हिचकते नहीं। हां, अितना अवश्य है कि गान्धीजी के प्रति श्रद्धाशील शिक्षित लोग भी अनेक हैं।

अिस अवस्था में जो लोग गान्धीजी के प्रति श्रद्धालू हैं अुनके सामने नाना क्लेषकर प्रश्न अुपस्थित होते हैं। 'गान्धीजी ने यह क्यों कहा' या 'वह बात अुन्होंने साफ क्यों न की,' अिस तरह के सवाल नित्य अुठते रहते हैं। यदि अिन प्रश्नों का अुत्तर खुद गान्धीजी ही न दें तो किसी बाहरी व्यक्ति के लिअे अुनका यथोचित अुत्तर देना सम्भव नहीं होता। श्री सुभाष बाबू के निर्वाचन के सिलसिले में अुन्होंने जो वक्तव्य प्रकट किया अुसीको लेकर चारों ओर से अिसे तरह के प्रश्न पूछे जा रहे हैं। गान्धीजी से भी अिस विषय में पूछा गया। जवाब में अुन्होंने कहा कि जिस व्यक्ति ने नेतृत्व अंगीकार किया है अुसके लिअे सभी बातें हमेशा समझा देना या प्रकाशित करना हर समय सम्भव नहीं होता। वर्तमान क्षेत्र अुसका अेक अुदाहरण है। जिन्हें अैसा लगे कि गान्धीजी ने बुरा काम किया है वे वैसा ही विश्वास करें और अपने विश्वास के मुताबिक आचरण करें। वे गान्धीजी को बुरा कहें और अुनका या अुनके नेतृत्व का त्याग करें। अिससे सम्भव है कि गान्धीजी के कार्य की क्षति होगी। लेकिन क्षति सहन करके भी अुन्हें किसी किसी विषय में मौन रहना होगा। वे कहते हैं कि अहिंसा का धर्म ही अैसा है। चाहे क्षति भले ही हो जाय लेकिन विचार और बुद्धि जिस बात को प्रकट आलोचना करना मना करे अुस बात के विषय में मौन ही रहना होगा।

यहां अेक दूसरा सवाल खडा हो जाता है। अिस प्रकार के मौन की वजह जब लोगों के मन बिगड गये हों और अन्याय्य अथवा विपोक्त प्रचार की बदौलत आम जनता का भी मन केवल गान्धीजी के ही नहीं बल्कि अुनकी समस्त कृति के विषय में कलुषित हो गया हो, अैसी हालत में क्या किया जाय? जब समझाने की कोशिश करने से द्वेषभाव और भी बढता हो, तो समझाने की कोशिश न करना और, द्वेषभाव सहन करते हुअे, अपने कार्य और आदर्श की अग्रगति में जो प्रतिरोध होता हो अुसे तटस्थ भाव से देखते रहना ही हमारा कर्तव्य है।

बंगाल में अभी साधारण तौर पर गांधीजी के प्रति रोष है। फिर भी अुन्हें अलग हटा देने की बात सर्वत्र साफ साफ नहीं कही जाती। वर्तमान में सुभाष बाबू के पदत्याग के कारण असन्तोष की अेक खासी बडी लहर अुठ रही है। किन्तु अैसे समय पर भी सुभाष बाबू कहते हैं कि स्वयं वे और

अुनके दल के लोग गान्धीजी के प्रति और गान्धीनीति के प्रति बराबर श्रद्धावान बने रहेंगे। अुनके नूतन राजनैतिक दल, 'फॉर-वर्ड ब्लॉक', ने अिसीको अपनी नीति के रूप में स्वीकार किया है। अिस दल के संगठित हो जाने के बाद श्री सुभाष बाबू के अनुवर्ती गान्धीजी के बारे में संयत समालोचना कर सकेंगे। किन्तु यदि अैसा न भी हो और बंगाल से गान्धी व गान्धीनीति के बहिष्कार के लिअे अेक तुमुल आन्दोलन चलने लगे तो भी जो गान्धीनीति में विश्वास-परायण हैं वे अुसे अपने धैर्य, सहिष्णुता और अहिंसक मनोवृत्ति का परिचय देने का सुयोग समझ कर स्वयं शुद्ध और यत्नशील रहेंगे। आज बंगाल में अहिंसा शब्द ही व्यंग का विषय हो रहा है। और अहिंसक द्वेष, अहिंसक चक्रान्त (षड्यन्त्र), अहिंसक क्रोध अित्यादि नये नये शब्द गढे जा रहे हैं। किन्तु द्वेष और व्यंग के सैंकडों बाणों से विद्ध होने पर भी अहिंसा अहिंसा ही रहेगी। वह द्वेष के रूप में परिणत नहीं होगी। जो लोग गान्धीनीति में विश्वास करते हैं वे अिसी बात को प्रस्थापित करेंगे।

हमें यह बात हरगिज नहीं भूलनी चाहिअे कि जो लोग खादी, ग्राम-अुन्नयन आदि गान्धीजी के अनुमोदित कामों में लगे हुअे हैं वे सभी गान्धीनीति के मुआफिक आचरण नहीं करते। यदि गान्धी-अनुगामी संस्था या व्यक्ति दरअसल अहिंसापरायण और सत्याश्रयी होते तो बंगाल में गान्धीजी के प्रति अश्रद्धा और अवज्ञा की अितनी बडी बाढ आ ही नहीं पाती। अिसीलिअे जो लोग गान्धीजी के नाम पर काम कर रहे हैं अुनके लिअे यह समय अेकान्त आत्मपरीक्षा का है।

(बंगला 'राष्ट्रवाणी' से)

हिंसा के मुंह में अपने आप चले जाने में ही सच्ची अहिंसा है। गायों में यदि अिस प्रकार की बुद्धि पैदा की जा सकती कि अुनमें से पर्याप्त संख्या में शेर के मुंह में जाने के लिये तैयार हो जातीं तो शेर को जो गोमांस खाने का चस्का लगा हुआ है अुसे वह छोड़ देता और अुसकी प्रकृति में परिवर्तन हो जाता।

मो. क. गांधी

'हरिजन-सेवक' से

गांधीजी से परिप्रश्न

(गांधी सेवा संघ सम्मेलन, वृन्दावन, ता० ५ मअी १९३९)

श्री. अन्नदाबाबू के प्रश्न

राष्ट्रपति का चुनाव और गांधीजी का वक्तव्य

प्रश्न १ ला–आपने सुभाष बाबू के चुनाव के बाद जो वक्तव्य निकाला अुससे परिस्थिति कुछ बदल गयी। आपने चुनाव के समय कोअी वक्तव्य क्यों नहीं निकाला? कुछ लोगों का खयाल है कि चुनाव के वक्त यदि आप वक्तव्य निकाल देते तो आज की परिस्थिति ही पैदा नहीं होती।

उत्तर– मैंने कोअी वक्तव्य नहीं निकाला यह सही है। अन्नदाबाबू कहते हैं कि अिसके कारण स्थिति बदल गयी। अुनका मतलब यह है कि मैं पहले वक्तव्य निकालता तो जो बन गया वह न बना होता। फिर भी सरदार वल्लभभाअी अित्यादि के नाम से जो वक्तव्य निकला अुसमें अेक छोटासा वाक्य था जिससे मालूम होता था कि अुसमें मैं भी हूं। अिससे आगे बढ़ूं अैसी कोअी बात अुस वक्त नहीं थी। वक्तव्य निकालने की आवश्यकता मैंने अुस वक्त महसूस नहीं की थी। बाद में वक्तव्य निकालने की आवश्यकता हुअी। अुसका लम्बा अितिहास है। अुसमें मैं नहीं जाअूंगा। अिसमें कोअी आलस्य की बात नहीं थी। न मुल्क को समझाने में कोअी गल्ती की थी। मेरे दिल में जो चीज़ थी वह मैंने सुभाषबाबू तक पहुंचा दी थी। मेरा काम करने का तरीका ही यह है। अन्त में अितना ही रह जाता है कि अुसके कारण कोअी गलत–समझी भी हो जाय तो मैं सहन कर लूं। अिसके विषय में कोअी और कुछ पूछना चाहते हैं तो पूछ सकते हैं।

पन्त–प्रस्ताव

प्रश्न २ रा–कुछ लोगों का खयाल है कि पंतजी का प्रस्ताव आपको पसन्द नहीं था। जब आपने पहले पहल अुस प्रस्ताव के विषय में सुना तो आपके दिल पर क्या असर हुआ? आपने सुभाष बाबू को अैसा क्यों लिखा कि 'पंत के प्रस्ताव के विषय में मैं ज्यों ज्यों सोचता हूं त्यों त्यों अुसे अधिक नापसन्द करता हूं'? कृपया अिसे समझाअिये।

उत्तर– पहली बात तो यह है कि आप यह जानते हैं कि अुस वक्त मैं तो बिछौने पर पडा था। मेरे काम करने का तरीका अैसा नहीं कि जिस चीज़ में मैं नहीं हूं अुसमें मैं पडूं। अिस लिअे त्रिपुरी में क्या हो रहा है अिसके विषय में मैं बिलकुल अुदासीन था। यहां तक कि मैं अुन दिनों अखबार भी नहीं पढता था। मेरे मन में तो राजकोट ही राजकोट भरा था। किसीने मुझसे कहा कि पंतजी का अैसा कोअी प्रस्ताव त्रिपुरी में आनेवाला है। अुस वक्त मुझे अितना ही खयाल हुआ कि पुरानी कार्य-समिति में विश्वास प्रकट करनेवाला प्रस्ताव है। मैंने कहा कि विश्वास प्रकट करने की बात तो ठीक है। लेकिन मैं होता तो और कुछ करता। मैंने तो वर्धा में ही कहा था कि अगर हिम्मत है तो 'नो कॉन्फिडन्स' (अविश्वास) का प्रस्ताव लाओ। यह सीधा तरीका है। अगर काँग्रेस के प्रतिनिधि यह समझते थे कि सुभाष बाबू को चुनने में

अुन्होंने गलती की तो अुनके लिअे यही सभ्यता का रास्ता था। लेकिन अुस वक्त अैसी आबोहवा शायद नहीं थी। मेरा तो यह खयाल हो गया कि सुभाष बाबू अपनी कॅबिनेट (कार्यसमिति) बना लेंगे। लेकिन वह नहीं बना। तब पंत का प्रस्ताव त्रिपुरी में आया। मैंने अितना ही सुना कि जो लोग निकल गये हैं अुनके लिअे अुसमें विश्वास प्रकट किया गया है। मैंने कहा अितना ही है तो ठीक है। लेकिन वह मेरी चीज़ तो नहीं थी। बाद में मैंने वह प्रस्ताव देखा। फिर सुभाष बाबू के साथ पत्रव्यवहार चला। अन्नदा बाबू ने जिस खत का जिक्र किया है वह आपके सामने नहीं है। जब मैंने पंत का प्रस्ताव पढा तो देखा कि अुसमें तो कहा गया है कि मुझे सुभाष बाबू को रास्ता दिखाना है। जब वह चीज़ मेरे पास आ गयी तो मुझे बहुत नापसन्द लगी। यहां तक नापसन्द लगी कि मैंने वैसा करने से अिन्कार किया। और अुसी अिन्कार पर आखिरी दम तक कायम रहा। हो सकता है कि अिसके कारण कुछ गलतफहमी पैदा हो जाय। तो अुसे भी मुझे सहना है। जिस चीज़ को मैं गलत समझता हूं अुसे मैं कैसे करूं? मैंने अुनसे कहा कि आप अपने मन की कमिटी बना लें और अपना कार्यक्रम बना कर काम शुरू कर दें। मेरी चले तो मैं आबोहवा साफ कर दूंगा। नहीं तो काम चलता रहेगा और धीरे धीरे आबोहवा को पहुंच जायेंगे। अिसीलिअे कलकत्ते में जब मुझसे कहा गया कि मैं कमिटी के नाम सुझाअूं तो मुझे यह बात कुछ विपरीत लगी। वहां मेरे पास वह सामना था जिससे मुझे अैसा करना गलत मालूम हुआ। त्रिपुरी में वह सामान किसीके पास नहीं था। आगे पत्र-व्यवहार से मेरी यह राय और भी पक्की हुअी। पीछे वैमनस्य की बात भी मेरे पास आ गयी। अैसी स्थिति में मैं नाम कैसे दे सकता था? वह तो सुभाष बाबू पर जबरदस्ती होती। मैं सुभाषबाबू पर जबरदस्ती करूं तो क्या राष्ट्र का जहाज चल सकता है? यह तो जहाज डूबने की बात है। मैंने कहा कि मैं अैसा नहीं करूंगा। अगर आप पुरानी कार्यसमिति के लोगों को चाहते हैं तो आपस में मशवरा कर लें। आपको वे लोग चाहें तो दोनों साथ काम कर सकते हैं। लेकिन मुझसे यह काम नहीं होगा कि मैं सुभाष बाबू पर कुछ नाम लाद दूं। जितना मैं अुस प्रस्ताव पर सोचूं वह मुझे नापसन्द ही नापसन्द आता है। अुसके अनुसार मैं राष्ट्र की सेवा नहीं कर सकता। कोअी कितना भी कहे मैं तो यही कहूंगा कि मैं कार्यसमिति के नाम नहीं दे सकता। मैं जो कुछ पसन्द करूं वह सुभाष बाबू पर बलात्कार होगा। और बलात्कार तो हिंसा है। वह मैं कैसे करूं? पंत के प्रस्ताव का मेरे दिल पर क्या असर हुआ वह मैंने बतला दिया। अगर लोग समझते हैं कि मैंने देश की काफी सेवा की है तो भी किसी पर बलात्कार करने का अधिकार मुझे थोडे ही आ गया है?

कौनसी कठिनाअी थी?

प्रश्न ३ रा– जब सुभाष बाबू आपके दिये हुअे कोअी भी नाम मंजूर करने के लिअे तैयार थे तो नाम देने में आपको क्या आपत्ति थी?

उत्तर–अिस सवाल का यह मतलब है कि "त्रिपुरी ने पंत-प्रस्ताव से तुम्हें अेक हुक्म

दिया और सुभाष बाबू को भी दिया। सुभाष बाबू तो वह हुक्म मानने के लिअे तय्यार थे लेकिन तुमने अुसका विरोध क्यों किया? हुक्म के अनुसार कार्यसमिति के नाम देने में कौनसा बलात्कार था?" यह तर्क देखने में बड़ा मोहक है। लेकिन गलत है। कल कोअी आदमी मुझसे कहे कि तुमको हुक्म हुआ है कि मुझे गालियां दे दो और बेंत मारो। तो क्या में अुसे मन-मानी गालियां दे दूं और तडातड बेंत मार दूं? जब सुभाष बाबू के और मेरे बीच अितना फासला था तो अिस अधिकार के जोर पर अुनपर कोअी नाम लाद देना क्या सभ्यता का काम होता? अधिकार मिलने का मतलब यह थोडा ही है कि मुझे अपनी बिबेकबुद्धि के खिलाफ अुसपर अमल करना ही चाहिअे। मेरे साथ कोअी अैसा करे तो में पसन्द नहीं करूंगा। मान लीजिये कि कल मुझे सब को गाली देने का अधिकार मिल गया। लेकिन क्या अुसपर अमल करना मेरा धर्म हो सकता है? अधिकार और धर्म में भेद है। अधिकार का अुपयोग करना धर्म पर निर्भर है। धर्म-पालन मेरा कर्तव्य है। में केवल अपने व्यक्तिगत महत्त्व को नहीं देखता। मेरे नजदीक अुसकी कोअी कीमत नहीं। में राष्ट्र की दृष्टि से विचार करता हूं। मुझे मेरा जो कर्तव्य लगता है वह में करता हूं।

चिट्ठी-पत्री का प्रकाशन

प्रश्न ४ था– सुभाष बाबू से आपका जो पत्रव्यवहार हुआ, क्या वह प्रकाशित नहीं हो सकता? अगर नहीं, तो कृपया बतलाअिये कि क्यों?

उत्तर–पहले तो अुस पत्र-व्यवहार को प्रकट करना तय हो गया था। बाद में जवाहरलालजी आ गये और यह तय हुआ कि अुसे रोक लें। यह भी तय हुआ कि में भी कोअी वक्तव्य नहीं निकालूं। वह मुल्क के लिअे अच्छा नहीं होगा। मैंने अिसमें यही नीति अख्तियार की है कि सुभाष बाबू को जो सुभीते का हो वही वे करें। अगर हम अहिंसक हैं तो हमें अैसा ही करना चाहिअे। किसी पत्रव्यवहार को प्रकट करना हमारा काम नहीं है। हम जब तक रोक सकते हैं, रोकें। जब कोअी आदमी खत में लिखता है अुसके विपरीत काम करे तभी अुसे प्रकट करना हमारा कर्तव्य हो जाता है। अैसी कोअी बात यहां नहीं आती। अिसलिअे यह मैंने सुभाष बाबू पर छोड दिया है। पत्रव्यवहार प्रकट न होने से अगर कोअी गलतफहमी होती है तो कोअी खास नुक-सान नहीं है। सामनेवाला आदमी जब जरूरी समझेगा तब प्रकट कर देगा। अगर वह सब पुराना अितिहास बन गया तो छोड दिया जायगा।

अब **शंकरराव** के दो प्रश्न लेता हूं। अुनमें से दूसरा प्रश्न अिसीसे संबंध रखता है। अिसलिअे अुसे पहले लेता हूं।

सुभाष बाबू से बुनियादी मतभेद

प्रश्न ५ वाँ–आपने सुभाष बाबू को अेक पत्र में लिखा है कि आपके और अुनके बीच फण्डामेण्टल (बुनियादी) मतभेद हैं। वह कौनसा?

उत्तर– मेरे और अुनके बीच में जो पत्र-व्यवहार हुआ अुसका में अुल्लेख नहीं करूं वही अच्छा है। बात लम्बी हो जायगी। थोड़े में समझा दूं। अुन्होंने जलपायगुरी में

जो प्रस्ताव किया वैसी आज भी अुनकी राय है अैसा मैं समझता हूं। अुसमें मैंने देखा कि मैं कहीं शामिल नहीं हो सकता। अुसमें अल्टिमेटम–सरकार को अन्तिम सूचना–देने की बात है। वे मानते हैं कि हमारे पास लडाओी का सामान मौजूद है। मैं बिलकुल अुलटा मानता हूं। आज हमारे पास लडाओी करने का कोओी सामान है ही नहीं। आज सारा वायुमण्डल हिंसा से अितना भरा हुआ है कि मैं लडाओी कर ही नहीं सकता। अुडीसा में रानपुर और कर्नाटक में रामदुर्ग का मामला कैसे बना? कानपुर में पंतजी अपना काबू नहीं रख सके। लखनौ के शिया और सुन्नी मुसलमानों पर हमारा कोओी काबू नहीं। जातीय झगडों का तो कोओी ठिकाना नहीं रह गया है। मुट्ठी भर कॉंग्रेसवालों पर हमारा काबू रहने से हमारा काम नहीं चलेगा। हमारा तो हमेशा यह दावा रहा है कि सारे मुल्क पर हमारा काबू है। लेकिन आज मुट्ठी भर लोगों पर हमारा काबू रह गया है। मजदूर और किसान तो कॉंग्रेसवाले ही माने जाते थे। किसानों पर बिहार में हमारा पहले जो काबू था वह आज नहीं रहा। क्या यह लडाओी के लिअे अनुकूल स्थिति है? कॉंग्रेस के काम में और हिंसावादियों के काम में फर्क है। आज मुझसे कोओी कहे कि तुम 'दांडीकूच' करो तो मुझमें हिम्मत नहीं है। मजदूर और किसानों को छोड कर हम कैसे काम कर सकते हैं? अुन्हींका तो मुल्क है। सरकार को अन्तिम सूचना देने का सामान मेरे पास नहीं है। अैसी सूचना से देश की हंसी ही होगी। लेकिन सुभाष बाबू समझते हैं कि हम लडाओी के लिअे तय्यार हैं। यह मतभेद बहुत बडा और बुनियादी है। लडाओी के सामान की अुनकी कल्पना और मेरी कल्पना में भेद है। सत्याग्रह की मेरी जो कल्पना है वह अुनकी नहीं है। क्या यह मतभेद बुनियादी नहीं है? मैं ये सब बातें आज ही अखबारों में नहीं दे सकता। क्यों कि अुससे कोओी फायदा नहीं है। मौका आनेपर लिखूंगा। यह तो बुनियादी मतभेद की बात है। हमारे खतों में भी यह बात आयी है। अेक मोटीसी चीज़ आपके सामने रख दी है। अिससे व्यक्तिगत मतभेद का कोओी सम्बन्ध नहीं है।

अिसी तरह कॉंग्रेस की अशुद्धि की बात है। अुसमें मेरा और अुनका डिग्री (सीमा) का भेद है। अशुद्धि है यह तो वे भी कबूल करते हैं। लेकिन मैं मानता हूं कि जबतक यह अशुद्धि रहेगी हम कोओी काम नहीं कर सकेंगे। मेरे नजदीक सविनयभंग और अधिकार-स्वीकार में भेद नहीं है। दोनों सत्याग्रही लडाओी के ही अंग हैं। अिस तरह मेरा और अुनका दृष्टिकोण और अवलोकन अलग अलग है। सत्याग्रह का मेरा जो अर्थ है वह अुनका नहीं है। अिसलिअे कभी कभी सीमाओं का भेद भी बुनियादी हो जाता है। मैं तो यहां तक अधीर हो गया हूं कि अशुद्धि दूर करने के लिअे कॉंग्रेस को ही दफन कर देना पडे तो कर देना चहिअे। अेक हिंसावादी संस्था जिन बातों को दरगुजर कर सकती है अुन्हें अहिंसावादी संस्था नहीं कर सकती। हिंसक युद्ध का दृष्टान्त यहां पर लागू नहीं पडता। अब आप समझ गये होंगे कि बुनियादी मतभेद से मेरा क्या मतलब है।

समाजवादी और जवाहरलालजी

प्रश्न ६ वाँ–क्या समाजवाद और जवाहरलालजी से आपका मतभेद बुनियादी नहीं है? क्या अुनके प्रति भी आपका यही रुख रहेगा?

उत्तर–नहीं। समाजवादियों से मेरा मतभेद दूसरी तरह का है। अिन दोनों को मिलाअिये नहीं। सरकार को अन्तिम सूचना देने की बात पर सुभाष बाबू से मतभेद है। मुझे पता नहीं अिसमें अुनके साथ कौन कौन है? अिसलिअे समाजवादियों से बुनियादी और तीव्र मतभेद होते हुअे भी अुनके बारे में मेरे विचार दूसरे हैं। और फिर, समाजवाद और जवाहरलाल को हम अेक ही वर्ग में रख भी नहीं सकते। जवाहरलाल किसी समाजवादी गिरोह में अपना नाम नहीं देते। अुनका समाजवाद में विश्वास है। वे समाजवादियों के साथ बैठते-अुठते हैं, मशवरा कर लेते हैं। पर अुनके काम करने के तरीके में काफी भेद पडा है। समाजवादियों में और मुझमें जो मतभेद है वह मशहूर ही है। मैं मनुष्य के हृदय–परिवर्तन में और अुसके लिअे कोशिश करनें में विश्वास करता हूं। वे नहीं करते। वे चरखे की हँसी अुडाते हैं। परन्तु फिर भी समाजवादी हर दिन मेरी तरफ बढ़ रहे हैं। या, चाहे यों कह लीजिये, कि मैं अुनके पास जा रहा हूं। या यों कहिये, कि हम अेक दूसरे की तरफ बढ रहे हैं। मुझे पता नहीं यह कब तक चलेगा। शायद अेक दिन हम दोनों का रास्ता अलग अलग हो जाय। सुभाष बाबू के साथ अैसा ही हुआ। जलपायगुरी के प्रस्ताव ने हमारा मतभेद स्पष्ट कर दिया। जवाहरलाल और मुझमें मतभेद है तो सही। लेकिन वह नहीं–सा है। अुनके बिना में अपनेको अपंग–सा महसूस करता हूं। वे भी कुछ अैसा ही अनुभव करते हैं। मेरा और अुनका हृदय अेक है। हमारा यह घनिष्ट संबंध राजकरण से ही शुरू नहीं होता। वह अुससे बहुत पुराना और गहरा है। अुस बात को हम छोड दें।

अब यह **गंगाधरराव** का प्रश्न है।

राजनैतिक सहिष्णुता

प्रश्न ७ वाँ–समाजवादी लोगों का हम लोगों पर यह आरोप है कि आप सहिष्णु और अुदार हैं और हम असहिष्णु और अनुदार हैं। अुदाहरणार्थ, आप अुन्हें वर्किंग कमिटी पर लेने को तय्यार होंगे पर हम नहीं। अिसकी क्या वजह है?

उत्तर–यह मैं क्या जानूं? अिसका मैं क्या जवाब दूं? अिसका करण आप अपने अन्दर खोजिये। मैं तो अितना ही कह सकता हूं कि अिसमें आप मेरा अनुकरण करें। मैं जैसी मीठी जबान रखता हूं, आप भी रक्खें। समाजवादी मेरे पास चले आते हैं तो बडे चिढ कर आते हैं। लेकिन मेरे पास से लौटते हैं तब हंसते हुअे जाते हैं। अिसका मतलब यह नहीं है कि मैं अपना मतभेद अुनके सामने प्रकट नहीं करता। मैं तो अपने दिल की बात अुनके सामने साफ साफ कह देता हूं। मैं कुछ अुनकी खुशामद नहीं करता। लेकिन अुनके हृदय में प्रवेश करने की कोशिश करता हूं। अुनकी सचाअी में विश्वास रखता हूं। अुनका दृष्टिबिन्दु समझ लेने का प्रयत्न करता हूं। अुनसे बात करने के लिअे समय निकाल लेता हूं। आप भी अुनसे अैसा ही सभ्यता का व्यवहार करें। अितनी मदद मैं आपकी कर सकता हूं।

एक बड़ा प्रश्न

अब अेक प्रश्न रह जाता है। लेकिन वह बड़ी चीज़ है। बाकी की तो क्षणिक चीजें हैं। आप गांधी सेवा संघ में पड़े हैं। मैं अुसका विधान देख गया। अुसमें बहुतसी बातें भरी पड़ी हैं। आप चन्द सिद्धान्तों को मानते हैं। अन्नदा के दिल में जो प्रश्न पैदा हुआ वह काँग्रेस के प्लाटफॉर्म पर पैदा होता तो दूसरी बात थी। पर जब संघ के प्लाटफॉर्म पर होता है तब मुझे आघात-सा होता है। आप लोगों के दिलों में अैसी शंका क्यों हो? मेरे और सुभाष बाबू के बीच में जो मतभेद है वह क्षणिक है। परन्तु उनके और मेरे बीच में वैमनस्य आ जाय तो मुल्क का नाश हो जायगा।

मतभेद और वैमनस्य—सर्वदल-समभाव

मतभेद से वैमनस्य कभी भी पैदा नहीं होना चाहिअे। आप तो सर्वधर्म-समानता में मानते हैं। मैं आपसे कहता हूं कि आप सर्वधर्म-समानता की व्याख्या को जरा विस्तृत कर दें। नरम दल और गरम दल को भी अुसमें शामिल कर लें। हमें तो नरम दल और गरम दल में भी समानता देखनी है। जो अपने आपको गरमदलवाले मानते हैं अुनके प्रति भी हमारे दिल में आदर रहना चाहिअे। गरम दलवाले के धर्म को अुसकी दृष्टि से देखना चाहिअे और नरम दलवाले को अुसकी दृष्टि से। हमें अपना धर्म अपनी दृष्टि से देखना चाहिअे और दूसरों का दूसरों की दृष्टि से। यही सर्वधर्म–समभाव है। अिसका मतलब यह है कि जिन बातों में हम सहमत हैं अुन पर हमें ज्यादा जोर देना चाहिअे। मतभेदों की बातों पर ही जोर नहीं देना चाहिअे। मुसलमान और अीसाअी के धर्म के लिअे मेरे मन में आदर है, अिसलिअे मैं मुसलमान या अीसाअी नहीं नहीं बन जाता। मेरा मतलब तो यह है कि अुन धर्मों के लिअे मुझे अुतना ही आदर है जितना कि मेरे अपने धर्म के लिअे होगा। मैं मुसलमान या अीसाअी नहीं बनूंगा। यदि मैं असहिष्णु रहा तो मेरे कुरान और बाअिबल पढ़ने से क्या फायदा? सर्वधर्म-समभाव का यह ठीक अर्थ नहीं है। राजकारण में भी जिनसे हमारा मतभेद है अुनको हम अैसा ही देखें। समाजवादी को अिसी दृष्टि से देखें। अिस तरह से देखेंगे तो जो मतभेद होंगे वे क्षणिक होंगे। हम तो जहां तक हो सके, झगड़ों को मिटाने की ही कोशिश करते रहेंगे। अगर हम अैसा न करेंगे तो हमारे दिमाग छोटे हो जायेंगे। हम छोटे छोटे मतभेदों को ले कर बैठ जायेंगे। जिस धर्म का मनुष्य ध्यान करता है अुसीके समान बन जाता है। जो बड़ी बड़ी बातें हैं अुनको हम भूल जायेंगे, केवल मतभेद की छोटी छोटी बातें ध्यान में रक्खेंगे तो अिससे देश का सर्वनाश हो जायगा।

अहिंसावादी का शाश्वत धर्म

जिन बातों में हम सहमत हो सकते हैं अुन्हें खोजना मुश्किल क्यों होता है? परस्पर विश्वास और सरल चित्त से दूसरों की बात समझ लेने की तैयारी यही अहिंसा का राजमार्ग है। अिसी सिलसिले में अुसी परिपत्र की बात फिर ले लेता हूं। अुसे मैं दुबारा पढ गया। अुसका भी मध्यबिन्दु यही है। वहां मध्यबिन्दु सरदार है। बहुतसे लोगों के दिल में अैसा है कि सरदार ठीक

काम नहीं करते। नरिमान, खरे, सुभाष, के प्रकरण में अुन्होंने अन्याय किया अैसा वे मन ही मन मानते हैं। अगर अैसा है तो वह साफ साफ कह देना चाहिअे। अहिंसावादी का यह शाश्वत धर्म है। सारे जगत के प्रति हमारा यह धर्म है। किसी के प्रति हमारे दिल में अविश्वास या रोष पैदा हो जाय तो हमारा कर्तव्य है कि हम अुसके पास सीधे चले जायें और अुससे समझ लें। अिस सम्बन्ध में बाअिबल के दो वचन हैं अुन्हें याद रखना चाहिअे। नीति के विषय में बाअिबल, या दूसरे किसी भी धर्मग्रंथ का वचन वेद के वचन अितना ही प्रमाण होना चाहिअे। अुनमें से अेक वाक्य तो यह है कि 'अपने प्रतिपक्षी से जल्दी समझौता करो'। और दूसरा यह है 'कि अगर किसीके बारे में तुम्हारे दिल में कुछ गुस्सा है तो अुसपर सूर्य को न डूबने दो। सूर्यास्त से पहले ही अुसके पास चले जाओ और अुससे बातचीत कर लो।' मेरे लिअे तो ये वाक्य वेद-वाक्य से कम कीमती नहीं हैं। यही अहिंसा की जड है। सच्ची बात तो यह है कि अहिंसा को हिंसा के मुंह में चले जाना है। अगर आपके दिल में यह है कि सरदार की तरफ से सुभाष बाबू को अन्याय हुआ, नरीमान के साथ अन्याय हुआ, खरे के साथ अन्याय हुआ, तो में कहता हूं, खरे प्रकरण, नरीमान प्रकरण में, दोष मेरा है। मैं सरदार को बचाने के लिअे यह नहीं कह रहा हूं। में सच्ची बात कह रहा हूं। लेकिन अब तो वह अप्रस्तुत है। मैं सत्यार्थी, सत्यवादी, सत्याग्रही, ये सब विशेषण अपने लिअे लगाता हूं। अिसलिअे में जानबूझ कर अन्याय करनेवाले का साथ नहीं दूंगा। लेकिन आपके दिल में अगर सरदार के प्रति कुछ है तो आपको चाहिअे कि अुनसे जा कर पूछें। अुनकी सफाई से सन्तोष न हो और आपके दिल में कुछ खटकता रहे तो आपका धर्म हो जाता है कि सरदार को आप संघ में से मुक्ति दे दें। अिस से वे गांधी सेवा संघ के मिट नहीं जाते। मैंने कॉंग्रेस से मुक्ति ली तो कॉंग्रेस की सेवा पहले से अधिक की। यदि आपने सरदार को संघ से मुक्त कर दिया तो आप अुनके बैरी बन गये, या वे आपके बैरी बन गये, अैसी बात नहीं है।

मैं जो सरदार के लिअे कहता हूं वह सब के लिअे कहता हूं। अपने यहां आप्पा पटवर्धन हैं। वे बडे गणितशास्त्री हैं। गणित से वे चर्खे का यंत्र और अिस्तेमाल करने का तरीका सूक्ष्मता से दिखा सकते हैं। अुन्हें चर्खे में श्रद्धा भी है, खादी को भी मानते हैं, अहिंसा में भी विश्वास रखते हैं। लेकिन, मान लीजिये कि अुनके मन में शंका अुत्पन्न हो गयी है। अुनका सदस्यों की सच्चाअी पर से विश्वास अुठ गया है। तो क्या अुन्हें संघ में रहना ही चाहिअे? अथवा, क्या यह जरूरी है कि वे संघ के सदस्य नहीं हो सकते अिसलिअे वे संघ के सदस्यों की तरह सेवा ही न करें? और वे संघ के सदस्य नहीं हो सकते अिसलिअे क्या वे हमसे से बुरे आदमी हैं? लेकिन, जब परस्पर अविश्वास उत्पन्न हो जाय, तो कोअी संघ नहीं बन सकता। जब तक हमारा दिल अैसा मानता है कि संघ का कोअी आदमी जानबूझ कर बुरा कार्य नहीं करेगा तभी तक हमारा मार्ग सरल रहेगा। अगर हमारे दिल में अैसा कोअी शक पैदा हो ही जाय तो हमें अेक दूसरे

से सफाओी मांगनी चाहिओे। मेरे कहने का मतलब यह नहीं है कि जो अिस तरह सरदार के बारे में शंका करते हैं वे गंदे हैं और सरदार भले हैं। मैं अैसी बात अपनी जबान से नहीं निकालूंगा। मैंने तो सिर्फ रास्ता बताया। सरदार तो खुद ही कह रहे हैं कि यदि मेरे बारे में शंका हो तो मैं संघ में क्यों रहूं? आप जानते होंगे कि कुछ दिन पहले सरदार और जमनालालजी के बीच कुछ तनातनी और बोलचाल हो गयी। जमनालालजी ने कहा कि मैं संघ में से चला जाता हूं। सरदार ने कहा कि अुन्होंने तो संघ बनाया है वे क्यों जायँ? मैं जाता हूं। दोनों कहने लगे कि हमें छुट्टी दे दीजिये। हम काम करते रहेंगे। न वे गये और न ये गये। क्योंकि दोनों के दिल में अेक दूसरे के खिलाफ कुछ था ही नहीं। जो कुछ समझफेर था वह चला गया। कोओी वैमनस्य का सवाल तो था ही नहीं। अिसी तरह आज भी सरदार कह रहे हैं कि मुझे मुक्ति दे दो। हमारे दिल में अगर अुनके लिअे शक रह जाता है तो अुसे रफा करना चाहिअे। अगर ज्यादह आदमियों के दिल में शक रहे तो सरदार को निकल जाना चाहिअे।

मेरे जीवन का परम धर्म

लेकिन अेक भी आदमी के मन में किसी सदस्य के लिअे अविश्वास नहीं रहना चाहिअे। जब तक ये चीजें छोटे पैमाने पर हैं तब तक वे महत्त्व की नहीं दीखतीं। लेकिन बडे पैमाने पर ये बातें पैदा हो जायँ तो संघ ही नहीं रह सकता। तब तो यह नतीजा निकालना पडेगा कि अिस युग में सत्याग्रहियों का और अहिंसावादियों का कोओी संघ ही नहीं बन सकता। लेकिन मेरा तो यह दावा रहा है कि सत्यवादियों का संघ तो बिलकुल सरलता से बन सकता है। मैंने तो अपने जीवन में सत्य और अहिंसा को सामुदायिक धर्म बनाने की ही विशेष चेष्टा की है। अगर हमारी संस्था में परस्पर अविश्वास बडे पैमाने पर पैदा हो जाय तो पचास वर्ष के बाद भी यदि मुझे कहना पडे कि सत्यवादी और अहिंसावादियों का कोओी संघ नहीं बन सकता तो मैं कहूंगा—में निर्लज्ज हो कर कहूंगा कि पचास वर्ष के बाद मुझे यह अनुभव हुआ कि जो खास चीज़ मैंने अपने जीवन में निकाली वह संघ के रूप में नहीं चल सकती। अुसमें संगठित होने की शक्ति नहीं है। फिर तो अिस संघ को मिटा देना होगा। लेकिन आज तो मेरा दिल आशा से भरा पडा है। मैं सत्य और अहिंसा को संगठित रूप देना ही अपने जीवन का परम धर्म मानता हूं।

अब **देव** का पहला प्रश्न आ जाता है। वही मुख्य प्रश्न है।

रचनात्मक कार्य और अहिंसा

प्रश्न ७ वाँ–रचनात्मक कार्य और अहिंसा का घनिष्ट संबंध किस प्रकार है यह कृपया समझाअिये।

उत्तर–अगर रचनात्मक कार्य का अहिंसा से घनिष्ट संबंध नहीं है तो दुनिया में दूसरी किस चीज़ का हो सकता है? हिन्दू-मुस्लिम अैक्य, अस्पृश्यतानिवारण, मद्यनिषेध, और चौथा चरखा। पहिली तीन बातों का अहिंसा से जो संबंध है वह तो बिलकुल स्पष्ट ही है। कोओी अहिंसावादी अेक क्षण के लिअे

भी किसीको अस्पृश्य कैसे मान सकता है? शराब से अपनी बुद्धि को भ्रष्ट कैसे कर सकता है? मुसलमानों से या दूसरे धर्म वालों से बैर कैसे कर सकता है? जब तक ये चीजें नहीं होंगी तब तक सामुदायिक सत्याग्रह नहीं हो सकता। यह चीज़ मेरे लिअे है और सुभाष बाबू के लिअे भी है। अिन शर्तों के बिना सुभाष बाबू भी सत्याग्रह नहीं करा सकते।

मंत्र में शक्ति की भावना

अब रहा चरखा। मेरे लिअे तो चरखा अहिंसा की प्रतिमा है। अुसका आधार, जैसा कि मैं कह चुका हूं, संकल्प है। रामनाम की भी वही बात है। रामनाम में कोअी स्वतंत्र शक्ति नहीं है। वह कोअी कुनैन की गोली नहीं है। कुनैन की गोली में स्वतंत्र शक्ति है। अुसमें कोअी विश्वास करे या न करे। वह 'अ' को मलेरिया हुआ तो भी काम देती है और 'ब' को हुआ तो भी काम देती है। जहां जहां मलेरिया के जन्तु हों वहां वहां वह अुनका क्षय करती है। रामनाम में अैसी स्वतंत्र शक्ति नहीं है। मंत्र में शक्ति संकल्प से आती है। गायत्री मेरे लिअे मंत्र है। अुसमें मैंने अपने मोक्ष का संकल्प किया है। मुसलमान के लिअे अुसका कलमा मंत्र है। मैं कलमा पढ़ूं और अेक मुसलमान कलमा पढे अिसमें बहुत बडा फरक है। मुसलमान कलमा पढे तो वह अेक अनोखा आदमी बन जाता है। क्योंकि अुसने अुसमें अपने मोक्ष का संकल्प किया है।

राष्ट्रीय संकल्प की प्रतिमा

चरखे में अैसी कोअी स्वतंत्र शक्ति नहीं कि वह आपको स्वराज्य दे। लेकिन अगर मैं अिस संकल्प को लेकर बैठ जाता हूं कि मैं चरखे की मार्फत अहिंसा के पाठ पढ़ूंगा, मैं अुससे स्वराज्य लूंगा तो चरखा मेरे लिअे स्वराज्य का साक्षात साधन बन जाता है। गांधी सेवा संघ में चरखे को जो स्थान मिला है वह सिर्फ अिसलिअे नहीं कि गरीबों को दो पैसे मिलेंगे। केवल आर्थिक दृष्टि से आध घण्टा सूत्रयज्ञ की क्या जरूरत है? और अुसमें मौन की भी क्या जरूरत है? आध घण्टा कातने से आप कितनासा सूत निकाल लेंगे? १९२० में राष्ट्र ने अहिंसक अुपायों से स्वराज्य लेने का संकल्प किया। अुस संकल्प की शक्ति से हमने चरखे को भर दिया है। तब से यह सिलसिला चला आ रहा है। अुस संकल्प के अधीन हो कर हम यहां चरखा चलाते हैं। अिस तरह चरखा प्रजा के संकल्प की-हिन्दू-मुसलमान, गरीब-अमीर, बच्चे और बूढे, सब के संकल्प की-प्रतिमा है। अिससे ज्यादा घनिष्ट संबंध आपको क्या बता सकूं? जब तक घर घर चरखा न हो, संपूर्ण शराब बन्दी न हो, जब तक हिन्दू-मुसलमानों की अेकता न हो, और अस्पृश्यता का पूरा पूरा नाश न हो तब तक सारे हिन्दुस्तान का अेक सामुदायिक सत्याग्रह, जो सुभाष बाबू के दिल में है, और जो मेरे दिल में भी है, हम नहीं कर सकते। तब तक हम सिव्हिल ना-फरमानी के लायक नहीं बन सकते।

सविनयभंग का अधिकार

सविनयभंग करने का अधिकार तभी आयेगा जब हम अपने बनाये कानून, अपनी खुशी से पालेंगे। आज मुझे अैसा नहीं लगता कि मैं देव से कहूं कि कोल्हापुर में सत्याग्रह करो, रामचन्द्रन् से कहूं त्रावणकोर में करो और राधाकृष्ण से कहूं कि जयपुर में सत्याग्रह शुरू

कर दो। दो महीने पहले तो मैं अुन्हें अिजाजत देने को तय्यार था। दो महीने पहले जो बातें मुझे भद्दी नहीं लगतीं थीं वे आज लगती हैं। अिसलिअे मैंने जमनालालजी को परवानगी दे दी थी। लेकिन आज कुछ चीजों का नया वजन और नयी कीमत मेरे दिल में आ गयी है।

राजकोट की प्रयोगशाला

ये चीजें मुझे राजकोट की प्रयोगशाला में मिलीं। अुस प्रयोग में से जो बडी शक्ति मुझे मिली अुसके बहुत मधुर परिणाम निकले। राजकोट की बातों का बयान करके मैं आपको हंसा सकता हूं। वहां जो शक्ति मुझे मिली अुसके मधुर रस का घोंट ले रहा हूं। वायुमण्डल पर मेरा काबू आ रहा है। मेरा काम सरल हो रहा है। मैं ज्यादा आदमियों से काम नहीं ले सकता। क्योंकि मैं सख्त हो गया हूं। पर मुझे क्या पर्वाह है कि मुझे राजकोट में पांच ही आदमी मिलें? अुन्हींकी मदद से मैं काम को अन्जाम दे दूंगा। पांच हों तो अुन्हींको ले कर लडाअी शुरू कर सकता हूं। बीस के साल में मैंने कह दिया था कि अगर अेक भी सच्चा सत्याग्रही मिल जाय तो काम शुरू कर सकते हैं। और अवश्य विजय पावेंगे। अिसके साक्षी शायद वल्लभ भाअी होंगे। मेरी चेष्टा अैसा सत्याग्रही बनने की है।

मेरी शक्ति कैसे बढ रही है?

जब रौलेट अैक्ट की बात आ गयी तब मैंने कहा अिस पर अिलाज तो है। लेकिन मैं अकेला तो नहीं कर सकता। क्योंकि मैं अपूर्ण सत्याग्रही हूं। चन्द आदमी आ जायँ तो कुछ कर लूं। तब वह शंकरलाल आ गया, हॉर्निमन, सरोजिनी, जमनादास द्वारकादास, और–वह बेचारा मर गया, अुमर सोबानी–वह भी आ गया। अिन सब का सहयोग मिला। अैसा अेक 'शंभुमेला' बन गया। फिर भी अुसने सारे हिन्दुस्थान को जगाया और मेरी शक्ति को बढाया। सब लोगों की तरफ से मुझे गर्मी चाहिअे, सहायता चाहिअे। सबकी सहायता लेने और संगठन करने की कोशिश में अपनी शक्ति को मैं बढा रहा हूं। आत्मनिरीक्षण की मेरी शक्ति बढ रही है। मैं बडा स्वार्थी आदमी हूं। मैं आपको वक्त दे कर आपका निरीक्षण नहीं करता। मैं अपने वक्त की काफी कीमत करता हूं। अगर मैं समझूं कि आपको वक्त देकर मैं अपना कोअी फायदा नहीं करता तो अैसी आत्महत्या मैं नहीं करूंगा। जब यह मैं देखता हूं कि आपको वक्त दे कर मैं कुछ पाता हूं तभी वक्त देता हूं। आप कुछ पाते हैं या नहीं अिसकी दरकार मुझे नहीं है। मैं तो सिर्फ अितना ही देखता हूं कि मैं कुछ पाता हूं या नहीं। कहीं मेरा पतन तो नहीं हो रहा है? आपको फुसलाने के लिअे मैं वक्त नहीं देता। मैं तो अपनी शक्ति को बढाता हूं। और अिस तरह मेरी शक्ति बढती ही गयी। भले ही मैं सत्तर बरस का बूढा हो गया हूं। मेरी शक्ति क्षीण नहीं हुअी है। मैं अपनी जिम्मेवारी को समझता हूं। जिस प्रतिज्ञा को ले लूंगा अुसे पूरी करूंगा। फिर अकेला भी रह जाअूं तो क्या? ट्रान्सवॉल में मैंने अैसा ही किया। मैंने प्रतिज्ञा कर ली कि मैं अकेला भी रह जाअूं तो अिस ट्रान्सवॉल सरकार से लडूंगा और विजय पाअूंगा। अुस वक्त सत्याग्रह का जन्म भी

नहीं हुआ था। करोडों लोगों का संगठन अिस तरह संकल्पमात्र से हो जाता है। मेरे पास अिसके बहुतसे सबूत पडे हैं। जब ६ अप्रैल की हडताल का निश्चय हमने कर लिया तब क्या हुआ? कोअी संगठन नहीं किया था। लेकिन हिन्दुस्थान के कोने कोने में अुपवास और हडताल हुअी। वहीं से हिन्दुस्तान के स्वराज्य का जन्म हुआ। संकल्पमात्र से अितना काम हुआ। लेकिन रचनात्मक कार्य की तालीम न होने से वह चल न सका। जबतक आपके नजदीक रचनात्मक काम की अितनी कीमत नहीं होगी कि अुसके सिवा सविनयभंग चल ही नहीं सकता तबतक आपको निराशा ही होगी। रचनात्मक काम में दिन भले ही लग जायँ लेकिन दूसरा रास्ता नहीं है।

रचनात्मक काम के बिना हम सविनयभंग को अंजाम नहीं दे सकते। अुसके बिना अहिंसक वातावरण पैदा ही नहीं हो सकता। मेरे काम करने का यही तरीका रहा है। अिसलिअे जब सुरेन्द्र गुजरात में चला गया तब मैंने अुससे कहा कि अगर तुम्हारी सेवा कोअी न चाहे, तुम्हारे पास कोअी न आवे, तो तुम्हारे पास चरखा तो पडा है न? चौबीस घण्टे वही चलाओ। संकल्पपूर्वक चरखा चलाओगे तो अुसीसे सेवा होगी। मुझे अुसमें कोअी शंका नहीं है। मेरा तो विश्वास दिन प्रति दिन दृढ और दृढ ही होता जाता है।

— २ —

ता० ६ मअी, १९३९

गांधीजी–अभी मेरे पास दो चार कागज हैं। अध्यक्ष ने मुझे दिये हैं। अुनमें से अेक **अप्पा साहब पटवर्धन** का है मैं अुनके प्रश्न पहले लेता हूं।

जीवन-वेतन के सिद्धांत पर अमल

प्रश्न १ ला– जीवन–वेतन के सिद्धान्त पर अमल करने की कोशिश सदस्य किन मार्गों से कर सकते हैं?*

उत्तर– जो मार्ग नीति के विरुद्ध नहीं अैसे हर अेक मार्ग का प्रयोग करने में दोष नहीं है। अेक मनुष्य जीवन–वेतन के लिअे बढअी का काम करता है। अुसमें से पंद्रह रुपया कमा लेता है। या धुनने का काम कर सकता है, सिलाअी का काम कर सकता है। गांधी सेवा संघ का सदस्य अैसा ही धंधा चुनेगा कि जिससे हजारों लोग पैसे पाते हैं। हाथ और पैरों से काम कर के

* गांधीजी के जबाब से मालूम होगा कि सवाल को समझने में अुनकी थोडी गतल समझ हुअी है। श्री अप्पा का सवाल यह था कि जीवन-वेतन, यानी योग्य निर्वाह के लिअे जो कम से कम मजदूरी देना हम जरूरी समझते हैं, अुसे सदस्य किस तरह अमल में लावें? गांधीजी ने जीवन–वेतन के मानी समझे अपना जीवन–निर्वाह करने के लिअे वेतन प्राप्त करने का योग्य तरीका। फिर भी, अुनका अुत्तर वे आज किस प्रकार के सेवक चाहते हैं, अुसका खयाल देनेवाला होने से काम का है। —सं०

आजीविका कमाते हैं। लेकिन वह सिर्फ आजीविका के लिअे ही काम नहीं करेगा। वह आजीविका कमानेवालों के कष्ट को तो मानता है, और जानता है। परंतु स्वयं आजीविका तो पाता है और सेवा भी करता है। अिन धंधों के अलावा शिक्षण में से भी सदस्य जीविका मिला सकते हैं। जिसकी हाजत बडी है और जो अप्पा जैसा गणित जानता है वह प्रोफेसरी भी कर सकता है। पर मेरे नजदीक यह तो कुछ अपवाद-सा हो जाता है। जिनमें हाथ-पैरों से काम करना पडता है अैसे धन्धों से जीविका कमाना में ज्यादा अच्छा समझता हूं।

'ट्रस्टीशिप' का सिद्धान्त

प्रश्न २ रा– आपका ट्रस्टीशिप का सिद्धांत या तो मेरी समझमें नहीं आता या मेरी बुद्धि अुसे मंजूर नहीं करती। कृपया अुसे समझाअिये।

उत्तर– समझ में नहीं आता या बुद्धि मंजूर नहीं करती, दोनों चीजें अेक ही हैं। अितना बडा सिद्धान्त में दो चार मिनिट में क्या समझाअूं? फिर भी थोडे में समझाने की कोशिश करता हूं। मान लो मेरे पास अेक करोड रुपये हैं। अुन्हें या तो में स्वेच्छाचार में अुडा दूं यह अेक वृत्ति हुअी। या में यह समझूं कि ये मेरे नहीं हैं। मैं अुनका मालिक नहीं हूं। विरासत में ये मेरे पास आगये हैं। अीश्वर ने दिये हैं। अिनमें से अुतने ही मेरे हैं जितनी मेरी हाजत है। मेरी हाजत भी अुतनी ही होनी चाहिअे जितनी कि करोडों की है। मैं धनिक का लडका हूं अिसलिअे मेरी हाजत बडी नहीं हो सकती। मैं मौजशौक में पैसे नहीं अुडा सकता। जो मनुष्य अपने समाज में प्रचलित साधारण आवश्यकता के लिअे जरूरी हो अुतना ही लेता है और शेष पैसे सेवाकार्य में खर्च करता है, वह ट्रस्टी बनता है।

हिन्दुस्थान में जब समाजवाद का प्रचार हुआ तब से यह सवाल अुठने लगा कि 'जो राजा हैं, करोडपति हैं, अुनके प्रति हमारा क्या व्यवहार हो?' समाजवादी कहते हैं कि राजाओं को और करोडपतियों को मिट जाना है। सब को मजदूर बन जाना है। अुनकी सब की संपत्ति कानून से छीन ली जायगी और पांच रुपया से आठ आना रोज, या पंद्रह रुपया महावार, जो दूसरे मजदूरों को मिलेगा वह अुन्हें भी मिलेगा। यह समाजवादियों की मान्यता रही। यह तो हम भी कहते रहे हैं कि धनिक धन के मालिक नहीं हैं। मजदूर अपने श्रम का मालिक है। अिसलिअे हमारे मत से भी वह पैसेवाले धनिकों से बडा धनिक है। जमींदार अेक, दो, या दस बीघों का मालिक माना जा सकता है। यानी अुतनी जमीन का मालिक माना जा सकता है जितनी अुसकी जीविका के लिअे जरूरी हो। हम भी यह चाहते हैं कि अुसकी रोजी मजदूर से अधिक न हो। वह भी आठ आने रोज पर गुजर करे और शेष संपत्ति का अुपयोग जनता के कल्याण के लिअे करे। लेकिन हम जबरदस्ती अुसकी संपत्ति नहीं छीनेंगे। यही मुख्य बात है। चाहते तो हम भी यही हैं कि राजा और धनिक भी शरीरश्रम करें और आठ आना रोज में अपना काम चलावें। शेष संपत्ति राष्ट्र का ट्रस्ट (थाती) समझें।

अैसे कितने होंगे?

यहां दूसरा प्रश्न यह अुत्पन्न हो सकता है कि अैसे ट्रस्टी कितने हो सकते हैं। दरअसल यह प्रश्न अुठना नहीं चाहिअे। हमारे सिद्धान्त

से अिसका सीधा संबंध नहीं है। अैसा ट्रस्टी चाहे अेक ही हो–या अेक भी न हो। अिसकी चिन्ता हम क्यों करें। हमारी यह श्रद्धा होनी चाहिअे कि हम हिंसा के बिना, या अितनी कम हिंसा से कि जो हिंसा ही नहीं कही जा सकती, धनिकों के अन्दर यह भाव पैदा कर सकते हैं। अुस श्रद्धा पर हमें अमल करना चाहिअे। अितना हमारे लिअे काफी है। हमें अपनी कोशिश से जगत को यह दिखा देना चाहिअे कि हम अहिंसा से आर्थिक असमानता मिटा सकते हैं। अैसे ट्रस्टी कितने होंगे यह सवाल तो अुनके लिअे अुठता है जो अहिंसा में नहीं मानते।

आप यह भले ही कहें कि यह बात बन नहीं सकती, या आप अुसे मनुष्य स्वभाव के विरुद्ध समझते हैं। लेकिन यह कहना कि यह बात समझ में नहीं आती या बुद्धि में नहीं बैठती मैं नहीं समझ सकता।

वर्णधर्म का आचार

प्रश्न ३ रा–वर्णधर्म के बारे आपके विचार मुझे बिलकुल पसन्द हैं। लेकिन अुनपर अमल कैसे किया जाय, यह बहुत जटिल सवाल है। अिसका कुछ खुलासा हो।

उत्तर–'आज तो वर्णसंकर हो गया है। वर्णों का नाश हो गया है। अैसी हालत में वर्ण को जो मानते हैं वे किस तरह चलें?' यह अिस सवाल का मतलब है। आज तो अेक ही वर्ण है। अुसे शूद्र वर्ण कहो। अतिशूद्र तो हम नहीं कह सकते, क्योंकि हम अस्पृश्यता को नहीं मानते। हम पांचवा वर्ण ही नहीं मानते। तो चौथा वर्ण शूद्र ही रह जाता है। हम सब अपने को शूद्र मानें। फिर कोअी श्रेष्ठ-कनिष्ठ या अूंच-नीच नहीं रह जाता। द्वेष और भेदभाव का अपने आप बिलकुल क्षय हो जाता है। आज के वायुमण्डल के अनुकूल यही बात है। आज ब्राह्मण तो दुर्लभ हैं। अैसा ज्ञान किसके पास है जो अपूर्व हो और जगत का कल्याण करनेवाला हो? और अैसा आदमी कहां है जो अुस ज्ञान के लिअे कुछ भी न लेता हो? क्षत्रिय तो हिन्दुस्थान में हैं ही नहीं। अगर होते तो देश परतंत्र होता ही नहीं। अुच्च कोटि का ज्ञान और अुच्च कोटि का शौर्य या क्षात्रतेज रहे तो हिन्दुस्थान की आज की हालत ही न रहे। अब रहे वैश्य। वणिकधर्म वर्णधर्म है। केवल पैसे कमाने का पेशा नहीं। वह अधिकार नहीं, धर्म है। अुनको अपने धन का अुपयोग समाज के लिअे करना चाहिअे। अनेक धंधे जो वणिक करते हैं अनीति से भरे हैं। बहुत अधिक पैसा कमाना भी अनीति है। वर्ण धर्म में तो अिनमें से बहुत-से धंधे आ ही नहीं सकेंगे। अिसका अर्थ यह हुआ कि आज वैश्य भी नहीं हैं। कुछ धनलोभी पेशेवाले हैं। अिस तरह ये तीन तो गये। अब रहे शूद्र। अुनके पास ज्ञान नहीं है। वे अपने को गुलाम समझते हैं। ज्ञानपूर्वक सेवा का कार्य नहीं करते। यानी दर असल तो शूद्र भी हिन्दुस्थान में नहीं हैं। यानी चारों में से अेक भी वर्ण जिन्दा है अैसा नहीं कह सकते। फिर भी जब हम वर्णधर्म को माननेवाले हैं तो सेवाधर्म को मानें। शूद्र-धर्म को ग्रहण करें। अिसका मतलब यह नहीं कि हम ज्ञान का त्याग करें। अुच्च ज्ञान जितना मिल सकता है मिलावें। सच्ची वीरता, याने निर्भयता जितनी ला सकते हैं लावें। व्यापार और अुद्योगधंधे जितने बढा सकते हैं बढावें। यह सब धार्मिक दृष्टि से

और सेवाभाव से करें तो संभव है कि हम में से सच्चे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य पैदा हों। और फिर भी अुनमें कोअी श्रेष्ठ-कनिष्ठ-भाव या परस्पर द्वेष न हो। अैसा करें तो आअिन्दा कुछ हो सकता है। जब अैसा वर्णधर्म आयेगा तब,आज साम्यवाद, समाजवाद, काँग्रेसवाद, गांधीवाद, जातिवाद, आदि के नाम से जो झगडे चलते हैं वे सब मिट जायेंगे।

अब **बाळूभाअी** के कुछ प्रश्न हैं।

लोगों के सहयोग की कसौटी

प्रश्न ४ था–जब श्री. ठकार और मैंने ग्रामसेवा शुरू की अुस वक्त गांधीजी ने अेक महत्त्व की शर्त यह बतायी थी कि जिस देहात की सेवा तुम करना चाहते हो वहां के लोग तुम्हारी सेवा चाहते हैं अिस के सबूत में वे तुम्हें रहने के लिअे मुफ्त में जगह दें। अब अिससे आगे बढ कर मैं यह शर्त लगाना चाहूंगा कि ग्रामसेवक को वहीं जाना चाहिअे कि जहां के लोगों को अपने गांव के सुधार की लगन हो और अुस कार्यकर्ता के विविध कार्यक्रमों में गांव के अगुआ मौका आने पर खुद शारीरिक मिहनत और गांठ का पैसा लगाने के लिअे तय्यार हों। जहां गांव के मुखियों का सहयोग न हो वहां कार्यकर्ता चाहे कितने ही दिन क्यों न रहे, कोअी सुधार नहीं कर सकता। मैं जानना चाहता हूं कि मेरी यह राय कहां तक सही है।

उत्तर–बाळूभाअी और ठकार जैसे और भी सेवक महाराष्ट्र में पडे हैं। पहले जब अुन्होंने काम शुरू किया तब वे आशावादी थे। लेकिन आज वे कहते हैं कि हम कितना भी करें वहां पर अितना जहर फैलाया गया है कि गांधीटोपीवालों का तिरस्कार किया जाता है। गांधीटोपीवाले की सेवा का भी त्याग किया जाता है। अैसी हालत में निराशा हो सकती है। कअी वर्ष पहले बाळूभाअी और ठकार काम शुरू करने की बात मुझसे पूछने आये थे। मैंने अुन्हें अेक परीक्षा बतलाअी थी कि गांव के लोग हमें कम से कम झोंपडी का सामान दे दें तो हम समझें कि वे हमारी सेवा चाहते हैं। अब बाळूभाअी अितनी शर्त काफी नहीं समझते। वे कहते हैं कि अिससे आगे कुछ शर्त रक्खें। मैं अिससे आगे बढने को तैय्यार नहीं हूं। यह कोअी ज्यादह से ज्यादह शर्त नहीं है। गांव-वाले अगर हमें खाने को भी दे दें तो मेरी तरफ से क्या हर्ज है? मैंने अितना ही कहा कि हमारे लिअे कम से कम शर्त क्या होनी चाहिअे। हम अुसको ज्यादह से ज्यादह समझ लें। अुससे आगे बढने की जरूरत नहीं।

शेगांव में मेरे साथ अैसा ही हुआ। मैंने लोगों से पूछा, 'क्या मैं शेगांव में आ जाअूं?' मुझे जमीन तो जमनालालजी ने दे दी। हमारे लोग तो बडे विवेकी होते हैं। अुन्होंने बडी अदब से मुझसे बातें की। लेकिन जो कहना था सो कह दिया। अेक बूढा मेरे पास आ गया और अुसने मुझसे कहा कि 'आप शेगांव में आ सकते हैं। बडी कृपा होगी। पर हम मन्दिरों में अस्पृश्यों को नहीं जाने देंगे। अैसी कोअी आशा आप हमसे न करें'। तो भी मैं वहां गया और रह गया। लोग हमको रहने के लिअे जगह दे दें अितनी शर्त पूरी होने पर हमारे पास निराशा जैसी चीज नहीं होनी चाहिअे।

अखबारी जहर का अिलाज

जहर कहां तक ठहरने वाली चीज है? अखबारवाले लिखते हैं कि गांधीवादी, मैं और सरदार अैसे हैं और वैसे हैं।

अगर हम सचमुच वैसे हैं तो अुनका लिखना ठीक है। हमें सारी बातें कबूल कर लेनी चाहिअे। अगर हम अितने बुरे हैं तो लोग हमारी सेवा क्यों लें? वे हमारे हाथों से दवाअी भी नहीं लेंगे। डरेंगे कि कहीं हम दवा में भी जहर दे दें तो। अगर दवाअी के पीछे कोअी मलिन हेतु होता है तो वे कहेंगे कि हमें तुम्हारी दवा भी नहीं चाहिअे, अुससे मरना भी बेहतर है। अगर कोअी मेरी सेवा करने आता है पर दिल में यह अिच्छा रखता है कि अन्त में मुझे मार डाले, तो अैसे आदमी का विश्वास मैं नहीं करूंगा, और कह दूंगा तुमपर मेरा विश्वास नहीं है। अगर लोगों के दिल में हमारे बारे में अैसा ही वहम है तो हमें सच्ची सेवा द्वारा अुसे दूर करना चाहिअे। लोगों में यह विश्वास पैदा करना चाहिअे कि हम सेवा ही करना चाहते हैं। कोअी नुकसान करना नहीं चाहते। लोगों का विरोध देख कर अगर हम निराश हो कर चले जाते हैं तो हम लोगों को अपनी परीक्षा भी नहीं करने देते। जब पडे रहेंगे तभी तो परीक्षा होगी। लोग हमारी झोंपडी जला दें फिर भी हम पडे रहें तो भ्रम हट जायगा। जब लोग देखेंगे कि हम अिसकी झोंपडी जलाते हैं, मारते पीटते हैं, गालियां देते हैं, पानी बंद कर देते हैं, तो भी यह कुछ भी नहीं करता, तो अुन्हीं को पश्चात्ताप होगा।

हमारे बारे में अखबारवाले मनमानी बातें लिखते हैं, लेकिन अिसकी हमें शर्म क्यों होनी चाहिअे? हां, जितनी बात सच अुतनी के लिअे शर्म होनी चाहिअे। और अुसे दूर करने की कोशिश करनी चाहिअे। अगर हम अैसे खराब नहीं हैं तो हमें चिन्ता क्यों हो? अगर हममें खराबी है तो अुसे कबूल करने में भी डर क्यों हो? अगर 'विविधवृत्त' में लिखा है कि अमुक शराबी है, अैसा है, वैसा है, तो अुसमें से जितनी बात सही है अुतनी कबूल कर लें। हमें कह देना चाहिअे कि 'हां, रात को चुपचाप अेक प्याली शराब पी लेता हूं। कभी कभी थोडासा व्यभिचार भी कर लेता हूं'। हम अपने अपराधों को कबूल कर लेंगे, या समझ लेंगे तो सुधर भी सकते हैं। लोगों से कह देना चाहिअे कि 'ये दोष मुझमें हैं। धीरे धीरे सुधर जाअूंगा'। पर वहां से भाग तो जाना ही नहीं चाहिअे। भाग जाना तो हमारी किताब में हो ही नहीं सकता। सत्याग्रही अपना धर्म अिस तरह पाल ही नहीं सकेगा। अगर हमारी श्रद्धा संपूर्ण है तो निराशा का कोअी कारण नहीं।

तब वहां रह कर आजीविका के लिअे क्या प्रबंध करें, यह सवाल आप पूछ सकते हैं। यह वही सवाल है जो अप्पा ने पूछा। आप कुछ मिहनत-मजदूरी करें। रास्ता साफ करें, या दूसरा कोअी काम करें। चार छः पैसा मिले तो अुसीपर गुजर करें। पैसे के बदले दालचॅावल मिले तो अुसीको खाकर काम चलावें। गांधी सेवा संघ से हमेशा पैसे मिलते रहेंगे अैसा नहीं। अिसमें देह गिर जावे तो क्या? जिसने पक्का निश्चय कर लिया है वह जो कष्ट आ पडे अुसको बरदाश्त कर लेगा तो अुस निराशा में से भी आशा पैदा हो जायगी।

अिसके बाद का सवाल **अच्युत देशपांडे** का है:

देशी राज्य की प्रजा में फिरकेबन्दी

प्रश्न ५ वां–देशी राज्यों में जब कोअी फिरका अपने को विजेता या राजा की जाति का मान कर प्रजा के न्याय्य आन्दोलन का न केवल विरोध ही करता है बल्कि अुसे दबा देने में सरकार की मदद करता है और आन्दोलन करने वालों पर हिंसामय आक्रमण भी करता है, तो अुस फिरके के प्रति भी प्रजा का रुख अुसी प्रकार का हो जाता है जैसा कि अुस सरकार के प्रति। क्या यह स्वाभाविक नहीं है? अिस प्रकार प्रजा के दो अंशों में जो दुराव पैदा हो अुसे कैसे मिटायें? क्या कुछ समय के लिअे अिस सवाल की तरफ ध्यान ही न देना व्यवहार्य न होगा? क्या अैसा मानने में कोअी दोष है कि अिस सवाल को छोड देने से ही वह आसानी से हल होगा?

उत्तर– मैं यह प्रश्न पूरा पूरा नहीं समझ सका। लेकिन जितना समझा हूं अुसका अुत्तर आज हमने दो तीन दिन से जो चर्चा की अुसमें आ गया है। मैंने सत्याग्रह का आन्दोलन देशी राज्यों में बंद कर दिया है और हिन्दुस्थान भर में शुरू करने की मेरी हिम्मत नहीं होती, अिसका कारण यही है। जहां द्वेष का और हिंसा का वातावरण पैदा होने का डर हो वहां हमारा यह धर्म हो जाता है कि हम अपना आन्दोलन न करें। क्योंकि वह चलेगा नहीं। अुससे गलत फहमी पैदा हो जायगी। लोग गलत रास्ता पकड लेंगे। हमारे अकेले के अहिंसक रहने से काम पूरा नहीं होगा।

अेक अुदाहरण लीजिअे। मैं शेगांव में रहता हूं। मान लीजिये, वहां अेक सांप है। मुझे तो सांप का डर नहीं। लेकिन मेरे आसपास के लोग डरते हैं। तो अुन्हें निर्भय करने के लिअे मुझे सांप को वहां से हटाना होगा और अुसे अैसी जगह रखना होगा जहां लोगों को अुसका डर न लगे। समझ लीजिये, किसी जगह मरकी (छूत का रोग) हो गयी है। मैं वहां सेवा-शूश्रूषा करने जाता हूं। मैं तो अीश्वर के भरोसे रहता हूं। लेकिन अिसलिअे क्या लोगों के पास भी बिना स्नानादि किये चला जाअूं? लोगों को छूत लगने का डर है। तो, मेरा अहिंसाधर्म तो यह है कि मैं दूसरों के पास स्नानादि करके ही जाअूं। किसी गांव में चेचक की बिमारी फैल जाती है। हम दस-बीस आदमी स्मॉलपॉक्स (चेचक) का टीका लगवाने में नहीं मानते। अिसलिअे टीका नहीं लगवाते। फिर भी, लोगों की सेवा तो करना चाहते हैं। हम मानते हैं कि टीका असफल हो गया है। लेकिन जिनकी सेवा करना चाहते हैं अुनके गावों में बीमारी फैलाना तो ठीक नहीं होगा। अिसलिअे यदि हम लोगों के बीच में रहना चाहते हैं तो हमारा यह अहिंसाधर्म हो जाता है कि हम खुद टीका लगवा लें, या वहां से चले जायँ। अिस बडे धर्म के सामने टीका न लगवाने के छोटे धर्म का लोप हो जाता है। बम्बअी और मद्रास में जो टीके का कानून बना है अुसके बारे में मुझसे पूछा गया। मैंने डॉ. वार्की से कहा कि जो लोग टीका लगवाने में नहीं मानते वे लोग या तो गांव से हट जायँ, या टीका लगवायें। यह अहिंसा का धर्म है। अेक तरह से तो बहुत सीधा है। अेक तरह से अितना सरल नहीं है।

दूसरा अुदाहरण लीजिये। साबरमती में हम अेक छोटासा बगीचा लगा कर बैठे हैं। वानर आ कर उसका नाश करते हैं। अुन्हीं वानरों को लोग खिलाते हैं। अिसलिअे वे वहां रहते हैं। आप मथुरा-वृन्दावन में चले

जाअिये। अितने वानर हैं कि लोग सुख से रह नहीं सकते। लेकिन पास ही कण्टूनमेण्ट है, वहां अेक भी वानर नहीं है। और शहर में तो अितने भरे पडे हैं। अिस तरह से वानरों को खिलाना अहिंसाधर्म नहीं है। वह दूसरे लोगों के साथ अन्याय है।

यही बात हमारे आन्दोलनों की है। हमारे विरोधी ही नहीं बल्कि हमको साथ देनेवाले भी, हिंसा से भरे हैं। दूसरे तो स्वराज्य का निकन्दन ही करना चाहते हैं। अिसका मतलब यह है कि लोगों का सच्चा सहयोग नहीं है। हम स्वराज्य का आन्दोलन करना चाहते हैं तो वे हम पर आक्रमण करते हैं। अैसी हालत में अगर हम सत्याग्रह चलाने की ज़िद करेंगे तो हम स्वराज्य को दूर भगा देंगे। प्रश्न का अुत्तर साफ है। हमारी जो पांच-दस आदमियों की टोली होगी अुसको स्वराज्य छोड देना होगा। हम तो नाश के लिअे तय्यार ही हैं। अिसलिअे हमारा नाश नहीं होगा। अुनके विरोध का नाश होगा। जो लोग स्वराज्य का विरोध करते हैं वे गरीबों का नाश चाहते हैं। अिसलिअे हिंसा की परिस्थिति में आन्दोलन चलाने से अुनका कोअी नुकसान नहीं होगा। गरीबों का सर्वनाश होगा। हम अपने नाश के लिअे तय्यार हैं, गरीबों के नहीं।

यही प्रयोग मैं राजकोट में कर रहा हूं। अिसलिअे मैं कहता हूं राजकोट मेरी लेबॉरेटरी (प्रयोगशाला) बन गयी है। वहां पर आज सत्याग्रह मैंने रोक रक्खा है। बल्कि सविनयभंग कहना चाहिअे। यहां सत्याग्रह शब्द सही नहीं है। आज मैंने हर जगह सविनयभंग रोक रक्खा है और रचनात्मक कार्य पर ही जोर दे रहा हूं। क्योंकि अुसमें यह खतरा नहीं है।

(शेष अगले अंक में)

अहिंसा की यह व्याख्या यदि आपके बूते के बाहर हो, तो आप मुझसे अैसा कह सकते हैं, और अपना मार्ग आप ग्रहण कर सकते हैं। मुझसे बाहर से जितनी सहायता हो सकेगी करता रहूंगा। पर अगर अहिंसा के पथ पर ही चलने का आपने निश्चय कर लिया है तो आपको यह समझ लेना चाहिअे कि संपूर्ण आत्मशुद्धि के प्रयत्न में मर मिटाना, यह अहिंसा की शर्त है। चौबीसों घंटे अहिंसा की स्तुति करनेवाले साधक के रूप में, मैं अिसे अपना धर्म समझूंगा कि अंतर में भरे हुअे दोषों को निकाल कर आप लोगों के समक्ष रख दूं। अैसा करते हुअे आपको मदद देने की मेरी शक्ति हजारगुनी बढ़ जायगी।

—गांधीजी

'हरिजन—सेवक से लाः २३-४-३९

संमेलन-वृत्त

पिछला सम्मेलन

वृन्दावन का सम्मेलन ता. ३ से ८ मओी तक चला। यानी छः दिन ही अधिवेशन हुआ। सम्मेलन में १३२ सदस्य उपस्थित थे। उनके अलावा बहुतसे छोटे-बडे मित्र भी आये थे। विशेषरूप से नीचे के नाम बताने योग्य हैं:- श्रीगण अब्दुल गफ्फारखां, बाळा साहेब खेर, लठ्ठे, बाबू श्रीकृष्ण सिंह, बाबू अनुग्रह नारायण सिंह, बृजकिशोर बाबू, आदि। नजर-बन्द होने के कारण श्री जमनालालजी हाजिर न हो सके।

सम्मेलन में चार दिन तक रोज अेक घण्टा पू. बापूजी बोले। अेक दिन सिर्फ सुना। ता. ८ मौन-दिन होने के कारण, अुपस्थित न हुअे।

पहले दिन के अुनके व्याख्यान का सार-भाग 'हरिजन' में आ चुका है। 'सर्वोदय' में भी पाया जायगा।

महत्त्व की चर्चायें दो विषयों पर हुई। १. सब सदस्य अपना आत्मनिरीक्षण करें और अपनी तथा अपने मातहत या सेव्य संस्थाओं की शुद्धि पर ध्यान दें। पू. बापू ने यहां तक कहा कि अगर संघ की शुद्धि में दोष आया हो तो उसके नियमों में संशोधन कर के वे ज्यादा कडे बनाये जायें, और संख्या घटायी जाय। पू. बापूजी के साथ कार्यवाहक समिति में इसपर विचार किया गया। संघ के विधान की जाँच की गई, और पू० बापूजी समेत सब की राय हुई कि विधान में, संघ के उद्देश्य अथवा सदस्यता की शर्तों में, संशोधन की कोई जरूरत नहीं है। उसके अमल में अगर हम ढीलापन रखते हों, तो वह हमारा कसूर है। तब हम अपने प्रति काफी कठोर बनें, इस दृष्टि से अेक प्रस्ताव का मसौदा बनाया गया। वह नीचे लिखे मुताबिक था:—

"जिस मकसद से इस संघ को बनाया और बढाया गया, उसकी सफलता के लिअे यह जरूरी है कि हरेक सदस्य बारबार अपने दिल को परखे और देखे कि

(१) क्या संघ के सिद्धान्तों पर उसका हार्दिक विश्वास कायम है?

(२) क्या अपनी सदस्यता की प्रतिज्ञाओं और नियमों का पालन करने के लिअे वह जाग्रत है?

(३) क्या उसकी सदस्यता से संघ के सिद्धान्त और इज्जत की रक्षा होती है?

(४) क्या संघ के दूसरे सदस्यों के साथ उसका भ्रातृभाव और आदर बना रहा है?

जो सदस्य इस जाँच में अपनी इस हद तक कमजोरी महसूस करे कि अपने लिअे इन बातों का पालन करना वह नामुमकिन समझे, तो उसका कर्तव्य है कि वह तब तक संघ से हट जाय, जब तक उसके विश्वास की दृढ़ता और दिल की सफाई न हो जाय।"

पू० बापू ने पहले इसे पसंद भी किया। लेकिन, बाद में यह सोचा गया कि इस बात को प्रस्ताव का विषय करने के बजाय प्रवचनों का विषय बनाना ज्यादा ठीक होगा। प्रस्तावों में साधारणतया अेक प्रस्तुत बात को ले कर, उसमें, यह किया जाय, यह न किया जाय, अैसी स्पष्ट सूचनायें देना ज्यादा

उपयुक्त होता है। केवल उपदेशात्मक सूत्रों को प्रस्ताव द्वारा पेश करना ठीक नहीं होता। इसलिये इन बातों पर पू. बापूजी, श्री राजेंद्र बाबू, सरदार वल्लभभाई, श्री सतीश बाबू, डॉ० घोष आदि ने भिन्न भिन्न तरह से जोर दिया। लेकिन कोई प्रस्ताव पेश नहीं किया गया। इसी कारण से श्री मथुरादास भाई पुरुशोत्तम का इसी कोटि का नीचे लिखा प्रस्ताव, उसके सिद्धान्त सबको मान्य होते हुअे भी, प्रस्ताव के रूप में नहीं रक्खा गया। श्री मथुरादास भाई का प्रस्ताव इस प्रकार है:–

"चूंकि अक्सर अैसा देखा जाता है कि व्यक्तिगत और सार्वजनिक कामों को करते हुअे लोग साध्य-प्राप्ति की व्यग्रता में साधन की शुद्धता या अशुद्धता पर ध्यान नहीं देते, और सामने आये हुअे कार्य की शुद्धि के लिअे सचाई छोडने में नहीं हिचकिचाते, इसलिअे संघ के सदस्यों को यह दृढ निश्चय कर लेना चाहिअे कि अच्छे से अच्छे काम को पूरा करने के लिअे भी वे सत्य को नहीं छोडेंगे और साधन की शुद्धता की उपेक्षा नहीं करेंगे।"

इस तरह वैधरूप में सम्मेलन ने नीचे का ही प्रस्ताव स्वीकार किया:—

'इस संघ का मुख्य उद्देश–यानी गांधीजी के सिद्धान्तों के अनुसार रचनात्मक कार्यों के जरिये लोकसेवा करना–सफल करने के लिअे राजनैतिक कार्यों में भी भाग लेना आवश्यक होने के कारण, उनमें हिस्सा लेने की संघ के सदस्यों को शुरू से ही इजाजत रही है। पर चूंकि हमें राजनैतिक काम भी सत्य और अहिंसा की नींव पर ही करना है, इसलिअे संघ के सदस्यों का ध्यान नीचे लिखी स्वयंसिद्ध बातों की ओर आग्रहपूर्वक खींचा जाता है:–

१. सदस्यों को गांधीजी की राजनीति और आदेशों के अनुसार ही चलना चाहिअे।

२. उन्हें स्वयं सत्य और अहिंसा का बारीकी से पालन करना चाहिअे इतना ही नहीं, बरन्, अपने साथ काम करनेवाले दूसरे कार्यकर्ताओं की इसके प्रतिकूल किसी कार्रवाई से किसी प्रकार का लाभ नहीं उठाना चाहिअे, और जहां तक हो सके उनके द्वारा भी पालन कराने का प्रयत्न करना चाहिअे।

३. राजकीय संस्थाओं के चुनावों में संघ के सदस्यों को आपस में होड या विरोध न करना चाहिअे।"

मजदूर-समिति

लेकिन, सम्मेलन के अवसर पर गांधी सेवा संघ की मजदूर-समिति की वार्षिक सभा भी हुई थी। उसने गत साल का अपने काम का रिपोर्ट पेश किया। उसका कुछ ब्यौरा संघ के कार्यविवरण में दिया गया है। सविस्तर रिपोर्ट समिति के द्वारा प्रकट होगी। रिपोर्ट से यह मालूम होता है कि मजदूर-सेवा का काम आगे बढ़ने की बहुत संभावना है; और यह अेक इतना बड़ा काम है कि अेक उपसमिति के द्वारा उसे चलाने के बजाय उस काम के लिअे अेक स्वतंत्र संस्था बना लेना ज्यादा ठीक होगा। संघ इस प्रकार की अेक संस्था है कि जिसमें विशिष्ट सेवा-कार्य की अपेक्षा कुछ मोटे सिद्धान्तों का पोषण करना ज्यादा महत्त्व रखता है। और इस दृष्टि से बिना संघ-मान्य सेवा कार्यों को बंद किये संघ टल जा सकता है। क्योंकि हरेक सेवा कार्य

की अपनी अेक अेक अलग संस्था भी है। उदाहरणार्थ खादी के लिअे चर्खा संघ की, हरिजन सेवा के लिअे हरिजन सेवक संघ की आदि। इसी तरह मजूर-सेवा-कार्य भी स्वतंत्र संस्था के द्वारा चलाने में सेवाकार्य और संघ दोनों को ज्यादा सहूलियत होगी। इसलिअे, पू० बापूजी के साथ भी परामर्श कर के कार्यवाहक समिति ने नीचे का ठहराव किया, और उसे संमेलन में सब की जानकारी के लिअे घोषित किया।

प्रस्ताव

"गांधी सेवा संघ मजदूर-समिति का कार्य विवरण उपस्थित किया गया। उसके मजदूर-सेवा के कार्य की प्रगति से इस समिति को संतोष है। इस काम में मजदूर वर्ग के उत्साह का खयाल करते मालूम होता है कि यह काम बहुत कुछ बढने का संभव है। उसे पर्याप्तिरूप में बढाने का मौका मिलने के लिअे मजदूर-समिति ने सूचना की है कि इस उपसमिति के बजाय मजदूर-सेवा-कार्य के लिअे अेक स्वतंत्र स्वायत्त संस्था बनायी जाय। कार्यवाहक समिति इस सूचना को पसंद कर निश्चय करती है कि वैसी संस्था बनायी जाय और अभी की मजदूर समिति अपना काम और हिसाब उसे सौंप देवे और बाद में मजदूर समिति बन्द हो जाय।"

जीवन-वेतन

श्री प्रभुदास गांधी ने अेक सूचना भेजी थी, जिसका अभिप्राय सदस्यों को इतर लोगों के साथ के अपने व्यवहारों में जीवनवेतन के सिद्धान्तों का अमल करने के लिअे प्रोत्साहन देने का था। इस हेतु से उन्होंने जो खास तरीके बताये थे वे व्यवहार्य नहीं मालूम होते थे। इसलिअे वह सूचना पेश नहीं की गई। श्री अप्पा साहब पटवर्धन ने इस विषय पर पू. बापूजी से अेक प्रश्न भी पूछा था। लेकिन बापूजी उस प्रश्न को दूसरे ही अर्थ में समझे। इसलिअे यद्यपि उनका इस विषय का प्रवचन मनन करने योग्य था, फिर भी श्री अप्पा के विशेष सवाल का जबाब उसमें से नहीं मिला। बापूजी का समय हो चुका था, इसलिअे अप्पा ने उसे दूसरे रूप में दुहराना उचित न समझा। मतलब, इस विषय पर सदस्यों का ध्यान तो है ही। लेकिन, सब सदस्यों के लिअे कोअी नियम बनाया जा सके इतनी सामग्री अभी हमारे पास नहीं है। व्रतों की तरह यह विषय भी आज इस अवस्था में है कि उसे अपने जीवन में अमल में लाने का तरीका हरेक सदस्य को अपना अपना सोचना होगा। वैसे प्रयोग होते होते कुछ साधारण स्थूल नियम पैदा हो जायेंगे।

जो सिद्धान्त अभी इतने नये हैं कि उनका साफ दर्शन अभी सब नहीं कर सकते, उनके बारे में प्रस्ताव करने के पहले लेख या चर्चा द्वारा उनका अूहापोह होना जरूरी है। यह अच्छा होगा कि श्री प्रभुदास तथा दूसरे सदस्य इस विषय पर 'सर्वोदय' या 'हरिजन-सेवक' द्वारा अधिक चर्चा करें।

संघ और राजनीति

श्री मंज़र अली सोखता का अेक प्रस्ताव मैंने नामंजूर किया। जो प्रस्ताव हम इसी अधिवेशन में स्वीकार कर चुके थे, और संघ को किस स्वरूप में रहना चाहिअे इस विषय में पू. बापूजी ने जो विचार प्रकट किये,

उसके साथ भी सोखताजी के प्रस्ताव का मेल नहीं बैठता था। श्री सोखताजी चाहते थे कि संघ अपने सदस्यों को प्रेरणा करे कि वे हरेक प्रान्त में अेक अहिंसावादी राजकीय पक्ष का संगठन करने की चेष्टा करें। यद्यपि मेरा परिपत्र बहुत से सदस्यों को अनुचित नहीं मालूम हुआ था, फिर भी पू. बापूजी की यह साफ राय थी कि उस परिपत्र का कुछ अंश संघ के अध्यक्ष के कार्यक्षेत्र में नहीं आता। संघ के सदस्यों को राजकीय काम करना मना नहीं है, लेकिन संघ के सांघिक कार्यक्षेत्र में उसका समावेश नहीं है। मतलब, जो सदस्य राजकीय काम करे वह अपने व्यक्तिगत बल पर उसे करे। उसके लिअे वह न तो संघ के नाम का उपयोग करे, न संघ की प्रतिष्ठा माँगे। वह चाहे तो उसके लिअे अपनी अेक स्वतंत्र संस्था बना सकता है। उसमें संघ के सदस्य भी शरीक हो सकते हैं, दूसरे भी हो सकते हैं। संघ के अध्यक्ष को इतना ही देखना है कि जो तीन बातें ऊपर दिये प्रस्ताव में नमूद की गई हैं, उनका पालन हरेक सदस्य करता है। इसके अतिरिक्त संघ के अध्यक्ष को कोई सूचना या किसीका समर्थन या खंडन अध्यक्ष के नाते करने की जरूरत नहीं है।

गांधीजी की इस स्पष्ट सूचना के बाद श्री सोखताजी के प्रस्ताव को पेश होने देना, बापू ने प्रकट की हुई सलाह का निषेध करने के बराबर ही होता।

सदस्यता

नये सदस्य बढ़ाने में हमें अब विशेष सावधानी रखनी होगी। किसीका नाम सूचित करने वाले सदस्य, बनने की इच्छा रखनेवाले व्यक्ति, तथा सिफारिश करनेवाले प्रान्तीय नेता तीनों को यह देखना चाहिये कि:—

(१) संघ के रचनात्मक कार्यक्रमों में सूचित व्यक्ति क्या भाग लेता है? केवल काँग्रेसी, यानी राजकीय, काम करनेवाले व्यक्ति को संघ का सदस्य बनाना उचित न होगा, यदि उसके साथ साथ, या राजकीय काम द्वारा, वह रचनात्मक कार्यक्रम को किसी निश्चितरूप में बढ़ाता न हो।

(२) संघ के दूसरे सदस्यों के साथ उसका किस प्रकार का संबंध है? अगर किसी सदस्य के बारे में उसके दिल में मन-मुटाव, अनादर, अविश्वास, या शंका हो तो बेहतर है कि वह संघ के बाहर रह कर ही संघ के सिद्धान्तों का अपनी श्रद्धा के अनुसार पालन करे।

(३) संघ के स्थूल नियम (जैसे, नियम से कातना, खादी का ही उपयोग करना, विवरण भेजना, कार्यालय के पत्रों का उत्तर देना, आदि) का पालन, या सिद्धान्त (जैसे, सत्य और अहिंसा, कौमी-अैक्य, अस्पृश्यता-निवारण आदि) में विश्वास, और निखालिस बर्ताव तथा आदर्श (जैसे, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, आदि) का स्वीकार और प्रयत्नशीलता के लिअे क्या वह जाग्रत है? अगर अैसी साधकता उसमें न पायी जाती हो, तो उसे सेवक-सदस्य बनाने के लिये सूचना न की जाय। और सहयोगी तथा सहायक सदस्यों के बारे में भी यह देखना चाहिअे कि उनका संघ के सिद्धान्तों का स्वीकार केवल अेक विधि पूरा करने की दृष्टि से न हो लेकिन निष्ठापूर्वक हो। यानी, उसका भी कुछ न कुछ प्रयत्न तो हो ही।

थैली-दान

चंपारन की जनता की ओर से बापू को बीस हजार रुपये भेंट किये गये। बापू ने जाहिर कर दिया है कि यह रकम बिहार के उपयोग

के लिअे ही काम में लाई जायेगी। श्री प्रजापति बाबू ने आश्वासन दिया है कि और भी लगभग दस हजार की रकम इसमें मिलना संभव है। आशा है श्री प्रजापति मिश्र की आशा सफल होगी।

हरिजनों से व्यवहार

यह खुली बात है कि हरिजनों के साथ अत्यंत समानता से व्यवहार करने में हमारे कई सदस्यों को अभी अपने परिवार में या देहात में कई प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पडता है। इसलिअे यह साफ होना जरूरी है कि इस विषय में किस मर्यादा से नीचे उतरना सदस्यों के लिअे अनुचित है, और उतरना पडता हो तो सदस्य रहना अनुचित है।

(१) इस सिद्धान्त का हमें अब स्वीकार करना होगा कि मानव–मानव में जाति, धंधा या धर्म (मजहब) के भेदों के कारण स्पर्श करने, या साथ खाने-पीने में, दोष समझना संघ के सदस्यों के लिअे अनुचित है। इन संस्कारों को छोड कर ही वह संघ का सदस्य रहे। इसलिअे उसे न अपने घर में न बाहर किसी हरिजन, या मुसलमान या ईसाई आदि के साथ बैठने, खाने या पीने में पंक्तिभेद करना चाहिअे।

(२) अपना घर, परिवार के हरेक व्यक्ति के लिअे अपना अेक स्वराज्यभुवन है। अगर दस व्यक्ति उसमें रहते हों, तो हरेक को वहां यह अनुभव होना चाहिअे कि उसमें वह अपने धार्मिक विचारों के अनुसार अपने सारे कर्तव्यकर्मों का पालन करने के लिअे स्वतंत्र है। जिस व्यक्ति को, चाहे वह स्वयं हो, पत्नी हो, माता–पिता हों, बच्चा हो, भाई हो— दूसरे व्यक्तियों के विचारों के कारण वैसा पालन करने में रुकावट होती हो, उसके लिअे वह घर 'स्वराज्यभुवन' नहीं है, बल्कि केवल अेक धर्मशाला है। अगर संन्यासी की तरह मनुष्य सदा भ्रमण करने का धर्म न बना ले तो वह धर्मशाला में कुछ दिन बिता सकता है, सारा जीवन नहीं बिता सकता। इसलिअे उसे अपना घर करना चाहिअे, जहाँ पर वह अपने विचारों के मुताबिक अपने कर्तव्यों को अदा कर सके। वह अनेक तरह से किया जा सकता है। जिस मकान को उसका घर समझा जाता है, उसके अेक ही कमरे, या केवल चबूतरे ही को वह अपना घर कर सकता है और बाकी के हिस्से को छोड सकता है। जितने हिस्से को वह अपना घर बनावे, उतने ही हिस्से में फिर उसे अपने गृहधर्मों और सुखों को पाना चाहिअे।

(३) अगर परिवार के दूसरे व्यक्ति अुसीके ऊपर अवलंबित हों, तो सब को समझना चहिअे कि उस परिवार का कर्ता-पुरुष वही हो सकता है। उसके ऊपर अपना भार भी डालना, और उससे अलग प्रकार के धर्म का पालन करने के लिअे उसे मजबूर करना न्याय्य नहीं है। और उसे भी इस तरह मजबूरी सहन करना योग्य नहीं है, जब कि उसने अपने सुखोपभोग के लिअे नहीं, किन्तु धर्मदृष्टि से अेक आचार की आवश्यकता को माना है। अैसी अवस्था में अगर परिवार के दूसरे व्यक्ति उसकी राय के अनुसार चलने के लिअे तैयार न हों, और कानून, प्रेम, दया, करुणा, कृतज्ञता आदि कारणों से उनका भार छोड देना भी नामुमकिन हो, तो वह उनके लिअे घर का अमुक हिस्सा

अलग छोड कर उनके निर्वाह का अलाहिदा प्रबन्ध कर दे सकता है। लेकिन, घर का आर्थिक भार अपने पर उठाना और स्वधर्म पालन में अस्वतंत्रता अनुभव करना, इसमें निष्प्राणता है।

(४) पारिवारिक जीवन क्लेशमय न बनाने की इच्छा से अगर कोई व्यक्ति इस नतीजे तक जाना न चाहे तो वह संघ का सदस्य बनने का आग्रह न रक्खे।

नये सदस्य इस विषय में अपनी परिस्थिति निःसंदेह कर के ही आने की इच्छा करें। पुराने सदस्य अगर इस भूमिका के नजदीक पहुंचना संभव मानते हों, तो सदस्य बने रहें। अगर वे यह महसूस करें कि यह होना असंभव है, तो उन्हें भी सदस्यता का त्याग करना चाहिअे।

(५) सार्वजनिक जीवन में सदस्य यह बात लोगों से न छिपावें कि वह अपने व्यवहार में हरिजन, मुसलमान, आदि भेदों को नहीं मानता। वह अपना कुंआ हरिजनों के लिअे खुला रक्खेगा। हरिजनबस्ती में निःसंकोचभाव से जायगा, और सब से मिलेगा। लोग उसका बहिष्कार करेंगे, और फिर वह लोक-सेवा नहीं कर सकेगा, इस खयाल से वह अस्पृश्यता को थोडासा स्थान दे देना मंजूर नहीं कर सकता। क्योंकि अस्पृश्यता के विषय में जनता के परंपरागत गलत संस्कारों को आघात पहुंचाना भी लोक-सेवा ही है। लेकिन आघात पहुंचाने के मानी यह नहीं कि अस्पृश्यता--निवारण का वह अेक नाटक करे, या पुराने संस्कार के लोगों का मजाक उडावे, उन्हें कठोर शद्ब सुनावे या भला-बुरा कहे। वह विनय से अपनी मान्यता को, युगधर्म को, समझाता रहे, और कहे कि जब तक वे भी उस धर्म का पालन करने की हिंमत प्राप्त नहीं करते, तब तक उसकी उदारता से बरदाश्त कर ले, अगर वे बरदाश्त न करें, तो जो सहन करना पड़े वह सह ले।

आगामी सम्मेलन

आगामी संमेलन के स्थान के बारे में अभी निर्णय नहीं हुआ है। लेकिन, निर्णय करने के पहले कुछ बातें साफ कर देना जरूरी है। संमेलन के बारे में जो शर्तें पू० बापूजी की सलाह से रक्खी गई थीं, उनका पालन वृंदावन में ठीक तरह से नहीं हुआ। लेकिन, इसका पता वृंदावन जाने के बाद, या काम हो जाने के बाद चला। उदाहरणार्थ,

(१) हमारी मर्यादा से बहुत ही ज्यादा खर्च हुआ। इसका अेक कारण अनिवार्य था, उसका दोष स्वागत-समिति पर नहीं लगाया जा सकता। मार्च में संमेलन करना तय हुआ था, लेकिन वह मई तक नहीं हुआ। अिसलिअे जो ज्यादा खर्च हुआ उसके लिअे उनकी लाचारी थी। लेकिन, फिर भी संमेलन का नकशा ही विस्तृत पैमाने पर बनाया गया था और उसके कारण भी अधिक खर्च हुआ है।

(२) मालूम होता है कि संमेलन में बहुतसे अैसे स्त्री-पुरुष और बच्चे आये थे, जिन्हें संमेलन की कार्यवाही में कोई दिलचस्पी नहीं थी, सिर्फ अेक जलसे की दृष्टि थी। इसमें मैं उस आम जनता का जिक्र नहीं करता, जो देहातों से बापू के दर्शन के लिअे चली आती थी। लेकिन उनका, जो संमेलन की कुटियों में रहते

थे और जिन के भोजनादि का प्रबंध स्वागत--समिति ने किया था। मेरी राय है कि अपने प्रान्त के लोगों को भी आने की इजाजत देने के बारे में स्वागत--समिति को नियंत्रण रखना चाहिअे। बारह वर्ष से छोटी उम्र के बच्चों को साथ लाने की किसी भी सदस्य या अतिथि को इजाजत न देनी चाहिअे। दूर से आनेवालों को तो छोटे बच्चों को साथ में न लाने की विज्ञप्ति ही करनी चाहिअे।

(३) फिर, कँप का नकशा इस प्रकार बना जिस से बाहर के लोगों को रोकना असंभव हुआ। इससे संमेलन के पारिवारिका स्वरूप और उसकी शांति में क्षति हुई।

(४) अतिथियों का नियमन न होने के कारण स्वागत-समिति को कुछ नियमों का भंग करना पडा। उदाहरणार्थ, भोजन में पंक्तिभेद रक्खा गया। सदस्यों के लिअे नियमानुसार सिर्फ वृंदावन आश्रम और इर्दगिर्द के देहातों से प्राप्त गाय के घी-दूध का व्यवहार, और दूसरों के लिअे बेतिया, मोतीहारी आदि शहरों से मंगाये हुअे गाय के दूध और भैंस के घी का व्यवहार। मुझे पता नहीं कि यह कहां तक आखिर तक निभा। लेकिन, निभा हो तो भी इसमें संमेलन की शर्तों का पालन नहीं हुआ। शर्तें लगाने में संघ का यह अभिप्राय नहीं है कि सदस्यों का दूसरों से अलग प्रकार का अेक उच्च वर्ण बनाया जाय। अगर पांच मील के वर्तुल में से पर्याप्त परिमाण में गाय का घी--दूध पैदा करना असंभव हो, तो हम कम अतिथियों को आमंत्रण दे सकते हैं, और जितना मिल जाय उतने से सब को गुज़ारा करने के लिअे कह सकते हैं। लेकिन सदस्य, अतिथि, स्वयंसेवक वगैरा किसी भी हैसियत से संमेलन में शरीक होने वालों के भोजन-प्रबंध में भेद करना अनुचित है।

(५) मुझ पर यह असर पडा है कि स्वयंसेवकों की संख्या जरूरत से बहुत ही ज्यादा थी। और कुछ अव्यवस्था तो इन्हीं के कारण होती थी। जब दो आदमियों के काम के लिअे दस आदमी दौडें, और हरेक को उत्साह हो कि मैं आगे बढ़कर ज्यादा काम कर बताऊं, तब काम अच्छा होने के बदले खराब होता है। दिन में अेक दो बार तो यह दृष्य हो ही जाता था कि दूर से सीटी की आवाज सुनाई देती थी और अनेक स्वयंसेवक तथा उनके पीछे उनसे भी ज्यादा दर्शक अैसे दौडते थे, मानों कहीं आग लगी हो। अगर बाहर के लोगों का प्रवेश न हो तो अधिवेशन-मंडप और शिविर के अंदर बहुत स्वयंसेवकों की जरूरत नहीं है।

श्री प्रजापति बाबू ने निखालिसता से कह दिया कि संमेलन बुलाने में उनका अभिप्राय सदस्यों के संमेलन की अपेक्षा चंपारन के लोगों को सात दिन तक बापू का दर्शन कराने के लिअे उन्हें चंपारन की अेक कुटीर में कैद कर रखने का अधिक था। इसके लिअे संमेलन बहानामात्र था। बेशक इसमें वे अच्छी तरह सफल हुअे। लेकिन, अच्छा होता अगर वे अपना मकसद आमंत्रण देते समय ही ज़ाहिर करते। क्योंकि लोगों को बापू का दर्शन कराने की इच्छा से हर साल भिन्न भिन्न प्रांतों में इकट्ठा होने का संघ का इरादा नहीं है। बापू को इस वृद्धावस्था में हम तकलीफ देतें हैं, वह इस आशय से कि जो लाभ अेक जमाने में सत्याग्रह आश्रम को चला कर बापू लोक-सेवकों को देते थे वह संघ के सदस्यों और

अेक प्रान्त के कार्यकर्ताओं को कम से कम साल में अेक सप्ताह भर मिले। इसमें बाधा न आते हुअे जनता को भी कुछ फायदा कराया जाय, और उनकी शरीर और वचन से कुछ सेवा भी की जाय।

खैर। यह तो अब हो चुका। आगामी संमेलन का आमंत्रण देते समय इन सब शर्तों की पाबन्दी होने का विश्वास देना होगा। और भी क्या शर्तें हो, और सम्मेलन का स्वरूप तथा कार्यक्रम किस प्रकार का हो इस विषय पर सदस्यों से भी सूचनायें चाहता हूं।

कि. घ. म.

उपसंहार

(गांधीजी का अन्तिम भाषण)

अब अेक आखिरी बात और है। अिस सम्मेलन के बारे में। प्रजापति बाबू ने काफी काम किया। लेकिन पैसे भी काफी बिना-कारण खर्च किये हैं। अिससे हमारा कार्य कलुषित हो जाता है। यहां बिजली की बत्ती और किट्सन बर्नर भी आ गये हैं। *

अिस तरह तो कोअी मर्यादा नहीं रहेगी। हमें कुछ मर्यादा रखनी चाहिअे। अुधर शौचादि का प्रबन्ध जैसा होना चाहिअे वैसा नहीं है। गांधी सेवा संघ को मैंने जैसा माना है अुस दृष्टि से यह कोअी वार्षिक अुत्सव नहीं हैं। यह तो हमारा शिक्षणालय है। हमें तो यह नहीं भूलना चाहिअे कि हमें हर रोज सादगी, देहातीपन, सफाअी और शुद्धि की तरफ कदम बढाना है। हम यहां समारोह या सैलानीपन के लिअे नहीं आते। यह सम्मेलन हमारी अेक तालीम की छावनी है। हमारे लिअे यह आत्मनिरीक्षण का, अेक दूसरे के अनुभव जान लेने का और संयम और अनुशासन की शिक्षा लेने का अेक अद्‍भुत अवसर है। यहां सफाअी और रहन–सहन की व्यवस्था अैसी अच्छी होनी चाहिअे कि सात दिन के बदले सात महीने रहना पडे तो भी जाने की अिच्छा न हो। लेकिन मुझे तो छः दिन के बाद ही अैसा लग रहा है कि जितना जल्दी भाग जाअूं अुतना अच्छा। भला अैसा हमें क्यों लगना चाहिअे? मैं यदि यहां से जल्दी न भागूं तो मुझे डर है कि और भी अधिक अस्वच्छता दिखायी देने लगेगी। अिसके लिअे हमें बहुत

* इस की सफाई देना जरुरी है। किट्सन या पेट्रोमॅक्स जरूरी थे। वे सब सम्मेलनों में रहे। बडी भीड में उनकी अनिवार्यता महसूस की गई है। बिजली-दीये के बारे में गांधीजी की गैरसमझी हुई है। बात यह थी कि लाउडस्पीकर की बैटरी के साथ, उसके मालिक ने तीन बत्तियाँ लगा दी थीं। रात के व्याख्यानों में लाउडस्पीकर के साथ उन्हें भी उसने जलाया। इनके सिवा, और कोई बिजली के दीये नहीं थे। बिजली ही न थी, तो दीये कहाँ से हों?— सं.

कुछ करना चाहिअे। क्योंकि जो आदर्श मैंने सोच रक्खा है अुससे अब भी हम बहुत दूर हैं।

यहां अितने बहुतसे लोग आ गये हैं यह अुनके प्रेम का लक्षण है। प्रेम का प्रदर्शन अेक हद तक अच्छा है। पर अुसमें भी मर्यादा होनी चाहिअे। वह यहां पर नहीं है। यह भी अेक अभ्यास का विषय है।

मेरे कहने का मतलब यह नहीं कि यहां तारीफ के लायक कोअी बात मुझे नहीं मिली। मैं अच्छी बातों की कद्र करता हूं। आपने काफी काम किया है। काफी कष्ट अुठाया है। लेकिन अुसके लिअे आपकी तारीफ करना मेरा काम नहीं है। आपने यह सब स्तुति के लिअे थोड़े ही किया है? स्तुति के लिअे किया हो तो मेरी स्तुति ही आपके काम का फल हो जायगी। मेरा काम तो टीका करना है। ये त्रुटियां कैसे दूर की जायँ यह मैं नहीं बता सकता। मैं तो टीका ही कर सकता हूं। हमारे सम्मेलन में आदर्श स्वच्छता रहनी चाहिअे। भोजनादि की व्यवस्था स्वच्छ और शुद्ध होनी चाहिअे। मैं जो कु कहता हूं अुसका भी आप सीधा अर्थ लीजिये। अगले साल गांधी सेवा संघ जहां सम्मेलन करे वहां ये कमियां न रह जायँ अिसकी आप कोशिश करें।

गांधी सेवा संघ सम्मेलन, वृंदावन
ता० ७:५:३९

अिस प्रकार की अहिंसा की साधना के लिअे बतौर साधन के, अहिंसा के प्रतीक के रूप में, चर्खे से बढ़कर दूसरा कोअी साधन मैं आपको बता नहीं सकता।

मेरी अहिंसा अेक वैज्ञानिक प्रयोग है। वैज्ञानिक प्रयोग में निष्फलता जैसी वस्तु के लिअे स्थान नहीं। निर्धारित परिणाम प्राप्त करते हुअे अंतराय भी रास्ते में आते हैं, किन्तु प्रायः अुनमें से बड़े-बड़े वैज्ञानिक अविष्कार होते देखे हैं। आप अगर अहिंसा पर कायम रहना चाहते हैं, तो अिस प्रकार की मनोवृत्ति से मेरा बताया हुआ अहिंसा का यह प्रयोग आपको करना चाहिअे।

—गांधीजी
२३।४।'३९

'हरिजन-सेवक' से

कौअे की नजर से

६. प्रमुख का परिपत्र

सम्पादक भाअी,

आपका सम्मेलन ३० अप्रैल को शुरू होने वाला था, अिसलिअे भुशुंडी और मैं बहुत जल्दी ही आश्रम से निकल पडे थे। करीब भोपाल तक भी पहुँचे न थे, अितने में सुना कि न जाने कितनी मुद्दत तक सम्मेलन मुलतवी हो गया है। अिसलिअे हमें वापस लौटना पड़ा। लौटने पर मालूम पड़ा कि आपलोगों ने फ़िर ३ मअी मुकर्रर कर दी है। लेकिन फ़िर जाने का अुत्साह नहीं रहा। आपलोगों के अैसे अस्थिर वरताव पर हमें बहुत खेद हुआ। महादेव देसाअी कहते हैं कि गांधी सेवा संघ सत्याग्रहाश्रम का रूपान्तर है। अगर अैसा हो तो वह रूपान्तर अच्छा नहीं हुआ है। आश्रम में तो बापू कभी मुकर्रर किये हुअे समय में फर्क नहीं होने देते थे।

खैर। सम्मेलन में क्या हुआ अिसका कुछ हाल अब हमारे सुनने में आया है। अुसमे मुझे कुछ शंकायें अुत्पन्न हुअीं। वे मैंने अपने मित्र के सामने रक्खीं। लेकिन अुसके जबाबों से मुझे सन्तोष नहीं होता। अिसलिअे हमारा संवाद में आपके पास लिख कर भेजता हूं।

मैंने भुशुंडी से कहा कि मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि आखिर किशोरलाल का वह परिपत्र निकालना संघ के सदस्यों को पसन्द आया या नहीं।

तब **भुशुंडी** बोला—हमारे बडे पूर्वज महात्मा काकभुशुंडी ने कहा है कि ज्ञानी पुरुष को चाहिअे कि वह अितनी ही राय कायम करे कि "मैं सत्य हूं"। लेकिन "मैं क्यों हूं", "कैसा हूं", आदि सवालों पर अपनी राय कायम न कर ले। क्योंकि वैसे सब मत अेक क्षण में सच होते हैं, और दूसरे क्षण झूठ हो जाते हैं। अिसी तरह संघ के जो सयाने सदस्य हैं अुन्होंने अितनी ही राय कायम की है कि अुनका अेक संघ है, और अुस संघ में सत्य और अहिंसा के दो सिद्धान्त हैं। लेकिन "संघ क्यों है, कैसा है, अुसका क्षेत्र कितना लंबा-चौड़ा है", आदि बातों पर कोअी राय बनाना ठीक नहीं समझते।

मैं— तुम्हारी अिस पंडिताअी का परिपत्र से क्या संबंध है?

भुशुंडी— बराबर संबंध है, काका। अगर "संघ क्यों है, कैसा है," वगैरा निश्चित कर दिया जाय तो परिपत्र ठीक है या नहीं, अिसका भी निश्चय हो जाता है। अगर अुस पर वे अनिश्चित रहें, तो परिपत्र के बारे में भी अनिश्चित रह सकते हैं।

मैं— लेकिन, अितने बडे संघ के लिअे क्या यह ठीक बात है?

भुशुंडी— संघ अेक बडी चीज़ है यह तुम्हारी राय हुअी, काका! संघ के सयानों ने अिसके बारे में भी कहां अब तक कुछ राय बनायी है?

मैं— तो क्या संघ अेक बडी संस्था नहीं है? सुभाष बाबू और नरेंद्रदेव भी तो कहते हैं कि संघ अेक बडी भारी संस्था है।

भुशुंडी— हां, वे बेचारे घबडाये हैं सही। कौन जाने, किशोरलाल के अुस परिपत्र का शायद वह परिणाम हुआ हो? कहते हैं कि किशोरलाल कुछ जन्तर-मन्तर जानते हैं।

जिस कागज़ पर अुनने परिपत्र लिखा अुसपर कुछ मन्तर फूंक दिया हो !

मैं- नहीं, नहीं। यह तो तुम दिल्लगी करते हो। ठीक ठीक बताओ।

भुशुंडी-नहीं, काका। में दिल्लगी नहीं कर रहा हूं। मेरी भाषा में कुछ दोष भले हीं हो। जंतर-मंतर के मानी ये समझने चाहिअे कि हिंसावृत्ति से काम लेना। किशोरलाल ने जब परिपत्र निकाला तब अुनके मन में कुछ हिंसा जरूर भरी होगी। नहीं तो अुससे सुभाष बाबू, नरेन्द्रदेव और अुनके लोगों को, संघ के बारे में घबडाहट होनी नहीं चाहिअे थी। बस, यही जंतर-मंतर समझ लो।

मैं-लेकिन, तब यह सवाल तो रह ही जाता है कि संघ ने परिपत्र के बारे में कोअी राय जाहिर नहीं की यह ठीक कैसे माना जाय ?

भुशुंडी-नहीं, काका, अिसमें कोअी दोष नहीं। देखो, परिपत्र निकालने में या तो कोअी गलती हुअी, अथवा नहीं हुअी। कअी सदस्यों ने माना कि नहीं हुअी। कअीने कहा कि थोडी गलती हुअी है। दोनों विचारों का सार यह निकला कि यह काम न तो पक्का बे-गलत हुआ है न पक्का गलत। अिस लिअे अच्छा तो यही होगा कि काम को पकने देना चाहिअे और अुसके परिणाम को देखना चाहिअे। अगर गलती हुअी होगी तो परिणाम से प्रकट हो जायगी।

मैं-लेकिन, जब बापू ने अपनी साफ राय दे दी कि अैसा परिपत्र संघ के क्षेत्र के बाहर है तो किशोरलाल ने क्यों अुसका समर्थन करने का आग्रह रक्खा ?

भुशुंडी-वह बापू और किशोरलाल दोनों की पुरानी आदत है। कुछ बातें वे जल्दी समझ जाते हैं, और कुछ बातें अुनकी समझ में बरसों नहीं आतीं। फिर जब समझ जाते हैं तब कभी तो जाहिर कर देते हैं कि हां, अुसकी गलती थी, और कभी बिना ज़ाहिर किये ही अपने बर्ताव में सुधार कर लेते हैं। अिसीलिअे तो यह ठीक हुआ कि सम्मेलन में सदस्यों ने परिपत्र पर चर्चा कर ली और निर्णय कुछ नहीं दिया। अिन दिनों सभापतियों के कामों पर निन्दा का सीधा प्रस्ताव लाना असभ्यता मानी जाती है न ?

मैं-यह क्या गांधी सेवा संघ का सिद्धान्त है ?

भुशुंडी-संघ का तो नहीं, लेकिन काँग्रेस-वादियों का मालूम होता है। और अहिंसा के प्रयोग में संघ कभी काँग्रेस से पीछे थोडे ही रहेगा ?

मैं-तो क्या किशोरलाल को अिसपर से अपनी निन्दा हुअी अैसा मानना चाहिअे ?

भुशुंडी-शान्तं पापम्। जब संघ के सदस्यों ने अैसा नहीं कहा है, तो मैं क्यों कहूं ? किशोरलाल अपना विचार कर लें।

मैं-किशोरलाल के लिअे में कहां तुम्हें पूछता हूं ? तुम प्रमुख होते तो अैसी अवस्था में क्या करते ?

भुशुंडी-में ! मैं जब किसी संस्था का अध्यक्ष बनूंगा तब सोचूंगा। आज क्यों अिसकी चिन्ता करूं ? कौअे तो मुझे अध्यक्ष बनाना चाहते नहीं। क्या अुल्लू-संघ का अध्यक्ष मुझे बनाओगे ? तो जवाब दूं ?

मैं-बनाने से पहल अैसी हालत में तुम क्या करोगे यह समझना जरूरी है।

भुशुंडी-तब, देखो। न तो मैं किशोरलाल की तरह छोटासा मुंह बना लूंगा और न सुभाष बाबू की तरह अुसके मानी पूछने के लिअे बापू से पत्र-व्यवहार करूंगा। सिर्फ हंस कर, दो चार बार हवा में मंडरा कर,

का-का-का-का चिल्लाअूंगा और अपनी जगह पर बैठ जाअूंगा। बस, अब सो जाने दो।

संपादक भाअी, मुझे अिस अुत्तर से असन्तोष है। आजकल कौआ मेरे दिमाग को सुलझाने की जगह चक्कर में ही डाल देता है। आप कुछ मुझे समझाअिये।

आपके
आश्रम का अुल्लू

गांधीजी दस्तंदाजी क्यों करते हैं ?

(सतीशचन्द्र दासगुप्त)

कहा जाता है कि, "गांधीजी अगर सचमुच काँग्रस से अलग हो गये हैं तो वे देश के राजनैतिक मामलों में बेजा दखल क्यों देते हैं? कांग्रेस की सभी महत्त्व की तदबीरों में वे अपनी ही हुकूमत क्यों चलाना चाहते हैं?"

बम्बअी की अन्तिम काँग्रेस में गांधीजी ने खुद यह प्रस्ताव बनाया था कि वे काँग्रेस से दूर रहें। वे चाहते थे कि काँग्रेस अुनके बिना मुबाहिसा और कार्रवाअी करे। अिसीलिअे वे काँग्रेस से दूर हो गये। लेकिन अुन्होंने यह तो कभी नहीं कहा था कि अगर अुनसे कोअी सलाह लेने आवे तो वे सलाह भी नहीं देंगे। अगर वे अैसा करते तो वह गलत होता। क्योंकि अुन्होंने काँग्रेस का बहिष्कार थोडे ही किया था? बल्कि, अगर अुनकी मदद मांगी जावे तो बाहर रह कर भी वे अुसकी मदद करना चाहते थे। काँग्रेस का स्वतन्त्र विकास हो अिसी नीयत से वे बाहर गये।

अिस स्थिति से फायदा अुठाने में हमारे नेता असफल रहे। हरेक महत्त्व के मामले में कार्यसमिति ने अुनकी सलाह मांगी और अुनकी सलाह ली। जब कि अुनकी सलाह मांगी गयी तब अुसे देने के लिअे अुन्हें दोष कैसे दिया जा सकता है? अिसलिअे अगर गांधीजी आज भी काँग्रेस की राजनीति का मार्गदर्शन करते हैं तो यह अिसलिअे कि अुनका मार्गदर्शन मांगा जाता है।

यह बात लोगों के सामने हमेशा ही रही है, लेकिन फिर भी अुसे साफ कर देना जरूरी था। बंगाल में हम सभाओं के मंच पर से और अखबारों से बार बार सुनते आये हैं कि यदि गांधीजी काँग्रेस के अगुआ बनना चाहते हैं तो अुन्हें आगे आना चाहिअे। अुन्हें चार-आना सदस्य बन कर और आल अिंडिया काँग्रेस कमिटी का सदस्य बन कर अपने अधिकार का बाकायदा अुपयोग करना चाहिये। अिस तरह की बातें कही जा रही हैं। लेकिन अिसमें शक नहीं कि अिन वक्ताओं और लेखकों ने अिस बात की तरफ ध्यान नहीं दिया कि गांधीजी ने कुछ खास काँग्रेसी मामलों में हिस्सा अिसलिअे लिया कि अुन मामलों में अुनके सहयोगियों न अुनकी सलाह मांगी।

काँग्रेस में अेक "फॉरवर्ड ब्लॉक" (पुरोगामी तख्ता) बनाने के बारे में श्रीयुत सुभाष बाबू ने जो बयान निकाला अुसीमें से अेक अुदाहरण ले लीजिये। सुभाषबाबू ने यह घोषणा की है

कि अुनका यह नया दल गांधीजी और अुनके सिद्धान्तों की अिज्जत करेगा। अब, यदि प्रत्यक्ष व्यवहार के क्षेत्र में पुरोगामी दल के सामने पेश होने वाले किसी मसले के बारे में सुभाष बाबू गांधीजी से सलाह लेने जावें, और गांधीजी को अैसा लगे कि वे अपनी सलाह से मदद कर सकते हैं, और सुभाष बाबू भी अुनकी सलाह मान लें, तो अुस मामले में पुरोगामी दल गांधीजी के नेतृत्व और मार्गदर्शकत्व में है अैसा कहा जा सकता है। क्या अुस हालत में कोअी गांधीजी पर यह दोष लगा सकता है कि वे पुरोगामी दल के साथ तुर्कमिजाजी से पेश आये; या अुसके काम में बेजा दस्तंदाजी की ? ठीक यही बात कॉंग्रेस के साथ भी है। जब कॉंग्रेस की कार्यसमिति गांधीजी की सलाह या सूचनाओं की ज़रूरत महसूस करती है तो वह अुनके पास जाती है। अिस तरह की व्यवस्था में किसी भी पक्ष का कोअी दोष नहीं है। गांधीजी की सलाह मानने न मानने के लिअे कार्यसमिति आज़ाद है।

ता० ८।५।'३९ (अंग्रेजी 'राष्ट्रवाणी' से)

स्पार्टा का अुदाहरण लीजिअे। वे शस्त्रधारी तो थे। थोडे भी मर गये लेकिन हटे नहीं। हमारे अन्दर अुनसे बहुत ज्यादह बहादुरी होनी चाहिअे। अगर हम यह समझते हैं कि अेक हजार आदमी के बिना हम यह काम नहीं कर सकते तो हमारी अहिंसा कोअी चीज़ नहीं है। अगर वह बहादुरी हमारे अन्दर नहीं है, तो हम अहिंसा का नाम न लें। अुसको कलंकित न करें। अहिंसा अेक अैसा शस्त्र है कि जिसके सामने तलवार काम नहीं कर सकती। और न कोअी शक्ति काम कर सकती। अेक ओर अेक करोड आदमी हों और दूसरी ओर अहिंसा का पुजारी अकेला खडा हो, तो भी वह यह नहीं कहेगा कि मैं शस्त्र-बल के अधीन हो जाअूंगा। वह बता देगा कि अहिंसा के सामने जहरीली वायु और दूसरे सारे शस्त्रास्त्र बेकार हैं। हिटलर के सामने ऑस्ट्रिया जिस तरह झुक गया, वैसा वह झुकेगा नहीं। अिसलिअे यह चीज़ मैं आप लोगों के सामने रखना चाहता हूं। यह सब से पहली चीज़ है।

—गांधीजी

गांधी सेवा संघ सम्मेलन, डेलांग

ता० २५ : ३ :'३८

सर्वोदय की दृष्टि

गांधी-पक्ष का वर्तमान

इस समय गांधी-सिद्धान्त और गांधीपक्ष अैसी अवस्था में से गुजर रहे हैं कि गांधीजी या उनके पक्ष के लोग जो कुछ कहें या करें, कई देशवासियों को वह बुरा ही बरा मालूम होता है। अपने ही दिल की खोजखाज करनेवाले शायद यह कहेंगे कि इसकी जवाबदेही खुद गांधीवालों पर ही है। गांधीवालों को कॉंग्रेसवादियों में बुराई दीख पडती है। हिन्दूमहासमावादियों में दीख पडती है। मुस्लिम-लीग वालों में दीख पडती है। आर्य सत्याग्रह में दीख पडती है। नरीमान में दीख पडी। खरे में दीख पडी। सुभास बाबू में दीख पडी। उसका कारण यही समझना चाहिअे कि स्वयं उन्हींमें बुराई भरी हुई है। और अगर वे स्वयं शुद्ध हो जायेंगे तो कॉंग्रेसवादी, हिन्दूमहासभावादी, मुस्लिम लीग, आर्य समाज, नरीमान, खरे, सुभास बाबू आदि को गांधीजी में अच्छाई मालूम होगी। इतना ही नहीं बल्कि वे बदल भी जायेंगे। मुझे नहीं मालूम कि इस 'दिल-खोज-वाद' में संपूर्ण तथ्य है या नहीं। लेकिन दूसरों के दोषों की आलोचना करने की अपेक्षा यह वृत्ति विशेष अच्छी जरूर है।

सभा-विक्षेप

आजकल अखबारों में अेक पक्ष की सभाओं में दूसरे पक्ष के लोगों द्वारा विक्षेप किये जाने की खबरें बार बार आती हैं। चन्द रोज हुअे पूना में डॉ. खरे की सभा में श्री शंकरराव देव की उपस्थिति कई लोगों को अपना रोष बुरी तरह से जाहिर करने के लिअे बहाना हो गई। दूसरे दिन श्री शंकरराव देव के भाषण में भी विक्षेप हुआ। बम्बई में श्री शंकरराव जावडेकर के व्याख्यान में भी विघ्न हुआ। अमरावती में डॉ. पटवर्धन के व्याख्यान में मारपीट हो गयी। भार्वनगर में सरदार वल्लभभाई के जुलूस में प्राणहानि हुई। आपसी द्वेष का पारा कितना चढ गया है इसका पता इसपर से चलता है। श्री सुभास बाबू का यह कहना कि कार्यकारिणी के सवाल पर घरेलू झगडा (यादवी) हो सकता है, हम धमकी के रूप में न समझें। चारों ओर जो चिन्ह नजर आ रहे हैं उनकी तरफ वे हमारा ध्यान खींच रहे हैं इतना ही समझें।

इस परिस्थिति में अहिंसाधर्मी को क्या करना चाहिअे ?—विचारार्थ अेक सूचना रखता हूं।

जब हम देखें कि हमारी उपस्थिति या हमारा भाषण देना कई शख्सों में इतनी खफ़गी पैदा करता है कि फिर उन्हें अपनी जबान या हाथ-पैरों पर काबू रखना असंभव हो जाता है, तो हम सभाओं में जाना और बोलना ही बंद कर दें। विरोधी भाव से आनेवालों के साथ शास्त्रार्थ, उत्तर-प्रत्युत्तर या गरमागरम चर्चा में भी न पडें। वे भले ही मानें कि हमारे पास कोई जबाब नहीं है; या हम हार गये हैं। जब कि चारों ओर हमारे विरुद्ध असंयत प्रचार हो रहा हो तो भी अगर लोग हमें शांत, अक्षुब्ध और अपने सेवाकार्य में या चरखा चलाने में रत देखेंगे तो वे आप ही समझ जायेंगे।

बड़े नेताओं के लिअे शायद यह व्यवहार्य न हो। लेकिन मेरी कल्पना है कि छोटे नेताओं और कार्यकर्ताओं के लिअे यही मार्ग ठीक होगा।

तब क्या करें ?

लेकिन तब यह सवाल उठता है कि भिन्न भिन्न सवालों को विषय में सर्वोदय की दृष्टि से हम क्या करें ? जो कुछ वादविवाद, झगडे-टंटे, आक्षेप-प्रत्याक्षेप आज देशभर में चल रहे हैं उनपर मौन रहें ? मौन रहने से अगर स्थिति सुधर सकती हो तो वैसा ही करना उत्तम होगा। गांधीजी ने कुछ बावतों में इस तरह मौन रहना ही ठीक समझा। लेकिन मौन भी आक्षेप का अेक विषय बन जाता है। फिर, जो निर्दोष हैं, या निःपक्ष हैं, और दोनों पक्षों की दृष्टि समझने की इच्छा रखते हैं उनके साथ अन्याय होता है। वे उलझन में पड़ जाते हैं। इसलिअे मेरी राय में योग्य मार्ग यह है कि अेक बार किसी विषय पर अपने विचार जितने हो सके उतने प्रयत्न से साफ साफ रख देना चाहिअे। पाठक उनपर विचार कर लें। और बाद में जिस किसी बात की सफाई देना बाक़ी रह गया हो अैसी बात को छोड़ कर उस विषय में मौन रहना चाहिअे। भिन्न भिन्न पक्षों से वादविवाद में न पड़ें।

सुभास बसु-गांधी चिट्ठीपत्री

इस पत्रव्यवहार का लोग काफी इन्तजार कर रहे थे। अब जब वह प्रकट हो चुका है तो उसमें किसका कितना अन्याय या दोष है इस पर हर अेक पक्ष अपनी अपनी राय दे रहा है। किसीको उसमें गांधीजी का अन्याय और दुराग्रह तथा सुभासचन्द्र बसु की उदारता और उत्कट देशभक्ति दिखायी देती है, तो किसी को गांधीजी की स्पष्टोक्ति तथा हृदय की वेदना और सुभास बाबू की पद-लोलुपता तथा अविचारी साहस दीख पड़ता है। मेरी राय में आक्षेप या बचाव दोनों बिला-जरूरी हैं। दोनों ने अपने प्रमाणिक विचार प्रकट किये हैं। गांधीजी अपने विचार दबा देते तो वे असत्यनिष्ठ होते। बसु अपने हृदय के भाव प्रकट न करते तो वे असत्यनिष्ठ होते। और दिल की जो पक्की धारणायें बन गयी हैं वे इस तरह कितने दिन दबी रहतीं ? मार्च महीने के अंक में काकासाहब ने ठीक ही लिखा था-- "असली फूट शंका और अविश्वास में है। बनावटी अेका अेका नहीं है और न अूपरी जुदायी फूट ही है।"

पत्रव्यवहार में अनेक बातों की चर्चा हुअी है। लेकिन पंत--प्रस्ताव के अनुसार वर्किंग कमिटी बनाने के सवाल पर प्रस्तुत जो मुद्दे हैं वे अेक संवाद के रूप में इस तरह बताये जा सकते हैं:—

गांधी–आपमें और पुराने कार्यकरों में बहुत ही परस्पर अविश्वास और शंका है। असलिअे दोनों अेक दिल से काम न कर सकेंगे।

बसु–वैसा है तो सही। लेकिन अगर आप गौर करेंगे तो देखेंगे कि इसका कारण उन लोगों का मेरे प्रति अन्याय और खराब सुलूक है। फिर भी अगर अेक तेज़ कार्यक्रम का स्वीकार कर लिया जाय तो मैं उसे भूलने के लिअे तैयार हूं। आज देश अेक तेज कार्यक्रम मांग रहा है। वह उस के लिअे पूरा पूरा तय्यार भी

है। यूरोप की परिस्थिति इसके लिअे अनुकूल है। और आप में अैसा कार्यक्रम उठाने की ताकत भी है।

गांधी–जैसा कार्यक्रम आप सुझा रहे हैं उसकी तो मैं गुंजाअिश ही नहीं देखता। क्योंकि देश में झूठ और हिंसा की हवा फैली हुई है। अैसे वायु-मंडल में मुझे कोअी मार्ग ही नहीं सूझ सकता।

बसु–जिस हद तक आप झूठ और हिंसा की हस्ती मानते हैं उतनी मैं नही देख सकता। फिर उसके कारण तेज़ कार्यक्रम रोकने की जरूरत नहीं है। उलटे, वैसा कार्यक्रम निर्माण करने से आपसकी लडाअियां बंद हो जायेंगीं और जो पक्ष आज झगडते हैं वे सब काम में लग जायेंगे। अगर आप इसके नेता बनें तो मैं वादा करता हूं कि अपनी सारी शक्ति मैं आपकी सेवा में समर्पण कर दूंगा।

गांधी–आपका कहना मैं समझता हूं। लेकिन उस तरह से काम करने की मेरी आदत नहीं है। मैं चन्द सच्चे आदमियों द्वारा काम पूरा करने की हिम्मत रख सकता हूं। लेकिन जहां वायुमंडल साफ न हो वहां में कदम भी नहीं उठा सकता। इसलिअे आप मुझे छोड दें। आप अपना कार्यक्रम भारतीय महासमिति के सामने रक्खें। वहां उसे मंजूर करा लें। जो व्यक्ति उसमें पूरा विश्वास रख कर आपके साथ अेक दिल से काम करने के काबिल आप समझें उनकी कार्य-कारिणी समिति (वर्किंग कमिटी) बना लें। अगर आपका बहुमत होगा तो पुराने नेता आपके काम में बाधा न डालेंगे। बाहर रह कर प्रामाणिकता से जितना सहयोग आपको दे सकेंगे उतना देंगे। कार्यकारिणी समिति अैसे लोगों की ही होनी चाहिअे जो मंजूर किये हुअे कार्यक्रम को चलाने के विषय में अेक दिल के हों। और जिसके सदस्य अेक दूसरे पर विश्वास रखनेवाले हों।

बसु–यहीं आपकी गल्ती होती है। मैं मानता हूं कि कॉंग्रेस में भिन्न भिन्न विचार--धारायें रखनेवाले जितने पक्ष हैं उन सबके प्रतिनिधि कार्यकारिणी समिति में होने चाहिअे। जिस तरह भारतीय महासमिति में बहुमत से प्रस्ताव होते हैं उसी तरह कार्यकारिणी समिति में बहुमत से कार्यक्रम तय किया जाय। इसमें मैं कुछ दोष नहीं देखता। इतना ही नहीं, बल्कि यही लोकशाही है। और इसलिअे मेरे लिअे यह अेक बडी सिद्धान्त की बात है। अगर आप केवल बहुमतवाले लोगों की ही कार्यकारिणी बने इस मत के हों तो मैं राष्ट्रपति नहीं रह सकूंगा।

गांधी–मेरा मत तो मैंने जो बताया वही है। मेरी राय में दूसरी किसी तरह कोई पराधीन देश स्वतंत्रता प्राप्त नहीं कर सकता। फिर भी, आप पुराने कार्यकरों को समझावें, भारतीय महा-समिति के सामने अपनी बात रक्खें। अगर वे आपके विचार से चलने को राजी हो जायँ तो मुझे आपत्ति नहीं है।

बसु–लेकिन पंत-प्रस्ताव ने कॉंग्रेस की तरफ से राजी हो जाने का

अधिकार आपको दे दिया है। और आपको राजी करने का कर्तव्य मुझपर डाला है। अगर अेक आप राजी हो जायँ तो सारी कॉंग्रेस राजी हो जाती है। कृपा कर आप मेरी बात पर राजी हो जाइये।

गांधी–मेरे जो विचार इतने पक्के हो गये हैं उन्हें मैं किस तरह बदलूं? इस अवस्था में अैसा ही मान लीजिये कि मैं बूढा हो गया हूं और अब नये विचार ग्रहण करने की ताकत मुझमें नहीं रही है। पंतजी ने कॉंग्रेस की जिम्मेवारी मुझ पर डाल दी। यह मेरे साथ बडा अन्याय हुआ। और आपके साथ भी बडा अन्याय हुआ है। वैसा आप महसूस भी करते हैं। जो काम दोनों को अन्यायभरा मालूम होता है उसका अमल भला हम क्यों करें? कम से कम अपनी ओर से तो मैं नहीं करूंगा।

बसु– बेशक, पंतजी के प्रस्ताव में अन्याय तो भरा हुआ है। लेकिन अुसका स्वीकार करने के सिवाय दूसरा चारा भी तो नहीं है। इस वक्त कॉंग्रेस में फूट पैदा होना मैं देश के लिअे बहुत ही खतरनाक समझता हूं। अगर पुराने नेता और नये नेता आपस में कोअी समझौता नहीं कर लेंगे तो अेक बडी घरेलू लडाई (यादवी) छिड जाने का संभव है। इस बात पर आप सोचें। बिना आपकी सहमति के पुराने नेता मुझसे समझौता न करेंगे और मैं तो मिश्र कार्यकारिणी में मानता हूं। इसलिअे वैसी समिति बनाने में सफल नहीं हूंगा। बिना आपके आशीर्वाद के देश को भी मैं अपने साथ नहीं ले जा सकूंगा।

गांधी– अगर समझदारी से काम लिया जाय तो घरेलू कलह (यादवी) क्यों पैदा हो? अगर कॉंग्रेस को आप राजी कर लें तो आप अपना कार्यक्रम बराबर चला सकते हैं। पुराने कार्यकर जहां उन्हें सिद्धांत की बाधा न होगी, सहयोग देंगे। जहां सिद्धांत का भंग होता हुआ देखेंगे तो आपके मार्ग से अलग हट जायेंगे और रचनात्मक कामों में लग जायेंगे। अगर आप कॉंग्रेस को राजी नहीं कर सकते तो आप फिलहाल हट जाइये। उसके जिन कामों को आप पसंद करें उनमें सहयोग दीजिये। दूसरी बाबतों में जब तक कॉंग्रेस आपके मत की न हो जाय तब तक अपने विचारों का प्रचार करते रहिये। अगर इसमें दोनों पक्ष सत्य और अहिंसा पर दृढ रहेंगे तो घरेलू फूट (यादवी) होने का कोई कारण नहीं है। बल्कि इसीमें से देश प्रगति भी कर सकता है।

मेरी दृष्टि से सारे पत्रव्यवहार में से मुख्य मतलब यही निकलता है। अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार किसीको गांधीजी का कहना योग्य मालूम होगा तो किसीको सुभास बाबू का। लेकिन अगर यह स्वीकार हो कि ये दो प्रामाणिक विचार–भेद हैं तो विचार–भेद के होते हुअे भी दोनों मित्रभाव रख सकते हैं।

विचार-भेद और मैत्री

जिस तरह गांधीजी और पंडित जवाहरलाल के बीच विचार-भेद होते हुअे भी अत्यंत मित्रभाव है वैसे ही श्री गंगाधरराव देशपांडे, शंकरराव देव आदि का श्री अच्युत पटवर्धन, गोरे, आदि से घनिष्ट संबंध है। कृपालानी

जी का भी युक्तप्रान्त के समाजवादियों से व्यक्तिगत दोस्ती का संबंध है। श्री गोपबन्धु चौधरी गांधीवादी हैं। उनके भाई और पुत्र समाजवादी हैं। लकिन इससे व्यक्तिगत कटुता पैदा होने का कोई कारण नहीं है।

असली सवाल यह है कि पक्ष पैदा होने का मुख्य कारण विचार-भेद है या किसी बात के लिअे रोष है। जहां किसी बात का रोष मुख्य कारण होगा वहां आपस की अदावत, दुश्मनी, जहर, आदि आ जायेंगे। जहां वह न होगा वहां विचार-भेद होते हुअे भी दोस्ती निभ सकेगी। फिर भी, अहिंसा के उपासकों का यह कर्तव्य है कि दूसरों का व्यक्तिगत रोष होते हुअे भी उनके द्वारा प्रस्तावित विचारों पर समभावपूर्वक ही ध्यान दें।

'तेज़-कदम' संघ

राष्ट्रपति के पद से इस्तीफा देने के बाद श्री सुभास वसु ने काँग्रेस के भीतर अेक 'तेज़-कदम' संघ बनाने का आन्दोलन चलाया है। काँग्रेस के अंदर आज बहुत-से पक्ष हैं ही। काँग्रेस में यह कोअी अनहोनी या नयी चीज नहीं है। जो पक्ष आज मौजूद हैं उन्होंने इस नवीन संघ की विविध प्रकार की आलोचनायें की हैं। जिन्हें सुभास बाबू का नेतृत्व नापसंद है वे इस संघ में न कोअी विशेष सिद्धान्त देखते हैं, न कार्यक्रम। उनकी दृष्टि में काँग्रेस में कौन बडा हो इसी बुनियाद पर यह संघ बना हुआ मालूम पड़ता है। जिन्हें सुभास बाबू के साथ समभाव और थोडी बहुत सहमति भी है उन्हें यह लोकशाही के सिद्धांत का, और तेज या जोशीले कार्यक्रम का समर्थन, तथा बुजुर्गशाही और सुस्त या आरामतलब लोगों को चाबुक लगानेवाला पक्ष मालूम होता है।

लेकिन स्वयं सुभास बाबू की दृष्टि से ही इसकी जाँच करना न्याय्य होगा। जहां तक मैं समझ सका हूं इसमें सुभास बाबू की दृष्टि इस तरह की है:—

"कांग्रेस गांधीजी के पास रहती तब तो ज्यादा चिन्ता की बात नहीं थी। उनके काम करने के तरीके कैसे भी हों वे ढीलेढाले आदमी नहीं हैं। लडाई से डरने या भागनेवाले नहीं हैं। धारासभाओं में जा कर उनके मोहपाश में फंस जानेवाले नहीं हैं। लेकिन काँग्रेस जिनके हाथ में है उनमें दो प्रकार के लोग हैं। दोनों गांधी के नाम की दुहाई देते हैं। पर वे सच्चे नहीं हैं। उनमें से अेक हिस्सा ढीले लोगों का तो नहीं है। धारासभा के मोहपाश में फंसनेवालों का भी नहीं है। लेकिन उसमें अेक प्रकार की मगरूरी आ गयी है। बीस साल पहले के पुराने त्याग और पुराने ख्यालों की पूंजी पर वह सन्तुष्ट है। उसीमें मस्त है। नये जमाने का न उसे ज्ञान है न पर्वाह है। जो लोग उसकी खुशामद न करें और असकी मनमानी आज्ञायें न बजा लावें, उनका सार्वजनिक जीवन वह अपनी मगरूरी में नष्ट कर डालता है। अैसे लोगों ने गांधी सेवा संघ के नाम से अेक पक्का संगठन कर लिया है।

"गांधी के नाम का उपयोग करनेवाला जो दूसरा वर्ग है वह ढीले लोगों का है। वह धारासभा के मोहपाश में फंसा हुआ है। वह लडाई करना, जेल जाना, अपनी मिल्कियत को खुवार (बरबाद) करा देना आदि से डरता है। वह आगे जानेवालों की टांग खींच कर उन्हें रोकनेवाला वर्ग है। वह पहले वर्ग की खुशामद कर के निभ रहा है। देश की प्रगति में रुकावट डालनेवाला है। आन्दोलनों को रोकनेवाली गान्धीजी की हर अेक घोषणा उसके लिअे जीवनदायिनी होती है।

"इन दोनों के हाथ में आज कॉंग्रेस के सूत्र होने के कारण कॉंग्रेस और देश का ध्येय बड़े खतरे में है। इनसे कॉंग्रेस की रक्षा करना यह लोकशाही और पूर्ण स्वराज्यवादी लोगों पर अेक बड़ा भारी कर्तव्य आ पड़ा है।

"इसके अलावा-राज्यविधान और समाज विधान के सिद्धान्तों पर स्वयं गांधीजी से कुछ बातों में मतभेद है। उदा०—उद्योगों का यंत्रीकरण, जमीदारी, देशी राज्य आदि का विसर्जन, वगैरा। लेकिन आज इन मतभेदों का इतना महत्त्व नहीं है। जब तक स्वराज्य हासिल न हो जाय तब तक इनको भूल भी सकते हैं।

"इसलिअे अेक अैसा संघ स्थापित करना चाहिअे जो गांधी सेवा संघ की तरह पक्का संगठित हो, कॉंग्रेस का सूत्रधार हो और लड़ाइयां उठाने की शक्ति रखता हो। उसमें धारासभा आदि में जानेवाले लोग हों। लेकिन वे उनके मोहपाश में न फँसे और उनके अन्दर जा कर भीतर से लड़ाई उठाने की सहूलियत निर्माण करें और सरकार को तंग करें, अैसे हों। अैसा संगठन बना कर सावधानी से आखिरी संग्राम के लिअे देश को तय्यार करने के लिअे अेक तेज़ कार्यक्रम बनाना चाहिअे।"

श्री सुभास बाबू के इन विचारों पर हम गुस्सा न करें। बल्कि यह समझें कि उन्होंने हमारे सामने विचार करने के लिअे कुछ सामग्री पेश की है। उनके आक्षेपों पर गौर कर के हम ज्यादा शुद्ध और सावधान बनें। "क्या हममें मगरूरी आ गयी है? क्या नये जमाने को समझने के बारे में हम लापरवाह रहते हैं? क्या हम नवतरुणों के प्रति घृणा रखते हैं? क्या हम खुशामद-प्रिय हो रहे हैं? क्या हम अपनी मगरूरी में किसी का सार्वजनिक जीवन नष्ट करने का पाप कर रहे हैं? क्या हम धारासभा आदि में जा कर लुब्ध हो गये हैं और वहां का आरामय जीवन नष्ट न हो इस चिन्ता में पड़ गये हैं? क्या सचमुच गांधी सेवा संघ अेक अैसा पक्का संगठन है जिसने कॉंग्रेस को बड़ी खूबी से अपनी मुट्ठी में रक्खा है?"

अगर ये सब चीजें सच हों, और चेत कर हम अपने आपको सुधार न लें, या अपनी कमजोरी को महसूस कर अपने आप मार्ग से हट न जायँ, तो हमारा अपमानपूर्वक निकाल दिया जाना कोअी आश्चर्य की बात नहीं होगी। अगर श्री सुभास बाबू अैसा करने में सफल हों तो वे अेक निमित्त मात्र माने जायँ। उस हालत में हमारे दोष ही असल में हमारे पतन का कारण होंगे। लेकिन अगर उनके ये सब इलजाम भ्रम मात्र हों, या व्यक्तिगत रोष के कारण किये गये हों, तो अंत में गांधी सेवा संघ कुशल है, गांधीवादी कुशल हैं और कॉंग्रेस भी कुशल है।

गांधी का तेज़ कार्यक्रम

लेकिन इसमें से अेक बात और निकलती है। गांधीजी भी तो अेक तेज़ कार्यक्रम में मानते हैं। वे भी कहते हैं कि अगर देश को आजाद होना है तो उसे ज्यादा जोरों से काम करना होगा। हमें अपनी सुस्ती और कमियों को तेजी से हटाना होगा। हमें अपना चरित्र बढ़ाना होगा। त्याग की मात्रा बढ़ानी होगी। अपनी आदतें सुधारनी होंगी। छोटे-मोटे व्यसनों को छोड़ना होगा। देश स्वाधीन होने के बाद भी जो काम हमें अपने चरित्र-बल, संगठन, उद्योग और विचार-शुद्धि से पूरे करने हैं उनमें आज ही से निष्ठा से लग जाना होगा। उनकी परीक्षा में जो

उत्तीर्ण हों अैसे सत्याग्रहियों की सेना तय्यार करनी होगी। जनता का अैसा विश्वास संपादन करना होगा कि जिससे वह किसी के बहकाने से पागल न हो जाय। अहिंसा को न छोड दें। शान्त संगठन के बल को प्रकट करें। रामदुर्ग, कानपुर, लखनऊ जैसी घटनायें न होने पावें। और होने का थोडा-सा भी चिन्ह देखते ही पुलिस या फौज़ की मदद के बिना उसे अहिंसा से शांत करने की ताकत हम पैदा करें। चरखा और ग्राम उद्योगों के महत्त्व को देश समझे। खादी-हृदय और खादी-संस्कृति को अपनावे।

वृन्दावन सम्मेलन में सत्याग्रहियों की लियाकत के बारे में गांधीजी से कुछ सवाल पूछे गये थे। उनमें से अेक यह था–'बीडी, पान, चाय वगैरा के आदी सत्याग्रही हो सकते हैं या नहीं'? गांधीजी ने कुछ दर्द के साथ कहा कि मैं इन आदतों को अच्छा तो नहीं समझता लेकिन मेरी इतनी हिम्मत नहीं चलती कि मैं इन्हें मना करूं। शायद उनके मन में अैसे विचार चल रहे होंगे कि "क्या मैं किशोरलाल और दूसरे बीसों आदमियों का इन्हीं कारणों से त्याग करूं कि वे चाय पीते हैं या अुनमें से कोअी बीडी पीता है?" फिर भी, इन आदतों के कारण जेल में कितने 'तिकडं' के व्यवहार होते थे यह छिपी बात नहीं है। तब हम समझ लें कि गांधीजी को हिम्मत नहीं होती इसका मतलब यह नहीं कि वे इन आदतों को सत्याग्रह की सफलता में विघ्नरूप नहीं समझते। लेकिन अच्छे साथियों की भी अैसी कमजोरी उन्हें लाचार बना देती है।

पर इस उत्तर के साथ हम यह भी समझ लें कि गांधीजी हमें पूर्वसूचना दे रहे हैं। गांधीजी आज जिसे अपनी कमजोरी कहते हैं उसे वे चन्द दिनों में अेक झटके-से छोड देते हैं। वृन्दावन में उन्होंने कहा कि ग्वायर–फैसला छोड देने की आज मुझमें हिम्मत नहीं है। लेकिन राजकोट पहुंचते पहुंचते उन्होंने वह हिम्मत प्राप्त कर ली। मतलब यह कि जिस वक्त वे अपनी ला-हिम्मत बताते थे उस वक्त भी अुनके दिल में वह हिम्मत पक ही रही थी। इसी तरह कल यदि वे जाहिर कर दें कि जो लोग चाय, बीडी, पान आदि का इस्तेमाल करते हैं वे सत्याग्रही नहीं हो सकते तो वैसा फर्मान सुनने के लिअे हम तय्यार रहें।

हम समझ लें कि लडाई लड़ने के बारे में गांधीजी में और अंग्रेजों में अेक बडी समानता है। वे बेशिस्त (बतरबियत) और बेतालीम वाले लाख सिपाही, और करोडों लोगों की असंगठित टोलियों की अपेक्षा तालीम पाये हुअे चन्द चुनन्दे सिपाही और न लडने वाली लेकिन रचनात्मक पद्धति से सुसंगठित काम करने वाली आम जनता ज्यादा पसंद करते हैं। आजादी के लिअे लोगों से जगह जगह गोलमाल कराने की बे जरूरत नहीं समझते। बल्कि चन्द सत्याग्रही जब बलिदान की वेदी की तरफ बढें तब सारी जनता शान्ति से इस तरह अपना स्वावलंबन बता दे कि सरकार स्तब्ध हो जाय अैसी लडाई चाहते हैं। अगर अैसी अेक अहिंसा-सज्ज सेना और जनता हम दिखा सकें तो श्री सुभाष बाबू की तरह वे भी कहेंगे कि अब हमें स्वराज्य हासिल करने के लिअे सिर्फ अल्टिमेटम (आखिरी सूचना) देने की ही जरूरत है। जिस तरह हिटलर ने सुडेटेन ले लिया उसी तरह हम भी नोटीस भर से

अपने देश को स्वाधीन कर सकते हैं।

इस दृष्टि को सामने रख कर तरुणों का कोअी नेता या समूह--चाहे वे समाजवादी फिरके के हों या गांधीवादी–आत्मशुद्धि, प्रजा-शुद्धि और संगठन बढानेवाला अेक तेज़ कार्यक्रम सूचित करे और अमल में लाने की चेष्टा करे तो मैं मानता हूं कि गांधीजी और उनके पीछे उनके सब सेनापति बडी नम्रता और हर्ष से उसका सत्कार करेंगे और उसे अपना सरताज बनावेंगे।

लेकिन इस विषय में मेरी जो राय बनी है और जो मैंने बार बार बतायी है वह फिर से स्पष्ट बता देना चाहता हूं। आज के तरुणों में संयम और आत्मशुद्धि के प्रति तेजस्वी श्रद्धा बहुत कम हो रही है। हमारे तारुण्य में हम अेक हद तक उस तक पहुंचे। मुमकिन है कि उससे आगे बढने की ताकत आज हम अपने में नहीं पाते। नव-जवान हमसे आगे बढ सकते हैं और हमारे आदरपात्र बन सकते हैं। लेकिन जिन भावनाओं ने हमें सेवाक्षेत्र, भोगत्याग और संयमी जीवन की तरफ बढने को प्रेरित किया उन भावनाओं का अस्तित्व आज के बहुत कम तरुणों में मुझे दीख पडता है। समाजवादी तरुणों में अेक प्रकार की जोशीली भावनायें जरूर हैं। लेकिन जिस प्रकार की जोशीली भावनाओं से सदियों गिरी हुअी कोअी प्रजा अपना सिर ऊंचा उठा सकती है उन्हें मैं समाजवादी तरुणों में नहीं पाता। गांधीवादी परिभाषा अगर आज के तरुण समझ न सकते हों तो वे उसे भले ही छोड दें। देश के सवालों को वे समाजवादी परिभाषा में भले ही समझें। वे राष्ट्रीयता की भावना को भी भले ही छोड दें और आन्तरराष्ट्रीय या विश्व-भावना का विकास करें। लेकिन यह पक्का समझ लें कि केवल नयी परिभाषा तथा किसी अन्याय करनेवाले के खिलाफ़ सिर्फ रोष और घोष (स्लोगन्स) करने भर से किसी जनता का उद्धार नहीं हो सकता। उसके लिअे खानगी और सार्वजनिक दोनों प्रकार के जीवन में चरित्र की शुद्धि, संयम, मिहनती स्वभाव और जनता के प्रति करुणा और आर्द्रतापूर्वक ठोस रचनात्मक काम की जरूरत है। ये बातें परलोक के लिअे नहीं इस लोक के लिअे, हिन्दुस्तान की आजादी के, दुनिया भर के दलितों की मुक्ति के लिअे हैं। जिनकी इन बातों पर श्रद्धा नहीं है वे चाहे समाजवादी हों, गांधीवादी हों, कट्टर हिन्दू हों या कट्टर मुस्लिम हों, देश को स्वतंत्र नहीं कर सकते। जब कभी देश स्वाधीन होगा तब वह सदाचारी और संयमी प्रजा के जरिये ही होगा। तब तक घरेलू झगडे किये जा सकते हैं। अेक दूसरे को गालियां दे सकते हैं। मार सकते हैं। संस्थाओं पर कब्जा कर सकते हैं। लेकिन पराधीनता की बेडी नहीं तोड सकते। हाथी पर आक्रमण करने के लिअे संयमशील शेर का ही बच्चा होना पडता है। भोगरत सियार से वह काम नहीं हो सकेगा। शेर का चमडा ओढने से भी न हो सकेगा।

मुझे खेदपूर्वक कहना चाहिअे कि जातिवाद, समाजवाद, नवमतवाद और नवनीतिवाद इन सब ने इस श्रद्धा को नष्ट करने में बडा हिस्सा लिया है और अुससे देश का नुकसान भी किया है। इस तरह चन्द निष्ठावान कार्यकरों के मार्ग में भी अडचनें पैदा कर दी हैं। भोग की रुचि, श्रम में अरुचि और संयम में अश्रद्धा का नतीजा सिवा कायरपन और अन्तर्विग्रह के दूसरा नहीं आ सकता।

कि. घ. म.

मजदूर हड़तालें और कॉंग्रेस

असम–'आसाम' प्रान्त का असली नाम 'असम' है––प्रान्त में अभी दस दिन का भ्रमण कर के आया हूँ। वहां हिन्दुस्तान के अुत्तरपूर्व सीमान्त में डिग्बोअी में मिट्टी के तेल की खाने हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि वे अंग्रेजों के ही हाथ में हैं। युक्तप्रान्त, बिहार, पंजाब आदि सब प्रान्तों के मज़दूर और कारीगर वहाँ पर काम करते हैं। फिलहाल वहां पर दस हजार मज़दूरों की बडी कडी हडताल है। अेक तरफ अंग्रेज मालिक, दूसरी तरफ बाहर से आये हुअे देशी मज़दूर, और अिन दोनों के बीच असम प्रान्त का स्वदेशी किन्तु सयुक्त मंत्रीमण्डल––अैसी हालत होने से अिस हडताल का महत्त्व असाधारण हो गया है। किसी भी सीमान्त प्रान्त में अंग्रेज सरकार की धाक असाधारण होती है। वहां के अमले अंग्रेज जाति की अिस धाक को ही राज्यशासन समझते हैं। अैसी हालत में वहां के संयुक्त मंत्री-मण्डल, 'कोअलिशन मिनिस्ट्री' की हालत बडी विचित्रसी हो जाती है।

डिग्बोअी में हत्या–काण्ड भी हुआ। कअी मज़दूर गोली से मारे गये। अेक छोटे से अफ़सर ने हत्या–काण्ड की जँाच की। अुसने कंपनीवाले गोरों को निर्दोष ठहराया। पुलिस ने आत्मरक्षा के लिये ही गोली चलायी अैसा फैसला वह जँाच करनेवाला अफसर दे चुका है। लोगों को अिस फैसले से तनिक भी संतोष नहीं हुआ है। मामला राष्ट्रपति के पास पेश हुआ है और सुना जाता है कि असम सरकार ने अेक जँाच कमिटि भी नियुक्त की है।

हडताल लंबाने से कंपनी का करोडों रुपयों का नुकसान हो रहा है किन्तु गरीब मजदूरों की तो जान ही गले में आ गयी है। मज़दूरों के साथ संबंध रखनेवाले व्यापारी, बनिये भी चिन्तित हो गये हैं। कलकत्ता का "स्टेट्समैन" तो असम सरकार के देशी मंत्री-मण्डल पर दिन रात आग अगल रहा है और अपने लाभ की बात खतरे में आते ही अंग्रेज़ कितने बिगड पड़ते हैं और कैसी कैसी अजीब दलीलें करते हैं अुसका नमूना बता रहा है। अखबारी आन्दोलन कितनी अुग्रता से हो सकता है अिसका सबक तो "स्टेट्समैन" से ही सीखना चाहिअे।

जब राष्ट्रपति स्वयं डिग्बोअी की हड़ताल की ओर ध्यान दे रहे हैं और असम सरकार अपने कर्तव्य-पालन में कटिबद्ध है तब हड़ताल के बारे में आज कुछ विशेष लिखना अुपयुक्त नहीं होगा। किन्तु अेक बात तो सोचना ही चाहिअे।

जहां जहां मज़दूर खासी बडी संख्या में रहते हैं और मज़दूर और कारखानेदारों के बीच संघर्ष होने की संभावना होती है वहां वहां कांग्रेस की ओर से कारखानेदार और मज़दूरों के संबंध पर निगरानी रखनेवाला अेक स्थायी कर्मचारी नियुक्त करना ही चाहिये। देशी राज्य में जैसे पोलिटिकल अेजन्ट रहते हैं, परदेशी दरबार में जैसे अेलची रहते हैं, अथवा खतरे की जगह जैसे विशेष अधिकार दे कर अफ़सर नियुक्त किये जाते हैं, अुसी तरह जहां जहां मज़दूर और मालिकों में संघर्ष होने की संभावना हो वहां वहां कांग्रेस का अेक प्रभावशाली कर्मचारी रखना ही चाहिअे। कारखानेदार और मज़दूर दोनों से आवश्यक जानकारी प्राप्त होने की सुविधा हम आसानी से पैदा कर सकते हैं। अैसे कर्मचारी का खर्च

मालिक और मजदूर दोनों की ओर से कमीशन ले कर कांग्रेस चला सकती है। अिस कर्मचारी का कर्तव्य पक्षपात-रहित जांच करते रहना और समय समय पर कांग्रेस को रिपोर्ट भेजना होगा।

अैसी व्यवस्था करने से हड़ताल शुरू होने के पहिले ही कांग्रेस अिलाज कर सकती है और देश में अहिंसा का वायुमंडल प्रस्थापित कर सकती है।

हो सकता है कि प्रारंभ में कारखानेदार अथवा मजदूर, अथवा दोनों, कांग्रेस के अिस कर्मचारी को सहयोग न दें। किन्तु अैसी हालत बहुत दिन तक नहीं टिक सकती। दोनों पक्षों को कांग्रेस के साथ सहयोग करना ही पडेगा।

मजदूरों का सवाल हम अपने हाथ में न लें तो देश के वायुमण्डल पर अहिंसक नीति का प्रभाव जम नहीं सकेगा।

अहिंसक देश-रक्षा

गत पच्चीस वर्ष के स्वराज्य के आन्दोलन से जनता का विश्वास अहिंसा की पद्धति पर आहिस्ता आहिस्ता बैठने लगा है। अगर देश में हिंसा का वायुमंडल बढ़ रहा है तो वह स्वराज्य प्राप्ति की अुत्कंठा से नहीं, किन्तु अंदरूनी अीर्षा, द्वेष, अधिकार-लालसा और मनुष्यसहज रागद्वेष, के कारण ही बढ़ रहा है। जब आत्मशुद्धि होगी तब हिंसा का वायुमंडल आप ही आप दूर हो जायगा।

किन्तु अेक बात जनता के ध्यान में नहीं आती और जनता अुसका हल विस्तार के साथ अहिंसावादियों से चाहती है।

"देश में जब जर्मनी, जापान, अिटाली या अंग्रेज बम बरसाने लगेंगे और शत्रु की सेनायें देश में घुस कर लोगों की कत्ल करने लगेंगी, अथवा बस्ती में आग लगायेंगी तब अहिंसा के मार्ग से देश का रक्षण कैसे किया जायगा"—यह सवाल हर अेक के मन में अुठता है। जनता की यह चिन्ता और यह जिज्ञासा स्वाभाविक है और अिस विषय की चर्चा आज से ही करने लगना निहायत जरूरी है। गांधीजी ने शान्ति-सेना का थोड़ा-सा जिक्र पारसाल किया था, किन्तु अुन्होंने अुस कल्पना का विस्तार देश के सामने नहीं किया।

अहिंसा अेक विशिष्ट संस्कृति का बुनियादी तत्त्व है। अहिंसक संस्कृति का जीने का ढंग ही अलग है। अिसीलिये अुसका जीतने का ढंग भी अलग होना चाहिये।

अेक सूचना अैसी है कि अगर हम अपने देश में धन को केन्द्रित न होने देंगे, राजसत्ता को केन्द्रित नहीं होने देंगे अेवं लोकसंख्या को भी बडे बडी शहरों के जैसी गाढी बस्ती में केन्द्रित नहीं करेंगे, तो हमारे लिअे खतरा बहुत कम है। हिंसक मार्ग से फौजी तय्यारी पूरी पूरी करने के बाद भी अिंग्लैंड, फरान्स, अमेरिका वगैरह देश अपनी सलामती का भरोसा नहीं कर सकते हैं। तब हिंदुस्थान हिंसा-मार्ग से तो अपने को बचा ही नहीं सकता यह निर्विवाद है। जहाँ धन, राजसत्ता और आबादी बडे बडे केन्द्रों में अिकट्ठी नहीं हुअी है वहाँ शत्रु से डरने का कारण नहीं है। मधुबिन्दु जब तक फूलों में है तब तक सुरक्षित है। जब संग्रहशील मक्खियाँ अुसे ला कर अपना छाता भर देती हैं तभी अुसके लूटे जाने का खतरा पैदा होता है।

का० का०

वाङ्मयपरिचय

गांधीवाद की रूपरेखा

लेखक, श्री रामनाथ सुमन,
प्रकाशक, साधना सदन, किंग्स वे, देहली;
मूल्य रु. १)

समाज-रचना के सिद्धान्त और उनको अमल में लाने की रीति के बारे में गांधीजी खास विचार रखते हैं, और पिछले बीस वर्षों में उन्होंने अपने खास ढंग से उनका प्रचार और अमल करने का जगमशहूर काम किया है। वे सिद्धान्त और वह रीति क्या है और उनके मूल में कौनसी तरह की विचारधारा रही है, इसे श्री सुमनजी ने इस पुस्तक में अपनी भाषा और तर्क-पद्धति से समझाने की कोशिश की है। प्रयत्न अच्छा है, और जैसे श्री राजेन्द्रबाबू ने पुस्तक की भूमिका में कहा है, "गांधीजी के विचारों का इन्होंने गंभीरतापूर्वक अध्ययन किया है।... और जो लोग उनसे (गांधी के विचारों से) वैज्ञानिक और शास्त्रीय परिचय करना चाहते हैं, उनके लिअे सुमनजी के लेखों में काफी सहायता मिलेगी।"

पुस्तक में अेक दूसरे से स्वतंत्र अैसे बारह निबंध हैं। जिनमें से दो—'गांधीवाद और समाजवाद' तथा 'भारतीय विचारभूमि पर मार्क्सदर्शन की धारणाअें' नाम के–ज्यादा कीमती हैं। गांधीयुग की 'देन और प्रवृत्तियाँ' तथा उसका 'सिंहावलोकन' भी कुशलतापूर्वक लिखा गया है। सिंहावलोकन में सुमनजी ने गांधी-वादियों पर दो आक्षेप किये हैं। अेक यह कि गांधीजी तथा गांधीवादियों में 'समाज-शास्त्र के वैज्ञानिक अध्ययन की रुचि अेवं प्रवृत्ति कम है। गांधीवाद के अच्छे विचारक भी अन्य सामाजिक विचारधाराओं का व्यापक ज्ञान नहीं रखते।' दूसरा यह कि साधारणतः (गांधीजी के) कट्टर अनुयायी यह समझते हैं कि तफ़सील की बातों में या सिद्धांतों के प्रयोग में गांधीजी के निश्चय से भिन्न कोई निश्चय नहीं किया जा सकता। गांधी-समूह में अपवादों को छोड कर, स्वतंत्र चिंतन की बडी कमी है। गांधीवाद के लिये सब से बडा खतरा यही है।

गांधीवाद के अेक मित्र की यह स्वतंत्र राय है। इस पर गांधी–अनुयायी कहलाने वाले लोगों को जरूर विचार करना चाहिअे।

आज कल किसी विशेष पुरुष से भूमिका लिखवाने की प्रवृत्ति बहुत जोरों से हमारे देश में चली है। इसकी उपयोगिता तो है। फिर भी, इसमें मर्यादा की भी जरूरत है। अेक पुस्तक में कितने लेखकों की भूमिकायें हों? सुमनजी को केवल श्री राजेंद्रबाबू से 'भूमिका' लिखवा कर संतोष नहीं हुआ। श्री काका साहेब से अेक 'प्राक्कथन' भी लिखवाया है। मेरी राय में यह रीति अच्छी नहीं है। और, श्री काका साहेब ने जब अपना 'प्राक्कथन' लिख दिया उस समय अगर उन्हें मालूम रहा हो कि श्री राजेंद्रबाबू इस पर 'भूमिका' लिख चुके हैं, तो मैं कहूंगा कि श्री काका साहेब ने भी यह ठीक नहीं किया। अल-बत्ता, हरेक पाठक इन दोनों की प्रस्तावना पढ़ कर लाभ उठायगा। लेकिन, यह रीति अच्छी नहीं है। ('प्राक्कथन' की तारीख ४-१-३८ बताई गई है। लेकिन दीख पडता है कि दरअसल ४-१-३९ चाहिअे।)

कि. ध. म.

सर्वोदय मिलने की व्यवस्था निम्न लिखित स्थानों में की गयी है

(१) शिष्ट साहित्य भण्डार, आनंद भुवन, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बअी २
(२) वोरा अेण्ड कंपनी, ८, राउण्ड बिल्डिंग, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बअी २
(३) नवजीवन कार्यालय, १३०, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बअी २
(४) नवजीवन कार्यालय, अहमदाबाद।
(५) खादी भण्डार, हैरिसन रोड, कलकत्ता।
(६) सस्ता साहित्य मण्डल, नया बाजार, देहली।
(७) सस्ता साहित्य मण्डल, लखनऊ।
(८) गांधी आश्रम, गोरखपुर।
(९) मगनलाल हिम्मतलाल भट्ट, कॉंग्रेस हाअूस, नाणावट, सूरत।

सूचना—

'सर्वोदय' में आम तौर पर अिश्तिहार नहीं लिये जायेंगे। अपवाद केवल वाचनीय ग्रन्थ और देशसेवा करनेवाली संस्थाओं के लिये रहेगा। अिनके अिश्तहारों के दाम नहीं लिये जायेंगे। केवल कागज़, छपाई और डाकखर्च लेकर अिश्तिहार छापे जायेंगे। जो साहित्य या संस्था निर्विवादरूप से लोकोपयोगी है, अुसीको स्थान दिया जायगा। यह व्यवस्था केवल समाज-सेवा और ग्राहकों के हित की दृष्टि से चलायी जायगी।

व्यवस्थापक, 'सर्वोदय', वर्धा।

अेक अंक... ...	रु० ०–६–०
वार्षिक	रु० ३–०–०
बर्मा में	रु० ३–८–०
विदेश में... ...	६ शिलिंग
	१.५० डॉलर.
(सब डाक सहित)	

अनुक्रमणिका

(१) गांधीजी से परिप्रश्न ... १

(२) कौअे की नज़र से ("आश्रमवासी अुल्लू") ९

(३) सरदार वल्लभभाअी का भाषण १२

(४) व्यवहार में जीवन-वेतन (विनोबा का अेक प्रवचन) २४

(५) नयी तालीम का रहस्य (गांधीजी का अेक भाषण) ... ३१

(६) ग्राम अुद्योग संघ (गांधीजी का अेक भाषण) ... ३४

(७) भारतीय लोकशाही और गांधीजी का नेतृत्व (श्री शंकर दत्तात्रेय जावडेकर) ३६

(८) बालमित्र गिजुभाअी (श्री काका कालेलकर) ... ४८

(९) सर्वोदय की दृष्टि ५१

वारिश के दिन आ गये ! राजकोट पर्व; चूड़ा और भूंसी का किस्सा; शराबबन्दी; अुद्योग बनाम यंत्रवाद।

(१०) प्रथम वर्ष के विषयों की अकारादि क्रम से सूची

सर्वोदय

अेष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके

संपादकः—काका कालेलकर
दादा धर्माधिकारी

जुलाई १९३९
वर्धा

गांधीजी से परिप्रश्न

—२—

अच्युत देशपांडे—बापू, मेरे सवाल के कुछ हिस्से का जवाब मिलना बाकी है। आपने अभी समझाया कि आज, जब कि वायु-मंडल हिंसा से भरा हुआ है अैसी हालत में सांप्रदायिक और दूसरे तरह के दंगे होने का डर है। आन्दोलन करनेवाले भले ही मार खावें और मुसीबतें सहें, लेकिन जिनकी यह तैयारी नहीं अुनको भी मार खाने के लिअे मजबूर नहीं करना चाहिअे। अिसलिअे सविनयभंग बन्द करके रचनात्मक काम में लग जाना चाहिअे। यह सब समझ में आ गया। लेकिन रचनात्मक काम करते हुअे अपनी शक्ति बढ़ाने की कोशिश करना तथा आन्दोलन में हिस्सा लेनेवाली प्रजा को अहिंसा की शिक्षा देना तो ज़रूरी है ही। अब सवाल यह है कि मान लीजिये कि हम लोग कोअी सभा करना चाहते हैं या जुलूस निकालना चाहते हैं। यह सभा या जुलूस निर्दोष है। अुनमें हिंसा की भाषा तक नहीं। तो भी कोअी अेक फ़िरका (यथा-राजकोट में गिरासिया, बडौदा के कुछ महाराष्ट्रीय, हैदराबाद के कुछ मुसलमान) अिस भ्रम से कि हम सरकार के प्रति बेवफ़ा हैं और अुस फ़िरके को नुकसान पहुँचाना चाहते हैं, हमको देखते ही क्रोध से मतवाला हो जाता है, हमें कोसता है और हम पर टूट पड़ता है। अिस तरह हमारा आन्दोलन अुनमें गुस्सा पैदा करता है और अुनके और आन्दोलनकारियों के बीच अेक दीवार खड़ी हो जाती है। अैसे वक्त यदि अुनसे समझौते की बातें करने जावें, या संपर्क बढ़ाने की कोशिश करें तो, चूंकि पहले ही काफी गैरसमझी हो चुकी है अिसलिअे, हमारी कोशिशें आग में तेल का काम देती हैं।

तो क्या मेरा यह कहना ठीक है कि अैसी हालत में हिन्दू–मुस्लिम–अेकता या गिरासिया–गैर–गिरासिया–अेकता कमिटियां बनाने के, यानी अेकता की फ़ज़ूल कोशिश करने के बदले कुछ दिन के लिअे अिस बात में हाथ ही न डालना आवश्यक और व्यवहार्य है?

उत्तर– हां। ठीक है।

यह प्रश्न **मूलचंद अग्रवाल** ने पूछा है। वह तो मेरा पुराना पूछने वाला है।

प्रश्न ६ ठाँ:—बाल-विवाह, मृतक, बिरादरी-भोज, पर्दा और छुआछूत के कारण लोगों में राष्ट्रीय जागृति होने ही नहीं पाती है। परंतु कुछ लोगों का खयाल है कि राजनैतिक कार्य ही करना चाहिअे, समाज-सुधार के कार्य में क्या रक्खा है? यह काम तो राजनैतिक अधिकारों की प्राप्ति के पश्चात् अपने आप हो जायगा। असिलिअे कृपा कर बतलावें कि राष्ट्र-निर्माण के कार्य में समाज-सुधार का क्या स्थान है?

उत्तर:—यह प्रश्न तो बहुत देर से पूछा गया है। वह तो १९२० में ही पूछना चाहिअे था। मेरे नजदीक अैसा कोअी अनोखा राजनैतिक क्षेत्र नहीं है जिसका समाज-सुधारणा से संबंध न हो। दोनों ओतप्रोत हैं। समाज-सुधार को हम तीव्रता से न करें तो राज्यसुधारणा भी नहीं होती। असिलिअे में समाज-सुधार को पहला स्थान दूंगा और राजकीय काम अगर कोअी अलग चीज़ है तो, अुसे दूसरा। मैंने विद्यापीठ के काम में, खादी के काम में, सनातनियों से मदद ली। लेकिन जब अुन्होंने कहा कि अस्पृश्यता-निवारण की बात छोड दो तो मैंने कहा कि में आपकी मदद के बिना काम चला लूंगा। मूलजी जेठा मार्केट ने पैंतीस हजार रुपये का वचन दिया। लेकिन अैसी ही कुछ शर्त बतायी। मैंने कहा आपके पैंतीस हजार आपको ही मुबारक हों, मुझको नहीं चाहिअे, लेकिन अस्पृश्यता-निवारण आज ही चाहिअे। अुनके पैंतीस हजार आज तक नहीं आये। पर स्वराज्य का काम नहीं रुका। अैसी चीजों को अपने दिल में स्थान देना भयंकर है। 'राजकीय' और 'सामाजिक' के विचार को भी हम अपने दिल में स्थान न दें। राष्ट्र की प्रगति को न रोकें।

हां, यह सही है कि कुछ विवेक तो करना होगा। बिरादरी में कोअी भोजन देते हैं तो वहां जा कर सत्याग्रह करना ठीक नहीं है। हम भोजन करने न गये तो काफी है। समाज-सुधार के विषय तो अितने पडे हैं कि वे राजनैतिक काम के साथ साथ चलते ही रहेंगे। अुसमें भी हम अहिंसा से काम लेंगे। लेकिन सत्याग्रह तो प्रचंड शस्त्र है। अुसका अुपयोग हर जगह नहीं कर सकते। अुसका अुपयोग मर्यादित है।

अब **महावीर प्रसाद पोद्दार** का यह प्रश्न है:—

प्रश्न ७ वां:–जो आदमी अपने घरवालों को या आसपासवालों को हरिजनों के साथ खाने-पीने के व्यवहार के लिअे तैयार न कर सका हो अुसे गांधी सेवा संघ का सदस्य होना चाहिअे या नहीं?

उत्तर:-जबतक अुसने अपने घर का व्यवहार शुद्ध नहीं किया, या नहीं कर सका, तबतक अुसे गांधी सेवा संघ का सदस्य किसी हालत में नहीं होना चाहिअे। जबतक अुसने अपने घर का झगडा तय नहीं किया तबतक बाहर रह कर सेवा कार्य करता रहे। तो क्या घरवालों से और अपनी पत्नी से लडाअी-झगडा करता रहे? अपनी पत्नी को मारे-पीटे और घर से निकाल दे? हरगिज नहीं। अपने आचरण में वह अस्पृश्यता न माने। अपने घरवालों के विरोध को शान्ति से बरदाश्त करे। अहिंसा से अुनके दिल पर काबू कर ले।— अुसके लिअे तो अपना घर ही प्रयोगशाला

बन जाती है। जबतक वह अपनी पत्नी को अपने प्रेम से नहीं जीत सका तब तक वह गांधी सेवा संघ में न आ सकेगा।

राधाकृष्ण बजाज के प्रश्नः-

प्रश्न ८ वाँ—जिसकी अीश्वर पर श्रद्धा हो वही सत्याग्रह में भाग ले सकता है अिस नियम को जो लोग दिल से नहीं मानते, जो समाजवादी या अनीश्वरवादी हैं, अुनके लिअे क्या सत्याग्रह का रास्ता बन्द ही समझना चाहिअे ?

उत्तर—मुझे यह दुःख के साथ कहना पडता है कि 'हां'। सत्याग्रही का बल अीश्वर ही है। वह अकेली अपनी टांगों के बल चलना चाहता है। लकडी का सहारा नहीं चाहता। बाहरी बल पर भरोसा नहीं रखता। अीश्वर पर विश्वास भीतरी शक्ति है। अिसलिअे जो अुसे नहीं मानते अुनके लिअे सत्याग्रह का मार्ग बंद है। वे निःशस्त्र प्रतिकार का रास्ता लें। वे असहयोगी भी हो सकते हैं। लेकिन सत्याग्रही नहीं। क्योंकि जो अीश्वर को नहीं मानता वह अंत में हारेगा। तो क्या मैं कबूल कर लूं कि अहिंसा से विजय नहीं हो सकती? अुलटे मैं तो कहता हूं कि अहिंसा में पराजय की गुंजाअिश ही नहीं है। अीश्वर में विश्वास ही अहिंसा का बल है। अिसलिअे कोअी दुःख भी मानें तो हमें बरदाश्त कर लेना चाहिअे। लेकिन साफ कह देना चाहिअे कि जो अीश्वर को नहीं मानते अुनके लिअे यह रास्ता नहीं है। दूसरा कोअी मार्ग नहीं है। जो समाजवादी मुझे नहीं समझते वे कहेंगे कि देखो अिसने हमको निकालने के लिअे यह अेक नयी युक्ति निकाली। मैं लाचार हूं। अिस आक्षेप को भी सह लूंगा। आप यह भले ही कहें कि अिससे तो बहुत से बहादुर साथी बाहर रह जायेंगे और अीश्वर में कोरा विश्वास बताने वाले परन्तु अपने जीवन में अुसपर अमल न करनेवाले दांभिक लोग आ जायेंगे। लेकिन मैं दांभिकों की बात नहीं कर रहा हूं; बलिक अुनकी जो अीश्वर के नाम पर अपना सर्वस्व देने को तैयार हैं।

मुझसे यह सवाल पूछने के बदले यह पूछो कि तू बीस साल तक क्यों सोया? और अब बीस वर्ष के बाद यह नयी शर्त क्यों लगाता है? यह कहो कि तुझे जागने में अितनी देर क्यों लगी? अिस अिलजाम को मैं अेकदम कबूल कर लूंगा। मैं अितना ही कहता हूं मैं कहां आस्मान से अुतर आया हुआ पूर्ण सत्याग्रही हूं? मैं कोअी सत्याग्रह का बना-बनाया तंत्र ले कर नहीं आया हूं; या स्वर्ग से कोअी पुस्तक ले कर नहीं आया हूं, जिसे देख कर पहले से ही सारी बातें बता सकता। मैं तो आपके साथ समाज में बैठा हूं। सत्याग्रह के प्रयोग और अनुभव से जो नयी चीज़ मिल जाती है वह आपके सामने रख देता हूं।

कृपालानी—तो क्या जैन और बौद्ध आदि निरीश्वरवादी सत्याग्रह में नहीं आ सकते ?

उत्तर—अगर कोअी जैन और बौद्ध अनात्मवादी ही हैं तो वे नहीं आ सकते। लेकिन वे तो आत्मवादी हैं। जो आत्मवादी हैं वे अीश्वरवादी भी हैं। अीश्वर शब्द का अेक विशेष अर्थ ले कर ही वे झगडा करते हैं। मैं झगडा नहीं करना चाहता। राजकोट में किसी जैन ने मुझसे पूछा भी। तो मैंने यही कहा। तब अुसे खयाल आया कि जैन भी तो अेक महा प्रचंड शक्ति में मानते हैं। जो हर

हालत में हमारी मदद करे अैसी शक्ति को जो मानता है वह नास्तिक नहीं है। वह अीश्वर को मानता है। फिर जैन और बौद्ध हो तो भी क्या हुआ? लेकिन यदि जैन और बौद्ध ही खुद कहें कि हम तो अीश्वर में नहीं मानते अिसलिअे सत्याग्रही नहीं बन सकते तो मैं अुनसे बहस नहीं करूंगा। कहूंगा कि आप ठीक कहते हैं।

कृष्ण नायर–कोअी शख्स अीश्वर को मानता है या नहीं अिसकी कसौटी क्या है? कोअी अुसे अेक मनो-वैज्ञानिक सम्भावना के रूप में मानता हो और अेक गूढ शक्ति के रूप में न मानता हो तो क्या वह अनीश्वरवादी है?

उत्तर–यह प्रश्न सूक्ष्म है। अुसमें अितना गहरा जाने की जरूरत भी नहीं है। बात यह है कि मैं यह नहीं कहता कि मैं जिस रूप में अीश्वर को मानता हूं अुसी रूप में या अुसी भाषा में सब को मानना चाहिअे। कोअी आदमी अीश्वर को मानता है या नहीं अिसकी बनी-बनायी कसौटी नहीं है। फिर भी अिस बात की परीक्षा तो हो सकती है। लेकिन अब अिसका फैसला कल होगा। क्योंकि मेरा समय खतम हो चुका है।

–३–

ता० ७ मअी, १९३९

गांधीजी–कल जो मैंने शुरू किया था और खतम न कर सका वह राधाकृष्ण का प्रश्न ही लेता हूं। अीश्वर के बारे में जो प्रश्न है वह करीब खतम हो गया था। बाद में अुसपर बहस हो रही थी। श्री कृष्ण नायर ने अेक सूक्ष्म प्रश्न अुठाया था। अिसमें अधिक बहस की गुंजाअिश नहीं। मनुष्य चाहे जिस नाम से, या चाहे जिस विशेषण से, अीश्वर को पहचाने अिसकी मुझे दरकार नहीं। मैंने तो अेक सामान्य वाक्य में कह दिया था जिसकी अीश्वर में श्रद्धा नहीं है वह सत्याग्रही अंत तक नहीं टिक सकता। मेरा मतलब यह था कि जबतक सत्याग्रही अैसा न माने कि मेरे पीछे अेक प्रचंड सूक्ष्म शक्ति है जो हर हालत में मुझे बल देगी तब तक वह जुल्म, क्लेष और अपमान सह कर अपनी अहिंसा कायम नहीं रख सकता। अुस शक्ति की आपकी और मेरी व्याख्या अलग अलग हो सकती है। लेकिन वह आपका अन्तिम आधार होनी चाहिअे। चाहे आप अुसे अेक परमशक्ति या परमवस्तु भले ही मानें। चाहे आप अुसकी व्याख्या भी न बता सकें। लेकिन अुसमें श्रद्धा होना जरूरी है। आज तो हमें अैसा कोअी कष्ट होता ही नहीं जिसे हम टॉर्चर (अमानुष अत्याचार) कह सकें। कोअी हमें अंगार में थोडे ही फेंक देता है? या हमेशा सुअी भोंक कर थोडे ही रखता है? यह तो पराकाष्ठा की निर्दयता हुअी। अितने क्लेष सह कर भी जालिम के लिअे हमारे मन में द्वेष न रहे यह अहिंसा है। अैसी पराकोटि की अहिंसा यंत्रणाओं को सहते हुअे भी मनुष्य अपने पुरुषार्थ से नहीं रख सकता। जब तक किसी तत्त्व में अुसकी अितनी श्रद्धा न हो और वह अैसा महसूस न करे कि मेरे पीछे अेक प्रचंड शक्ति खडी है तब तक अुसे अैसी निर्दयता शान्ति से सहने में बल नहीं मिलेगा। यह जो शक्ति मदद देती है अुसीका नाम अीश्वर है। अैसे मौके पर भी जालिम पर दिल में भी रोष न करने का नाम ही अीश्वरनिष्ठा है।

प्रश्न ९ वाँ-जो खादी आदतन पहनते हैं लेकिन कांतते नहीं, न अुनमें कांतने की वृत्ति है, क्या वे सत्याग्रह में लिअे जा सकते हैं?

उत्तर-नहीं। अैसे लोगों को सविनयभंग में नहीं लिया जा सकता। आप ध्यान दें। मैं सविनयभंग कह रहा हूं सत्याग्रह नहीं। सत्याग्रह शब्द व्यापक है। सविनयभंग के लिअे खास तैयारी की जरूरत है। सत्याग्रह में तो रचनात्मक काम भी आ जाता है। जो कांतते नहीं वे सत्याग्रही हो सकते हैं लेकिन सविनयभंग में नहीं आ सकते।

प्रश्न १० वाँ-जो लोग खादी नहीं पहनते लेकिन देश के लिअे जिनके दिल में जलन है, जो वकील वकालत पर लात मारने को तैयार हैं, जो भाअी या बहनें स्वार्थत्यागपूर्वक और खुशी से कष्ट सहने के लिअे आगे आना चाहती हैं अुनसे क्या कहा जाय?

उत्तर-करोडों लोग तो सविनयभंग में शामिल नहीं हो सकते। सविनयभंग अुनके लिअे है जिन्होंने आत्मशुद्धि कर ली है और जिन्होंने नियमों का विनय-पूर्वक पालन करने का अिल्म हासिल किया है। वे ही जानते हैं कि किन नियमों का, कब और कैसे भंग करना चाहिअे। वे राज्य के ही नहीं, सभी तंत्रों के नियम अिच्छा-पूर्वक पालते हैं। सजा के भय से नहीं, जानबूझकर धर्म-भावना से। तब नियमभंग का अधिकार आता है। यह जहर की मात्रा पीने की बात है। आदमी अगर ज्ञानपूर्वक जहर की मात्रा न ले तो मर जाता है। मैं जितना ज्यादा विचार करता हूं अुतना यह पाता हूं कि सविनयभंग मामूली शस्त्र नहीं है। प्रत्येक मनुष्य अुसका अुपयोग नहीं कर सकता। प्रत्येक मनुष्य सत्य का आग्रह तो रख सकता है। आज जो लोग सविनयभंग करते हैं वे सभी अैसे नहीं हैं। जो सविनयभंग के अधिकारी हैं अुनको छोड कर बाकी लोग सविनयभंग नहीं करते बल्कि अविनयभंग करते हैं। क्रोध-पूर्वक हिंसामय भंग करते हैं। हो सकता है कि वे अच्छे आदमी हैं। शायद हमसे श्रेष्ठ भी हैं। लेकिन हमारे ढांचे में नहीं आ सकते। अिसलिअे वे बाहर रहें।

प्रश्न ११ वाँ-सत्य और अहिंसा पर पूर्ण विश्वास की मर्यादा क्या मानी जाय? जिसकी सत्य-अहिंसा में वास्तविक श्रद्धा होगी अुसका रोज का जीवन भी हिंसा और असत्य से बहुत दूर न होना चाहिअे। अैसी स्थिति में जिसके घर विदेशी या मिल के कपडे का व्यापार होता हो या जो किसी भी तरह देश का धन परदेश जाने में मदद करता हो, या अपने दूसरे किसी काम से देश का अहित करता हो, क्या वह सत्याग्रह में लिया जा सकता है? अगर वह कह दे कि मेरा सत्य और अहिंसा में विश्वास है तो अितना ही काफी मान लिया जाय या अधिक जांच की जाय?

उत्तर-जिस मनुष्य का व्यवहार अिस तरह का हो, मेरी राय में वह सविनयभंग में नहीं आ सकता। "सविनयभंग" में नहीं आ सकता यह फिर भी याद रक्खा जाय। अिस बारे में मैं खुद निर्बल रहा। जितनी चाहिअे अुतनी सख्ती नहीं की। अुसका नतीजा मैं भी पाता हूं और देश भी भुगत रहा है। अैसा मनुष्य सविनयभंग में शामिल नहीं हो सकता। दूसरी तरह से मदद कर सकता है। जिसका व्यवहार ही अितना स्पष्ट है अुसकी और जांच क्या की जाय?

प्रश्न १२ वाँ–चारित्र्य की जांच कैसे की जाय?

उत्तर–अिसका अुतर अूपर की चर्चाओं में आगया है।

प्रश्न १३ वाँ–निर्व्यसन की मर्यादा क्या समझी जाय? बीडी, पान, चाय, अिनको भी क्या व्यसन समझा जाय?

उत्तर–बहुत कठिन प्रश्न है। मैंने तो मादक पदार्थ–सेवन तक ही व्यसन की मर्यादा मानी है। जो मादक पदार्थ खाता पीता है अुसकी बुद्धि भ्रंश हो जाती है। वह सत्य का आग्रह कैसे कर सकता है? अिसलिअे अिस विषय में तो मर्यादा स्पष्ट है? लेकिन अेक मनुष्य बीडी पीता है पर बडा भगवद्‌भक्त है, तो अुसे मैं हटा दूं अैसा मेरा मन नहीं कहता। अफीम, गांजा, भंग, शराब, आदि के निषेध पर तो मेरी हिम्मत चलती है। अिसलिअे अुनके विषय में तो मर्यादा बना ली है। मैं तो तंबाकू का भी कट्टर शत्रु हूं। चाय को भी नहीं चाहता। जो दिन भर जर्दा–पान चबाते रहते हैं अुनको देखता हूं तो मेरे दिल में कुछ हो अुठता है। लेकिन वह मेरी निजी बात हो गयी।

प्रश्न १४ वाँ-जेल में स्वाभिमान के विरुद्ध तो नहीं लेकिन अमानुषता का व्यवहार होता हो, खाना पीना खराब मिलता हो और ज्यादतियां की जाती हों, तो अुपवास आदि करना चाहिअे या नहीं?

उत्तर–अिस बारे में कोअी निरपवाद नियम बनाने में कठिनाअी है। सत्याग्रही हर अेक प्रकार के कष्ट बरदाश्त करने को पैदा हुआ है। बात बात में अुसे मान और अपमान का खयाल नहीं करना चाहिअे। जिसका मिजाज अितना नाजुक हो या जो अितना नाजुक–बदन हो अुसे जेल में नहीं जाना चाहिअे। सामान्य नियम तो यही हो सकता है कि जो सविनयभंग करता है वह जेल में हर प्रकार के कष्ट सहन करने को तैयार रहे। अपने स्वाभिमान और अीमान के खिलाफ़ कुछ न सहे। जो नाजुक हृदय के हैं वे बाहर रहें। सामान्यतः अनशन न करें।

प्रश्न १५ वाँ–अेक बार सत्याग्रह शुरू होने पर अखबार बन्द कर दिये जाते हैं। बुलेटिन बंद कर दिया जाता है। प्रभात-फेरी में जानेवाले गिरफतार किये जा सकते हैं। अैसी हालत में अपनी ओर से जिनको सत्याग्रह के लिअे मंजूरी दी गयी है अुनके सिवा दूसरे किसी को प्रभातफेरी में नहीं जाना चाहिअे, बुलेटिन नहीं बांटना चाहिअे, या जिसमें गिरफ्तारी का संभव हो अैसा दूसरा कोअी काम नहीं करना चाहिअे, यह नीति रखी जाय तो प्रचार–कार्य बंद-सा हो जायगा।

उत्तर–मैं अैसा नहीं मानता कि अिस नीति से प्रचारकार्य बंद हो जायगा। जब तक चन्द आदमी जेल में जाते रहेंगे तब तक अुनके जेल जाने से ही खूब प्रचार होता रहेगा। मैं तो मानता हूं कि सविनयभंग का वही सच्चा प्रचार है। बुलेटिन प्रभात-फेरी, अखबार आदि बंद हो जायँ तो कोअी चिन्ता की बात नहीं। मैंने देखा है कि जबरदस्ती अुन्हें चालू रखने से चाहे जैसे आदमी सविनयभंग में आ जाते हैं। हिन्दुस्थान में जब तीस का सत्याग्रह हुआ तो यरवडा में बहुतसे आदमी आगये थे। अुनमें से चन्द आदमियों से मैं मिल सकता था। और खुल कर बात भी कर सकता था। वे मुझे सुनाते थे कि पहले पहले तो अच्छे अच्छे आदमी

आये। लेकिन अब जो सत्याग्रह में आते हैं वे तो गुंडों के जैसे हैं। वे जेल के नियमों का भंग करते हैं, गालियां देते हैं, मारपीट करते हैं। सवाल यह नहीं है कि वे क्या करते हैं। सवाल यह है कि वे क्या क्या नहीं करते? अकाध लडका अुठता है, बुलेटिन बांट कर जेल चला जाता है। अैसे लोगों को ले कर सत्याग्रह चलाने से क्या फायदा? अैसे जो प्रश्न अुठते हैं अुनमें मैं श्रद्धा का अभाव पाता हूं, हिम्मत का अभाव पाता हूं। हमें आदमियों की भीड से क्या मतलब? हमारी मान्यता तो अैसी है कि अेक भी सच्चा सत्याग्रही रहा तो स्वराज्य को आना ही है। अितनी अधीरता क्यों रखनी चाहिअे? स्वराज्य चाहे आज आवे या कल आवे।

प्रश्न १६ वाँ–अुपर्युक्त शर्तों के अनुसार बहुत थोडे लोग ही जेल में जा सकते हैं। लेकिन जो शर्तों को पूरा नहीं कर सकते परंतु सेवा करना चाहते हैं अैसे दूसरे लोग क्या करें?

उत्तर–अिसका अुत्तर आ गया है।

प्रश्न १७ वाँ–यदि लोग हमसे कहे बिना ही प्रभात-फेरी में जावें या दूसरा प्रचार का काम करें और पकड लिअे जायँ तो हम क्या करें?

उत्तर–हम तो अैसे आदमियों से कहते रहें कि आप अपने कामों से सत्याग्रह को हानि पहुंचाते हैं। अगर वे हमारी न माने तो हम क्या कर सकते हैं? अुनका जो होना होगा सो होगा। अैसे लोग जेल में जायेंगे, अुनमें से कुछ माफी मांग कर भी चले आयेंगे, कुछ जेल काटते रहेंगे। अिसके लिअे हमारा क्या अिलाज?

प्रश्न १८ वाँ–प्रचार–कार्य से जो अेक लोक-जागृति होती है वह प्रचारकार्य और प्रदर्शन के अभाव में कैसे होगी?

उत्तर–अगर हम सच्चे हैं तो हमारे जेल में चले जाने पर भी सच्चा प्रचारकार्य होता ही रहेगा। जो प्रचारकार्य बंद हो जायगा अुसकी कोअी पर्वाह नहीं। प्रचार-कार्य के भी दो विभाग होते हैं। अेक हिंसक और दूसरा अहिंसक। प्रतिपक्षी के विरुद्ध कडवी बातें लिखना, अुसकी बुराअी करना यह प्रचार–कार्य बन्द हो जाय तो कोअी हर्ज नहीं है। हमारे विरुद्ध अगर हिंसक प्रचार होता हो तो अुसके लिअे हमें अपना प्रचार चलाने की जरूरत नहीं। मुझे सुनाया जाता है कि अखबार मुझे और सरदार को गालियां देते हैं, दूसरों को भी गालियां देते हैं। तो क्या हम अुनको अुत्तर देने के लिअे अखबार निकालें? अुसमें द्रव्य, शक्ति और समय बरबाद करें? अपनी सफाअी के लिअे संघ की स्थापना करें? हर अेक चीज़ का कहां तक अुत्तर देते रहेंगे? यह सत्याग्रही से नहीं होगा। यह टीका तो आंधी जैसी है। आंधी आती है, भूकंप आता है। आता है तो आवे। वह जैसे आता है वैसे अुसको चले जाना है। यह आंधी अुस आंधी से भी तो बुरी है। लेकिन अुसका सामना क्या करें? अुसे तो सहन ही करना है। बहुत होगा तो बरदाश्त करते करते मर जायेंगे। अिसी निश्चय से अपना काम करते रहेंगे।

अे. वेदरत्नम् का प्रश्न

प्रश्न १९ वाँ—गांधी–अिरविन समझौते के बाद लोगों को साल भर नमक बटोरने की अिजाजत थी। हाल ही में सरकार ने अैसा हुक्म जारी किया है कि हर साल वह जो समय नियत करेगी अुसीमें नमक बटोरा

जा सकेगा। अबतक लोग नमक अपने सिर पर चाहे जहां तक ले कर जा सकते थे। अब यह सहूलियत किनारे के गांवों तक ही रखी गयी है। नतीजा यह हुआ है कि लोग अिस सहूलियत से कोअी फायदा नहीं अुठा सकते। अैसी हालत में हमें क्या करना चाहिअे?

उत्तर-अिसके बारे में मैं आपसे साफ कह देना चाहता हूं कि अिस हुक्म के लिअे हमारे ही लोग जिम्मेवार हैं। गांधी-अिरविन समझौते में जो मर्यादा रक्खी गयी थी अुसका पालन हमारे लोगों ने नहीं किया। अिसलिअे ये ज्यादतियां होती हैं। जैसा करते हैं वैसा भरते हैं। जहां लोग मर्यादा में रहते हैं वहां अैसी रुकावटें नहीं होतीं। जहां नमक का व्यापार करने लगे हैं वहां अैसी बातें चलती हैं।

मूलचन्द अग्रवाल का प्रश्न

प्रश्न २० वाँ-क्या आप यह मानते हैं कि आर्य समाज के तत्वज्ञान में हिंसा का समर्थन है?

उत्तर-यह मैंने कभी नहीं कहा। मैं तो अितना ही कहता हूं कि मामूली सनातनी हिन्दू जिस तरह हिंसा और अहिंसा दोनों के प्रयोग को अुपयुक्त मानता है अुसी तरह वे भी मानते हैं। वे अैसा मानते हैं कि जब हिंसा करना धर्म हो जाता है तब अहिंसक रहने में दोष है। हम केवल अहिंसक प्रतिकार में ही मानते हैं। यह हममें और अुनमें अंतर है।

मूलचन्दजी-लेकिन आपने भी तो बछड़े को और कुत्तों को मरवाना अपना धर्म समझा

उत्तर-तब तो तुम्हें यह कहना चाहिअे कि अहिंसाधर्म की बात मेरे मुंह में शोभा नहीं देती। यह मुझे मंजूर है। अिसके लिअे मैं अपना कान पकड़ने को तैयार हूं। बछड़े और कुत्तेवाली बात तो तुम जानते ही हो। अुसके बारे में मुझे जो कुछ कहना था वह सब कह चुका हूं।

आप क्या मानते हैं? तोप चलाकर सैंकड़ों को मार डालने में हिम्मत की जरूरत है, या हंसते हुअे तोप के आगे जा कर मरने में? जो स्वयं मौत को सिर पर ले कर घूमता है वह रणधीर है, या वह जो दूसरों की मौत अपने हाथ में रखता है? नामर्द आदमी कभी सत्याग्रही नहीं हो सकता, यह निश्चित समझिअे। अलबत्ता, यह मैं कबूल करूंगा, शरीर से दुबला-पतला आदमी भी सत्याग्रही हो सकता है। सत्याग्रह अेक आदमी भी कर सकता है और लाखों भी। पुरुषों की तरह स्त्रियां भी सत्याग्रही हो सकती हैं। अिसके लिअे फौज तयार करने की जरूरत नहीं पड़ती, पहलवानी की भी अिसके लिअे कोअी जरूरत नहीं है। अिसके लिअे तो बस अपने मन को काबू में करने की जरूरत है। जो अपने मन को काबू में कर ले वह फिर वनराज सिंह की तरह निर्भय हो सकता है, और अुसकी दहाड़ से दुश्मनों की छाती फटती है।

['हिन्द स्वराज्य' से] —गांधीजी

कौअे की नज़र से

७ रामायण

सम्पादक भाअी,

जब बापू यहां रहते थे तो शाम की प्रार्थना के बाद अक्सर रामायण की कथा हुआ करती थी। अुसे सुनने का मौका मुझे कअी बार मिला। अुसकी कुछ बातें मैं समझ नहीं पाता। अेक बार मैंने कौअे से अिस विषय की चर्चा छेडी। तब तो अुसने अेक बिलकुल ही अनोखी कहानी सुनाअी। मैं नहीं जानता कि अिसमें से अब मैं क्या मानूं, और क्या न मानूं? काका तो पुराने अितिहास में बडे प्रवीण हैं। अिसलिअे मैं आपसे जानना चाहता हूं कि क्या सवाअी भुशुंडी की बात ठीक है?

मैंने कौअे से अिस तरह पूछा थाः—

मैं–रामचरित-मानस से मालूम होता है कि मनुष्यों में यह कथा पक्षियों द्वारा फैलायी गअी है। तुलसीदास ने तो साफ़ कह दिया है कि अुन्होंने अपनी कथा तुम्हारे पूर्वज और भारद्वाज पंखी के बीच जो संवाद हुआ अुसीके आधार पर बहुतकुछ रची है। वे यह भी कहते हैं कि राम–रावण का किस्सा दुनिया में अेक बार नहीं, कअी– –सैकडों– –बार कुछ हेरफेर के साथ हुआ ह और अुसमें जो बातें आती हैं, अुनमें मनुष्य, बन्दर, रीछ, पक्षी आदि सब भिन्न भिन्न योनि के प्राणी अिस तरह बर्तते हैं, मानों सब अेक ही योनि के जीवों का समाज हो। ये सब बातें मैं समझ नहीं पाता। क्या तुम अिसका कुछ खुलासा कर सकोगे?

कौआ–हां, मुझे अिसका कुछ रहस्य मालूम हुआ है। सच बात यह है कि दर असल मनुष्य, वानर, रीछ और पक्षियों में तब अितना परस्पर-भेद और दूरता नहीं थी जितनी अिस ज़माने में पायी जाती है। मनुष्य का पतन होने से पहले वह भी पेड़ पर रहनेवाला प्राणी था। मैं तुम्हें अेक बार समझा चुका हूं कि असल में मनुष्य की कोअी अपनी बोली नहीं है। अनुकरण करते करते मनुष्यों में अब भांति भांति की बोलियां अुत्पन्न हो गअी हैं। अिन बोलियों पर अब अुसे अितना घमंड भी पैदा हो गया है कि वह अैसा समझने लगा है कि सिवा आदमी के दूसरे प्राणी बोल ही नहीं सकते। लेकिन जब आदमियों में ये बोलियां पैदा नहीं हुअी थीं, और न अुन्हें बोल सकने का घमंड ही था, तब अुनमें जो अेक शक्ति थी अुसे अुन्होंने अब खो दिया है। वह शक्ति थी सब प्राणियों की बोली और हाव-भाव से अुनका मनोगत समझने और समझाने की। अब तो भाषा की अेकता के बिना मनुष्य मनुष्य को भी नहीं समझ या समझा सकता; और कअी बातें तो बोलने पर भी नहीं समझा सकता। समझाने के लिअे भाषा का साधन अुतना ही अधूरा है जितना कि अुड़ने के मुकाबले में चलना है। लेकिन पुराने ज़माने में मनुष्य और दूसरे प्राणियों के बीच समझने-समझाने का व्यवहार अच्छी तरह हो सकता था और मनुष्य की कोअी अपनी बोली न होते हुअे भी, अुसमें दूसरों की बोली का अनुकरण करने की शक्ति ज्यादा होने से, वह हरेक प्राणी के साथ अुसीकी बोली में बातचीत भी कर सकता था। पेड़ पर से

ज़मीन पर अुतरने के कारण मनुष्य में यह शक्ति अब नहीं रही।

खैर। असल में रामायण का किस्सा अुस ज़माने का है जब कि मनुष्य भूचर तो हो चुका था लेकिन कोअी अलग बोली बोलने नहीं लगा था और दूसरे प्राणियों को समझने-समझाने की ताकत खो नहीं बैठा था।

अुस ज़माने में दुनिया में आदमियों की आबादी कम थी। पृथ्वी बहुत बडे बडे और बीहड़ जंगलों से भरी हुअी थी। अिसलिअे बडे जबरदस्त पशु-पक्षियों का संसार फैला हुआ था। आज की अपेक्षा बहुत बडे हाथी, रीछ, सूअर, गधे, और अुन हाथियों को भी आसानी से अुठा सकने वाले बडे बडे पंखी, होते थे। जितनी आसानी से हम अेक चूहे को अुठा लेते हैं अुतनी ही आसानी से अुस वक्त के पखेरू गधे और बंदर को अुठा कर ले जाते थे। कभी कभी मनुष्यों को भी अुठा ले जाते थे।

सचमुच रावण, कुंभकर्ण, बिभीषण, जटायु आदि अैसे बडे बडे पक्षी थे। 'रौ' 'रौ' का 'रव' करनेवाला पक्षी रावण कहलाया। कुंभकर्ण के कान घडे की तरह होते थे। बिभीषण भी अेक भयंकर पक्षी था। आज की तरह अुस वक्त भी ये पक्षी दो तरह के होते थे:– "दैवी"—यानी दिन को घूमनेवाले। और "निशाचर"—यानी रात को घूमनेवाले। रावण वगैरा आपकी (घूघूकाका की) तरह निशाचर जाति के थे। जटायु आदि मेरी तरह दैवी थे।

मैं–वाह! अपने मुंह आप दैवी बन गये! क्या तुम सचमुच दैवी समझे जाते हो?

कौआ–दैवी न माने जाते तो श्राद्ध में हमें नेवता क्यों दिया जाता? दैवी हूं अिसमें शक ही क्या है? तुम्हारी तरह रात को थोडे ही घूमता फिरता हूं?

मैं–खैर। तुम तो अपना भाषण सुनाओ।

कौआ–अच्छा, तो सुनो। अब, सब प्राणियों में मनुष्य हमेशा सब से ज्यादा स्वार्थी और संगठित रहा है। पशु, पक्षी, सांप तथा जंगल, अिन सब का नाश कर कर के अुसने अपनी आबादी बढ़ाअी है। अैसा करते हुअे अुसने कुछ पशु–पक्षियों को पाला भी है, और फिर अुनके जरिये दूसरों का नाश किया है।

राम–रावण की कथा असल में मनुष्यों ने अपनी खेती–बाडी और बीबी–बच्चों की रक्षा के लिअे जमानों तक रावण, कुंभकर्ण आदि बडे बडे निशाचर पक्षियों के किये हुअे संहार का बयान है। अैसा अेक निशाचर–सत्र विश्वामित्र ऋषि ने पहले शुरू किया था और अुसी काम को आगे चलाने की तालीम बचपन ही में राम–लक्ष्मण को दी थी। अुसने मनुष्यों में खेती की कला भी बहुत बढ़ाअी थी। जिस तरह अेक बार जनमेजय ने सर्पों का हत्याकांड शुरू किया था, अुसी तरह विश्वामित्र वगैरह ने निशाचर पक्षियों का शुरू किया। तब पक्षियों के दिल में भी मनुष्यजाति के प्रति बड़ा वैरभाव पैदा हो गया और वे भी मनुष्यों की शिकार करने का अवसर खोजते रहते थे। अैसा ही अेक मौका पा कर रावण सीता को अुठा ले गया। राम को दूसरा निशाचर–यज्ञ शुरू करने के लिअे बहाना मिल गया।

गरुड, जटायु, पुष्पक आदि अुनके पाले हुअे दिवाचर पक्षी थे। बिभीषण, सुषेण आदि पालतू निशाचर थे। आज जिस तरह मनुष्य घोडे पर सवारी करता है अुसी तरह अुस ज़माने में वह गरुड, पुष्पक आदि पर सवारी

कर के आकाश में भी घूम लेता था। पालतू बन्दरों का भी अिस काम के लिअे अुपयोग होता था। अुन्हींके द्वारा वह दिन में छिप कर बैठे हुअे पक्षियों को खोज खोज कर अुनकी शिकार करता था। अिन पक्षियों को मारना कोअी आसान काम नहीं था। अेक अेक पक्षी अितना बड़ा होता था कि जब बैठता था तो अेक बड़े बरगद के बराबर जगह रोक लेता था। और आदमी के पास अैसे आयुध नहीं थे जैसे कि आज पाये जाते हैं। पक्षियों को अुनके गुप्त बसेरों से बाहर निकालने के लिअे लालच भी दिखाना पड़ता था। मनुष्य ने अपने सुख के लिअे दूसरे पक्षियों की बलि देने में कभी कोअी कोर-कसर नहीं की। अिसलिअे वह बन्दरों को आगे करता था। कृतज्ञ पशु-पक्षी मनुष्य के लिअे अपनी जान कुरबान कर देते थे।

ज़मानों तक यह शिकार चली। पहाड़ से बड़े बड़े पक्षियों का लाखों की संख्या में रामचन्द्र ने नाश किया। बेशक अुनके वंशजों ने अुनका यश ज़मानों तक गाया। बड़ी बड़ी रोचक कथायें अुनके आसपास पैदा हुअीं।

फ़िर वह ज़माना आया जब कि मनुष्यों के पास परंपरा से आअी हुअीं ये कथायें तो रह गअीं, लेकिन अुनका पक्षियों से सम्पर्क टूट गया था। और वे यह भी भूल गये थे कि रावण, बिभीषण आदि किस प्रकार के प्राणी थे। निशाचर नाम तो रह गया था लेकिन जिनका डर लगे अैसे निशाचर पक्षियों का नामोनिशान भी बाकी न रहा। तब निशाचर के मानी कोअी अद्‌भुत राक्षस आदि प्राणी होंगे अैसी मनुष्यों की कल्पना हुअी। फिर अुन कथाओं को लोग दूसरी तरह से समझने लगे। अिस तरह युग युग में नये नये ढंग से रामायण की कथायें हुअीं। स्वयं वाल्मीकि को अिस प्राचीन अितिहास का थोड़ा-सा ख़याल जरूर था। लेकिन सबसे पहले अुन्हींने अुसे कुशलता से नया रूप दिया। तबसे अुस कथा को बदलने का सिलसिला जारी हुआ और अुसमें अध्यात्मवाद का मिश्रण भी होता गया। रामचन्द्र ने ही पहलेपहल भारतवर्ष मनुष्यों के बसने लायक बनाया। अिसलिअे वे मनुष्यों की भक्ति के पात्र बने अिसमें क्या आश्चर्य? मनुष्यों में राम के नाम के प्रति जो बड़ा भक्तिभाव रहा है अुसका तुलसीदास ने बड़ा अुपयोग कर लिया।

यह पहली रामायण-कथा मैंने आज तुम्हें सुनाअी है। अब तुम अिस दृष्टि से रामायण को देखो!

संपादक भाअी, क्या पहले कभी आपने अैसा खुलासा सुना था? क्या कौअे की कल्पना ठीक हो सकती है?

आपके
आश्रम का अुल्लू

सरदार वल्लभभाअी का भाषण

सदरसाहब, भाअियो और बहनो,

सम्मेलन का उपयोग

मेरी कुछ कहने की अिच्छा नहीं थी; और कुछ कहने की जरूरत भी नहीं थी। लेकिन हम बारह महीनों के बाद अेक दफा मिलते हैं अिसलिअे, और सदरसाहब का हुक्म हुआ अिसलिअे, दो चार बातें आप लोगों के सामने रखता हूं। हम लोग अिस सम्मेलन में कुछ दिन के लिअे मिलते हैं और अपने अपने घर चले जाते हैं। यहां अिकट्ठे हो कर अेक दूसरे को समझने की कोशिश करते हैं। यहां से जाने के बाद किसका किससे प्रत्यक्ष सम्बन्ध रहता है? यहां जो सम्बन्ध आता है अुसका परिणाम अेक दूसरे पर अेतबार, भरोसा, विश्वास में होता है या नहीं अिसका कोअी पता नहीं चलता। हम दूसरे सम्मेलन तक अेक दूसरे के बारे में क्या सोचते रहते हैं अिसका भी कोअी पता नहीं।

संघ का स्वरूप

कअी लोग मानते हैं कि गांधी सेवा संघ अेक गुप्त दल है। अिसके सदस्य सब काम अेक हो कर करते हैं। लोग अैसे खयाल तो करते ही रहेंगे। लोग समझते हैं कि हम कॉंग्रेस की नीति की बागडोर अपने हाथ में रखने के लिअे अिस संघ के सदस्य बने। अैसी बातें तो चलेंगी ही। आप सब जानते ही हैं कि ये बातें सचाअी से कितनी दूर हैं।

हमारा संघ अेक राजनैतिक दल नहीं है। लेकिन अिसका मतलब यह नहीं कि संघ के सदस्यों का अेक दूसरे से कोअी रिश्ता ही नहीं है। दर असल तो हमलोग अेक कुटुम्ब के हैं। लेकिन पिछले राष्ट्रपति के चुनाव में पता चला कि हम लोग सब अलग अलग हैं। हमारा मानों अेक दूसरे से कोअी दिली सम्बन्ध ही नहीं। गांधी सेवा संघ तो अिस तरह बना है कि अुसमें किसी तरह की हरीफाअी (होड) न हो। हम अेक यूथ बन कर (हिलमिल कर) काम करें। अधिकार और सत्ता के लिअे किसी प्रकार की स्पर्धा नहीं करनी है। अेक हो कर गांधीजी के काम को आगे चलाना है। अिसलिअे हमारे अंदर अेक दूसरे के प्रति मिठास होनी चाहिअे।

लेकिन हम अेक दूसरे से दूर रहते हैं। केवल शरीर से नहीं, बल्कि हमारे दिल भी अेक दूसरे को समझने की कोशिश तक नहीं करते। कअी लोगों के दिल में मेरे बारे में शक है। बाहर के आदमी अगर मुझपर सन्देह करें तो वह मैं समझ सकता हूं; और सह भी सकता हूं। लेकिन अगर संघ के आदमी ही शक करने लगें तो मेरे लिअे वह बात बहुत दुःख की हो जाती है। अिसका तो यह मतलब हुआ कि हमारे हृदय अेक नहीं हैं। यह बात संघ की दृष्टि से शोचनीय है।

सुभाष बाबू का चुनाव

अब मैं आपको अुस चुनाव का किस्सा सुना दूं। जब चुनाव का समय आया तो गांधीजी ने मुझे आज्ञा की कि अेक स्टेट-मेण्ट (वक्तव्य) पट्टाभि के लिअे निकालो। मैंने कहा कि मैं जानता हूं कि अिस कारण

मेरे विरुद्ध कैसा तूफान पैदा होगा। अिसलिअे स्टेटमेण्ट (वक्तव्य) निकालना है तो वह जिम्मेवारी आप ही लीजिये। तब अुन्होंने कहा कि नहीं यह तो तुम्हारा ही काम है। तब तो अुसके लिअे जो कुछ सहना पडे अुसको सहने के लिअे तैयार हो कर मुझे वक्तव्य निकालना ही पडा। तार से सात आदमियों के दस्तखत मंगाये। मेरे भी दस्तखत अुसपर पडे। आप जानते हैं मैं कभी ज्यादा स्टेटमेण्ट (वक्तव्य) वगैरा नहीं निकालता। मेरी अैसी आदत नहीं है। और गांधीजी न होते तो मैं अैसी अुद्धताअी (धृष्टता) न करता। सच बात अैसी है। लेकिन मुझे दुःख अिस बात का है कि हमारे सदस्य भी वस्तुस्थिति जान लेने की पर्वाह नहीं करते। अुनको अितना तो विश्वास करना था कि गांधीजी की राय के खिलाफ हम सात आदमी कुछ नहीं करेंगे। गांधीजी तो अुस वक्त बारडोली में ही पडे थे। अिसपर से अितना तो खयाल कर ही लेना चाहिअे था कि वह स्टेटमेण्ट अगर गांधीजी की प्रेरणा से नहीं, तो कम से कम अुनकी सम्मति से तो निकला ही होगा। बारडोली में अुनके रहते हुअे यह कैसे हो सकता था कि हम अुनकी अनुमति के बिना अैसा काम करते? लकिन हमने देखा कि हमारे ही कअी लोगों ने हमारे खिलाफ राय दी। अुसमें तो कोअी नुकसान नहीं है। मैं अिस बात की शिकायत भी नहीं कर रहा हूं।

कृत्रिम अनुशासन

लेकिन अिससे यह पता चलता है कि हमारे दिलों का तार अेक नहीं है। यह चीज़ डिसिप्लिन (अनुशासन) से नहीं हो सकती। अनुशासन की पाबन्दियों से अंतःकरण अेक नहीं होते। अैसी पाबन्दियां अेक तरह का कृत्रिम अनुशासन पैदा कर सकती हैं। वह राजनैतिक संस्थाओ के लिअे अुपयुक्त है। गांधी सेवा संघ में अैसा कृत्रिम अनुशासन काम नहीं देगा। यह संघ अिस तरह बना ही नहीं है। यही कारण है कि संघ में हमें कटुता का अनुभव नहीं हुआ। अगर यह राजनैतिक संस्था होती तो अनुशासन की कार्रवाअियां करनी पडतीं, और काफी कटुता पैदा हो जाती। मैं समझता हूं, यह संघ अिस तरह नहीं चल सकता। राजनैतिक संस्थाओं में अनुशासन के लिअे कार्रवाअी मुझे करनी पडी है। पार्लमेण्टरी बोर्ड के काम में मुझे काफी कटु अनुभव हुआ। अनुशासन की कार्रवाअी में सारी वर्किंग कमिटी की अेक राय होते हुअे भी कटुता मुझे सहनी पडी। राजनैतिक संस्थाओं में अनुशासन का पालन कराने के लिअे सख्ती करनी होती है। अुसके जो परिणाम होते हैं अुनका मुझे प्रचुर और कडुआ अनुभव है। अिससे तो मैं भी ताडगुड बनाने का, चरखा ले कर सूत निकालने का, या घानी का काम करता तो अिन झंझटों से बच जाता। लेकिन घानी में तिल जितना पीसा जाता है अुससे ज्यादा अिस पार्लमेण्टरी बोर्ड के काम में अुसका अध्यक्ष पीसा जाता है। यह मेरा अनुभव है।

सदस्यों से आशा

पार्लमेण्टरी बोर्ड के काम में लोगों की ये सब ज्यादतियां मैंने सहन कर लीं। परंतु गांधी सेवा संघ से मैं कुछ दूसरी ही

आशा करता था। मैं समझता था कि गांधी सेवा संघ के लोग कहेंगे कि यह तो हमारा आदमी है। कोई बुरा या मैला काम नहीं करेगा। किसी अेक नहीं, सभी सदस्यों से मुझे अैसी आशा थी। वे यह तो सोचते कि गांधीजी तो पास ही पडे हैं। अगर यह कोई बुरा काम करता तो वे अुसे रोक देते। हम तो जानते हैं कि कॉंग्रेस का कोई काम अुनसे पूछे बिना नहीं होता। आज तक अेक भी राष्ट्रपति का चुनाव अुनके आशीर्वाद के बिना नहीं हुआ। अैसी हालत में हम अुनकी राय के खिलाफ कोई स्टेटमेण्ट (वक्तव्य) कैसे निकाल सकते थे ?

देश का सब से बड़ा आदमी

लोग मुझे हिटलर कहते हैं। "यह हिटलर है, वह मुसोलिनी है, फलाना सवाई-हिटलर है," अैसी बातें करते हैं। लेकिन मैं आपसे कहता हूं कि गांधीजी से बडा हिटलर मैंने नहीं देखा। अुस जर्मनी-वाले हिटलर में और अिसमें अेक बडा भारी फरक है। वह जोर-जबरदस्ती और हिंसा से काम लेता है। अिसकी सत्ता प्रेम पर खडी है। यह प्रेम और अहिंसा से हमारे दिल काबू में कर लेता है। अिसके प्रेम का आक्रमण अैसा है कि अुससे कोई नहीं बच सकता। अितना बडा लोक-संग्रह अिसी प्रेम की शक्ति की बदौलत हुआ है। अुसकी बराबरी का दूसरा आदमी मुल्क में नहीं है। अैसा भी कोई नहीं है जिससे अुसकी तुलना की जा सके। अुसमें और दूसरे आदमियों में जमीन आसमान का अंतर है। दूसरा कोई अगर देश के काम की जिम्मेवारी लेता भी है तो वह भी अुसके आशीर्वाद के बिना हिम्मत नहीं करता। बडे से बडा आदमी भी कहता है कि अुसका साथ चाहिये। यह तो महाभारत के जैसी बात है। हर अेक पवप कहता था कि कृष्ण चाहिये। अितना प्रतापी अर्जुन भी कहता था कि कृष्ण सारथी बन कर आये तो काम चले, नहीं तो व्यर्थ है। यही बात गांधीजी की है। अुनके मुकाबले में दूसरे बहुत ही छोटे हैं। हम लोग अुनके साथ रहने के योग्य हैं या नहीं यह मैं नहीं जानता। किसी कारण अुनका विश्वास हमने प्राप्त कर लिया। अुनपर आज जितनी निन्दा की बौछार पडती है अुसके लिये हम जवाबदार हैं। हमारी कमजोरियों के लिये अुनपर पडती है। हमने अुनका विश्वास सम्पादन कर लिया अिसके लिये कई लोगों को ईर्ष्या और क्रोध भी है। लेकिन अिसमें गांधीजी का क्या दोष है ? अुनकी सलाह के बिना हम अपने आपको कमजोर महसूस करते हैं।

गांधीजी और कॉंग्रेस

अिसीलिये १९३४ में जब वे कॉंग्रेस से निकल गये तो मैंने अकेले ने कहा कि अुनको जाने दो। अुनका रास्ता साफ कर दो। मैंने अकेले ने अुनका समर्थन किया। क्यों कि मैं चाहता था कि लोग अपने पैरों पर खडे होना सीख लें। लेकिन साथ साथ यह भी अिरादा नहीं था कि वे हमको बिलकुल छोड कर चले जावें। हम अुनकी सलाह तो अवश्य चाहते थे। जिस कॉंग्रेस को बरसों मिहनत करके अुन्होंने ताकत और प्रतिष्ठा दी अुसको

वे अपने अूपर अवलंबित नहीं रखना चाहते। वे चाहते हैं कि वह धीरे धीरे अुनके बिना अपना काम चला सके। लेकिन राय-मशविरा करने की गुंजाअिश तो अुसमें रक्खी थी। अुन्होंने हमारे साथ असहयोग तो नहीं किया था। हम अुनकी सलाह लेते रहे और सहायता भी मांगते रहे। अिसलिअे वर्किंग कमिटी वर्धा में होती थी। खिलाफत के जमाने से राष्ट्रपति का चुनाव अुनकी सम्मति से होता रहा। अेकमत से होता रहा। सुभाष बाबू का ही पहला 'डेमॉक्रेटिक' (?) चुनाव हुआ।

गांधीजी और उनके साथी

जब हमको पता चला कि कुछ लोगों ने यह समझ कर हमारे खिलाफ राय दी कि हमारे वक्तव्य से गांधीजी का कोओी सम्बन्ध नहीं है तो हमें आश्चर्य हुआ। गांधीजी की सम्मति के सिवा हम अितना बडा साहस कैसे कर सकते थे? चुनाव के बाद गांधीजी ने अेक वक्तव्य में यह कहा कि यह तो मेरी हार है। अब तक कुछ लोग कहते हैं कि हमें तो यह मालूम ही नहीं था। यदि गांधीजी यह बात पहले कह देते तो नतीजा कुछ दूसरा होता। मैं फिर कहता हूं कि यह दलील तो मेरी समझ में ही नहीं आती। आज तक हम यह नहीं समझ सके कि गांधीजी के साथवाले सारे महत्त्व के काम अुन्हींकी प्रेरणा और सम्मति से करते हैं। हां, अितना जरूर है कि गांधीजी के वक्तव्य में अेक दोष था। अुन्होंने कहा कि अुनकी हार हुओी। मैं कहता हूं हार अुनकी नहीं हमारी हुओी। आपके दिल में यह शंका रही कि अिस संघ के कुछ सदस्य गांधीजी से बिना पूछे कोओी काम कर सकते हैं। अिसका यह मतलब हुआ कि संघ में परस्पर विश्वास और अेकता का वातावरण नहीं है। मैं अनुशासन की बात नहीं कह रहा हूं। मैं कह चुका हूं कि संघ में हम अनुशासन से काम नहीं ले सकते। मैं तो हृदय के अैक्य की बात कह रहा हूं। अगर वह न रहा तो संघ भी न रहेगा। जो कहते हैं कि संघ में अनुशासन लाना चाहिअे वे मानों यही कहते हैं कि संघ को तोड देना चाहिअे। अनुशासन तो अेक बाहरी चीज़ है। अुसके लिअे यहां गुंजाअिश नहीं। हमें तो हृदय की अेकता से मतलब है। वही हमारा सच्चा बन्धन हो सकता है।

वह परिपत्र

अध्यक्ष ने जो परिपत्र निकाला था वह अिस दृष्टि से काफी था। अुनका मतलब किसी अनुशासन के निर्बंध से नहीं था। वे तो सिर्फ जान लेना चाहते थे कि राष्ट्रपति के चुनाव के मामले में संघ के सदस्यों में दो रायें क्यों हुओीं? यहां व्यक्तिगत स्वतंत्रता का सवाल नहीं आता। अध्यक्ष तो केवल यह जानना चाहते थे कि सदस्यों के दिल में क्या है? क्या अुनके दिल में अैसा कुछ है कि राजेन्द्रबाबू ने और दूसरे लोगों ने सुभाष बाबू के साथ ज्यादती की, अन्याय किया? क्या अुनके दिल में मेरे खिलाफ कुछ है? अगर सदस्यों की समझ में हमलोग कोओी बेजा काम कर रहे हों तो हमको संघ में से छुट्टी दे देनी चाहिअे। यह अुस परिपत्र का मतलब था। अगर मेरे खिलाफ कोओी शंका है तो मुझसे पूछ लेना चाहिअे। अध्यक्ष मुझसे सफाओी

मांग सकते हैं। आपको संतोप न हो तो आप मुझे अलग कर दें। अिस दृष्टि से देखें तो परिपत्र निकालने में कोओी गलती नहीं थी।

खिलाफ प्रचार

मेरे खिलाफ दो तीन प्रान्तों में काफी प्रचार हो रहा है। जब से मैंने देशी रियासतों में कदम रक्खा तब से देशी राज्यों में भी खूब विरोध हो रहा है। किसीके स्वार्थ को जब कोओी धक्का लगता है तो वह बिगड पडता है। रियासतों के अधिकारी भी अिस तरह बहुत बिगडे हैं। कुछ जातिवादी और पैसेवाले लोग भी बिगड पडे हैं। काफी जहर पैदा हो गया है। अिसका अेक कारण हमारी कमजोरियां भी हो सकती हैं। हममें कओी त्रुटियां हैं यह तो हमें कबूल करना ही चाहिये। लेकिन हमारे साधन कितने ही शुद्ध क्यों न हों, जिनके स्वार्थों को चोट लगती है वे तो फिर भी जहर अुगलने ही वाले हैं। खुद गांधीजी को कैसा ट्रेजिक स्टेटमेण्ट (दुःखपूर्ण वक्तव्य) निकालना पडा? गांधीजी का यह कहना कि मैं वृद्ध हो गया, मेरी जवानी चली गयी, मैं हताश हो गया, ट्रैजिक (दुःखमय) नहीं तो क्या है? जब गांधीजी का यह हाल है तब मेरे जैसे की क्या बात है? मेरा मतलब यह है कि हमारे प्रतिपक्षी या दूसरे लोग अगर हमारे अूपर सन्देह करें या हमारे विषय में झूठी बातें फैलावें तो अुसमें कोओी आश्चर्य नहीं। जिनके हित का हम विरोध करते हैं वे तो अैसा करेंगे ही। सदियों से अुनके पास सत्ता है। अब वह जाने के दिन आगये। वे अुसे आसानी से नहीं छोडना चाहते। यह स्वाभाविक है। लेकिन हम लोग यदि ढंग से काम करें तो वे भी समझ जायेंगे कि अिसमें अुनका भी भला है। हमको काफी त्याग करना होगा। देशी राज्य के निवासियों को कष्ट सहने पडेंगे। थोडे-से आदमियों के जेल जाने से या लाठी खाने से ही सत्ता मिलनेवाली नहीं है। सारी प्रजा यदि अेक आवाज से मांग करेगी और त्याग करने के लिअे तैयार रहेगी तो काम अितना मुश्किल भी नहीं है। मुख्य बात यह है कि हमें अहिंसा के तरीके को खूब समझ लेना चाहिअे और अुसकी मर्यादा में रहना सीखना चाहिअे।

अेकजिन्स वर्किंग कमिटी

हम लोग जो ब्रिटिश हिन्दुस्तान में काम करनेवाले हैं और कॉंग्रेस में पडे हैं वे भी अपना काम अिसी ढंग से चला सकेंगे। दूसरा तरीका नहीं है। गांधीजी कहते हैं कि सारी वर्किंग कमिटी जबतक अेक दिल और अेक स्वर की नहीं होगी तबतक हम अपना काम अच्छी तरह चला नहीं सकते। सुभाष बाबू कहते हैं कि वर्किंग कमिटी अलग अलग दल के आदमियों का अेक "शंभुमेला" (सब किस्मके आदमियों का जमघट) हो। हम कहते हैं कि अब अैसी बेतुकी कमिटी काम नहीं आयगी। देशी नरेश समझ चुके हैं कि अब अुनके दिन लद गये। अिसलिअे सारे देशी नरेश, जातिवादी लोग और जागीरदार अेक हो रहे हैं और अुनके पीछे ब्रिटिश सल्तनत खडी है। देशी रियासतों में जो हाल है वही ब्रिटिश हिन्दुस्तान में भी है। अैसी प्रबल शक्ति से लडने के लिअे हमारा तंत्र भी अेक-सूरा होना चाहिअे। अगर हम सब अलग अलग सूर निकालेंगे तो हमारी

संस्था नष्ट हो जायगी। सुभाषबाबू कहते हैं वैसा अेक 'शंभुमेला' अगर हम स्वतंत्र होते तो चल सकता। लेकिन जब हमको अितनी पुरानी सता के खिलाफ़ लड़ना है तो आठ-दस बेसुरे आवाज़ निकालने से काम कैसे चलेगा? हमारा और सुभाषबाबू का झगडा कोअी व्यक्तिगत नहीं है। कॉंग्रेस के काम में कोअी चीज़ व्यक्तिगत मानना भी नहीं चाहिअे। गांधीजी ने आप लोंगो को समझाया कि यह मतभेद व्यक्तिगत नहीं, बुनियादी है। अैसी हालत में जो लोग गांधीजी के नेतृत्व में मानते हैं वे अितना ही आश्वासन दे सकते हैं कि "लीजिये, कॉंग्रेस का काम आप संभालिये। हम आपका कहीं भी विरोध नहीं करेंगे। हमारी मांग अितनी ही है कि हमें छुट्टी दे दीजिये। हमारे पास दूसरे काम पडे हैं। हम अपने चरखा चलाते बैठेंगे तो अुससे काफी शांति मिलेगी। अगर आज सौ देहातों में सफाअी का काम होता है तो कल अेक सौ अेक देहातों में करेंगे। जहां कोअी सिद्धान्तों का मतभेद नहीं होगा वहां आपके साथ मिल कर काम करेंगे। जहां बुनियादी मतभेद होगा वहां आप के रास्ते से हट जायेंगे। हमें आपस में लडने की जरूरत नहीं।"

हमारी कठिनाअी

लेकिन आफत यह है कि हमें हटने भी तो नहीं देते। आज देश में दो गिरोह हैं। अुनमें से अेक गिरोह कॉंग्रेस की पूरी पूरी जिम्मेवारी अुठाने के लिअे तैयार नहीं है। वह कहता है गांधीजी का साथ चाहिअे। अिसमें भी हमारी तरफ से कोअी हर्ज नहीं है। वे गांधीजी को राजी कर लें। अुनको मना लें। यह तो अुनका और गांधीजी का प्रश्न है। अगर गांधीजी न मानें तो हमारा क्या अिलाज है? गांधीजी को मनवाने के लिअे कोअी जंतर-मंतर या कोअी तावीज तो है नहीं। लेकिन गांधीजी नहीं मानते अिसका भी दोष मेरे सिर मढा जाता है। जो कुछ होता है अुसका सारा बोझ मुझपर लादा जाता है। कहते हैं यही शैतान है। गांधीजी को बदसलाह देता है।

त्रिपुरी और कलकत्ता

त्रिपुरी में जो कुछ हुआ अुसका भी सारा दोष मुझपर ही लगाया गया। लेकिन वस्तु-स्थिति बिलकुल अुलटी थी। त्रिपुरी में मैं पडा रहा। न वोट दिया न भाषण दिया। वहां जो हुआ अुसमें से कअी बातों से मैं सहमत भी नहीं था। कअी बातों से नाराज़ था। लेकिन फिर भी दूसरे दल वालों ने सारा हमला मुझपर ही किया। जब राष्ट्रपति के चुनाव के वक्त वक्तव्य निकालने के लिअे बापू ने मुझसे कहा तब भी मैंने यही कहा कि "अिससे सारे बंगाल का रोष मुझपर होगा। आपको जिम्मेवार कोअी नहीं मानेगा। यह सब मैं सह लूंगा। लेकिन अुससे कोअी फायदा नहीं निकलेगा।" अब के भी अिसीलिअे मैं कलकत्ते नहीं गया। वहां मैं होता तो लोग कहते कि यही सब कुछ कराता है। अिसीलिअे मैंने बापू से राजकोट में पूछा 'क्या मेरे कलकत्ते जाने से कोअी फायदा है'? अब की बार वे भी मान गये। मैं आपसे सच कहता हूं कि अिन सब बातों में मेरा हाथ बहुत कम था। मैं सब बातों के लिअे जिम्मेवारी लेने को तैयार हो गया यह बात दूसरी है।

'सरकार को चेतावनी'

सुभाष बाबू मानते हैं कि मुल्क तैयार

है। खाली अेक अल्टिमेटम (चेतावनी) पर दस्तखत कर के भेजने की देर है। हम अैसा नहीं मानते। यह तो सुभाष बाबू भी मानते हैं कि आज हिंसा का वातावरण फैला हुआ है। लेकिन फिर भी वे मानते हैं कि मुल्क तैयार है। हम अैसा नहीं मानते। बल्कि हम तो यह मानते हैं कि आज से हम पिछले साल अधिक तैयार थे।

पद-ग्रहण का उद्देश

जब हमने पार्लमेण्टरी बोर्ड बनाया तो वह अेक बडी कारगर मशीन थी। हमारी मशीन अितनी तेज़ और अितनी अच्छी चलती थी कि हमारे विरोधियों के दिल में हमारे लिअे अगर प्रेम नहीं था, तो डर जरूर था। हमने जब पद-ग्रहण किया तो मुराद यही थी की मुल्क की शक्ति बढावें। गांधी सेवा संघ ने अपने सदस्यों को अिजाजत दी वह भी अिसीलिअे। रचनात्मक काम बढाने के लिअे हम अिस हथियार का अुपयोग करना चाहते थे। गांधी सेवा संघ के सदस्य वहां अिसलिअे नहीं गये कि चुनाव की झंझट में पडें। सल्तनत की मशीन का अुपयोग हम अपने काम के लिअे करना चाहते थे। जरासी शराब-बन्दी के लिअे कअी बहनों को जेल में जाना पडा। आज खुद सरकार अुस काम को कर रही है। पहले जो अफ़सर पिकेटिंग के लिअे लाठी चलाते थे वे ही आज शराब-बन्दी पर व्याख्यान दे रहे हैं। अिसी तरह खादी का काम है। ग्राम अुद्योग का काम है। दूसरे कितने ही काम हैं। हमने सोचा था कि सल्तनत का अितना बडा हथियार हमारे हाथ लगा है तो अुसे क्यों छोडें? सारा रचनात्मक कार्य-क्रम 'पंजाब मेल' और 'तूफान मेल' की रफ्तार से क्यों न चलावें?

आजकी दुर्बलता

जबतक हमारी मशीन साबित थी तब-तक सब कुछ करने का हौसला था। लेकिन आज तो हमारी मशीन ही टूट गयी है। हमने जो यह सिद्ध कर दिया था कि हम विदेशी लोगों की अपेक्षा कम दामों में अच्छा राज चला सकते हैं अुसपर पानी फिर गया। आज हमारे मंत्रीमंडलों का प्रभाव टूट रहा ह। आज हमारे दुश्मन का आत्मविश्वास बढ़ रहा है। वह आक्रमणशील है। हमारी हिम्मत टूट रही है। आपस के झगडे हमारे अन्दर कमजोरी पैदा कर रहे हैं। आज अिस आपसी फूट के कारण डर दुश्मन के दिल में नहीं, हमारे अन्दर पैठ रहा है।

घर की फूट के लक्षण

अैसी परिस्थिति में हम नहीं मानते कि देश सत्याग्रह के लिअे तैयार है। बल्कि आज तो हमारी आपसी फूट अिस हद तक पहुंची है कि हमारे ही आदमी अपने ही मंत्रीमंडलों को तंग कर रहे हैं। न हमारा अेक दिल है न अेक-सा काम है। आपके बिहार ही में बकाश्त जमीन का झगडा चल रहा है। बेचारा मंत्रीमंडल परेशान है। सरकार भी हमारी और झगडने वाले भी हमारे, अैसी नाजुक हालत है। सत्या-ग्रह के नाम से अिस तरह की बातें जहां तहां हो रही हैं। आपके यहां अेक बड़ा भारी आदमी, जो अपने धार्मिक अध्ययन के लिअे मशहूर है अैसा आदमी, जेल में फांके कर रहा है। अुनका कहना यह है कि जो लोग दंगा-फसाद करें, जायदाद को नुकसान पहुंचावें, अुन्हें भी राजनैतिक कैदी समझ कर

सारी सहूलियतें देनी चाहिअें। सत्याग्रही तो जेल में कष्ट सह कर अपने नैतिक प्रभाव से प्रतिपक्षी को जीतना चाहता है। वह रियायतों के लिअे फांके नहीं करता। अगर हम अिस तरह मारपीट करने वाले और जायदाद तहस-नहस करनेवालों को जेल में चैन से रहने का अिन्तजाम कर देंगे तो कोअी आदमी बाहर क्यों रहने लगा? सभी जेल में जाना चाहेंगे। हम सभी को तो जेल में नहीं भेज सकते। अिसलिअे हमें राज चलाने का काम छोड ही देना होगा। हम अमर्याद हिंसा थोडे ही कर सकते हैं? हमें कहना होगा कि 'भाअी, हमारी हार हो गयी'। दूसरा कोअी चारा नहीं। हम सरकार से नहीं डरे, और न डरेंगे, लेकिन हमारी अिस आपसी फूट ने हमें डरा दिया है। कअी बडे बडे आदमियों ने कॉंग्रेस का अनुशासन जरा जरा से स्वार्थ के लिअे तोड दिया। जबतक वे खुद ऑफिस में थे तबतक अनुशासन के सिवा दूसरी बात नहीं करते थे। अब बाहर हो जाने पर लोकतंत्र की और अन्याय के प्रतिकार की भाषा बोलने लगे हैं। जो सौगंद अुन लोगों ने ली थी अुसे भी भूल गये हैं। लेकिन फिर भी वे कहते हैं कि हम ही सच्चे कॉंग्रेसवाले हैं। अिस तरह से हमारी संस्था का अनुशासन ढीलाढाला हो गया और वह क्षीण हो गयी।

अनुशासन की कद्र करना तो दूर रहा अुलटे अनुशासन तोडनेवालों की तरफदारी कअी अखबारों ने और दूसरे लोगों ने करना शुरू कर दिया। अखबारों ने अितना जहर अुगला कि अुसका कुछ न कुछ असर लोगों पर पडा। यहां तक कि संघ के कुछ सदस्यों पर भी अुसका असर हुआ। अखबार वाले जितनी बातें लिखते हैं अुतनी सब में पढ़ूं तो पागल हो जाअूं। अिसलिअे मैंने तो अैसा नियम बना लिया है कि अखबार में जहां जहां मेरा नाम आवे अुतना हिस्सा छोड कर बाकी का पढ लेता हूं।

प्रेम का अनुशासन

लेकिन अगर आप लोग भी अखबारों में आनेवाली बातों पर विश्वास कर लेंगे तो संघ ही टूट जायगा। मैं फिर कहता हूं कि यहां अनुशासन के लिअे स्थान नहीं है। यहां न फौजी अनुशासन हो, न राजकीय। अिस संघ में तो हम सब प्रेम के धागे से बंधे हुअे हैं। प्रेम का 'कच्चा धागा' ही हमारा अनुशासन है। वही हमारी संघशक्ति का आधार है। यदि हमें आपस में लडना हो और दल बनाना हो तो संघ से हट जाना चाहिअे। मेरे विषय में अगर आपको सन्देह हो तो मुझे छोड देना चाहिअे। मैं तो सब तरफ से आघात सह कर यहां प्रेम और विश्वास की आशा से आता हूं। यह मेरा मकान है। अगर यहां भी मेरे प्रति सन्देह और अविश्वास रहा तो मैं डर जाअूंगा कि यह तो मेरा मकान ही गिर रहा है और मैं अुसके नीचे दबा जा रहा हूं। तब तो मुझे अिसे भी छोडना पडेगा। बाहर के अविश्वास और आघात से मैं नहीं डरता। लेकिन संघ की बात दूसरी है। यह कोअी कृत्रिम बंधनों से और नियमों से बनी हुअी संस्था नहीं है।

पक्ष बनाने की नीति

अिसीलिअे जब भाअी मंजरअली कहते हैं कि हमें दूसरों से मुकाबला करने के लिअे संगठित होना चाहिअे तो हम कहते हैं कि 'नहीं, नहीं'। हम मुकाबला भी तो गांधीजी के तरीके से ही करेंगे। हमारी टेक्निक (प्रतिकार की कला) में यह नहीं आता। यहां अनुशासन का काम नहीं होना चाहिअे। संघ में तो बन्धुभाव की ही अेकता हो सकती है। हमारे दिल में किसी सदस्य के लिअे कोअी शंका नहीं होनी चाहिअे। बस, अितना काफी है। वैधानिक नियमों की जरूरत नहीं।

संघ की नीति

दूसरी बात यह है कि हमारे लोग चुनाव में अेक दूसरे के खिलाफ खडे हो जाते हैं। यह बडे आश्चर्य की बात है। अगर हमारे दिल में अैसे भाव हों तो यह संघ ही न रहना चाहिअे। गांधी सेवा संघ का तो यह सिद्धान्त है कि हमारे पास काम ज्यादा है और आदमी कम हैं। जहां दूसरे सेवा करने के लिअे तैयार हैं वहां अुन्हें करने दें। हम अलग क्षेत्र ढूंढ लें। हमारे खिलाफ जो लोग काम करते हैं अुनका अेक नया तत्त्वज्ञान है। अुनके दल में नवयुवक बडी खुशी से चले जाते हैं और चट-से 'लीडर' बन जाते हैं। वहां काम नहीं करना पडता। कोअी बंधन भी नहीं है। हमारे यहां 'खद्दर पहनो, शराब न पीओ, रोज कांतो, संयम से रहो', अैसे कुछ बंधन हैं। कम से कम 'यह न करो और वह न करो' अिस तरह के बंधन तो हैं ही। वहां कोअी रुकावटें नहीं हैं। पूरी आजादी है। अिसलिअे नवजवानों के लिअे बडा आकर्षण है। हमें भी नवजवानों को अपने साथ लेने का कुछ न कुछ अुपाय करना चाहिअे। हम भडकीले कार्यक्रमों की बातें तो नहीं कर सकते लेकिन नवजवानों को साथ लिअे बगैर हमारा काम भी आगे नहीं बढेगा। जो नवजवान दर असल बहादुर और त्यागी हैं अुनके लिअे हमारे यहां काफी स्थान होना चाहिअे।

गांधी सेवा संघ में पद और सत्ता के लिअे होड बिलकुल नहीं होनी चाहिअे। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की अेक जगह के लिअे दो गांधीवादी खडे हों अैसी होड मेरी तो समझ में ही नहीं आती। अैसे मौके पर दोनों हट जावें। अिस तरह की होड़ जब होती है तब हमारी कमजोरी का पता चलता है। हमारा नाम तो है गांधी सेवा संघ लेकिन दर असल वह हो जाता है स्वयंसेवा संघ।

अगला कार्य

हम अब अगले साल ही मिलेंगे। तब तक अिन बातों का खयाल रक्खें। राजेन्द्रबाबू के कमजोर कंधों पर राष्ट्र का बोझ रक्खा गया है। अुनकी ताकत टूट रही है। बिहार के मन्त्रीमंडल को धमकियां दी जा रही हैं। अिस तरह घर में फूट होने के कारण आज अुन्हें अपने प्रान्त में भी वह आत्म-विश्वास नहीं रहा जो पहले था। हमें फिर से यह विश्वास पैदा करना है कि हमारी मशीन संगीन है और अगर हम अुसे ठीक तरह से चलायें तो लडाअी के बिना भी सत्ता आ सकती है। लेकिन आज तो हम देखते हैं कि सत्ता हमारे हाथों से जा रही है। अैसी दशा में लडाअी भी कैसे हो सकती है? जिनसे लड़ना चाहिअे अुनसे लड़ना

छोड कर आज तीन महीनों से हमें आपस में लडना पड रहा है। देश की अैसी शोचनीय हालत है। राजेन्द्र बाबू के कमजोर कंधों पर भार रक्खा गया है। किसी काम के लिअे अुनका कोअी वक्तव्य निकले तो आप अुसकी तरफ ध्यान दें। अखबार जो निन्दा करते हैं अुसपर ध्यान न दें। अगर हम सच्चे होंगे तो अुनकी निन्दा का कोअी असर नहीं होगा।

गांधी सेवा संघ के जितने सदस्य हैं वे अगर अीमानदारी से अपने सिद्धान्तों का पालन करेंगे तो अखबारों ने फैलाया हुआ सारा भ्रमजाल दूर हो जायगा। छोटी छोटी ही क्यों न हों, लेकिन अगर अितनी बत्तियां हिन्दुस्तान में होंगी तो काफी रोशनी होगी। परंतु यदि अुन चिरागों में तेल नहीं होगा तो वे बुझ जायेंगे। अेक दूसरे पर विश्वास और अपने सिद्धान्तों में अटल श्रद्धा ही अिन बत्तिओं का तेल है।

गन्दे काम से आत्मघात बेहतर है

मुझपर चारों ओर से जो प्रहार हो रहे हैं अुनके विषय में मैं यही कहना चाहता हूं कि आजतक मैं ने अपने हाथों से कोअी मैला काम नहीं किया। अितने दिन गांधीजी के साथ रहने के बाद में अपने किसी काम से अुनकी कीर्ति को कलंक नहीं लगाअूंगा। जिस दिन कोअी गंदा काम करने का मौका आयेगा अुस दिन अुसे करने के बदले आत्मघात करना पसन्द करूंगा। आप यह विश्वास रक्खें। आअिन्दा भी अगर किसी पर कडा अिलाज लेने का मौका आवे तो आपको यह अन्देशा न हो कि मैं किसी व्यक्तिगत या जातीय भावना से प्रेरित हो कर अैसा काम करूंगा। अगर मेरी बुद्धि अितनी भ्रष्ट हो गयी तो मैं सार्वजनिक जीवन से हट जाअूंगा। लेकिन मैला काम नहीं करूंगा।

बड़ौदे का किस्सा

बडौदे के किस्से के बारे में आप लोगों ने अखबारों में कअी तरह की बातें पढी होंगी। बडौदा में मुझपर जो हमला हुआ अुसका भी थोडासा अितिहास है। जब मैं वहां की प्रजा-परिषद का सदर हुआ तो वहां के कुछ लोग कहने लगे कि बडौदे में अिसका खातमा होगा। (He will meet his Waterloo here)। यह तो मुझे नोटिस था कि यहां लडाअी छेडोगे तो याद रक्खो। बडौदे से मेरा पुराना सम्बन्ध है। मैंने कुछ दिन वहां शिक्षा ली है। मैं कोअी लडाअी नहीं करना चाहता था। लेकिन बडौदा राज्य का भ्रम फोडना चाहता था। मैं कोअी छिपी बात नहीं कह रहा था। मैंने कहा आजकल बडौदा राज्य 'अिन्द्रवर्ण' फल (अिन्द्रायण फल) जैसा है। अूपर से देखने में तो खूबसूरत है लेकिन अन्दर से कडुआ। खाने से आदमी मर जाता है। बडौदे का तंत्र अन्दर से सडा हुआ था। मैं अुसे बरदाश्त नहीं कर सका। अेक भाषण मैंने दिया अुसके बारे में तरह तरह की बातें अखबारों ने लिखीं। मैंने अपने भाषणों में अिस बात का ध्यान रक्खा था कि किसी को चोट न लगे। मैं कभी लिख कर भाषण नहीं देता। लेकिन अिस बार सभापति के नाते अपना भाषण लिख कर दिया। मेरी भाषा बडी कडी है। फिर भी मैंने कोअी व्याख्यान कडी भाषा में नहीं दिया। मेरे लिखे भाषण में वहां

के अखबारवालों को कुछ नहीं मिला। अिसलिअे अुन्होंने मेरे दूसरे ही भाषण पर लिखना शुरू किया।

अेक दूसरी सभा बारडोली से चार मील पर अेक गांव में हुअी। वहां मैंने अेक भाषण दिया। मुझे कोअी खयाल नहीं था कि अिस भाषण पर भी कोअी आपत्ति की जायगी। बडौदा के दीवान साहब का सन्देशा आया कि तुम्हारा भाषण आपत्तिजनक है। सन्देशा ले कर अेक आदमी आया जो मेरा और दीवान साहब का, दोनों का दोस्त है। अुस भाषण के दिन संयोग से महादेव (महादेवभाअी देसाअी) मेरे साथ था। सन्देशा लाने वाले से मैंने कहा कि अुस भाषण के बारे में अिनसे पूछो। तब महादेव ने कहा, 'मैंने वल्लभभाअी के कअी भाषण सुने हैं। वह भाषण तो सौम्य से सौम्य था। अुसमें कोअी बात आपत्तिजनक नहीं थी।' अुसके बाद वे सज्जन चले गये। लेकिन महाराष्ट्र के अखबारवालों ने काफी जहर अुगलना शुरू किया। महाराष्ट्र के कॉंग्रेसवाले भाअियों की भी चिट्ठियों पर चिट्ठियां आने लगीं। हॉस्टेल में रहनेवाली अेक लडकी की भी चिट्ठी आयी। मैंने अुसे लिखा, 'तेरे पिता अुस व्याख्यान में मेरे साथ थे, अुनसे पूछ।' तब अुसने अपने बाप को लिखा और अुसने सच बात अुसको समझायी। यह तो मैं कह चुका हूं कि मेरी जबान काफी कडुअी है। मैं सुधरने की कोशिश करता हूं। लेकिन अब सुधरने की अुम्र नहीं रही। मैं कुछ सख्त बातें भले ही कहूं लेकिन किसी प्रान्त या जाति के खिलाफ जहर पैदा करनेवाली बातें कभी नहीं कह सकता। अितना यकीन हमारे कॉंग्रेसवाले भाअियों को और खासकर आपको रखना चाहिअे।

रियासतें

हमारा अितनी बडी सत्ता से झगडा हो रहा है। सत्ता छीनने के लिअे हम झगडा करने जाते हैं तो वे आपस में फूट पैदा कराते हैं। मुसलमान, गिरासिया, भायात, अिन लोगों को अुभाडते हैं। अब तो यह खुल्लमखुल्ला चल रहा है, कोअी अंकुश नहीं रहा। सब जगह खूनखराबी चल रही है। हिंसा और आपस के झगडे चल रहे हैं। अिसीलिअे बापू को राजकोट जाना पडा। लोग कहते हैं कि अितनी छोटी-सी जगह बापू को क्यों भेजा। मुझे भी अिसकी शर्म है। लेकिन आखिर करता क्या? राजकोट सिर्फ राजकोट नहीं है। वह सारे हिन्दुस्तान का प्रश्न है। सारे देश की कॉंग्रेस-विरोधी ताकतों की गन्दगी और हिंसा वहां अिकट्ठी हुअी है। लोग अुससे अलिप्त नहीं रह सके। बापू ने यह महसूस किया अिसीलिअे सब सत्याग्रह बन्द कर दिये।

जमनालालजी

आप यह न समझें कि अिसका हमें कोअी दर्द नहीं है। जमनालालजी वहां जेल में बैठे रहें और हम बाहर रहें यह कैसे हो सकता था? १९२४ में नागपुर के झंडा सत्याग्रह के वक्त जमनालालजी जेल में जाते ही हम वहां दौड कर गये। आज कुछ नहीं कर सकते अिसका हमें बहुत बडा दर्द है। लेकिन क्या करें?

संघ-वृत्ति

अन्त में अितना ही कहना चाहता हूं कि

संघ में परस्पर अविश्वास और फूट को जरा भी स्थान न दें। किसी के बारे में कोओी शंका हो तो फौरन अुसे लिखें या सदर साहब को लिखें। अगर अेक दूसरे के दिल साफ रहेंगे तो हमारा अेक दूसरे पर विश्वास रहेगा। हम कहेंगे कि यह तो हमारा भाओी है, कॉम्रेड है, साथी है। अगर अैसा न हो तो गांधीजी का नाम न रक्खें दूसरे किसी नाम से पार्टी बना लें। जो बातें मैंने कहीं अुनका अगर हम पालन करेंगे तो सारा हिन्दुस्तान हमारे पीछे रहेगा।

गांधी सेवा संघ सम्मेलन,
वृन्दावन ७–९–३९

व्यवहार में जीवन-वेतन

[विनोबा का अेक प्रवचन]

'मूले कुठारः' की नीति

हर बात में मैं गणित के अनुसार चलता हूं। शिक्षा–समिति (हिन्दुस्तानी तालीमी संघ) के पाठ्यक्रम में कातने-धुनने की जो योजना मैंने दी है अुसे देख कर किशोरलाल भाओी जैसे चौकस सज्जन ने भी कहा कि तुमने गति वगैरह का जो हिसाब किया है अुस पर कोओी आक्षेप नहीं किया जा सकता। गणित का अिस प्रकार अुपयोग करने वाला होने पर भी मैं अैसा मानता हूं कि कुछ चीजों के मूल पर ही कुल्हाडी मार कर अुन्हें तोड डालना चाहिअे। वहां 'धीरे धीरे,' 'क्रमशः' आदि भाषाप्रयोग अुपयुक्त नहीं होते। मैं अपने जीवन में अिसी तरह करता आया हूं। १९१६ में घर छोडा। यों तो घर की परिस्थिति कुछ अैसी नहीं थी कि मेरे लिअे वहां रहना अशक्य हो जाय। मां तो मुझे अैसी मिली थी कि जिसकी याद आज भी रोज आती है। पिताजी अभी जीवित हैं। अुनकी अुद्योगशीलता, अभ्यासुवृत्ति, साफसुथरापन, सज्जनता आदि गुण सभी को अनुकरणीय लगेंगे। लेकिन यह सब होते हुअे भी मुझे लगा कि मैं अब अिस घर में नहीं समा सकता। जब घर छोडा अुस वक्त 'अिण्टरमिजिअेट' में था। कितने ही मित्रों ने कहा कि 'अब दो ही साल तो और लगेंगे। बी॰ अे॰ पास हो के अुपाधि ले कर जाओ'। अुन सब को अेक ही जवाब दिया कि 'विचार करने का यह ढंग मेरा नहीं है'। घर छोडने के पहले दिन भिन्न भिन्न विषयों के सर्टिफिकेट ले कर चूल्हे के पास बैठ गया और तापते तापते अुन्हें जलाने लगा। मां ने पूछा, 'क्या कर रहा है'? मैं ने कहा, 'सर्टिफिकेट जला रहा हूं'। अुसने पूछा, 'क्यों'? मैं ने कहा, 'अुनकी मुझे क्या जरूरत'? मां ने कहा, 'अरे, जरूरत न हो तो भी पडे रहें तो क्या हर्ज है? जलाता क्यों है'? 'पडे रहें तो क्या हर्ज है'? अिन शब्दों की तह में अैसी वृत्ति छिपी हुअी है कि 'आगे

कभी अुनका अुपयोग करने की जरूरत पडे तो' ? अिस घटना की याद मुझे पारसाल आयी। सरकार ने मैट्रिक--पास वालों को मतदान का अधिकार दिया है। मुझे वह अधिकार मिल सकता है। लेकिन मेरे पास सर्टिफिकेट कहां है ? अेकाध रुपया दे कर दरख्वास्त करूं तो शायद अुसकी नकल मिल सकेगी। लेकिन मैंने कहा कि 'क्या मतलब अुस सर्टिफिकेट से ? पैंतीस करोड में से तीन करोड को मतदान का अधिकार मिला है। बाकी बत्तीस करोडों को नहीं मिला है। मैं अुन्हींके साथ क्यों न रहूं' ?

सिंहगढ़ की घटना

मुझे मराठों के अितिहास की अेक घटना याद आ रही है। गुहेरे की मदद से मराठे सिंहगढ़ पर चढ़ गये। लडाअी में तानाजी मारा गया। अुसके मारे जाते ही मराठों की सेना हिम्मत हार कर भागने लगी और जिस रस्से के बल वह अूपर चढ कर आयी थी अुसी के सहारे नीचे अुतरने का अिरादा करने लगी। तब तानाजी के छोटे भाअी सूर्याजी ने अुस रस्से को काट डाला और चिल्लाकर कहने लगा 'मराठो, भागते कहां हो ? वह रस्सा तो मैंने पहले ही काट डाला है।' यह सुनते ही मराठों की फौज ने सोचा कि चाहे लडें या भागें, मरना निश्चित है। यह जान कर मराठी सेना ने फिर हिम्मत की और लडाअी में जीत कर सिंहगढ़ फतह किया। यह जो 'रस्सा काटने की नीति' है अुसका अुपयोग कहीं कहीं करना ही पडता है। अैसे मेरे विचार होने के कारण कुछ लोगों को वे अव्यवहार्य जान पडते हैं। वे मुझसे कहते हैं, 'तुम्हारे विचार तो अच्छे हैं। लेकिन तुम्हें आज से सौ वर्ष के बाद पैदा होना चाहिअे था। आज का समाज तुम्हारे विचारों पर अमल नहीं करेगा'। अिसके विपरीत कुछ लोगों को मेरे विचार पांच-सात सौ वर्षों के पिछडे हुअे प्रतीत होते हैं। वे कहते हैं कि साधुसंतों का वाङ्मय पढ पढ कर अिसका दिमाग अुन्हींसे लबालब हो गया है। आज के समाज के लिअे अुनका कोअी अुपयोग नहीं है।

'रस्सा काटने' की नीति

खादी की बाबत में 'रस्सा काट डालने' का समय आज आ गया है। अुस दिन के समान आज भी मेरी यह पक्की राय है कि यहां का (वर्धा का) खादी भंडार अुठा देना चाहिअे। आज तक जिस ढंग से खादी का काम बढाया गया अुस तरीके की ताकत अब खतम हो चुकी है। आज अगर चालीस या साठ लाख की खादी होती होगी तो बहुत कोशिश करने पर हम दो या तीन करोड की खादी बना सकेंगे। लेकिन खादी के विषय में हमारा जो दावा है वह अिस तरह सिद्ध नहीं होगा। जिस तरह और जिन कारणों से खेती में यंत्र के हल की गुंजाअिश नहीं है अुसी तरह और अुन्हीं कारणों से कपडे बनाने में भी यंत्र के लिअे जगह नहीं है। खादी के पीछे यह विचारधारा है। तीन साल पहले खादी के बारे में तीव्र विचार आने लगे और मैंने अुत्कटता से कातना शुरू किया। लगभग अुसी समय बापू ने भी आठ घण्टों के लिअे आठ आने मजदूरी का सिद्धान्त देश के सामने रक्खा। अनेकों ने अनेक आक्षेप

किये। आखिर चरखासंघ ने सिद्धान्त मान्य किया और महाराष्ट्र चरखासंघ ने नौ घण्टों के काम के लिअे तीन आने देने की हिम्मत की और आज दो साल के बाद आठ घण्टों के लिअे चार आने देनें की बात वह कह रहा है।

पूरी मज़दूरी—अेक दृष्टान्त

मज़दूरी बढाने का सिद्धान्त हमने मान्य कर लिया है। अुस पर अमल करने के लिअे कोशिश भी कर रहे हैं। लेकिन तिसपर भी मज़दूरी बढाने के पीछे जो रहस्य है वह अबतक हमारे गले नहीं अुतरा है। नालवाडी का ही दृष्टांत लीजिये। रात को जब जोर से आंधी चलती है तो कैरियां जमीन पर गिर पडती हैं। दूसरे दिन अुन्हें टोकरी में भर कर वह बेचारी किसान–औरत अुन्हें बेचने आती है। आंधी के कारण आम गिरने से अुसका जो नुकसान हुआ है अुस नुकसान के कारण बेचारी पहले ही चिन्ताक्रान्त है। अुन आमों की आम तौर पर अगर आठ आने कीमत हो तो वह बेचारी अिस मौके पर अपनी तरफ से ही केवल तीन-चार आने बताती है। अितनी सस्ती कीमत वह बताती है तो भी यह खादी-वाला ही अुससे कहता है कि छह पैसे में दे दे। बहुत देर तक भाव करने के बाद टोकरी का सौदा दो आने पर तय होता है। अुधर आन्धी से आम गिरने लगते ही किसान का मन खिन्न होने लगता है। लेकिन अिधर खरीदार सोचता है कि कल आम सस्ते मिलेंगे और हम अच्छा अचार बना कर रख सकेंगे। अगर हम पूरी मज़दूरी का सिद्धान्त समझ गये हैं तो हमें अुस आमवाली से कहना चाहिअे कि, 'मां' तू अिन टोकरी-भर आमों की कीमत तीन आने बतलाती है। लेकिन असल में अुनके दाम छह आने हैं। मैं तो तुझे छह आने देता हूं।' अगर हमें अुतने आमों की जरूरत न हो तो कहना चाहिअे कि 'ये तीन आने ले और आधी टोकरी आम यहां डाल कर चली जा'। पर हम खादीवाले भी आज अैसा नहीं करते।

दूसरा उदाहरण

दूसरा अुदाहरण देता हूं। जब मैं पवनार में गणपतराव के यहां रहता था तो अुनके यहां की अेक स्त्री मक्खन बेचने के लिअे वर्धा आयी। सांझ तक अुसे कोअी ग्राहक नहीं मिला। क्योंकि वर्धा के बुद्धिमान लोगों ने बाजार करने का भी अेक शास्त्र खोज निकाला है। वह यह है कि जितनी देर हो सके अुतनी देर कर के बाजार में जाना चाहिअे। अुस वक्त चीजें सस्ती मिलती हैं। देहात से आये हुअे लोगों को लौटने की जल्दी होती है अिसलिअे वे जो दाम मिलें अुतने दामों में अपनी चीजें बेच देते हैं। बिलकुल शाम होने पर अेक भला आदमी आया। अिस बेचारी ने दोपहर की अपेक्षा दो तीन आने कम ही भाव बतलाया। तो भी वह भला आदमी खरीदने से अिन्कार करता रहा। आखिर अुस स्त्री ने सोचा कि अब पांच मील अिस बोझ को वापिस ले जाने की अपेक्षा अिसे बेच ही क्यों न डालूं? अुसने आधे दामों में वह मक्खन बेच दिया।

सौदे की कला

आज खरीदार और बेचनेवाला अेकत्र आते

ही सोचने लगते हैं कि सामनेवाला मुझे फसाने पर तुला हुआ है। अिसलिअे बचनेवाला जो कीमत बतलावे अुससे कुछ कम ही कीमत में खरीदार मांगेगा। अैसा माना जाता है कि जो कम से कम दामों में चीज ले आवे वह बडा चतुर है। लेकिन अबतक हम यह नहीं समझ पाये हैं कि पैसे गंवा कर हृदय कमाने में भी कुछ चतुराअी है। जबतक कमसे कम पैसे देने में चतुराअी मानी जाती है तबतक गांधीजी की बात समझ में नहीं आ सकती और न अहिंसा का प्रचार ही हो सकता है।

युद्ध टालने का सही उपाय

कलकत्ते में जापानी लोग बम बरसायें तो हम आत्मरक्षा किस तरह करें अिसकी तरकीबें सोची जा रही हैं। लेकिन अिनसे क्या होनेवाला है? बम तो बरसने वाले ही हैं। बहुत हुआ तो, आज नहीं दस सालों के बाद बरसेंगे। यदि हम अेक ओर जापान का सस्ता माल खरीद कर अुसे मदद करते रहेंगे और दूसरी ओर अुसके बम न गिरें अिसकी कोशिश करते रहेंगे तो वे बम कैसे टलेंगे? बम या युद्ध टालने का वास्तविक अुपाय तो यही है कि हम अपनी आवश्यक चीजें अपने आसपास तैयार करायें और अुनके योग्य दाम दें।

अव्यवहार्यता का आक्षेप

लोग कहते हैं कि गांधीजी की आठ आने मजदूरी वाली कल्पना अव्यवहार्य है। मैं पूछता हूं कि अगर वह अव्यवहार्य है तो दूसरी कौनसी व्यवहार्य है? जो आज प्रचलित है वह? अुसके आधार पर व्यवहार किस तरह चल रहा है सो तो हम देख ही रहे हैं। अिसके अलावा, आज आम तौर पर मजदूरी के जो दर पाये जाते हैं अुनके मुकाबले में आठ आने चौगुने होते हैं यह कल्पना भी यथार्थ नहीं है। आठ आने मजदूरी आज मिलनेवाली दो आने मजदूरी की चौगुनी नहीं है। बहुत तो डेढ गुनी या दुगुनी होगी।

हिसाब का सही तरीका

अेक बार अेक सभा में मैंने यह सवाल पूछा कि "हिंदुस्थान की औसत आयुर्मर्यादा अिक्कीस साल और अिंग्लैंड की ब्यांलीस साल है। तो यह बतलाअिये कि अिंग्लैंड का मनुष्य हिन्दुस्थानी की अपेक्षा कितने गुना जीता है"। छोटे छोटे बालकों ने ही नहीं, बल्कि बडे बडे पढेलिखे लोगों ने भी जबाब दिया कि "दुगुना जीता है"। मैंने अुन सब को फेल कर दिया। मैंने कहा कि "अिक्कीस दूने ब्यांलीस होते हैं यह सही है। लेकिन हर अेक आदमी की अुम्र के लडकपन के पहले चौदह साल छोड देना चाहिअें, क्यों कि अुनका समाज को कोअी अुपयोग नहीं। ये चौदह साल यदि हम छोड दें तो हिन्दुस्थान का मनुष्य सात साल और अिंग्लैंड का अट्ठाअीस साल जीता है। यानी हिन्दुस्तानी की अपेक्षा इंग्लैंड का मनुष्य दुगुना नहीं, चौगुना जीता है"।

यही नियम मजदूरी के विषय में भी घटित होता है। समाज में यदि सभी लोग अुद्योगी और परस्परावलंबी होते तो चीजों के भाव कुछ भी होने से, या आठ आने की जगह दो आने मजदूरी होने से, कोअी फरक नहीं पडता। तेली का तेल जुलाहा

खरीदता है, अुसका कपडा तेली खरीदता है, दोनों किसान से अनाज खरीदते हैं, किसान दोनों से तेल या कपडा खरीदता है। अैसी स्थिति में हम अनाज का ॥ रुपये का चार पाअी समझें, या दस पाअी समझें तो क्या अन्तर पडनेवाला है? रोज की मज़दूरी दो आने कहें या आठ आने कहें तो कौनसा फरक होने वाला है? क्योंकि जब सभी अुद्योगी और परस्परावलंबी हैं तो अेक चीज़ का जो भाव होगा अुसी हिसाब से दूसरी चीजों के भाव भी लगाये जायेंगे। महँगे दाम लगायेंगे तो व्यवहार में बडे बडे सिक्के बरतने होंगे और सस्ते दाम लगायेंगे तो सस्ते सिक्कों की जरूरत होगी। महँगे भावों के लिअे रुपये ले कर बाज़ार में जाना होगा। सस्ते भाव होंगे तो कौड़ियों से लेन-देन का व्यवहार हो सकेगा। लेकिन अिससे कोअी फरक नहीं पड़ता। लेकिन आज समाज में अेक अैसा वर्ग है कि जो न तेल निकालता है, न कपडा बुनता है, न अनाज पैदा करता है और न दूसरा कोअी अुत्पादक श्रम करता है। हम अगर चीजों के दाम बढा दें तो अेक सेर भटों के बदले आज अिस वर्ग की ओर से हमें चार पैसे मिलते होंगे तो कल दो या चार आने मिलने लगेंगे। भाव या मज़दूरी बढाने से यही लाभ या अुपयोग है। लेकिन यह वर्ग हर हालत में बहुत छोटा ही रह सकता है। अिसलिअे अगर हम सब की मज़दूरी आठ आने कर दें तो वास्तव में वह चौगुनी न होते हुअे डेढ गुनी या दुगुनी होगी।

आठ आने मज़दूरी के सिद्धान्त का अमल

लेकिन आज आठ आने मज़दूरी के सिद्धान्त को कोअी ग्रहण ही नहीं करता। अुसे स्वीकारने का मतलब यह है कि हमें अपनी सारी जीवनोपयोगी चीजों के दाम मज़-दूरी के हिसाब से लगाने चाहिअें। अैसा करने से पता चलेगा कि ढाअी-तीन सौ साल पहले का अुस बेवकूफ तुकाराम का अर्थशास्त्र आज १९३७ या १९३८ के आधुनिकतम अर्थशास्त्र से मेल खाता है। हम अेक अैसी जमायत बनाना चाहते हैं कि जो मज़दूरी का अुपर्युक्त सिद्धान्त अमल में लावे। हम अगर अेक घडा खरीदने जायें तो कुम्हारिन अुसके दाम दो पैसे बतलायेगी। हमें चाहिअे कि हम अुसको बनाने में लगा हुआ वक्त वगैरा पूछ कर अुससे कहें कि, "मां, मैं तो तुझे अिस घडे के दो आने दूंगा। क्योंकि अिसके लिअे तुझे अितने अितने घंटे खर्च करने पडे हैं और अुन घंटों की अितनी मज़दूरी के हिसाब से अितने दाम होते हैं"। तुम दो आने दे कर वह मटका खरीदोगे तो वह मटकेवाली समझेगी कि यह कोअी बेवकूफ आदमी दीख पडता है। दूसरी बार अगर तुम अेक बुहारी लेने जाओगे तो वह तुरन्त अुसके दाम छह आने बतलायेगी। तब तुम अुसे सारा हिसाब पूछ कर समझाओगे कि बुहारी की कीमत छह आने नहीं बल्कि दो या तीन आने है। तब वह स्त्री समझ जायेगी कि यह आदमी बेवकूफ नहीं है, अिसे अक्ल है और यह किसी न किसी हिसाब के अनुसार चलता है।

ठगा जाना अेक बात है और विचारपूर्वक मौजूदा बाज़ारभावों की अपेक्षा अधिक, लेकिन वस्तुतः अुचित, कीमत देना बिलकुल दूसरी बात है। यह अुचित कीमत ठहराने

के लिअे हमें भिन्न भिन्न धंदों में जा कर या अुन धंधो में पडे हुअे लोगों से प्रेम का सम्बन्ध कायम कर अलग अलग चीजों का अेक समय-पत्रक बनाना होगा। अुतने समय की अुचित मज़दूरी तय करनी होगी और अुसमें कच्चे माल की कीमत जोड कर जो दाम होंगे अुतनी अुस चीज़ की कीमत समझनी चाहिअे। यदि हम अैसी कीमत नहीं देते तो अहिंसा का पालन नहीं करते।

मज़दूरों का नया दान-शास्त्र

अब, यह मज़दूरी सब लोग आज नहीं देंगे। यदि मुमकिन हो तो हम पूर्ण मज़दूरी का माल बेचनेवाली अेक अेजेन्सी निकाल सकते हैं। अगर वह सारा माल बिकवा दे तो कोअी सवाल ही नहीं रह जाता। लेकिन अगर यह मुमकिन न हो तो मजदूरों को आज की तरह अुसी पुराने भाव में अपना माल बेचना पडेगा। अैसी हालत में अुनके सामने दो रास्ते हैं। अेक तो यह कि वे कम दामों में अपना माल बेचने से अिनकार कर दें। लेकिन यह आज असम्भव है। दूसरा रास्ता यह है कि मज़दूरों में अैसी भावना—हिसाबी वृत्ति—निर्माण हो कि वे कहें कि, "अिस चीज़ की अुचित कीमत अितनी है। परंतु यह धनवान मनुष्य वह कीमत नहीं देता। तो जितनी कीमत अुसने दी है अुतनी जमा करके बाकी के पैसे मैंने अुसे दान में दिये अैसा मैं मान लूंगा"। धनाढ्य लोग गरीबों को जो दें वही दान है, या केवल धनाढ्य ही दान कर सकते हैं, अैसी धारणा क्यों हो? जो लोग हर रोज दान दे रहे हैं अुन्हें अिस बात का भान करा देना चाहिअे कि वे दान दे रहे हैं।

समाजवाद का मंत्र

पूरी मज़दूरी के सिवाय समाजवाद या साम्यवाद का दूसरा कोअी अिलाज नहीं है। अितना ही नहीं बल्कि रूस या दूसरे किसी देश में न हुआ होगा अितना रक्तपात अिस देश में होगा। मैंने अेक व्याख्यान में—पवनार की खादी यात्रा में—साक्षात् महात्मा गांधी के सामने वेद का वह मंत्र पढा जो स्पष्ट शब्दों में कहता है कि जो धनिक अपने आसपास के लोगों की पर्वाह न करता हुआ धन अिकट्ठा करता है वह धन प्राप्त करने के बदले अपना "वध" प्राप्त करता है। सायणाचार्य ने अिस मंत्र का भाष्य करते हुअे 'वध' और 'मृत्यु' के भेद की तरफ ध्यान दिलाया है। अुस मंत्र को आप समाजवाद का मन्त्र कह सकते हैं। मज़दूर या श्रमजीवियों के तमाम प्रश्नों का पूरी मज़दूरी ही अेक मात्र अहिंसक हल है।

क्षेत्र-निष्ठ अर्थशास्त्र

अब मैं आज की खास बात पर आता हूं। ग्राम सेवा मंडल अिस तहसील में खादी अुत्पत्ति का प्रयत्न ज्यादा जोरों से करने वाला है। जिस माल पर चरखासंघ को कुछ नफा मिल जाता है, खास कर वैसा माल वे तैयार करना चाहते हैं। "चरखा संघ का काम कअी वर्षों से चल रहा है। अिसलिअे यद्यपि वह आज चार आने मज़दूरी देने को तैयार है तो भी हम तो तीन आने मज़दूरी दे कर ही खादी बनवायेंगे" वगैरह दलीलें दे कर वे काम करवा चाहते हैं। मैं कहता हूं कि चरखासंघ

सावली में तो मजदूरी 'कलदार' में देता है। लेकिन निज़ाम राज्य में 'हाली' (निजाम राज्य का सिक्का) में देता है। अिसका समर्थन या अिसके पीछे जो विचारधारा है अुसे में समझ सकता हूं। 'कलदार'–तीन आनों में सावली में जितना सुख मिल सकता है अुतना ही सुख 'हाली'–तीन आने में मुगलाअी (निजाम राज्य) में मिल सकता है। क्योंकि वहां गरीबी ज्यादा है। अैसी वह विचारधारा है। अुसी विचारधारा के अनुसार सावली की अपेक्षा वर्धा में जीवन-निर्वाह अधिक महंगा है। अिसलिअे यहां सावली से ज्यादा मज़दूरी देनी चाहिअे। सावली में तीन आने देते हैं; यहां भी हम तीन ही आने देते हैं अैसा कहने से काम नहीं चलेगा।

महमूद और फ़र्दौसी का किस्सा

अगर हम अैसा करेंगे तो फिर वही महमूद और फर्दौसी वाला किस्सा चरितार्थ होगा। महमूद ने शाहनामे की प्रत्येक पंक्ति के लिअे अेक दीनार देने का वादा किया। लेकिन जब अुसने यह देखा कि फर्दौसी का लिखा हुआ शाहनामा तो अेक बडा भारी ग्रंथ है तब अितनी सोने की दीनारें देने की अुसकी हिम्मत नहीं हुअी। अिसलिअे अुसने सोने की दीनारों की जगह चांदी की दीनारें दीं।

खादीधारी कम होने का डर

में अिधर दस या बारह वर्षों से खादी के विषय में जिस तीव्रता से विचार और आचार करता हूं अुतना बहुत ही थोडे लोग करते हैं। आज भी खादी का रहस्य कअियों की समझ में नहीं आया है। पिछली सभा में यहां का खादीभंडार अुठाने के पक्ष में मैंने जो राय दी थी वह दूसरों की भिन्न राय होते हुअे भी आज तक कायम है। अुस वक्त अेक दलील यह भी पेश की गयी थी कि यदि हम यहां से खादीभंडार अुठा लेंगे तो खादीधारियों की संख्या बढेगी नहीं बल्कि कम हो जायगी। में कहता हूं कि खादीधारी कम होंगे या नहीं यह आप क्यों देखते हैं? आपकी नीति सही है या नहीं यह क्यों नहीं देखते? शिक्षा-समिति ने जो योजना बनायी है वह साल दो साल में व्यवहार में लायी जायगी। तब वर्धा तहसील की दो लाख जनसंख्या में से स्कूल में जाने लायक दसवाँ हिस्सा, यानी बीस हजार लडके, निकलेंगे। अगर ये लडके तीन घंटे कात कर प्रौढ मनुष्य के काम का अेक-तिहाअी, यानी करीब अेक घंटे का काम करें तो भी बीस हजार लोगों को स्वावलंबी बना सकने लायक खादी पैदा होगी। तजवीज यह है कि यह सारी खादी सरकार खरीदे। आखिर 'सरकार खरीदे' अिन शब्दों का मतलब यही हो सकता है कि 'लोग खरीदें'। क्योंकि सरकार आखिर कितनी जगह की खादी खरीद सकती है? अिसलिअे अन्त में तो अुसे लोग ही खरीदेंगे। अिसलिअे स्वाभाविकरूप से बीस हजार खादीधारी होंगे। अिस तरह खादीधारी कम होंगे यह डर योग्य नहीं है।

हमारा दायित्व

खादी के पीछे जो सही विचारधारा है अुसे समझाने की जिम्मेवारी हमारी है। यह काम और कौन करेगा? अितने बडे तामिळनाड प्रान्त में चरखासंघ के 'सूत-सदस्य'

सिर्फ सात-आठ हैं। चरखा संघ के कर्मचारियों को अिस गिनती में शुमार नहीं किया है। जहां यह हालत है वहां खादी के विषय में कौन विचार करने लगा? नियमितरूप से सूत कातने वाले और सूत देनेवाले लोगों की जरूरत है। लोग कहते हैं कि हमें कातने के लिअे फुरसत नहीं। हम सूत कातना नहीं चाहते और मज़दूरी के रूप में ज्यादा पैसा भी देना नहीं चाहते। फिर अहिंसा का प्रचार कैसे हो? राजाजी ने हाल ही में मद्रास सरकार की ओर से खादीप्रचार के लिअे दो लाख रुपये दिये। लेकिन अितने से क्या होनेवाला है? पहले की सरकार भी गृह अुद्योग या ग्राम अुद्योगों के नाम से क्या अैसी मदद किसी हालत में नहीं देती? आज सरकार चारों तरफ से परेशान की जा रही है। अिधर जापान का डर है, अुधर यरोप में भीषण लडाअी का डर है। अैसी परिस्थिति में यह कौन कह सकता है कि हमें खुश करने के लिअे पुरानी सरकार भी पैसे नहीं देती? लेकिन अैसे पैसों से खादी का असली काम पूरा नहीं होगा।

खादी का संपूर्ण अंगीकार और व्याख्या

खादी के पीछे जो विचारधारा है अुसे समाज के सामने कार्यरूप में अुपस्थित करने का दायित्व हमारा है। अिसलिअे ग्राम सेवा मंडल को मेरी यह सूचना है कि वह आठ घंटों की आठ आने मज़दूरी दे कर खादी बनवावे। कमसे कम अितना तो करे कि जिस परिमाण में यहां का जीवन-निर्वाह सावली से महंगा हो अुस परिमाण में ज्यादह मज़दूरी दे कर खादी बनवावे। अिस खादी की खपत अगर न हो तो मैं खादीधारियों से साफ साफ पूछूंगा कि तुम पुतलीघर का कपडा क्यों नहीं पहनते? वह भी स्वदेशी तो है। समाजवादियों के सिद्धान्त के अनुसार अुसपर राष्ट्र का नियंत्रण ही अितना बस है। अेकाध आदमी पूरा जीवित या पूरा मृत है यह मैं समझ सकता हूं। लेकिन पौन जिन्दा और पाव मरा हुआ है यह कथन मेरी समझ में नहीं आ सकता। या तो वह पूर्ण जिन्दा होगा या पूर्ण मरा हुआ। अिसलिअे अगर खादी बरतना है तो अुसके मूल में जो भावनायें हैं, जो विचार हैं अुन सब का ग्रहण कर अुसे धारण करनी चाहिअे। जो खादी का अिस तरह अंगीकार करें वे ही दर असल खादीधारी हैं। आज तक हम खादी शब्द की व्याख्या 'हाथ का कता हुआ और हाथ का बुना हुआ कपड़ा' अितनी ही करते आये। अब अुसमें, 'पूरी मज़दूरी दे कर बनवाया हुआ' ये शब्द और जोड़ देने चाहिअें।

खादी सार्वजनिक है

जाजूजी को यह डर है कि मज़दूर और किसानों को खादी महंगी पडेगी। अगर यह बात सच हो तब तो कहना होगा कि खादी आम जनता के लिअे नहीं है। केवल मध्यम श्रेणी के कुछ भावनाशील लोगों के लिअे ही वह है। फिर हमें अुस दृष्टि से सारा विचार करना होगा। लेकिन यदि हमारा यह दावा सही हो कि खादी आम जनता के लिअे है तो अुस दृष्टि से सोच कर, खास कर वस्त्रस्वावलम्बन के जरिये, खादी का प्रचार करना चाहिअे। और मज़दूरी की खादी मज़दूरी के विषय में मैंने

पेश की हुअी दो सूचनाओं में से जो व्यवहार्य प्रतीत हो अुसके अनुसार बनवानी चाहिअे। आप जो ठीक समझें वह तय करें। २५:१२:३७

नयी तालीम का रहस्य

[वृन्दावन (बिहार) में हिन्दुस्तानी तालीमी संघ द्वारा खोले गये केन्द्र के विद्यार्थियों को **गांधीजी** ने दिया हुआ अुपदेश]

मुझे आज जो अनुभव हुआ वह मैं आपको सुनाना चाहता हूं। पहले तो मैंने प्रदर्शनी देखी। बहुत ही अच्छी थी। कहते हैं कि त्रिपुरी में जो प्रदर्शनी हुअी अुसकी यह चौथाअी है। अेक-चतुर्थांश देख कर भी मैं तो खुश ही खुश हुआ। लेकिन पूरी प्रदर्शनी देख लेता तो मेरी खुशी चौगुनी हो जाती अैसा थोडे ही है? त्रिपुरी में जो प्रदर्शनी हुअी थी अुसका बड़ा हिस्सा जामियामिलिया (देहली) का था। प्रो० सय्यदेन का था। वे अब काश्मीर चले गये हैं। वहां शिक्षा-विभाग के डायरेक्टर हैं। अच्छा काम कर रहे हैं। आज वे नहीं हैं। अिसलिअे प्रदर्शनी में वह हिस्सा नहीं है। वह तो बडा भारी हिस्सा था। मैं तो चन्द मिनिटों के लिअे ही आज प्रदर्शनी में जा सका। वह है तो बडी चीज़। अगर मेरे पास अेक पूरा दिन होता तो अुसे देता और अुसमें से बहुत कुछ पाता। देखता कि अिस चीज़ को ये लोग कहां तक ले गये हैं, अुद्योग द्वारा शिक्षा के आयोजन में कितनी सफलता प्राप्त की है, हर अेक विषय को अुद्योग के साथ किस प्रकार जोड़ते हैं।

मैं आपको सलाह देना चाहता हूं कि आप अिस प्रदर्शनी का अध्ययन करें। अेक अेक चीज़ को गौर से देखें। अुदाहरण के लिअे अेक ही चीज़ ले लीजिये। हमको पता नहीं था कि मूंज की धुनकी अितनी काम देती है। वह तो अितनी अच्छी है कि कुछ बातों में तांत से भी बढ कर है। बारीक सूत निकालने के लिअे बहुत बढ़िया है। कपास का अेक अेक रेशा अलग अलग कर देती है। और अिसके अलावा स्वास्थ्य को भी नुकसान पहुंचाने वाली नहीं है। मेरे जैसा आदमी, जिसका हृदय कमजोर हो गया है, वह भी अपनी रुअी अुससे अच्छी तरह धुन सकता है। लगती भी खूबसूरत है। परिश्रम कुछ नहीं, धुनने में आनन्द ही आनन्द आता है। अैसी छोटी छोटी चीजों में भी हम कहां तक जा सकते हैं अिसका यह अुदाहरण है। जिस आदमी ने अपनी सारी सूझ-बूझ और प्रतिभा अिसी काम में लगा दी अुसका यह आविष्कार है।

मैं चाहता हूं कि आप प्रदर्शनी का अिस दृष्टि से भलीभाँति निरीक्षण करें और शोध करें। हम कहां तक तरक्की कर सकते हैं अिसकी कोअी हद नहीं। अगर हम अिस शिक्षा द्वारा अपने अन्दर मौलिकता नहीं पैदा कर सकेंगे तो हम सच्चे शिक्षक ही

नहीं है। अुद्योग के द्वारा शिक्षा बुनीयादी शिक्षा का मध्यबिंदु है। आपमें अितनी मौलिकता आ जानी चाहिअे कि आप अनेक अुद्योगों की मारफत अपनी बुद्धि का विकास कर सकें और अपनी सारी मौलिकता और सूझ से काम ले कर अन-गिनती चीजें अुद्योग की मारफत सिखावें और नये आविष्कार करें।

आज हमारा आधार दो ही अुद्योगों पर है। अुन्हींकी बात ले लीजिये। जो अिन अुद्योगों के द्वारा अपने दिमाग की तरक्की कर सकते हैं अैसे दो आदमी मिल गये। अिसीसे आशादेवी और आर्यनायकम् का काम चल सका। तकली के लिअे हमको विनोबा मिल गये। और कार्डबोर्ड के अुद्योग की मारफत बुद्धि का विकास कैसे हो सकता है यह बताने वाले दूसरे सज्जन मिल गये। अुनका नाम मैं भूल रहा हूं, वे शान्ति-निकेतन से आये हैं। अुन अुद्योगों में कितनी कितनी बातें भरी पडी हैं यह अुन्होंने दिखा दिया। अिसी तरह अगर आप न बता सकें तो आपमें मौलिकता नहीं आयेगी। अैसे आदमी न मिलें तो न तो जाकिर साहब कुछ कर सकते थे, न आशा देवी। मैं आपसे कहूंगा कि आप अिस शिक्षा-पद्धति में से मौलिकता पैदा करने की दृष्टि से प्रदर्शनी देखें। परंपरा से चली आयी पद्धति से अुद्योग या दस्तकारी सिखाना हमारा अुद्देश नहीं है। हमें तो अुद्योग को शिक्षा का जीवित माध्यम बनाना है।

अिसके बाद मैं पाठशाला में चला गया। मैंने देखा कि मास्टर साहब काफी चालाक आदमी हैं। सब लडके तकली चला रहे थे। मेरा तो यह दावा है कि मैं चरखे के, तकली के, करघे के शास्त्र को खूब जानता हूं हालांकि मैं खुद अुन कामों को तेजी से नहीं कर सकता। लेकिन जानता तो अच्छी तरह हूं। मैंने फौरन देख लिया कि यहां कोअी न कोअी त्रुटि है। या तो मास्टर साहब खुद कातने की कला नहीं जानते या लडकों को गलत सिखाया गया है। मैंने अुनका दोष फौरन पकड लिया। जो काम आध मिनिट में हो सकता था अुसे वे लडके चौगुना वक्त लगाते थे। धागा निकालने पर भी वे तकली को घुमाते ही रहते थे। वह सच्चा सूत नहीं था। जैसे जैसे हम धागे को खींचते हैं वैसे वैसे सूत को बल मिलना चाहिअे। बाद में बल देने की जरूरत नहीं। जरा भी ज्यादा बल देने से सूत पक्का तो नहीं बल्कि निकम्मा हो जाता है। रफ्तार तो अिस तरह बढ ही नहीं सकती।

दूसरी भी कुछ त्रुटियां देख रहा था। सब का अुल्लेख नहीं करता। नायकमजी से कह दिया, जो शिक्षक अपना अुद्योग अच्छी तरह नहीं जानता वह निकम्मा समझा जाय, फिर वह चाहे कितना ही बुद्धिशाली हो और चरखे और करघे के शास्त्र की चाहे जितनी किताबें क्यों न पढ सकता हो। अगर वह सूत अच्छी तरह नहीं निकाल सकता तो वह शिक्षक बनने के लिअे कभी लायक नहीं होगा। वह तो मुनशी भी नहीं बन सकेगा। वह तो निकम्मा गया। हमारा तो यह दावा है कि अुद्योग के द्वारा बुद्धि का विकास होगा। यही हमारा गुनिया है। सारी योजना का मध्यबिन्दु है।

अिसलिअे पहले तो मैं यह देखूंगा कि शिक्षक का सूत कैसा है। समान है या नहीं, मजबूत है या नहीं? अितना होगा तो मैं कहूंगा कि वह कारीगर तो अच्छा है। लेकिन यदि

अुसकी बुद्धि का विकास नहीं होगा तो अुसमें मौलिकता नहीं आयेगी। पीढियों तक वही चरखा, वही करघा, चलाता रहेगा। अुसमें सुधार नहीं करेगा। हिन्दुस्तान का तो यही अितिहास है। क्योंकि हाथ और बुद्धि का मेल नहीं रहा। जो कारीगर थे अुन्होंने अपने औजारों में और काम के तरीकों में सुधार करने की तरफ कोओ ध्यान नहीं दिया और जो बुद्धि का काम करते थे अुनका अुद्योग से कोओ सम्बन्ध नहीं रहा। मौलिकता दोनों में से जाती रही।

मैं अपने शिक्षकों की बुद्धि की परीक्षा अिस दृष्टि से करूंगा। अुन्हें अपना अुद्योग अिसी तरह सीखना चाहिअे और अुसमें रस लेना चाहिअे। अगर अिस तरह से वे तालीम नहीं लेंगे तो यह योजना कामयाब नहीं हो सकती। सारी दुनिया में बात फैल गयी है। अगर वह बन नहीं आयी तो दुनिया हंसेगी। अिसका मुझे डर नहीं है। जब मैं देखूंगा कि जो चीज़ मैं चाहता हूं वही हो रही है तभी मुझे संतोष होगा। नहीं तो सारी दुनिया हमारे काम की तारीफ करती रहे तो भी मैं धोखे में नहीं आअूंगा। आज अिसकी अितनी तारीफ हो रही है तो भी मुझे डर है। जो अिस योजना में शिक्षक का काम कर रहे हैं वे यह सोच कर नाच रहे हैं कि हम कोओ अनोखी चीज करने जा रहे हैं। लेकिन शायद यह खयाल भी हमें धोखा देगा। मैं चाहता हूं कि आप अुद्योग के द्वारा ज्ञान प्राप्त करने की कला हासिल कर लें। यह ज्ञान और यह कला अनोखी चीज़ है। आपको अपने अेम. अे., बी. अे.-पन के ज्ञान का उपयोग अिसी में करना चाहिअे। आज शिक्षा अेक नीरस और निर्जीव व्यापार है अुसे रोचक और सजीव बनाना आप का काम होना चाहिअे। मेरा अैसा दावा है कि मैंने जो तरीका अीजाद किया है अुसमें से अेक अनोखी तेजस्विता पैदा होनी ही चाहिअे।

मेरे नज़दीक किताबी शिक्षा और दिमागी शिक्षा अेक ही चीज़ नहीं है। जिसकी बुद्धि का अुसके हाथ और पैरों के साथ मेल नहीं है वह मेरी राय में बुद्धिमान नहीं है। अगर किसीने वेदों के शब्द रट लिये, अुनकी टीकायें कंठ कर लीं, तो क्या वह वेदपारंगत बन गया? मैं तो यह देखूंगा कि अुसने वेद के गूढ अर्थ को कहां तक हज़म किया है। अुसकी चालचलन पर से अिसका पता चल जायगा। तो, अिस योजना की जो केन्द्रीय कल्पना है वह मैंने आपको बतलायी।

अब कुछ मामूली बातें लेता हूं। लडके जितने साफ-सुथरे होने चाहिअे थे अुतने नहीं थे। अुनकी चड्डियां और कुर्ते मैले-कुचेले थे और शरीर पर भद्दे गहने थे। मैं कहता हूं कि चड्डी-कुर्ता पहनने में भी कला होनी चाहिअे। आप अिन चीजों को मेरी दृष्टि से देखें। मैंने देखा कि किसी के बाल अेक तरह से कटे हैं, दूसरे के दूसरी तरह से। किसी की टोपी सीधी लगी हुअी है, किसी की आडी-टेढी, तो किसीका सिर ही टोपी में घुस गया है। किसीकी टोपी अितनी मैली है कि मैं तो स्पर्श ही नहीं कर सका। मैं कहता हूं कि लडके कुछ अेक-से तो दीखने चाहिअे। कोओ टोपी अैसी लगा ले और कोओ वैसी, यह क्या बात है? जब वे पहले-पहल स्कूल में आते हैं तो अुन्हें टोप लगाना, कपडे पहनना और साफ-सुथरे

रहना सिखाना चाहिअे। मैं मानता हूं कि लडके गरीब हैं। लेकिन जब वे हमारी पाठशाला में आ जाते हैं तो हम अुन्हें कम से कम साफ रहना तो सिखायें। जो कपडे हैं अुन्हें ढंग-से पहनना सिखायें। यह भी कारीगरी का अेक अंग है। क्यों कि अिसमें कला है। मैं अपने कारीगर को मैलाकुचैला (स्लोव्हनली) नहीं देख सकता। अुसकी पोषाक, शरीर और सारे रहनसहन से यह प्रकट होना चाहिअे कि वह कारीगर है। मेरा कारीगर अगर मैला-कुचैला (स्लोव्हनली) होगा तो मैं अुसे हटा दूंगा।

ता० ४-५-३९,
रातको ८ बजे

ग्राम उद्योग संघ

(ता० ७-५-३९ को वृन्दावन (बिहार) में ग्राम अुद्योग संघ को वार्षिक सभा के अवसर पर **गांधीजी** ने दिया हुआ भाषण

भाअियो और बहनो,

अगर संख्या की दृष्टि से देखें तो ग्राम अुद्योग संघ अेक निष्फल प्रवृत्ति है अैसा आपको और दूसरे लोगों को लगे तो कोअी आश्चर्य नहीं। किसी संस्था की वार्षिक सभा के लिअे अठारह की संख्या तो तुच्छ है। लेकिन अठारह से भी कम संख्या पर आना पडे, या अिन अठारह को भी छोडना पडे, तो भी मुझे कोअी आश्चर्य नहीं होगा; और न दुःख होगा। अिस संघ के बारे में मेरी कल्पना अैसी ही है। हमको अुसका विधान और संगठन कुछ सख्त ही रखना चाहिअे। अुसके ढांचे में ज्यादह आदमी नहीं आ सकते। अिसीलिअे नियमों का ठीक ठीक पालन न करने के कारण काफी नाम निकल गये। अैसी संस्था की परीक्षा अुसकी संख्या से नहीं बल्कि काम से होनी चाहिअे। यों अिस संस्था का काम बहुत अधिक तो नहीं हुआ है। लेकिन जो थोडा काम हुआ है वह बहुत गहरा हुआ है और अुसका गहरा परिणाम आप कुछ वर्षों के बाद देखेंगे। लेकिन जो आदमी अुसका संचालन करते हैं वे कर्तव्यनिष्ठ हैं। अपनी सारी शक्ति लगा कर काम करते हैं अितना दावा मैं कर सकता हूं।

लोगों की दृष्टि शहरों की तरफ है। अिसलिअे ग्राम अुद्योग का काम शिथिल है। आज की परिस्थिति में काफी कठिन भी है। थोडे से पैसे करोडों गरीबों को मिलें अिससे अुनका पेट नहीं भर सकता। हम अुनको अिन अुद्योगों के द्वारा पेटभर रोजी देना चाहते हैं। अिस अुद्देश से यह काम चलाया जाता है।

संचालकों के दिल में यह श्रद्धा है कि हिन्दुस्तान का अुद्धार ग्रामों के अुद्धार से ही होगा और ग्राम का अुद्धार होगा देहाती अुद्योग-धंधो के अुद्धार से। बडे बडे यंत्रों से नहीं। ग्रामों के अुन्हीं पुराने अुद्योगों में

सुधार करके हम गरीबों की झोपडियों में करोडों रुपये पहुंचा सकेंगे।

आपको ग्राम अुद्योग संघ का रूप चरखा संघ के मुकाबले में बहुत छोटा-सा लगेगा। अुसका काम भी बहुत थोडा दीखेगा। अिसका कारण है। चरखा संघ अब कअी साल पुरानी संस्था हो गयी। अुसके काम का ढंग ठीक-से बैठ गया। अिसके सिवाय चरखा संघ को जो सफलता मिली अुसका अेक कारण यह भी है कि वहां अेक ही अुद्योग से मतलब है। लेकिन ग्रामों में तो अितने बहुतसे अुद्योग पडे हैं। ग्राम अुद्योग संघ में अिसीलिअे अनेक प्रवृत्तियां हैं। चरखा संघ के काम में विशारद बनना अिसके मुकाबले में आसान है। यहां अनेक विशारदों की जरूरत होगी। जो शास्त्रीय ढंग से अिन धंधों का विकास कर सकेंगे अैसे अनेक विशारद हमारी युनिव्हर्सिटियों में से आने चाहिअे। आज हमें अैसे विशारद नहीं मिलते। अिसलिअे काम की वृद्धि करना कठिन है। देहातों में जो तेली, बढअी वगैरह पडे हुअे हैं अुन्हींमें से विशारद पैदा करने पडते हैं। कॉलेज, हाईस्कूलों में से नहीं आते। जब तक हमारे पास बुद्धिमान घानी-विशारद, कागज-विशारद, गुड-विशारद नहीं होंगे और वे विशारद होने के साथ साथ ्राम अुद्योगों के अनन्य भक्त भी न होंगे तब तक बडे पैमा े पर सफलता नहीं मिलेगी।

अब मैं यही चीज़ अहिंसा की वृत्ति के साथ मिला देना चाहता हूं। देखने में तो यह प्रवृत्ति नीरस है। पर धीरज रक्खें तो परिणाम में सरस है। जो गांधी सेवा संघ में हैं वे अगर अपना ध्यान राज्यप्रकरण से खींच कर अिसमें लगा दें तो मैं खुश हो जाअूंगा। आप लोग अूपर अूपर से यह देखकर खुश होंगे कि वर्किंग कमिटी में सब गांधीवादी ही गांधीवादी हैं। लेकिन मैं खुश नहीं हूं। हमारी तो जिम्मेवारी बढ़ गयी है। हमारे सिर पर और भी बोझ लद गया है। अिस में खुश होने की क्या बात है? कल राजेन्द्र बाबू सुना रहे थे कि हमारे आदमियों के ही कारण ज्यादा परेशानी होती है। ज्यादा कष्ट सहन करना पडता है। गांधीवादी आपस में लडते हैं। चुनाव में अेक दूसरे के खिलाफ़ खडे होते हैं। यह तो पाखण्ड हुआ। यह तो पागलपन हुआ।

हम अिससे कैसे बच सकते हैं, यह हमारे सामने सवाल है। मेरा अुत्तर यह है कि यह चरखा संघ का काम पडा है, ग्राम अुद्योग संघ का काम पडा है, तालीमी संघ का काम पडा है, अिसमें जुट जाअिये तो सारा पाखण्ड मिट जायगा। अुन चुनावों को छोड कर यह काम करने से स्वराज्य जल्दी आयेगा। आज के राज्यप्रकरण में से हम स्वराज्य हासिल नहीं कर सकते। हमारे सामने हिंसा का पहाड़ खडा है। आज कअी लोग गांधी का नाम ले ले कर लडते हैं। यह कहता है मैं जाना चाहता हूं, वह कहता है मैं जाना चाहता हूं। अैसे लोग गांधीवाद को हँसी का विषय बनाते हैं। अगर आप अिन बातों से बचना चाहते हैं तो आपको राज्यप्रकरण में से निकल जाना चाहिअे। आपके लिअे ये प्रवृत्तियां पडी हैं। अिनमें पडने से अिन प्रवृत्तियों की ओर आपकी प्रगति जल्दी से हो सकती है।

मेरी राय में हिन्दू-मुसलमानों के वैमनस्य का निपटारा भी अिसीकी मदद से

हो सकता है। ग्राम-अुद्योगों का अुद्धार होने से करोडों देहातियों को पूरी मज़दूरी मिलेगी। यहां हिन्दू और मुसलमानों के हित में विरोध नहीं आता। राज्यप्रकरण में जो लडाअियां चलती हैं अुनसे दोनों बच जायेंगे। अिस श्रद्धा से अगर अिस अुद्योग संघ का संचालन होगा तो हम अपना काम कभी नहीं छोडेंगे। बल्कि चौबीसों घण्टे अुसे चलाते रहेंगे। अिसलिअे मैंने आपसे शुरू में कहा कि यह चीज़ देखने में छोटी-सी और निष्फल जान पडती है। लेकिन मैं तो अुस-में कोअी दोष नहीं देख सकता। मैं तो अुसमें कुशल ही कुशल देखता हूं।

भारतीय लोकशाही और गान्धीजी का नेतृत्व

[आचार्य शंकर दत्तात्रेय जावडेकर]

(आचार्य जावडेकरजी का परिचय 'सर्वोदय' के पाठकों को पहले दिया जा चुका है। प्रचलित राजनैतिक समस्याओं की वैज्ञानिक ढंग से गंभीर और सुस्पष्ट मीमांसा करने में आचार्य जावडेकरजी सिद्धहस्त हैं। अुनका यह लेख पाठकों को अुद्बोधक प्रतीत होगा।—सं.)

अेक दूसरे पर बेफायदा अिलजाम लगाने में कीमती वक्त बरबाद किया गया है; और हमें चाहिअे कि हम अपनी सारी ताकतें केवल महात्माजी की ही रहनुमाअी में पूरी पूरी पाबन्दी के साथ अिकट्ठी करें और यह जो बड़ा भारी मौका हमारे हाथ आया है अुस से फायदा अुठावें।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

('यू. पी.' को दिया हुआ वक्तव्य)

रॉयवाद की पूर्वपीठिका

अिनेगिने रॉयवादी लोगों के सिवा कॉंग्रेस के मौजूदा अुपपक्षों में से कोअी भी दल या गुट अैसा नहीं है जो गान्धीजी का अन्तिम नेतृत्व मान्य न करता हो। लेकिन (भूतपूर्व) राष्ट्राध्यक्ष बाबू सुभाषचन्द्र के चुनाव के बाद और चुनाव के समय, कुछ दिनों के लिअे भिन्न भिन्न कॉंग्रेसजनों में जो अेक गलत-फहमी का वातावरण पैदा हो गया अुससे लाभ अुठा कर भाअी रॉय और अुनके मुट्ठीभर अनुयायियों ने अपने मंतव्यों का जाल अिस आन्दोलित जल में बिछा कर अुसमें कितनी मछलियां फंसती हैं यह देखने की चेष्टा की। यह दल अीमानदारी से अैसा मानता है कि गांधीजी की अहिंसानिष्ठा भारतीय क्रान्ति में बाधक हो रही है। अिसलिअे भाअी रॉय का यह निश्चित मत हो गया है कि जबतक कॉंग्रेस का कर्णधारित्व गांधीजी से छीन न लिया जाय तबतक कॉंग्रेस क्रान्ति के कार्य को अंजाम नहीं दे सकेगी। फलतः, जेल से निकलने के थोडे ही दिन बाद अुन्होंने अपनी यह नीति निश्चित की कि गांधीजी का नेतृत्व छोड देना चाहिअे। अुन्होंने देखा कि हिन्दुस्थान के साम्यवादी और समाजवादी

अेक खास मतप्रणाली का आश्रय और प्रचार करने में अपनी सारी शक्ति का अपव्यय करते हैं और कॉंग्रेस की निन्दा कर अुसे कमजोर करने का प्रयत्न कर रहे हैं। फिर भी ये पक्ष भारतीय क्रान्तिकारकों में से अधिकांश को और सामान्य जनता को अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकते, यह देख कर अुन्होंने अिन पक्षों में शामिल होने की नीति का त्याग किया।

हमारी मुख्य समस्या

हिन्दुस्थान के सामने आज मुख्य समस्या समाजवाद की स्थापना की नहीं है, किन्तु संपूर्ण स्वाधीनता की है अैसा जनता का खयाल है और वही धारणा देश के अधिकांश अुग्र क्रान्तिकारकों की है यह वस्तुस्थिति देख कर अुन्होंनें निश्चय किया कि हमारी राजनीति का आधार समाजवादी आदर्शों के पुरस्कार के बदले अुग्र स्वातंत्र्यवाद ही होना चाहिअे। महात्मा गांधी का अहिंसावाद बहुतेरे अुग्र स्वातंत्र्यवादियों को दिल से नहीं जंचता। लेकिन अुन्हें समाजवादी ध्येय भी तो नहीं जंचता। अिसलिअे केवल समाजवाद के पुरस्कार के सहारे गांधीजी का नेतृत्व नष्ट करना असंभव है यह सचाअी भाअी रॉय ने बहुत जल्दी पहचान ली। और 'गो कि मैं मार्क्सवादी हूं तो भी कॉंग्रेस में जितने अुग्र दल हैं अुन सब को अेकत्र ला कर साम्राज्यशाही से बिना समझौता किये लगातार लडता रहूंगा,' यह नीति अुन्होंने घोषित की। 'अेक बार अगर साम्राज्यशाही नष्ट हो गयी तो अुसीके सहारे जीनेवाली सामंतशाही और पूंजीशाही को नेस्तनाबूद कर लोकशाही के ही नाम से हम अिस देश में मज़दूरशाही या श्रमिकशाही स्थापित कर सकते हैं। अुसके लिअे आज ही समाजवाद के बारे में अितनी ज़िद्द करने की जरूरत नहीं', अैसी अुनकी राय बनी। किसान और मज़दूरों का आक्रमणशील संगठन कर के अुससे अगर कॉंग्रेस की राजनीति प्रभावित की जाय और यदि अुग्र दल कॉंग्रेस को अपने काबू में कर ले तो हिन्दुस्थान में श्रमिकशाही स्थापित करने में देर नहीं लगेगी। "भारत की राष्ट्रीय लोकशाही जब ब्रिटिश साम्राज्यशाही का पेट चीर कर बाहर निकलेगी तो अुसका स्वाभाविक विकास अवश्य ही श्रमिकशाही में होगा। क्यों कि जब यहां वर्गविग्रह मच जायगा और वरिष्ठ वर्गों को ब्रिटिश साम्राज्य का सहारा न रहेगा तो किसान और मज़दूरों का, यानी अिनका नेतृत्व करनेवाले पक्ष का, राज्य आसानी से हो जायगा"; अैसी यह विचारधारा है।

क्रान्तिकारी दल

मतलब, किसान और मज़दूरों के अिस वर्ग को संगठित कर के अुसका वास्तविक हित दिखानेवाल अेक दल की जरूरत है। यही दल आजन्म क्रान्तिकारियों का दल होगा। अिस दल में अधिकतर कनिष्ठ-मध्यम श्रेणी के लोग रहेंगे। अिसलिअे कनिष्ठ-मध्यम वर्ग को वैज्ञानिक समाजवाद से परिचय कर लेना चाहिअे। अैसा अेक वैज्ञानिक समाजवादी क्रान्तिकारक दल, अुस दल का अेक असामान्य नेता और क्रान्तिकारक मज़दूर-किसान वर्ग, अितनी तैयारी होने पर क्रान्ति हो सकती है। परंतु सर्वसाधारण मज़दूर-किसान जनता के लिअे

वैज्ञानिक समाजवाद का ज्ञान बुद्धिद्वारा होने की आवश्यकता नहीं है। वह ज्ञान अुसे स्वानुभूति से ही प्राप्त होता है। अिसलिअे मुख्य कार्य अुसे क्रान्तिप्रवण बनाना ही है।

रॉयवाद की नीति

किसान और मजदूर जनता जब क्रान्ति-प्रवण हो जाती है तो अुसे समाजवाद की जरूरत अपने आप प्रतीत होने लगती है। यह आवश्यकता प्रतीत होने से पहले समाज-वादी घोषणा करने से कोअी फायदा नहीं। अिसी प्रकार वर्तमान बुद्धिजीवी वर्ग को भी समाजवादी घोषणाओं के झंडे के नीचे लाने का असामयिक प्रयत्न करना गलत है। आज तो अुसके सामने राष्ट्रीय लोकशाही की क्रान्ति-घोषणा ही रखनी चाहिअे। अिस क्रान्ति-घोषणा के झंडे के नीचे जब यह वर्ग आयेगा और साम्राज्यशाही नष्ट करने का प्रयत्न करने लगेगा तब जा कर अुसकी बुद्धि में समाजवाद के आकलन की शक्ति आयेगी। अतः, "पहले क्रान्ति-प्रेरणा जाग्रत करो, बाद में समाजवादी घोषणा करो, पहले स्वातंत्र्य-विरोधियों के खिलाफ घोषणा करो, और बाद में स्वातंत्र्य-विरोधी वर्गों की पहचान कराओ;" यह रॉय-नीति है।

"गांधीवाद का रोड़ा"

अिस नीति के रास्ते में गांधीवाद का रोड़ा पडा हुआ है। यह गांधीवाद ब्रिटिश साम्राज्य का राज्ययंत्र छिन्नभिन्न करने की भावना जाग्रत नहीं करता और न स्वातंत्र्य-विरोधी ताकतों का निःपात करने की ही भावना जाग्रत करता है। अुसकी अहिंसानिष्ठा शत्रु का निःपात करने का आदेश नहीं देती। वह तो शत्रु को अपने पक्ष में लाने को कहती है। 'शत्रु का नाश करो' अिस भावना के बदले 'शत्रु को स्वपक्षीय में बदल लो,' यह भावना अगर जनता के अन्दर घर कर ले तो क्रान्ति का कार्य कभी सफल नहीं होगा। अिसलिअे लोगों को पहले यह समझ लेना चाहिअे कि गांधीवाद क्रांतिकारक नहीं है और यह ज्ञान जनता को कराने के लिअे महात्मा गांधी के विभूतिमत्व के अिन्द्रजाल में से जनता को सर्वप्रथम मुक्त करना चाहिअे। मतलब यह कि भारतीय क्रान्तिकारियों के सामने पहला सवाल यह है कि जनता को महात्मा गांधी के अहिंसावाद की मोहनिद्रा से कैसे जगाया जाय? बात-बात में गांधीजी का मुँह ताकने की जनता को यह जो बुरी आदत लग गयी है अुसे पहले छुडाना चाहिअे। यह आदत नष्ट होने पर दूसरे तत्त्वज्ञान और नेताओं की ओर देखने की आदत अुसे होगी। जब यह आदत होगी तभी अुसे मार्क्सवाद या रॉयवाद का ज्ञान होगा। अिसलिअे "जनता को क्रान्तिकारक कैसे बनाया जाय, अुसकी आंख पर से अहिंसा-वाद का भ्रमपटल कैसे दूर किया जाय, और गांधीवाद का प्रतिक्रान्तिकारक स्वरूप अुसके दिल में कैसे बैठाया जाय, यह शास्त्र जिसे अवगत होगा, वही हिन्दुस्तान में समाजवादी क्रान्ति कर सकेगा," यह थोडे में भाअी रॉय का कथन है।

"क्या गांधीवाद क्रान्तिकारक है?"

अिस प्रश्न का अुत्तर देने से पहले, 'क्रान्ति' या 'क्रान्तिकारक' शब्द की

व्याख्या निश्चित कर लेनी चाहिअे। गांधीवाद निःशस्त्र क्रान्तिवाद है। अुसमें प्रतिपक्षी की हिंसा का भी समावेश नहीं होता। अर्थात् जिन लोगों का अैसा दृढ विश्वास है कि केवल सशस्त्र क्रान्ति ही क्रान्ति है और प्रतिपक्षी का खून बहाये बिना क्रान्ति हो ही नहीं सकती अुनकी दृष्टि में और अुनके अर्थ में गांधीवाद क्रान्तिकारक नहीं है यह स्पष्ट है। लेकिन यदि साम्राज्यशाही से छुटकारा पा कर राष्ट्रीय स्वातंत्र्य स्थापित करने का नाम ही क्रान्ति हो तो यह क्रान्ति गांधीवाद से हो सकती है अैसा काँग्रेस का और भारतीय जनता का निश्चित मत, कमसे कम आज तो, है। केवल बुद्धिवाद से अिस मत का खंडन करने की कोअी कितनी ही चेष्टा क्यों न करे तो भी जब तक क्रान्तिकारक कहलानेवाला कोअी भी नेता व्यवहार के क्षेत्र में पदार्पण करते ही सत्याग्रह से आगे बढ़कर राष्ट्र की प्रगति हो रही है यह सिद्ध नहीं कर सकता तब तक गांधीजी का नेतृत्व अटल है। जब तक कोअी यह सिद्ध न कर दे कि भारतवर्ष की स्वातंत्र्यप्राप्ति के लिअे सशस्त्र क्रान्ति करने के लिअे अनुकूल परिस्थिति है और अुसके सारे साधनों की सिद्धता है तब तक गांधीजी का नेतृत्व स्वातंत्र्य-प्राप्ति के मार्ग में विघ्नरूप है यह कहना फजूल की बकवास है।

क्रान्ति की कौनसी सामग्री प्रस्तुत है?

आज भाअी रॉय के पास क्रान्ति-कार्य के कौनसे साधन प्रस्तुत हैं? क्या अुनके पीछे अेक संगठित, प्रबल और युयुत्सु पक्ष सज्ज है? क्या अुस पक्ष ने मजदूर और किसान जनता का सहयोग प्राप्त कर लिया है? गत यूरोपीय महासमर के बाद जिस प्रकार ज़ारशाही नष्टभ्रष्ट हो गयी अुसी तरह अगले साल या अिसी साल ही ब्रिटिश साम्राज्यशाही पदभ्रष्ट हो जाये तो अुसके स्थान पर कब्जा कर अपनी राज्यसंस्था कायम करने की शक्ति क्या रॉयपक्ष आज रखता है? आज ब्रिटिश सार्वभौम सत्ता नष्ट हो जाये तो अुसका स्थान ग्रहण करने को गांधीजी के नेतृत्व में काम करनेवाली काँग्रेस ही समर्थ हो सकती है। अुसकी यह सामर्थ्य भौतिक नहीं बल्कि नैतिक है। पिछले महासमर के वक्त से आज तक बीस साल की अवधि में अनेक आन्दोलनों के जरिये और अनेक प्रकार के लोक-संगठन के द्वारा कअी देशभक्तों को देश भक्ति की दीक्षा दे कर गांधीजी ने काँग्रेस में यह सामर्थ्य अुत्पन्न की है। अिस नैतिक सामर्थ्य के आधार पर यद्यपि आज भी सब को यह विश्वास नहीं हुआ है कि हम आन्तर-बाह्य सारे शत्रुओं से अपनी रक्षा कर सकेंगे तथापि वह नैतिक बल अेक सुनियंत्रित राज्ययंत्र चलाने के लिअे काफी है। मतलब, आज जनता में यह विश्वास पैदा हो गया है कि अिस नैतिक बल के आधार पर हम देश में अंधाधुंधी नहीं होने देंगे और स्वराज्य-संचालन कर सकेंगे।

काँग्रेस के नैतिक बल का अधिष्ठान

अिस विश्वास का अधिष्ठान सत्याग्रह और सत्याग्रही तत्त्वज्ञान ही है यह नहीं भूलना चाहिअे। गांधीजी के पीछे आज अेक संगठित, निःशस्त्र क्रान्तिवादी, सत्याग्रही पक्ष है। अिस पक्ष ने जनता का विश्वास संपादन किया है। अुसे गांधीजी जैसा असामान्य नेता प्राप्त है। गांधीजी के लोकोत्तर

नेतृत्व में लोगों को विश्वास है। असका अनुभव ब्रिटिश राज्यकर्ताओं को कओी बार हुआ है। और सत्याग्रह के अनेक छोटे और बडे मोर्चों के द्वारा जनता को भी १९२० से अबतक निःशस्त्र क्रान्ति-संग्राम के संचालन का प्रत्यक्ष अनुभव हुआ है। सत्याग्रह-संग्राम अभी तक स्वातंत्र्यप्राप्ति में सफल भले ही न हुआ हो तो भी सत्याग्रह के जरिये हम अनेक छोटी छोटी लड़अियों में जीत सकते हैं, प्रचलित राज्ययंत्र को स्तंभित कर सकते हैं और प्रतिपक्षी को सन्मान-पूर्ण समझौता करने के लिअे विवश कर सकते हैं यह प्रत्यक्ष अनुभव जनता को हुआ है। अिन्हीं साधनों से प्रान्तिक स्वराज्य तक की मंजिल तय की और अिसी सत्याग्रह-शक्ति की धाक से आज कॉंग्रेस ने अैसी परिस्थिति निर्माण की है कि ब्रिटिश सत्ता प्रान्तीय स्वराज्य में हस्तक्षेप करने का अपना अधिकार काम में नहीं ला सकती।

रियासतों में सत्याग्रही-शक्ति का आविर्भाव

आज अिस सत्याग्रह-शक्ति का आविर्भाव रियासती स्वराज्य के क्षेत्र में होने लगा है। अुसके फलस्वरूप अगर प्रान्तिक स्वराज्य की तरह रियासती स्वराज्य भी प्रस्थापित हो जाये तो ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने संघ-शासन की जो जंजीर भारतीय जनता के पैरों में डालने का अिरादा किया है अुसे तोडने की शक्ति प्रान्तिक और रियासती प्रजा में पैदा होगी। अिस तरह प्रान्तिक स्वराज्य और रियासती स्वराज्य प्राप्त करने के बाद केन्द्रीय संघ-विधान तोड़ कर अुसकी जगह स्वतंत्र संघ-स्वराज्य स्थापित करने की सामर्थ्य भारतीय जनता में आयेगी यह बात हर किसी की समझ में आ सकती है। अिसके अलावा कॉंग्रेस जैसा अेक राष्ट्र-व्यापी प्रचंड संगठन सत्याग्रह के बल पर सारे प्रान्तिक राज्यों और देशी राज्यों पर कब्जा कर ले और केन्द्रीय सत्ता को भी किश्त दे दे तो ब्रिटिश साम्राज्य हिन्दुस्थान का आन्तर्राष्ट्रीय राज्यव्यवहार और संरक्षण भी अनियंत्रितरूप से नहीं कर सकता। ये व्यवहार चलाने के लिअे अुसे लोकमत का आश्रय लेना ही होगा और यह आश्रय सत्याग्रही कॉंग्रेस को संतुष्ट किअे बिना नहीं मिल सकता यह बात ब्रिटिश लोग भी समझ गये हैं। अिसका यह भी अर्थ है कि यदि सत्याग्रही कॉंग्रेस में फूट पैदा हो जाये, या वह सत्याग्रह का त्याग कर दे, और अुसके पीछे दूसरी कोओी भी अधिक प्रभावशाली शक्ति न रहे, तो अलबत्ता ब्रिटिश लोगों को कॉंग्रेस से समझौता करने की या अुसे संतुष्ट रखने की गर्ज नहीं रहेगी। आज सत्याग्रही शक्ति से कोओी दूसरी अधिक प्रभावशाली शक्ति रॉयपक्ष निर्माण नहीं कर सकता यह स्पष्ट है। अैसी हालत में जनता प्रकाश में से अंधकार में कूदने की मूर्खता क्यों करे? अथवा वह अैसा करेगी यह आशा भी कोओी क्यों करे?

कॉंग्रेस और सन्मानपूर्ण समझौता

कॉंग्रेस सत्याग्रही संस्था है और क्रान्तिकारक होते हुअे भी ब्रिटिश राष्ट्र से अिज्जत के साथ समझौता करने के लिअे वह हमेशा तैयार है यह पढ़ कर कुछ लोगों को आश्चर्य

होता है। कॉंग्रेस ब्रिटिश राष्ट्र से सन्मानपूर्ण समझौता कर सकती है यह सुनते ही कुछ लोग अुसका यह मतलब लगाते हैं कि कॉंग्रेस साम्राज्यशाही की शरण लेगी और स्वातंत्र्य को धोखा देगी। लेकिन अैसा अर्थ करना कॉंग्रेस की नीति और प्रस्तावों के विषय में पूर्ण अज्ञान प्रकट करने के, या अुनका अेकदम विपर्यास करने के बराबर है। गांधीजी ने दूसरी गोलमेज परिषद में और अुसके बाद के कॉंग्रेस के हर अेक अधिवेशन में यह निःसंदिग्ध शब्दों मे घोषित किया है कि जबतक हिन्दुस्तान का स्वतंत्रता और स्वयंनिर्णय का अधिकार प्रस्थापित न होगा और संरक्षण तथा परराष्ट्रीय राजनीति के रूप में स्वतंत्रता का जौहर जबतक अुसके हाथ न आयेगा, तबतक कॉंग्रेस ब्रिटिश लोगों से कोअी भी समझौता नहीं कर सकती। मतलब, स्वातंत्र्य और स्वयंनिर्णय के अधिष्ठान को छोड़ कर, तथा स्वतंत्रता के जौहर के बिना, अगर कोअी समझौता हुआ तो वह सन्मानपूर्ण नहीं हो सकता, यह तो अन्धा भी देख सकता है। अैसे मानहानिपूर्ण समझौते को गांधीजी अनुमति देंगे यह जनता कभी नहीं मान सकती। कम से कम जब तक यह बात प्रत्यक्ष बन न आवे तब तक लोग अिस कथन को अुतना ही मूर्खतापूर्ण मानेंगे जितना कि किसी का यह कहना कि सूर्योदय पश्चिम में होगा। अतः अैसे मत का पुरस्कार या प्रचार कर के कोअी जनता के सामने अपने आपको हास्यास्पद न बनावे। हम यह अिस डर से नहीं कहते कि अुन लोगों के अैसा करने से गांधीजी की नैतिक प्रतिष्ठा घटेगी; बल्कि अिसलिअे कि जो नेता अपने अन्दर नेतृत्व के गुण होने का दम भरते हैं अुनके अुन गुणों का नाश न हो और वे जनता की हंसी के पात्र न बनें।

रॉयवाद की मोटी गलती

आज गांधीवाद को स्थानभ्रष्ट करने का प्रयत्न रॉयवाद कर रहा है। लेकिन हमारी समझ में अुसका यह प्रयत्न सफल नहीं होगा। कारण यह है कि हमारी समझ में, रॉय-वादियों को गांधीवाद के स्वरूप का यथार्थ आकलन ही नहीं हुआ है। रॉयवाद अैसा समझ बैठा है कि गांधीवाद यूरोपीय राष्ट्र-वाद के समान केवल राष्ट्रवादी है; और अिसलिअे अन्त में जिस प्रकार हिटलर का नाज़ी तत्त्वज्ञान पूंजीशाही और साम्राज्यशाही के तत्त्वज्ञान में रूपान्तरित हो गया वही हाल गांधीवाद का भी होगा; और वह ब्रिटिश साम्राज्य का मददगार बन जायगा। यूरोपीय अितिहास की अैनक में से भारतीय राज-कारण की ओर देखने की भूल के कारण यह भ्रम हुआ है। जबतक रॉयवादियों के ध्यान में यह न आयेगा कि हिन्दुस्थान में फॅसिज़्म और कम्युनिज़्म दोनों से भिन्न अेक सत्याग्रही तत्त्वज्ञान गांधीवाद के रूप में जन्म ले रहा है, तबतक अुन्हें गांधीवाद का यथार्थ ज्ञान नहीं होगा। और जबतक गांधीवाद का यथार्थ ज्ञान नहीं होगा तबतक रॉयवाद, या दूसरा कोअी भी वाद, भारतीय राजनीति पर अपना प्रभुत्व या प्रभाव जमा नहीं सकेगा। सामाजिक तत्त्वज्ञान में फॅसिज़्म और कम्युनिज़्म के अलावा दूसरी भी अनेक चीजें हैं और अुन सब को अिन्हीं दो खानों में ठूंसने का प्रयत्न कदापि सफल नहीं हो सकता।

गांधीवाद का द्विविध दर्शन

(१) सत्याग्रही राष्ट्रवाद— अिसका यह मतलब नहीं है कि गांधीवाद ही सत्याग्रही

तत्त्वज्ञान का अन्तिम स्वरूप है, अथवा भारत को गांधीवाद से आगे बढना ही नहीं पडेगा। गांधीवाद सत्याग्रही तत्त्वज्ञान का अेक रूप-विशेष है। और जिस खास परिस्थिति में भारत में सत्याग्रही तत्त्वज्ञान का अुदय हुआ अुस परिस्थिति के ढांचे में वह ढला हुआ है। अिसलिअे वह अेक खास आकार का बन गया है। अिस खास आकार से सत्याग्रह का स्वरूप अधिक व्यापक अतअेव भिन्न है यह गांधीजी जानते हैं। लेकिन गांधीवादी नाम से पहचाने जानेवाले सभी नहीं जानते। गांधीवाद सत्याग्रही तत्त्वज्ञान की राष्ट्रवादी शक्ल है। भरतखंड ब्रिटिश साम्राज्य की गुलामी से छुटकारा पाने की कोशिश कर रहा है। अुस प्रयत्न में सहायता देने के निमित्त सत्याग्रह का अवतार हुआ। अिसलिअे अुसकी सूरत राष्ट्रवादी होना अनिवार्य ही था। जब अुसका यह नियोजित कार्य पूरा हो जायेगा तब अुसे अपने अिस आकार का त्याग करके भिन्न आकार का भिन्न स्वरूप लेना होगा अिसमें सन्देह नहीं। बल्कि हम तो अिसके विषय में भी शंका नहीं कि स्वतंत्र भारत में अुसे जो स्वरूप प्राप्त होगा वह समाजवादी होगा। परंतु हमारा यह मन्तव्य है कि भारतीय राष्ट्रवाद जिस तरह सत्याग्रही बन गया है अुसी तरह भारतीय समाजवाद भी सत्याग्रही ही बन कर रहेगा।

(२) **सत्याग्रही समाजवाद**—दरअसल सत्याग्रह न तो समाजवाद है और न राष्ट्रवाद है। वह अिन दोनों से परे है। आज जिस प्रकार अुसे राष्ट्रवादी स्वरूप प्राप्त हुआ है अुसी प्रकार शीघ्र ही अुसे समाजवादी स्वरूप भी प्राप्त होगा यह हम कहना चाहते हैं। भारतीय राष्ट्रवाद और भारतीय समाजवाद दोनों अेक ही सत्याग्रही तत्त्वज्ञान के बाह्य रूप होने के कारण भारतीय समाजवाद की स्थापना गांधीवाद के विरोध में से नहीं होगी। अुसकी कोख में से ही समाजवाद का अविर्भाव होगा, बल्कि हो रहा है। या यों कहिये कि हो ही गया है। रूस से लाया हुआ समाजवाद भारतमाता की गोद में बैठाने का आग्रह फजूल जायगा। क्योंकि अुसीकी कोख में से सत्याग्रही समाजवाद का जन्म हो रहा है, बल्कि हो गया है। गांधीवाद की ओर सौतेले भाअी की दृष्टि से देखने की अुसे जरूरत नहीं है और यह भविष्यवाणी कि गांधीवाद की छाया में भारतीय समाजवाद का पौधा पनप नहीं पायेगा गलत साबित होनेवाली है। अुसका विकास पूर्ण होकर जब वह कार्यक्षम बन जायेगा तो आज का गांधीवाद भी कृतार्थ होगा और अगले कार्य की धुरा सत्याग्रही समाजवाद के कंधों पर रख कर वह स्वयंप्रेरणा से निवृत्त हो जायगा।

स्वराज्य-सोपान की अन्तिम सीढी

रॉयवादियों की समझ में यह भाषा आती ही नहीं, और अगर आती है तो अुसका अर्थ अुनके गले नहीं अुतरता। अिसकी वजह यह है कि गांधीवाद का जन्म जिस भारतीय संस्कृति से हुआ है और जिस सत्याग्रही तत्त्वज्ञान का वह विशिष्ट आकार है अुस भारतीय संस्कृति से, तथा सत्याग्रही तत्त्वज्ञान से अुसने परिचय प्राप्त नहीं किया है। अिसलिअे गांधीवाद का कुंदा रास्ते से अुठा कर फेंक देने के अव्यवहार्य अुद्योग में वह लगा हुआ है। अिस कुंदे

को हटाने के लिअे वह चाहे जिस मत के चाहे जैसे लोगों की मदद ले रहा है। जो जो गांधीवाद के विरोधी हैं वे सब अुसके सहायक हैं अैसी नीति अुसने अखतियार की है। और गांधीवाद या गांधीदल से असंतुष्ट हजारी-बजारियों को अिकट्ठा कर के अिस विघ्न को हटाने के लिअे वह सब को पाचारण कर रहा है। दोनों भुजायें अुठा कर सतत आक्रंदन जारी है। लेकिन फिर भी जो कोअी आता है वह अिस पत्थर को रास्ते से हटाने के बदले अुसी पर आरूढ हो जाता है। क्योंकि वह पत्थर दर असल पत्थर नहीं है। वह तो अुस जीने की सबसे अूपरवाली सीढी है जो स्वातंत्र्य-मन्दिर को ले जाता है। भारत-माता की स्वातंत्र्ययात्रा अब पूरी होने को है और गांधीवाद जल्दी ही अुसकी स्वातंत्र्यमन्दिर में प्राणप्रतिष्ठा कर कृत-कृत्य होनेवाला है। अिस स्वातंत्र्यमन्दिर की सजधज करने में भारतीय समाजवाद का कौशल्य प्रकट होगा और वह कौशल्य अुसे सत्याग्रहयोग के द्वारा ही प्राप्त होगा।

शत्रु के निःपात का क्या अर्थ है?

रॉयवाद या मार्क्सवाद शत्रु का निःपात करना चाहता है और गांधीवाद शत्रु के पक्ष से समझौता करना चाहता है यह अुन दोनों का तात्त्विक भेद कुछ लोग बतलाते हैं। लेकिन हमारी राय में भेद व्यक्त करने की यह भाषा अुपयुक्त नहीं है। सच तो यह है कि रॉयवाद शत्रु का निःपात करने का जितना अिच्छुक है अुतना ही गांधीवाद भी है। लेकिन 'शत्रु' शब्द का क्या मतलब है और अुसका निःपात किस तरह किया जावे अिस सम्बन्ध में अिन दोनों वादों में असली मत-भेद है। हमारा वर्तमान शत्रु ब्रिटिश साम्राज्य-वाद है और अुसका निःपात करना जिस प्रकार रॉयवाद का साध्य है अुसी प्रकार गांधीवाद का भी है। अन्तर अितना ही है कि अगर ब्रिटिश राष्ट्र साम्राज्यशाही का त्याग कर दे तो अुससे मित्रता करने के लिअे गांधीवाद तैयार है। क्योंकि जिसने साम्राज्यशाही का त्याग कर दिया है अैसे ब्रिटिश राष्ट्र को अपना शत्रु मानना केवल भ्रम मात्र है। जिस क्षण ब्रिटिश लोगों की साम्राज्यवादी वृत्ति का नाश होगा अुसी क्षण हमारे शत्रु का नाश हुआ अैसा मान-कर अुस राष्ट्र से मित्रता करने के लिअे सत्याग्रही भारत तत्पर रहेगा। आज साम्राज्य-शाही से सहयोग और ब्रिटिश राज्य से सहयोग अेकरूप देख पडता है। लेकिन यह दृष्टि बिलकुल स्थूल, मोटी, या अशास्त्रीय है। वैज्ञानिक दृष्टि से निरीक्षण करने पर ब्रिटिश राज्य और ब्रिटिश साम्राज्यशाही का अन्तर विशद हो सकता है। अिस भेद पर ध्यान दे कर ही ब्रिटिश साम्राज्यशाही से लडनेवाला गांधीवाद ब्रिटिश राष्ट्र से मित्रता करने की भाषा बोला करता है। यह भाषा समझ में न आने के कारण ही गांधीजी आखिर साम्राज्यशाही से सुलह करेंगे अैसा रॉयवादी कहते होंगे, या वे जानबूझ कर गांधीवाद का अिस तरह विपर्यास करते होंगे। लेकिन वे अैसा विपर्यास चाहे जानबूझ कर करें या अनजाने करें, तो भी भारतीय जनता अब गांधीजी के मंतव्यों का अर्थ ठीक-से समझ गयी है। अिसलिअे अिस कथन से अब अुसकी धारणा गांधीवाद के प्रतिकूल नहीं हो सकती।

गांधीवाद और सामन्तशाही

सम्राज्यशाही के सहारे ही यहां की सामन्त-शाही जीवित है और हिन्दुस्थान की महा-

जनशाही का भी आधार ब्रिटिश साम्राज्य ही है यह तत्त्व गांधीवाद ने भलीभांती जान लिया है। अिसीलिअे अुसका आज का मुख्य निशाना ब्रिटिश साम्राज्यशाही ही है। अिस साम्राज्यशाही को आज गांधीवाद ने खूब अच्छी तरह किश्त दे दी है और अुसमें से छूटने के लिअे अब वह संघशासन की नयी चाल चलना चाहती है; कि अितने में अुसको काटने के लिअे गांधीजी ने रियासती स्वराज्य का सवाल जोरों से हाथ में ले लिया है। अिस संबंध में साम्राज्यशाही की स्थिति आज बहुत ही अनुकम्पनीय है। गांधीवाद पर मात करने के लिअे वह देशी नरेशों से मित्रता कर संघ-शासन की प्राण-प्रतिष्ठा करना चाहती थी। लेकिन अब रियासती प्रजा में अपूर्व जागृति हो गयी है, देशी नरेशों के पैरों के नीचे से धरती खिसक रही है और अुनका मकान डँवाडोल हो रहा है। रियासती प्रजा का आन्दोलन न तो बखूबी कुचला जा सकता है, न अुसकी अुपेक्षा ही की जा सकती है, अैसी हालत में देशी नरेशों का प्रभुत्व जल्द ही नष्ट होगा अैसे चिन्ह दिखायी देने लगे हैं। संघ-शासन का व्यूह फोडने का काम रियासती प्रजा का सत्याग्रह आज कर रहा है। देशी नरेशों की मदद से संघशासन और साम्राज्य-शाही बलवान होगी यह आशा पूर्ण होने से पहले ही प्रान्तीय प्रजा और रियासती प्रजा की संयुक्त राजनीति का संगठन होगा। साम्राज्यशाही तथा संघशासन को नष्ट करने पर तुली हुअी गांधीवादी नीति ही चारों ओर जोर पकड रही है। हिन्दी सामन्तशाही से गांधीवाद सहयोग करेगा यह रॉयवाद का खयाल आज अनुभव से ही गलत साबित हो रहा है। गांधीवाद ने हिदुस्थानी सामन्तशाही को सफल किश्त दी है यह हम देख रहे हैं। रियासती प्रजा ने सत्याग्रह की दीक्षा लेना ठान लिया है। अिसलिअे गांधीवादी राजनीति का प्रभाव और भी बढ़ रहा है। भारतीय जनता का यह विश्वास हो गया है कि ब्रिटिश साम्राज्यशाही का ही नहीं, बल्कि सामन्तशाही का प्रतिकार करने के लिअे भी हमारे लिअे सत्याग्रह ही अेकमात्र साधन हो सकता है।

जमींदार-और-महाजन-शाही

देशी नरेशों के समान प्रान्तीय क्षेत्र में जमींदार वर्ग को भी सत्याग्रही काँग्रेस ने किश्त लगा दी है। और काँग्रेसी सरकारों के खिलाफ साम्राज्य प्रतिनिधि के पास अपील करने की अुनकी प्रतिगामी नीति सफल नहीं हो सकती यह अनुभव भी भिन्न भिन्न प्रान्तों के जमींदारों को होने लगा है। यही हाल पूंजीशाही का भी होगा। भारतीय लोकशाही को यूरोप के समान महाजनशाही का रूप देने का प्रयत्न अगर यहां की पूंजीशाही करेगी तो सत्याग्रही भारतीय जनता और सत्याग्रही काँग्रेस अुसका यह प्रयत्न कभी सफल नहीं होने देगी। अिस प्रकार भारतीय लोकशाही सत्याग्रही लोकशक्ति से सुसज्जित हो कर प्रबल हो रही है। वह जल्दी ही सामन्तशाही का निःपात करेगी और सामन्तशाही तथा महा-जनशाही को राष्ट्रीय शक्ति के सामने झुकने के लिअे मजबूर करेगी और अुनपर अपना प्रभुत्व प्रस्थापित करेगी। जब हिन्दुस्थान की सार्वभौम सत्ता ब्रिटिश साम्राज्यशाही के हाथों से राष्ट्रीय लोकशाही के हाथ में आ जायेगी

तो लोकशाही पर मात करने की और हिन्दी राष्ट्रवाद को फॅसिज़म अर्थात पूंजीवादी लश्करशाही का रूप देने की नीति अपने आप लुप्त हो जायेगी। यह नीति लुप्त होने के बाद सत्याग्रही राष्ट्रवाद को सत्याग्रही समाजवाद में परिणत होते देर नहीं लगेगी।

गांधीवाद और फॅसिज़म

हिन्दुस्थान की प्रचलित राजनीति राष्ट्रवादी है। अिसीलिअे कअी लोगों को अुसका बाह्य स्वरूप यूरोपीय राष्ट्रवाद की तरह पूंजीशाही के समान, या पूंजीवादी लश्करशाही के जैसा प्रतीत होता है। लेकिन यूरोपीय राष्ट्रवाद वास्तविक राष्ट्रवाद नहीं है। वह तो अुसका पूंजीवाद और साम्राज्यवाद ने बनाया हुआ विकृत रूप है। भारतीय राष्ट्रवाद यूरोपीय साम्राज्यशाही के प्रतिकार में से अुत्पन्न हुआ है। अिसलिअे अुस विकृत रूप से बिलकुल भिन्न है। अपरिग्रह और अहिंसा पर अधिष्ठित भारतीय राष्ट्रवाद तथा परिग्रह और हिंसा को ही अपना धर्म समझने वाले यूरोपीय राष्ट्रवाद को अेक ही श्रेणी में रखना अेवं हिटलरशाही से गांधीवाद की तुलना करना हमारी राय में अवषम्य अविवेक है। सत्य की खोज और संस्थापना के लिअे आत्मबलिदान करनेवाले सत्याग्रही अथवा प्रायोपवेशन कर के आत्मतेज के प्रकाश से सब को अपने अपने कर्तव्यों का दर्शन कराने की चेष्टा करने वाले गांधीजी की जो लोग नाजीदल या हिटलर से तुलना करते हैं अुनकी बुद्धि भ्रष्ट नहीं हुअी है यह कहना मानों अपनी ही अक्ल बिगड गयी है यह मंजूर करने के बराबर है।

राष्ट्रवाद और व्यक्तिवाद का सुन्दर संयोग

भारतीय राष्ट्रवाद ने लोकशाही को अपना अवलम्ब बनाया है। अिसीलिअे लोकशाही में जिस व्यक्तिस्वातंत्र्य का समावेश होता है वह भारतीय राष्ट्रवाद में भी अन्तर्भूत है। हिन्दुस्थान में राष्ट्रीयत्व और लोकशाही के बीच विरोध निर्माण होने के बदले अुनका सुन्दर संयोग हुआ है। यूरोप में राष्ट्रीयत्व और लोकशाही के बीच विरोध पैदा हो गया है। फलतः, यूरोपीय राष्ट्रवाद ने या तो—जैसा कि हम अिटाली और जर्मनी में देखते हैं—लोकशाही को तिलांजली दे दी है; या अुसे महाजनशाही का विकृत रूप दे दिया है—जैसा कि हम अिंग्लैंड और फरान्स में देखते हैं। यह देख कर ही गांधीजी ने भारतीय लोकशाही को सत्याग्रह पर, याने अपरिग्रह तथा अहिंसा के अधिष्ठान पर, रख कर बडी चतुराअी से अिस विकृति से बचाया है। यूरोपीय लोकशाही का जन्म व्यक्तिवाद से हुआ। परंतु अिस व्यक्तिवाद ने हिंसा तथा परिग्रह का आश्रय किया अिसलिअे यूरोपीय लोकशाही को धनिकशाही का रूप प्राप्त हुआ और वहां का राष्ट्रवाद साम्राज्यशाही में बदल गया। भारतीय राष्ट्रवाद ने तो सत्याग्रह की दीक्षा ली है। अिसलिअे अुसके अन्तर्गत व्यक्ति-स्वातंत्र्य को भी अहिंसा और अपरिग्रह की मर्यादा में ही रहना होगा। अिस प्रकार अहिंसा और अपरिग्रह की मर्यादाओं के कारण भारतवर्ष में राष्ट्रवाद और व्यक्तिवाद का समन्वय हुआ है और अुसकी राष्ट्रीय भावना को लोकशाही का शुद्ध स्वरूप प्राप्त हुआ है। अहिंसा और अपरिग्रह की अिसी मर्यादा की बदौलत हिन्दुस्थान की राष्ट्रीय लोक-

शाही का रूपान्तर समाजसत्ताक लोकशाही में अवश्य होगा।

पूंजीवादी लश्करशाही का जन्म

यूरोप में जिस प्रकार राष्ट्रीयत्व और लोकशाही के बीच विरोध पैदा हुआ अुसी प्रकार वहां राष्ट्रीयत्व और समाजसत्ता में भी विरोध निर्माण हुआ है। मार्क्स ने अपने वैज्ञानिक समाजवाद की नींव हिंसात्मक वर्गयुद्ध पर डाली है। अिसलिअे यूरोपीय समाजसत्तावाद राष्ट्रीयत्व और लोकशाही का निरंतर विरोधी रहा। गहराअी से विचार करने पर यह नहीं कहा जा सकता कि मार्क्स ने सभी देशों में और सभी परिस्थितियों में हिंसात्मक क्रान्ति का ही प्रतिपादन किया है। कार्लमार्क्स ने यह भी कहा है कि जिस देश में राष्ट्रीयता को लोकशाही का रूप प्राप्त हो गया हो अुस देश में शान्तिमय अुपायों से समाजसत्ता स्थापित होना बिलकुल संभवनीय है। किन्तु मार्क्स का जन्म जर्मनी में हुआ जहां राष्ट्रीय लोकशाही नहीं थी। अिसलिअे अुस का हिंसात्मक वर्गयुद्ध के सिद्धान्त पर खास जोर देना स्वाभाविक ही था। आगे चल कर लेनिन ने हिंसात्मक क्रान्तिवाद ही यथार्थ में वैज्ञानिक क्रान्तिवाद है अैसा समीकरण ही बना दिया। और यह प्रतिपादन किया कि मार्क्स ने अहिंसा में क्रान्ति के जिन अपवादभूत क्षेत्रों का अुल्लेख किया है वे साम्राज्यशाही और लश्करशाही की बाढ में लुप्त हो गये हैं, अिसलिअे सर्वत्र हिंसात्मक वर्गयुद्ध की नीति ही अुपयुक्त है। रूस की राज्यक्रान्ति के बाद हिंसात्मक वर्गयुद्ध ही वैज्ञानिक समाजवाद का अेक मात्र क्रान्तिमार्ग माना गया। और अिस क्रान्तिमार्ग पर चलनेवाला अेक अेक पक्ष प्रत्येक युरोपीय देश में पैदा हुआ। अिस हिंसात्मक वर्गयुद्ध के डर से यूरोप में राष्ट्रवाद के नाम से पूंजीवादी लश्करशाही पैदा हुअी। अिस पूंजीवादी लश्करशाही को ही कहीं नाजीज़म और कहीं फॅसीज़म के नाम से लोग पहचानने लगे। अिस पूंजीवादी राष्ट्रीय लश्करशाही ने व्यक्तिवाद, लोकसत्तावाद और समाजसत्तावाद अिन सभी का निःपात करने की आसुरी नीति अखत्यार की है।

व्यक्तिवाद, राष्ट्रवाद और समाजवाद का समन्वय

यूरोप के अिस अितिहास से हमें अगर कोअी सबक सीखना चाहिअे तो वह यह है कि राष्ट्रीयत्व और लोकशाही की रक्षा के लिअे सामाजिक अथवा राजनैतिक क्रान्ति करते हुअे हिंसात्मक वर्गयुद्ध का आश्रय हरगिज नहीं करना चाहिअे। हिंसात्मक वर्गयुद्ध टालने का तथा सामाजिक और राजनैतिक क्रान्ति करने का अेक मात्र प्रशस्त अुपाय सत्याग्रह ही है यह गांधीवाद ने साबित कर दिया है। अगर भारतीय समाजवाद अपने कार्य का प्रारंभ अिसी मार्ग को स्वीकार कर करे तो अिस देश में समाजवाद का लोकसत्ता या राष्ट्रीयता से विरोध कदापि नहीं आयेगा। अुल्टे, सत्याग्रह तथा लोकसत्ता के सहारे राष्ट्रीय लोकशाही की परिसमाप्ति समाजसत्ताक लोकशाही में करना भारतवर्ष के लिअे बिलकुल संभव है। अिस प्रकार भारत का राष्ट्रवाद सत्याग्रह का आश्रय ले कर व्यक्तिवाद और समाजवाद का समन्वय भी सिद्ध करेगा और कम्युनिस्ट पक्ष जिसे अपरिहार्य समझता है

वह अनियंत्रित श्रमिकशाही और हिंसात्मक वर्गयुद्ध बिलकुल परिहार्य हैं और टल सकते हैं यह भी साबित करेगा। लेकिन व्यक्तिवाद, राष्ट्रवाद और समाजवाद का समन्वय चरितार्थ करने के लिअे भरतखण्ड को सत्याग्रह में दृढ़ निष्ठा रखनी चाहिअे। अुसकी यह निष्ठा पक्की करने के लिअे गांधीवाद को ब्रिटिश साम्राज्यशाही का निःपात कर भारत को राष्ट्रीय स्वातंत्र्य और स्वयंनिर्णय के अधिकार प्राप्त करा देना चहिअे। हमारा राष्ट्रीय स्वातंत्र्य गांधीवाद ही प्राप्त करा सकता है अैसी श्रद्धा भारतीय जनता में आज जाग्रत है, अिसीलिअे त्रिपुरी में गांधीजी का नेतृत्व मान्य रखनेवाला प्रस्ताव अितने बडे बहुमत से स्वीकृत हुआ।

भारतीय लोकशाही और गांधीजी का नेतृत्व

गांधीजी का नेतृत्व ही लोकशाही के लिअे पोषक किस कार है यह तात्त्विक दृष्टि से सिद्ध करने का प्रयत्न यहां तक किया। मार्क्स और लेनिन के वैज्ञानिक समाजवाद में से अगर हिंसात्मक वर्गयुद्ध का जन्म हो तो लोकशाही का अन्त हो जाता है यह बात सर्वमान्य है। हिंसात्मक क्रान्ति लोकशाही की विनाशक है। अिसीलिअे आज कअी समाजवादियों को अहिंसात्मक क्रान्ति का मार्ग ही श्रेयस्कर प्रतीत हो रहा है। भरतखण्ड में अबतक राष्ट्रीयता और लोकसत्ता की भावनाओं ने जड़ नहीं पकडी है। और कम्युनिस्ट क्रान्ति सफल करने की ताकत यहां के साम्यवादी पक्ष में आज तो नहीं है। अैसी परिस्थिति में सारे देश में अन्धाधुंधी का बाजार गर्म हो जाये तो बेबन्दशाही और आराजकता में सारा राष्ट्र निमग्न हो जायगा और अुसे अुबारने की ताकत किसी में नहीं रहेगी। अिस परिस्थिति पर गौर करने से गांधीजी का सत्याग्रही नेतृत्व छोड देने का प्रयत्न कितना अनर्थकारी सिद्ध होगा अिसका ठीक खयाल आ सकता है। सत्याग्रह के अवलम्ब के बिना लोकशाही टिक ही नहीं सकती यह जो समझ लेंगे अुन्हें गांधीजी का नेतृत्व लोकसत्ता-विरोधी है अिस मंतव्य की भ्रामकता और खोखलापन समझने में देर नहीं लगेगी। रॉयवाद अूपर अूपर से लोकशाही का दम कितना ही क्यों न भरता हो वह सत्याग्रही न होने से लोकशाही की रक्षा करने में सदा असमर्थ रहेगा। जिन्होंने सत्याग्रही क्रान्तितंत्र की निःसंकोचभाव से दीक्षा ले ली है वे जवाहरलालजी खुद को लोकसत्तावादी, व्यक्तिवादी और समाजवादी कहलाते हैं यह सिद्धान्त की दृष्टि से यथायोग्य ही है। क्योंकि सत्याग्रही राजनीति के ही द्वारा व्यतिवाद, लोकसत्तावाद और समाजवाद का समन्वय चरितार्थ हो सकता है। अतः जो लोग भारतीय लोकशाही का भविष्य सुरक्षित रखना चाहते हैं और भारतीय राष्ट्रीयत्व का पूर्ण विकास देखना चाहते हैं अुन्हें जवाहरलालजी की तरह गांधीजी के नेतृत्व का ही समर्थन करना चाहिअे। अिसी नीति में राष्ट्रीय लोकशाही की प्राप्ति और परिणति का आश्वासन है। राष्ट्रीय लोकसत्ता को समाजवादी लोकसत्ता का रूप देने की संभावना भी अिसी नीति में सन्निहित है। अिसीलिअे भारतीय राष्ट्रवाद और भारतीय समाजवाद को गांधीजी के नेतृत्व की आवश्यकता है।

[मअी १९३९ के मराठी 'चित्रमय जगत्' से]

बालमित्र गिजुभाअी

[काका कालेलकर]

गुजरात के शक्तिशाली शिक्षाशास्त्रियों में से अेक तेजस्वी तारा टूट गया है। आज असंख्य कुटुम्बों में पारिवारिक शोक छा गया है। खेल-खूद में मस्त और फूलों के जैसा आनन्द देनेवाले बालकों की आखों में से आज दुःखाश्रु के स्त्रोत बह रहे हैं। बडी बडी मूछोंवाले अुनके प्यारे गिजुभाअी के देहान्त का समाचार आज घर घर पहुंचा है। गिजुभाअी देह छोडने पर भी कितने जीवित हैं अिसका सबूत आज मिल रहा है।

जब मैं १९२२ के आसपास सब से पहले दक्षिणामूर्ति में गया तब श्री नानाभाअी भट से भी अधिक गिजुभाअी के साथ मेरी घनिष्टता बढी। पूर्व आफ्रिका में जा कर विकालत का धंधा करनेवाले गिजुभाअी को यह स्फूर्ति हुअी कि यह मेरा क्षेत्र नहीं है। मुझे तो स्वदेश जा कर शिक्षा का ही काम करना चाहिअे। अुन दिनों वें गुजरात में मशहूर नहीं थे। नजदीक के मित्रों में भी अुनका नाम था गिरजाशंकर भगवानजी बधेका। मैंने ही सबसे पहले जाहिरा तौर पर अुनका 'गिजुभाअी' नाम चलाया और अपनी रिपोर्ट में मैंने यह राय दी कि गिजुभाअी अेक स्वयंभू शिक्षक हैं। अुसके बाद बहुत दिनों तक हमारा यही रिवाज रहा कि गिजुभाअी जो कोअी किताब लिखें, मुझे ही अुसकी प्रस्तावना लिखनी चाहिअे। बच्चों को कहानियां सुनाने का अपना अेक निजी ढंग गिजूभाअी ने चलाया और वे बाल-कथा के विधाता और बालकों के मित्र बन गये। अुन्होंने भावनगर शहर में अेक बाल-मन्दिर खोला। शिक्षणालय के साथ 'मन्दिर' शब्द जोड देने से सब को बडा आनन्द हुआ। गिजुभाअी का अुत्साह देख कर भावनगरवासी मेरे मित्र हीरालाल शाह ने पचीस हजार रुपया खर्च कर के भावनगर के पास ही अेक टेकडी पर बाल-मन्दिर बनवा दिया और गिजुभाअी ने अपने अुपास्य दैवत बालकों की पूजा और भक्ति वहां पर प्रारंभ की। थोडे ही दिनों में श्रीमती ताराबहन मोडक गिजुभाअी के कार्य में शरीक हुअीं। शिक्षा-शास्त्र में, शिक्षण-विषयक प्रश्नों पर चर्चा करने में और बालकों को संस्कारी बनाने की निपुणता में ताराबहन मोडक गिजुभाअी से किसी कदर भी कम नहीं थी। दोनों ने मिल कर बाल-शिक्षा में अेक नये युग का प्रारंभ किया। जब गिजुभाअी का और मेरा प्रथम परिचय हुआ तब वे मुझसे कहते थे कि अगर आपके साथ मेरा परिचय कुछ दिन पहले हो जाता तो मैं दक्षिणामूर्ति में आता ही नहीं, आप ही के पास आ जाता। किन्तु अब तो दक्षिणामूर्ति के हाथ बिक गया हूं। वे ही गिजुभाअी अब बालमन्दिर के अतिरिक्त दक्षिणामूर्ति का विचार करना भी स्वधर्म का त्याग समझने लगे। गिजुभाअी ने बालमन्दिर चलाया। अुसके साथ साथ अेक "शिक्षण पत्रिका" चलायी और अेक आध्यापन मन्दिर भी चलाया। अुस अध्यापन-मन्दिर से अनेक माँ-बाप और शिक्षक बाल-शिक्षा की तालीम पा कर गुजरात में फैले हुअे हैं। गिजुभाअी के बालमन्दिर की

वंशज संस्थायें गुजरात में जगह जगह पैदा हुअी हैं और अिन सब ने मिशनरी के अुत्साह से बालशिक्षा का अेक नया तंत्र गुजरात भर में फैलाया है। अपनी "शिक्षण पत्रिका" का हिन्दी संस्करण अिन्दौर से छपवा कर गिजुभाअी ने गुजरात से बाहर भी अपना सन्देश फैलाया है।

गिजुभाअी को मैंने स्वयंभू शिक्षाशास्त्री जाहिर तो किया। किन्तु अुन्होंने थोडे ही दिनों में अपनी निष्ठा बाल-माता ब्रह्मचारिणी मॉंटेसोरी को अर्पण की और अन्त तक अुनकी वही निष्ठा कायम रही। शिक्षा के पैगंबर होने का अुनका अधिकार था; अुसे छोड़ कर वे आचार्य बने और आचार्य की हैसियत से अुन्होंने अपना जीवनकार्य पूरा किया।

"शिक्षण पत्रिका" के द्वारा तारावहन के साथ गिजुभाअी ने बालकों के शिक्षकों को, माँ-बाप को और प्रौढ़ बालकों को भी लगातार कअी वर्षों तक जो नसीहत दी है अुनके अुस कार्य का स्मरण तमाम गुजरात की जनता को बहुत दीर्घ काल तक रहेगा। गुजरात की अेक या दो पुश्तें गिजुभाअी के प्रभाव में बढी हैं।

गिजुभाअी के मन में गांधीजी के प्रति भक्ति थी। अुन्होंने खादी धारण की वह अन्त तक कायम रक्खी। गांधीजी के आश्रम के प्रति अुनके मन में आदर था। किन्तु आश्रम के आदर्श के साथ, आश्रमी जीवन के साथ अुनकी सहानुभूति बहुत कम थी। बालस्वातंत्र्य की और व्यक्तिस्वातंत्र्य की अुनकी कल्पना कुछ भिन्न थी। अपने कार्य की लगन में खानपान और जीवन की नियमितता की अुन्हें लगन नहीं थी। अिसीलिअे अीश्वर का दिया हुआ सुदृढ शरीर अुन्होंने कमजोर कर डाला। और निसर्ग ने अुनकी लापर्वाही का बदला ले लिया।

शिक्षा में गिजुभाअी जितने क्रान्तिकारी थे अुतने कौटुम्बिक और सार्वजनिक जीवन में वे क्रान्तिकारक नहीं थे। अपनी सारी तेजस्विता शिक्षा के क्षेत्र में अुन्होंने खपा दी। अिसीलिअे शायद अन्य क्षेत्रों के लिअे अुनके पास वही तेजस्विता रही नहीं।

गुजरात ने अुनके जीते-जी अुनके कार्य की काफी कद्र की है। किन्तु अुनकी शक्ति और प्रतिभा की कद्र गुजरात से भी अधिक की श्री नानाभाअी भट ने। गिजुभाअी जो कुछ मांगते थे वह नानाभाअी अुन्हें दे देते थे। गिजुभाअी स्वयं कहते थे, "धन लाने का काम नानाभाअी का है। अुसे बिना सोचे अुडा देने का काम हमारा है। नानाभाअी मानों कुटुम्ब-संस्थापक हैं और हम तो बडे बाप के बेटे हैं।" गिजुभाअी का आत्मविश्वास जबरदस्त था। आगे चल कर वे अपनी और अपने कार्य की कद्र करना भी सीख गये थे। गिजुभाअी का बाल-मन्दिर, अुनका अध्यापनमन्दिर, अुनका शिष्यवृन्द, यह गिजुभाअी की चतुर्विध सृष्टि थी। अिनमें से भी गिजुभाअी का शिष्यवृन्द ही गिजुभाअी की गुजरात को और शिक्षाकार्य को बडी देन है। मेरी अेक छोटीसी सिफारिश है कि गिजुभाअी के देहान्त के अुपलक्ष्य में अुनके सब शिष्यों को और बाल-मन्दिरों के प्रतिनिधियों को किसी अच्छे स्थान पर अिकट्ठा हो कर बाल-शिक्षकों का अेक बन्धुमण्डल स्थापित करना चाहिअे और गिजुभाअी का कार्य आगे बढाना चाहिअे। गिजुभाअी के कार्य में सुधार हो

ही नहीं सकता अैसा समझ कर अुनके अक्षरों की अगर वे पूजा करने लगेंगे तो वह बुद-परस्ती होगी, श्राद्ध नहीं होगा। गिजुभाअी से जो प्रेरणा अुन्हें मिली है अुसमें अपना अनुभव मिला कर अुन्हें शिक्षा की ज्योत अखण्ड रखनी चाहिअे।

शिक्षासाहित्य में गिजुभाअी की सेवा कम नहीं है। वे बिलकुल सादी और असरकारक शैली लिखते थे। शब्दों को नये नये रूप दे कर भाषाशक्ति को बढ़ाने में अुन्हें दिलचस्पी थी। अक्षरज्ञान के प्रचार के लिअे भी अुनमें काफी अुत्साह था। अपने अेक कार्य का अखण्ड आजीवन ध्यान कर के वे बालशिक्षा के आद्य आचार्य बन गये। दक्षिणामूर्ति, बाल-मन्दिर, अध्यापन-मन्दिर, बालसाहित्य और शिक्षणपत्रिका, अितनी चीजें गिजुभाअी छोड गये हैं। जिसकी जैसी शक्ति हो अुसके अनुसार वह अेक अेक विभाग को सम्हालने के लिअे तैयार हो जाये।

गिजुभाअी के परिवार को और अुनके प्रोत्साहक मित्र नानाभाअी को हम क्या आश्वासन दे सकते हैं? जो कुछ सत्कार्य अुन्होंने किया है अुसका नाश तो कभी होनेवाला है ही नहीं।

२३-६-'३९

अुस विचार के लोग कहते हैं, "हम तो हिंसा और अहिंसा दोनों में विश्वास करते हैं। क्योंकि कभी हिंसा से कार्य-सिद्धि होती है और कभी अहिंसा से। हम अहिंसा का अवलंब अिस लिअे करते हैं कि विशेष परिस्थिति में वही सबसे अधिक अुपयोगी मालूम होती है"। लेकिन मेरे लिअे तो साध्य और साधन पर्याय-वाची संज्ञायें हैं। अिसीलिअे जबतक हमारा अुद्दिष्ट साध्य प्राप्त नहीं होता तबतक तो अहिंसा और सत्य ही साध्य हैं। लेकिन राजकोट में मैंने साधन-शुद्धि नहीं संभाली। मैं अपनी ही तराजू में तौला गया और ओछा पाया गया। लेकिन अिससे कोअी हानि नहीं हुअी। क्योंकि मैंने अपनी गलती महसूस करते ही तुरन्त सुधार ली। मेरी शरणागति दुर्बलता का परिणाम नहीं थी। वह सम्पूर्ण शक्ति से किया हुआ आत्मसमर्पण था। वह अहिंसा से अुत्पन्न हुआ था। अहिंसा तो मेरे लिअे दुर्बलों का नहीं, बल्कि वीरश्रेष्ठ का शस्त्र है। मैं समाज में कायरों को अुत्तेजन देने का अपराध कदापि नहीं करूंगा, और न लोगों को अपनी दुर्बलता अहिंसा के आवरण से ढांकने दूंगा।

'हरिजन',
२४:६:'३९

गांधीजी

सर्वोदय की दृष्टि

बारिश के दिन आगये !

बारिश के दिन आगये ! अब आकाश के देव बादलों की पिछौरी ओढ़ कर के चातुर्मास्य में अधिकतर सोने का ही काम करेंगे। जैसे हम कभी कभी रात को नींद से जाग्रत हो कर तारों को देखते हैं (अगर खुले में सोते हों तो) वैसे ही ये आकाश के देव भी कभी कभी रात को अपनी पिछौरी हटा कर हमारा हाल कैसा है यह देख लेते हैं। लेकिन कोअी भी पंचाग या पवनशास्त्री कह नहीं सकता कि यह देवदर्शन अिन दिनों किस रात्रि को और कब होगा।

किन्तु 'देवों का काव्य' चार महीने के लिअे बन्द हो गया अिस लिअे कुदरत की शायरी बन्द थोडे ही हुअी है ? बादलों को ही ले लीजिये। मेघ-विद्या कम महत्त्व की नहीं है। अुसमें जानने की चीजें भी बहुत हैं और कल्पनाविहार के लिअे भी काफी गुंजाअिश है। अिन दिनों सुबह शाम के बादल क्या आनन्द के पुंज होते हैं। प्रकृति के दरबार का वैभव व्यक्त करने का काम अुन्हींका है। अुषा और संध्या दोनों अपने आनन्द में मस्त रहती हैं और रोज रोज नया नया विलास दिखाती हैं। जो चित्रकार हैं अुन्हें अिन रंगो की प्रतिकृति बना कर संग्रहीत करनी चाहिअे, जो कवि हैं अुन्हें बादलों के विलास पर कवितायें लिख कर हमारा शब्द-विलास अुनसे कम नहीं है यह सिद्ध करना चाहिअे, और जो केवल स्वानंद-मग्न मूक रसिक हैं अुन्हें सुबह और शाम अिन देवियों का दर्शन करके अपने हृदय को आनन्द-भोज खिला कर परिपुष्ट करना चाहिअे। मेघों को देख कर अिन्द्रधनुष्य का अुपासक अकेला मयूर ही मत्त क्यों हो ? हर अेक मनुष्य का यह अधिकार है कि यह बिनामूल्य मिलने वाला दैवी आनन्द सुबह शाम को प्रार्थना के साथ हजम करे।

बारिश के दिन आगये हैं। जहां जहां मेह बरसता है वहां वहां अपने बच्चों को ले जा कर जमीन कहां कितनी अूंची है, पानी कहां से कैसा बहता है, पहाड़ और टीलों पर से मिट्टी कैसी बह जाती है और पानी अुच्च और नीच का भेद दूर करने के लिअे कैसी कोशिश करता है—यह सब अुन्हें बताना मां-बाप का धर्म है। अिस खेल में केवल बचपन का ही आनन्द है अैसा नहीं। अगर लड़के बचपन में ही पानी के बहाव का अध्ययन करेंगे तो हिन्दुस्थान के लिअे अत्यंत आवश्यक अैसी राष्ट्रीय विद्या—यानी भगीरथ विद्या—नदी नहरों को काबू में लाने की विद्या—का वे प्रारंभ करेंगे। हिन्दुस्थान जितना देव—मातृक देश है अुतनाही नदी—मातृक है। पर्जन्य-विद्या और भगीरथ-विद्या दोनों हमारी राष्ट्रीय विद्यायें हैं। जब सच्चे राष्ट्रीय विद्यापीठों की स्थापना होगी तब बडे बडे वरुणाचार्य और भागीरथाचार्य हमारे देश में निर्माण होंगे और दूसरे देशों के लोग हिन्दुस्तान में आ कर यहां से भगीरथ-विद्या और पर्जन्य-विद्या सीख जायेंगे।

बारिश के दिन आगये ! वनस्पतिसृष्टि और कीटसृष्टि की समृद्धि अभी देखनी चाहिअे। वनस्पति-विद्या और कीट-विद्या

अगर बढानी है तो देश के नवयुवकों में बचपन से ही अिन बातों में दिलचस्पी पैदा करनी चाहिअे। लाल मखमल ओढे हुअे अिन्द्रगोप से ले कर "जादू की टॉर्च" साथ रखनेवाले जुगनू तक सब कीटों के आकार, रंग, अुनका स्वभाव, अुनका आहार, अुनका कार्य, अिन बातों का निरीक्षण करना चाहिअे। हिन्दुस्थान की वनस्पतियों का तो पूछना ही क्या है? शारदा और अन्नपूर्णा, शाकंबरी और जगद्धात्री सब देवियों का स्मरण कर के वनस्पतिविद्या का भी अिन दिनों प्रारंभ करना चाहिअे।

२३:६:३९. का. का.

राजकोट पर्व

चौरीचौरा के अत्याचार के दिनों में लोग गांधीजी से कहते थ कि "काँग्रेसी अगर कोअी अत्याचार करें तो बेशक आप अुसके लिअे प्रायश्चित्त करें। किन्तु जो लोग काँग्रेस में नहीं हैं और जिन्होंने आपकी अहिंसा का स्वीकार नहीं किया है वे अगर अत्याचार कर बैठें तो अुसके लिअे आप अपने को जिम्मेवार क्यों मानते हैं?" अुस समय गांधीजी बार बार कहा करते थे कि "काँग्रेस का दावा सारे देश की प्रतिनिधि होने का है। जो लोग काँग्रेस का छत्र कबूल नहीं करते अुनके सिर पर भी काँग्रेस का छत्र तो है ही। भले और बुरे सभी हिन्दुस्थानियों के हित का खयाल काँग्रेस को रखना है। जब हिन्दुस्थान को स्वराज्य मिलेगा तब वह केवल काँग्रेसवालों को नहीं मिलेगा, सारे भारत को मिलेगा। अिसलिअे भारत के किसी भी पक्ष के लोगों के दोष के लिअे काँग्रेस को प्रायश्चित्त करना ही चाहिअे"।

जिनका हृदय कम से कम हिन्दुस्थान के जितना विशाल हुआ है वे ही गांधीजी की दलील का रहस्य समझ सकते थे। अत्याचारी लोगों ने काँग्रेस का स्वीकार न किया हो तो भी क्या हुआ? काँग्रेस ने थोडे ही अुनका बहिष्कार किया है?

काँग्रेस ने जब अैसी सर्व-समन्वय-कारी दृष्टि रक्खी, पृथ्वी और आकाश के जैसी अुदारता रक्खी, तभी काँग्रेस को सारे भारत की तरफ से बोलने का अधिकार प्राप्त हुआ।

जब से काँग्रेस ने अधिकार-ग्रहण किया है तब से वह अेक सार्वभौम सत्ता होते हुअे भी चन्द लोग अुसे अेक पक्ष की प्रतिनिधि मानने लगे हैं। और काँग्रेसवाले भी कभी कभी अुनके चकमे में आ कर अपने को अेक पक्ष के तौर पर मान लेते हैं।

जहां पक्षभिमान आ गया वहां परस्पर विरोध भी आ गया। यह आपस का विरोध आत्महत्या का रास्ता है। अिस रास्ते काँग्रेस की शक्ति देखते देखते क्षीण हो रही है। अिसलिअे हमें अपना रुख बदलना चाहिअे।

जब समुद्रमंथन हुआ तब जितने छोटे मोटे रत्न निकले वे सब देवों ने ले लिये। महादेव शंकर ने अपने लिअे केवल हलाहल ही रख छोडा। सत्याग्रह के बाद जब छोटीसी स्वायत्तता मिल गयी तब गांधीजी ने अधिकार-ग्रहण द्वारा वह छोटा रत्न स्वराज्य पार्टी को सौंप दिया और अुस पार्टी को अपनाया। अिस पार्टी ने भी अधिकार हाथ में आते ही अन्य पार्टियों के लोगों को अपने दल में आने दिया और अुनको भी अधिकार के अंशभागी बनाया।

अिसी तरह हमें सब आन्तरिक विरोध

दूर करना चाहिअे और देश की तमाम शक्ति स्वराज्यप्राप्ति की ओर लगानी चाहिअे । राजकोट में गांधीजी ने देख लिया कि मुसलमान, भायात और देशी रांजा, सब काँग्रेस का विरोध कर रहे हैं और काँग्रेस को अपनी शक्ति अंतःकलह में ही खपानी पडती है । तब अुन्होंने अुदार हृदय की नीति का आविष्कार किया और सब को साथ ले कर चलने का और अधिकार त्याग कर के प्रेम का साम्राज्य बढ़ाने का रास्ता ले लिया ।

जब जब नये अधिकार हमें मिलेंगे तब तब हमें यही करना होगा । "जो मिला वह सब को बांट दिया और अपने लिअे केवल कष्ट ही रक्खा", अिसी रास्ते साम्य-योग सिद्ध होगा । अगर हम वर्ग-विग्रह शुरू करेंगे और घर में ही लडते रहेंगे तो स्वराज्य का नाश करते तीन दिन भी नहीं लगेंगे । सचमुच राजकोट प्रकरण से स्वराज्य की तपस्या में अेक नये अध्याय का प्रारंभ होता है । अेक नये अृतु का अवतार होता है ।

२३ : ६ : ३९ का. का.

चूड़ा और भूंसी का किस्सा

दो आदमी थे । अेक के पास चूड़ा था और दूसरे के पास भूंसी । भूंसीवाले ने चूडे वाले से कहा "देखो तुम्हारे पास जो चूड़ा है वह बहुत कम है । अिससे तुम्हारा पेट नहीं भरेगा । मेरे पास देखो, कितनी भूंसी है ? हम दोनों को मिलायेंगे । वह मिश्रण आधा आधा बाँट लेंगे । मेरी भूंसी तुम्हारे चूडे से कअी गुनी अधिक है । तो भी मैं आधे आधे पर राजी हूं । फंक फूंक कर खायेंगे" । चूडेवाला लोभ में फंस गया । सोचा अितनी भूंसी चूडे में मिलने से माल तो अेकदम बढ़ जायगा और बाद में मुट्ठी भर भर के फांक सकेंगे" ।

किस्सा पूरा सुनाने की जरूरत नहीं । अन्त में क्या हुआ यह वाचक खुद समझ लेंगे ।

आधा आधा बँटवारा होने के बाद अेक ने हाथ में चूड़ा-भूंसी ले कर फूंक फूंक कर खाना शुरू किया । भूंसी अुड गयी और थोडासा चूड़ा पेट में गया । दूसरे ने मुट्ठी मुट्ठी चूड़ा-भूंसी मुंह में डाल कर चबाना शुरू किया । मुंहभर खाने का आनन्द तो अुसे मिल गया । किन्तु बेचारा भूंसी चबाता जाता है और 'थू थू' कर के थूकता जाता है । थूकते थूकते भूंसे के साथ चूड़ा भी कुछ कुछ थूका गया और जो चूड़ा पेट में गया अुससे पूरा आनन्द भी नहीं मिला ।

संख्या अथवा मात्रा बढाने के लोभ से जब हम साधनशुद्धि की ओर से लापर्वाह रहते हैं तब अैसा ही होता है । आन्दोलन राष्ट्र-व्यापी बनाने के लिअे हम भले बुरे और मध्यम सब तरह के लोगों को अिकट्ठा करते हैं, बडा आन्दोलन करते हैं, राजसी प्रवृत्ति की कमाल कर डालते हैं, किन्तु जब अन्त में देखते हैं कि फल कितना पाया तब अनुभव होता है कि अगर साधनशुद्धि का आग्रह शुरू से रक्खा होता जो जितना लाभ होता अुतना भी लाभ अिस विशाल आन्दोलन से नहीं हुआ है और जो आन्तरिक नुकसान हुआ है अुसका तो हिसाब ही कौन लगा सकता है ?

कर्म का सिद्धान्त अटल है । जितना डालेंगे अुतना ही मिलेगा । अनाचार के साथ जितना समझौता करेंगे अुतना ही कटु फल

भुगतना पडेगा। चूड़ा और भूंसी मिलाने से तनिक भी लाभ नहीं है।

२३:६:३९ का० का०

शराब-बन्दी

शराब-बन्दी अेक तरह से देखा जाय तो कलियुग में सत्ययुग की स्थापना करने के अुद्योग जैसा काम है। अितना कठिन और अितना पवित्र! अगर हम हिदुस्थान में सफलतापूर्वक शराब-बन्दी कर सके तो सचमुच मनुष्य की धर्मबुद्धि पर मनुष्य का विश्वास बढेगा।

अेक समय था जब मनुष्य मनुष्य का मांस भी खाता था। बडे कठिन प्रयास के बाद ही मनुष्य नरमांस-भक्षण छोड़ सका। अिसी तरह चन्द लोगों ने और ज़ातियों ने मांसाहार का भी पूर्णरूप से त्याग कर संस्कृति को आगे बढाया। कामविकार के स्वच्छंद विहार को रोक कर पतिपत्नी-निष्ठा का पवित्र संबंध स्थापित कर के भी मनुष्य-जीवन मनुष्य ने गहरा और सुवासिक बनाया। चन्द लोगों ने ब्रह्मचर्य का आदर्श अपने सामने रख कर मनुष्य-शक्ति का विकास अमर्याद है यह सिद्ध कर दिखाया। अब शराब, अफीम, आदि मादक पदार्थों का त्याग कर के मनुष्य सत्ययुग में प्रवेश करना चाहता है। यह सत्ययुग का काम है। राष्ट्र की धर्मबुद्धि अेकत्रित हुअी अिसीलिअे यह काम करने की कॉंग्रेस-सरकार ने हिम्मत की है। अब जनता का यह पवित्र कर्तव्य है कि अिसमें जी जान से सरकार की मदद करे। केवल सरकारी कर्मचारियों को यह काम सौंपा गया तो हमें अिसमें सफलता नहीं मिलेगी। राजसत्ता और जनता की धर्मबुद्धि दोनों की शक्ति जब अेकत्रित होगी तभी शराब रूपी राक्षस का नाश होगा। जहां जहां शराबबन्दी का प्रयोग चलता हो वहां वहां पर जनता को अपने अपने मुहल्ले में मजबूत कमिटियां बना कर के शराबबन्दी में दिलोजान से मदद करनी चाहिअे और सार्वजनिक व्याख्यान के साथ ही शराबखोरों के घरों पर जा कर भी अुन्हें समझाना चाहिअे। दुनिया के सामने हिन्दुस्थान की परीक्षा हो रही है। यदि हिन्दुस्थान कामयाब हुआ तो संभव है कि और देश भी अिस दिशा में प्रयत्न करेंगे। कम से कम अिस्लामी दुनिया भी कमर कस कर शराब को नेस्तनाबूद करने की कोशिश करेगी। क्योंकि शराब को नेस्तनाबूद कर के ही मुसलमान यह सिद्ध कर सकेंगे कि अुनके मन में अिस्लाम ज़िन्दा है। बहुत ही शुभ अवसर पर यह पवित्र काम शुरू हुआ है।

२३:६:३९ का. का.

उद्योग बनाम यंत्रवाद

जब गांधीजी ने १९०९ के अन्त में 'हिन्द स्वराज्य' लिखा तब मशीनरी के बारे में लिखते अुन्होंने कहा था कि, "यह बात आपको अनोखी तो लगेगी, लेकिन यह कहना मेरा फ़र्ज़ है कि हिन्दुस्थान में मिलें बढाने की बनिस्बत आज भी मैंचेस्टर को दाम दे कर अुसका सड़ा हुआ कपड़ा काम में लाना ज्यादा अच्छा है। क्योंकि अुसका कपड़ा काम में लाने से हमारे केवल पैसे ही जायँगे; जब कि हिन्दुस्थान में मैंचेस्टर बनाने से हमारा पैसा तो हिन्दुस्थान में रहेगा, पर वह हमारा खून लेगा, क्योंकि हमारे चरित्र को वह नष्ट कर देगा। अि०"

बाद में जब हिन्दुस्थान में खादी के साथ साथ स्वदेशी का आन्दोलन चला तब गांधीजी ने जाहिर किया कि अुनके अिस अभिप्राय में कुछ परिवर्तन हुआ है। मैंचेस्टर का कपड़ा लेने की अपेक्षा हिन्दुस्थान की मिलों का कपड़ा लेना अच्छा है।

मशीनरी के बारे में भी गांधीजी ने कहा है कि "शुद्ध आदर्श की दृष्टि से चरखा भी अेक मशीन है और यह शरीर भी अेक सूक्ष्म मशीन है। अगर वे मोक्ष के रास्ते में रुकावट डालें तो अुनका भी त्याग करना होगा।" मनुष्य के विकास को न रोकनेवाले 'मशीन' अगर स्वराज्य सरकार के द्वारा चलाये जायँ तो गांधीजी अुनका विरोध नहीं करेंगे। लेकिन यह तो ध्यानपूर्वक देखेंगे सही कि अैसे मशीन मनुष्य के हित के हैं या नहीं।

जब से अमेरिका ने पांच पांच वर्ष की योजना बना कर अुसे सिद्ध कर दिखाया है तब से हमारे देश में भी पंचवर्षीय और दशवर्षीय योजनाओं की हवा बह रही है। और अब तो "नैशनल प्लैनिंग" के लिअे अेक कमिटी भी बैठी है। अिस कमिटी में चन्द दिनों के पहले अेक महत्त्व का संवाद हुआ। संवाद क्या वह अेक हलकी-सी झड़पा-झड़पी ही थी। श्री कुमारप्पा ने कहा कि काँग्रेस अिस सिद्धान्त के साथ बंधी हुअी है कि हमें केवल ग्राम अुद्योगों का, 'हाथ-कारीगरी' का ही विकास करना है। कल-कारखानों की योजना में हम हाथ डाल ही नहीं सकते। अिसके जवाब में जवाहरलालजी ने कहा कि 'गांधीजी का ग्रामअुद्योग के प्रति जो पक्षपात है सो मैं जानता हूं। गांधीजी के ख्यालात मशीनरी के विरुद्ध हैं यह भी मैं जानता हूं। किन्तु काँग्रेस ने स्वदेशी कल-कारखाने न खोलने का कभी निश्चय किया हो यह बात तो मेरी समझ से परे है'।

देश में बिड़ला, बजाज, दालमिया, आदि लोग कल-कारखाने खोल ही रहे हैं। सरकार का धर्म है कि अैसे स्वदेशी कारखानों की वह मदद करे। अगर प्रान्तों में और केन्द्र में हमारे पास पूरी सत्ता होती तो हम अिन कारखानदारों की अवश्य काफी मदद करते। तो फिर हम राज्य की तरफ से चलाये हुअे समाज-सत्तात्मक कल-कारखानों का प्रबन्ध आज से क्यों न करें?

मुख्य बात यही है कि देश का प्राण "हाथ-करीगरी" से चलनेवाले ग्रामअुद्योगों के अन्दर समाया हुआ है। अिसलिये राष्ट्र के पास जो कुछ शक्ति है वह प्रथम ग्राम-अुद्योगों का 'जीर्णोद्धार' करने में ही लगानी चाहिअे। बह कार्य जब पूरा होगा तब जा कर हम समाजसत्ता के अधीन चलाये जानेवाले कलकारखानों की बात सोच सकेंगे। अगर अैसे कुछ कल-कार-खाने खोलने पडे कि जिनकी हस्ती ग्राम-अुद्योगों के लिअे मददरूप है तो अुनका विचार शायद हमें जल्दी ही करना होगा। किन्तु आज राष्ट्र की सारी शक्ति ग्राम-अुद्योग में ही लगा देना आवश्यक है। ग्राम के लोगों में जब चैतन्य प्रकट होगा तभी स्वराज्य मिलानेवाला है।

२३ : ६ : ३९ का० का०

ग्राहकों से निवेदन

अगले अंक से 'सर्वोदय' अपनी आयु के दूसरे वर्ष में पग रक्खेगा।
ग्राहकों से निवेदन है कि वे अपना अपना चंदा ता० १
अगस्त १९३९ से पहले भेजने की कृपा करें।
शेष ग्राहकों के पास व्ही. पी. भेजी जायेगी।
जो अगले साल ग्राहक रहना नहीं
चाहते वे समय रहते अित्तला
देने की कृपा करें।

व्यवस्थापक,
'सर्वोदय' कार्यालय

विषय सूची

[अगस्त १९३८ से जुलाई १९३९ तक]

(नोटः- लकीर के ऊपरवाला अंक 'सर्वोदय' के अंक का निदर्शक है और नीचेवाला पृष्ठ का)

अ

अध्यक्षीय भाषण ११/१
अनुशासन-दण्ड का प्रयोग ५/९
अहिंसा और आर्थिक संकट ४/१
अहिंसात्मक आत्मरक्षा ३/१
—प्रतिकार २/१५
—समाजवाद ३/२०

आ

आरण्यक भाइयों से ६/१७

उ

उपसंहार ११/४८
उपासना २/२४

ए

एकता-'वादी' किन्तु विविधता-'परायण' १०/२२

क

कॉंग्रेस से बुराइयां कैसे दूर करें? २/२८
किसान और मालगुजारों को हितबोध ७/२०
कौए की नज़र से ५/१३; ६/१३; ७/१७; ८/७; ९/१०; १०/७; ११/५०; १२/९

ख

खादी और गांधी की लडाई २/१

ग

गांधीजी के पत्र १/५; २/१७; ३/४५; ६/३२
—— और नारी-जागरण ३/१६
—— का अभिभाषण ११/१३
—— से परिप्रश्न ११/२४; १२/१
—— दस्तंदाजी क्यों करते हैं? ११/५२
गांधीवाद और समाजवाद २/७
—— और समाजवाद का मौलिक भेद २/१८
गांधी सेवा संघ १/६
ग्रामउद्योग संघ १२/३४
ग्रामसेवक के अनुभव ८/१४; ९/१३
गोवा की एक झांकी १०/१

ज

जीवन-सेवक या साहित्य-सेवक? ८/३९

त

तीन सहयात्रियों का विछोह २/४५
त्रिवेणी १/२४

द

देवों का काव्य ४/२६; ५/३२; ६/२९; ७/४७; ८/४५
देशधर्म १०/१९
देहातियों के लिए पेटभर मज़दूरी ९/१७
दो आखें ९/४७
दो वृत्तियां ७/५

ध

धर्मान्तर २/५

न

नयी तालीम का रहस्य १२/३१
निर्दोष दान और श्रेष्ठ कला का प्रतीक—खादी ३/३८

प

पहली झांकी २/१२
प्रत्यय २/१६
प्रश्नोत्तरी ६/४३; ८/४६;
पाश्चात्य देशों की बेकारी का एक मात्र अक्सीर इलाज-गांधी मार्ग ५/१८

ब

बालमित्र गिजुभाई १२/४८

भ

भगवति स्वतंत्रते ७/४९
भारतीय लोकशाही और गांधीजी का नेतृत्व १२/३६

संस्कृति क्या है ? १०/२७
भाषा में क्लिष्टता ८/९

म

'मारफत', 'और' या 'की' ४/६
मेरी रसीली पुस्तकें ७/३०
में महारोगियों की सेवा में कैसे लगा? ५/२४

य

यतिधर्म और क्रान्तिशास्त्र ८/१

र

राष्ट्रभाषा की पढाओी ५/१
——की सनातन चर्चा ५/२७; ६/२७
राष्ट्रीय शिक्षण-संस्थाओं का प्रश्न १/१८
राष्ट्रसभा और जातिवादी संस्थायें ७/१०
रिक्तता की सभ्यता ८/१६

व

वरदान ५/३४
वर्धा योजना के माने ८/२२
वह सिखावन १/२२
वृक्ष शाखा न्याय
—कॉंग्रेस और किसान सभायें ४/१५
व्यवहार में जीवन-वेतन १२/२४
व्यापार की प्रतिष्ठा कैसे बढेगी ? ४/१८
विश्वशान्ति और प्रगति १/२६
वीरवृत्ति और शस्त्रवाद ६/२२

श

श्रमदेव की अुपासना १/१०
श्रद्धा की परीक्षा ११/२२
शान्तियोग की साधना १/१५

स

सत्याग्रह का दर्शन और कला ६/१; ७/१
——बनाम निःशस्त्र प्रतिकार ८/४३
सत्याग्रही भारत की स्वराज्ययात्रा ९/२५
स्नेही, त्यागी या ज्ञानी ३/३२
समाजवाद की दृष्टि और व्याप्ति ३/१०
——से क्यों डरें ४/१२
——प्रतिबंधक और निवारक ६/७
सम्मेलन और यात्राओं का प्रयोजन ९/१
——वृत्त ११/४१
सरदार वल्लभभाओी का भाषण १२/१२
सर्वोदय और साम्यवाद ५/२३
——की दृष्टि ११३
——कैसे ? १/१
सव्य और अपसव्य की मीमांसा १०/९
स्व० आचार्य श्री महावीर प्रसादजी द्विवेदी ७/२८
स्वदेशी का रूपान्तर १/३२
संगठन विवेक ९/२९
संघ और व्यक्ति ३/२६
——वृत्त १/३५; २/४४; ३/६१; ४/५८; ५/५०; ६/४७; ८/४७; ९/३४
साहित्य संगठन १०/३०
सांप का डर १०/२५

ह

हमारा फर्ज ९/२१

सर्वोदय की दृष्टि

अ

अध्यापक और राष्ट्रकरण ५/४२
अविश्वास का शाप १०/२६
अश्लीलता और पाठ्यपुस्तकें ५/४३
अहिंसक युद्धनीति का पथ्यपहरेज ७/३४
देशरक्षा १ /६३
अहिंसा और साम्यवाद ९/४१

उ

अुद्योग बनाम यंत्रवाद १२/५४

ओ

अेक अुदात्त प्रतिज्ञा ३/५१
अेक बुरी आदत ८/३६

क

क्या यह झूठ सिखाना जरूरी है ? ४/३९
कानपुर ८/३१
काँग्रेस की प्रतीष्ठा और जनतात्मा की आतमरक्षा ४/४२
काँग्रेसी झगडे ९/४५
कार्यसमिति और प्रान्तवाद ७/३२
केवलवादी और समुच्चय वादी १०/३८
'कौओे की नज़र' ५/४८

ग

गजानन दावके का अपूर्ण कार्य ४/४५
गांधी=सत्याग्रह ५/४१
——का तेज़ कार्यक्रम ११/५९
——पक्ष का वर्तमान ११/५४
——विचार की मौलिक विशेषता ७/३७
——सप्ताह २/३२
——साहित्य १०/४१
गीताजयन्ति ५/३५
गुडावाजी ९/४४
गोरे देशी राज्य ७/४२

च

चारित्र्य का अनुवर्तन १/३९
चूड़ा और भूंसी का किस्सा १२/५३

छ

छंदपिंगल शास्त्र की आवश्यकता १०/४०

ज

जहरीला वृत्तविवेचन ४/२९
जातपांत तोडक मण्डल ७/२९
जाति या वर्ग-निष्ठ शिष्टाचार ६/३५
जीवन=वेतन चारित्र्य वेतन ६/३४
'ज्योत्स्ना' न कि 'ज्योत्स्नाम्' ४/४१

ड

डॉ. खरे और कार्यसमिति २/३४

त

तब क्या करें ? ११/५५
त्रिपुरी की फलश्रुति ९/३९
त्रिपुरी पर अेक नज़र ९/३८
'तेज़-कदम' संघ ११/५८

द

देशीभाषा और विद्युल्लिपि ६/३७

ध

धर्मक्षेत्र के पथिक जमनालजी ७/४५

न

नयी तालीम ७/४४
निन्दाजिवियों का प्रतिकार १०/३५
निरर्थक भाषावाद ७/४०
नेतापन और पदाधिकार ८/३४

प

पर्वतीय भाअियों की सुप्तशक्ति ८/३५
प्रश्नोत्तरी ५/४९

ब

बम्बअी की मजदूर हडताल ९/४१
——गोली प्रकरण का सबक ५/३८
बारीश के दिन आगये ! १२/५१
ब्राह्मणाः सन्तु निर्भयाः १०/४०
बुनियादी शैली २/४२
बेचारा सवाअी भुशुंडी ६/३४

भ

भगीरथ-विद्या १/४७
भारतीय राष्ट्रधर्म की दीक्षा ५/४५
भाषा की समृद्धि या प्रतिष्ठा ? ६/४

म

मजदूर हडतालें और काँग्रेस १/६२
मतभेद और शिष्टता ४/३२
महान राष्ट्रभक्त लाला हरदयाल १०/३
माता का अमर वैतालिक १/४१

र

राजकारण या सद्गुण संवर्धन ? १०/३८
राजकोट का सफल सत्याग्रह ६/४२
—— पर्व १२/५४
राजरत्न प्रो० माणिकराव ५/४०
राष्ट्रपति का चुनाव ८/२७
राष्ट्रपिता की गम्भीर चेतावणी
—शुद्धिकरण या क्षेत्रनिवृत्ति ? ३/५२
राष्ट्रभाषा का स्वरूप निर्णय ४/३४
——साहित्य-सम्मेलन ३/४६

ल

लोकजीवन की गंगोत्री १०/३४

व

वर्धा योजना के माने ? ८/६३
वाममार्ग ९/३९
वास्तववाद बनाम ध्येयवाद ८/३४
विचारभेद और मैत्री ११/५७
विलासी गुलाम—देशीराजा ८/२९

श

शराबबन्दी १२/५४
शान्तिप्रेम की कसौटी २/४०

स

सत्ता का पदार्थपाठ २/३७
सत्याग्रह बनाम निःशस्त्र प्रतिकार ८/३३
'स्थगित' या 'स्थित' ? ३/६०
सभाविक्षेप ११/५४
समाजवाद का भारतीय संस्करण १/४३
सरदार वल्लभभाई ८/२९
सर्वोदय की भाषा ६/३३
स्वराज्य का सबक १/४९
स्वार्थ प्रतिनिधिक राज ९/४५
—— भेद ९/४५
सार्वजनिक औषधालय, बारडोली ७/४६
सियारामजी की शालीनता ८/३७
सुभास बसु—गांधी चिट्ठीपत्री ११/५५
सुशिक्षित द्वितीया ५/४७
संकीर्णता का अकाण्डताण्डव ८/३१
संस्थाओं का प्रतिनिधित्व ९/४५
संस्था संचालन ८/३५

ह

हथियारबन्द कायरता १०/३९
हम सिपाही हैं या जल्लाद ? ३/५७
हमारे आरण्यक भाई १/४५
हिन्दूधर्म बनाम हिन्दूसमाजशास्त्र ६/३६

सर्वोदय मिलने की व्यवस्था निम्न लिखित स्थानों में की गयी है

(१) शिष्ट साहित्य भण्डार, आनंद भुवन, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बअी २
(२) वोरा अेण्ड कंपनी, ८, राउण्ड बिल्डिंग, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बअी २
(३) नवजीवन कार्यालय, १३०, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बअी २
(४) नवजीवन कार्यालय, अहमदाबाद ।
(५) खादी भण्डार, हैरिसन रोड, कलकत्ता ।
(६) सस्ता साहित्य मण्डल, नया बाजार, देहली ।
(७) सस्ता साहित्य मण्डल, लखनऊ ।
(८) गांधी आश्रम, गोरखपुर ।
(९) मगनलाल हिम्मतलाल भट्ट, कांग्रेस हाअूस, नाणावट, सूरत ।

सूचना—

'सर्वोदय' में आम तौर पर अिश्तिहार नहीं लिये जायेंगे । अपवाद केवल वाचनीय ग्रन्थ और देशसेवा करनेवाली संस्थाओं के लिये रहेगा । अिनके अिश्तहारों के दाम नहीं लिये जायेंगे । केवल कागज़, छपाई और डाकखर्च लेकर अिश्तिहार छापे जायेंगे । जो साहित्य या संस्था निर्विवादरूप से लोकोपयोगी है, अुसीको स्थान दिया जायगा । यह व्यवस्था केवल समाज-सेवा और ग्राहकों के हित की दृष्टि से चलायी जायगी ।

व्यवस्थापक, 'सर्वोदय', वर्धा ।

Reg. No. N. 741

अविरत अहिंसक युद्ध

लड़ाओ में पीठ दिखाना—"पलायनम्"—कायरता है। वह सिपाही को शोभा नहीं देती। यह जानी हुओ बात है कि जब सशस्त्र योद्धा अपने हथियारों को गंवा देता है; या जब वे निकम्मे हो जाते हैं, तो वह नये हथियार खोजता है। अुन्हें लाने के लिअे वह लड़ाओ का मैदान छोड़ कर जाता है। अहिंसक योद्धा तो लड़ाओ छोड़ना जानता ही नहीं। अपने मन में अेक क्षण के लिअे भी बुरे विचार को आश्रय न देते हुअे वह हिंसा के मुंह में लपकता है। अगर आपको अैसी अहिंसा असंभव लगती हो, तो कम से कम, हम अपने प्रति तो सच्चे रहें और अुसे छोड़ दें। मेरे लिअे तो लड़ाओ बन्द करना असंभव है। मैं हरगिज़ अैसा नहीं कर सकता। मैंने जिस योद्धा का वर्णन किया वह बनने की कोशिश मैं कर रहा हूं, और यदि ओश्वर चाहेगा, तो अिसी जन्म में मैं बन भी जाअूंगा। अैसा योद्धा तो अकेला भी लड़ सकता है। × × × × ×

अिस अुत्कट खोज की धुन में मैं कओ अैसे काम करता होअूंगा जो लोगों को अटपटे लगते होंगे। अपने सच्चे विश्वास के कारण अगर हरेक आदमी मुझे छोड़ दे तो भी मैं कुड़कुड़ाअूंगा नहीं। 'कुछ न कुछ जरूर होगा' अिस अंध विश्वास से कोओ मुझसे चिपटा न रहे। अैसे लोगों की बदौलत हमारे अुद्देश की प्रगति होने के बदले अुसमें बाधा होगी।

—गांधीजी

'हरिजन' से — १७ जून १९३९

प्रकाशक:—दादा धर्माधिकारी, बजाजवाडी, वर्धा (मध्यप्रांत)।
मुद्रक:—वल्लभदास जाजू, श्रीकृष्ण छापखाना लिमिटेड, बच्छराज रोड, वर्धा।